परिचय

भारतवर्ष के महत्वपूर्ण सास्कृतिक आदोलन प्राय देशव्यापी रहे हैं, यद्यपि इनमें साथ साथ प्रादेशिक विशेषताएँ भी विकसित होती रही हैं। इस प्रकार के आदोलनो में मध्ययुग की वैष्णव भक्ति-भावना ने देश के बहुत बडे भाग को प्रभावित किया था और वह जन-जीवन में बहुत गहरी उतर गयी थी। एक ही मूल धार्मिक प्रेरणा को मध्यदेश, गुजरात, बगाल, उडीसा, आसाम आदि के सप्रदाय-प्रवर्त्तको तथा भक्त-कवियो ने अपने-अपने ढग से प्रकट किया।

मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि यदि हमें अपने देश के सास्कृतिक आदोलनो का वास्तविक पूर्ण अध्ययन उपस्थित करना है और उनका पूर्ण चित्र सामने रखना है तो यह केवल मात्र प्रादेशिक अध्ययनो के रूप में नही हो सकेगा, किंतु विस्तृत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन भी अनिवार्य होंगे। इसी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए मै अपने सहयोगियो तथा खोज के विद्यार्थियो को भाषा, साहित्य और संस्कृति सबधी ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विषयो पर कार्य करने को निरतर प्रेरित करता रहा हूँ।

तुलनात्मक विषयो में गुजराती और व्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन मैंने श्री जगदीश गुप्त के सिपुर्द किया था। कुछ अन्य विद्यार्थियो को हिंदी-बंगाली, हिंदी-तेलगू, हिन्दी-मराठी, आदि विषयो के तुलनात्मक अध्ययनो में लगाया था। मुझे अत्यत संतोष है कि श्री गुप्त ने अपने विषय का अध्ययन पूर्ण परिश्रम और खोज के साथ किया और उनके इस कार्य पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० फिल्० की उपाधि प्रदान की। उनके परीक्षको ने इस महत्त्वपूर्ण कार्य की अत्यत प्रशसा की थी। यही थीसिस अब परिवर्द्धित तथा सशोधित रूप में प्रकाशित हो रहा है।

इस कार्य के सिलसिले में श्री गुप्त ने गुजराती भाषा और साहित्य का भली प्रकार अध्ययन किया तथा कई महीने गुजरात के अनेक केन्द्रो में रह कर सामग्री

सूर

कोऊ माई लैहै री गोपालहि ।
दधि को नाम श्यामसुदर रस बिसरि गई ब्रजबालहि ।

—सू० सा०, पृ० ३२६

मीरां

कोई श्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया डोलै ।
दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो हरिल्यो' बोलै ।

—मी० पदा०, पृ० ६१

नरसी

धरणीधरसु लागु माह ध्यान रे ।
लोक कहेछे गोपी घेली रे थइ छे,
माथे छे मही, कहे छे कान रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ५३६

परिचय

भारतवर्ष के महत्वपूर्ण सास्कृतिक आदोलन प्राय देशव्यापी रहे है, यद्यपि इनमें साथ साथ प्रादेशिक विशेषताएँ भी विकसित होती रही है। इस प्रकार के आदोलनो में मध्ययुग की वैष्णव भक्ति-भावना ने देश के बहुत बडे भाग को प्रभावित किया था और वह जन-जीवन में बहुत गहरी उतर गयी थी। एक ही मूल धार्मिक प्रेरणा को मध्यदेश, गुजरात, बगाल, उडीसा, आसाम आदि के सप्रदाय-प्रवर्तको तथा भक्त-कवियो ने अपने-अपने ढग से प्रकट किया।

मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि यदि हमें अपने देश के सास्कृतिक आदोलनो का वास्तविक पूर्ण अध्ययन उपस्थित करना है और उनका पूर्ण चित्र सामने रखना है तो यह केवल मात्र प्रादेशिक अध्ययनो के रूप में नही हो सकेगा, किंतु विस्तृत ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन भी अनिवार्य होगे। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मैं अपने सहयोगियो तथा खोज के विद्यार्थियो को भाषा, साहित्य और सस्कृति सबधी ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विषयो पर कार्य करने को निरतर प्रेरित करता रहा हूँ।

तुलनात्मक विषयो में गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन मैंने श्री जगदीश गुप्त के सिपुर्द किया था। कुछ अन्य विद्यार्थियो को हिंदी-बगाली, हिंदी-तेलगू, हिन्दी-मराठी, आदि विषयो के तुलनात्मक अध्ययनो में लगाया था। मुझे अत्यत संतोप है कि श्री गुप्त ने अपने विषय का अध्ययन पूर्ण परिश्रम और खोज के साथ किया और उनके इस कार्य पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने उन्हें डी० फिल्० की उपाधि प्रदान की। उनके परीक्षको ने इस महत्वपूर्ण कार्य की अत्यत प्रशसा की थी। यही थीसिस अब परिवर्द्धित तथा सशोधित रूप में प्रकाशित हो रहा है।

इस कार्य के सिलसिले में श्री गुप्त ने गुजराती भाषा और साहित्य का भली प्रकार अध्ययन किया तथा कई महीने गुजरात के अनेक केन्द्रो में रह कर सामग्री

सकलित की और वहाँ के विद्वानो के साथ विचार विनिमय किया। ब्रज की तो उन्होने कई यात्राएँ की। मेरे विचार में अपने देश के दो प्राचीन जनपदो की साहित्यिक तथा धार्मिक धाराओ का ऐसा विस्तृत और गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत ग्रथ के रूप में पहली बार उपस्थित किया जा रहा है। मुझे विश्वास है भारतीय सस्कृति और साहित्य के विद्यार्थी इसे अत्यत उपयोगी तथा ज्ञानवर्द्धक पायेंगे।

प्रयाग,
नवम्बर १९५७

धीरेन्द्र वर्मा

प्राक्कथन

समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं और उनके साहित्यों का विकास प्राय: समानान्तर ही हुआ है। मध्यकाल में महान् भक्ति आन्दोलन से अनुप्रेरित होकर राम और कृष्ण सम्बन्धी जो विशाल साहित्य निर्मित हुआ वह हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि सभी भाषाओं में उपलब्ध होता है। एक समय में लगभग एक ही प्रकार की प्रेरणाओं से उत्पन्न विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं में रचित इस साहित्य के सम्यक् ज्ञान के लिए गंभीर तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इस आवश्यकता को समझ कर और गुजराती तथा व्रजभाषा में पर्याप्त कृष्ण-साहित्य देखकर 'गुजराती और व्रजभाषा कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक विषय को हाथ में लिया गया। जहाँ तक व्रजभाषा का प्रश्न है १६वीं और १७वीं शती में कृष्ण-काव्य की सर्वाधिक रचना हुई, इससे पहले का प्रामाणिक काव्य नहीं मिलता परन्तु गुजराती में भालण जैसे प्रमुख कवि १५वीं शती में ही माने जाते है, अतएव १५वीं, १६वीं और १७वीं इन तीनों शतियों के समय विस्तार को स्वीकार किया गया। कवियों और उनके काव्यों का परिचय शती-क्रम के अनुसार ही दिया गया है। कौन सा कवि किस शती में माना जाय इसका निर्णय जन्मकाल के आधार पर न करके काव्यकाल के आधार पर किया गया है जो काव्य सम्बन्धी अध्ययन के लिए अधिक उचित है। अध्यायों का विभाजन काव्य में पाये जाने वाले प्रमुख अंगों के अनुसार किया गया है।

"कवि और काव्य" शीर्षक प्रथम अध्याय में कवियों के समय से सम्बन्धित प्रमाण देते हुए उनके कृष्णपरक काव्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जो काव्य कृष्णपरक नहीं समझे गये उन्हें, स्वीकृत कवि की रचना होते हुए भी, प्रस्तुत अध्ययन में स्थान नहीं दिया गया है। जैसे नरसी मेहता की 'हारमाला' आदि कई रचनाएँ जो उनके जीवन से सम्बद्ध घटनाओं पर रची गयी हैं, इस अध्ययन में सम्मिलित नहीं की गयी हैं। इसी तरह तुलसीदास की केवल 'कृष्णगीतावली' को ही सम्मिलित किया गया है क्योंकि इसके अतिरिक्त उनकी सारी रचनाएँ रामपरक हैं। दोनों भाषाओं के सम्पूर्ण काव्य साहित्य को लेकर रचनाओं का इस तरह चयन लेखक को स्वयं करना पड़ा है। गुजराती की बहुत सी ऐसी सामग्री का प्रयोग किया गया है जो अभी तक अप्रकाशित है। व्रज में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रभाव से

कृष्ण-साहित्य का विकास होने के कारण ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का परिचय सम्प्रदायो के वर्ग बनाकर दिया गया है और जो सम्प्रदाय-मुक्त कवि हैं उनको एक स्वतन्त्र वर्ग में रक्खा गया है। गुजराती में परिस्थिति भिन्न होने के कारण इस प्रकार के वर्ग-विभाजन की आवश्यकता नही हुई। कृष्ण-काव्य केवल भक्ति-काव्य ही नही है अतएव ब्रजभाषा के रीतिकार और गुजराती के आख्यानकार कवियो को भी स्थान दिया गया है। गुजराती कविया के समय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न इतिहासकारो द्वारा दिये गये उनके समय का एक स्वतन्त्र तालिका-चित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है साथ ही तीन तालिका-चित्र और दे दिये गये हैं जिनसे प्रत्येक शती में गुजराती और ब्रजभाषा दानो के कवियो और काव्यो की तुलनात्मक परिस्थिति तत्काल एक ही दृष्टि में विदित हो जाती है। यह सब ग्रथ के अत में छपे हैं। गुजराती कवियो और काव्यो का परिचय अपेक्षाकृत कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है क्योकि हिन्दी-भाषी क्षेत्र अभी उनसे कम परिचित है। नरसी मेहता के लिए गुजराती में प्रयुक्त 'नरसिंह' का व्यवहार न करके 'नरसी' का ही व्यवहार किया गया है जो हिन्दी में प्रचलित रहा है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में और ध्रुवदास ने अपनी 'भक्तनामावली' में इसी का व्यवहार किया है। मीरा के तथाकथित "नरसी रो माहेरो" में भी यही रूप व्यवहृत हुआ है।

इस अध्ययन का द्वितीय अध्याय, जिसमें वर्ण्यवस्तु का विश्लेषण एव विवेचन किया गया है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी सारी सामग्री, ब्रज-लीला, मथुरा-लीला तथा द्वारका-लीला, इन तीन भागो में विभाजित कर दी गयी है। इन भागो के अन्तर्गत अवान्तर विभाजन करते हुए वर्ण्य-वस्तु की सूक्ष्म तुलना करने का प्रयास किया गया है। तुलनात्मक स्थिति को पूर्ण बनाने के लिए प्राचीन सस्कृत ग्रथो के स्रोतो का बराबर निर्देश कर दिया गया है। एक तो इससे मूल प्रेरणाओ पर प्रकाश पड सका है दूसरे कवियों की, वस्तु के क्षेत्र में, मौलिक देन का भी निश्चय किया जा सका है। यह सारा विश्लेषण मूल ग्रथो का आधार लेकर मौलिक रूप से किया गया है।

तृतीय अध्याय में "सिद्धान्त पक्ष' शीर्षक से दोनो भाषाओ के कवियो द्वारा ब्रह्म, जीव, जगत्, माया तथा भक्ति के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये सिद्धान्तो, विचारो एव धारणाओ को यथावत् प्रस्तुत किया गया है। साम्प्रदायिक मान्यताओ तथा प्राचीन स्रोतो का भी आवश्यकतानुसार प्रसग के अनुकूल उल्लेख कर दिया गया है परन्तु प्रधानता कवियो के अपने विचारो को ही दी गयी है।

चतुर्थ अध्याय काव्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उसमें 'भावपक्ष' का तुलनात्मक निरूपण किया गया है। भावों की गभीरता, उनका सहज सौन्दर्य, औचित्य-अनौचित्य, अभिव्यजना के गुण-दोष, सभी का विवेचन रूढिगत शास्त्रीय परिपाटी से न करके साहित्य के स्वाभाविक मानदड से किया गया है। इसके लिए कृष्ण-काव्य के कुछ विशेष भावमय स्थल अथवा प्रसग चुन लिए गये हैं। दोनो भाषाओ में प्राप्त होने वाले भावसाम्य की ओर विशेष रूप से सकेत कर दिया गया है।

'कलापक्ष' शीर्षक पचम अध्याय में कला का व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए अलकार-विधान के अतिरिक्त दृश्य-चित्रण, स्वभाव-चित्रण, प्रकृति-चित्रण तथा प्रबन्ध-निर्वाह का भी समावेश कर लिया गया है जिससे दोनो भाषाओ के कृष्ण-काव्य के लगभग सभी प्रमुख पक्ष सामने आ जाते हैं।

'छद' शीर्षक षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत प्रबन्ध, पद और मुक्तक तीनो शैलियों में व्यवहृत छदो का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। छंदो के सूक्ष्म भेदों, लक्षणो, समानताओं एव विषमताओ के निर्देशन के बाद अत में दोनो भाषाओ के काव्य में स्थान स्थान पर निर्दिष्ट मुख्य रागो की सूची भी दे दी गयी है।

'भाषा शैली' शीर्षक सप्तम अध्याय भी पर्याप्त महत्त्व रखता है क्योंकि इसके उत्तराश में भाषा-मिश्रण की विवेचना करते हुए कुछ ऐसे स्थलो का उदाहरण सहित निर्देश किया गया है जहाँ गुजराती कवियो के काव्य में व्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। व्रजभाषा काव्य में गुजराती से प्रभावित जो प्रयोग मिलते हैं उनकी ओर भी सकेत कर दिया गया है। अध्याय के प्रारभ में तत्सम, तद्भव, देशज अथवा लोक प्रचलित शब्दो के वैभव का परिचय दिया गया है और पर्याय शब्दो के उदाहरण रूप में कृष्ण के लिए दोनो भाषाओ में प्रचलित शब्दो का सकलन प्रस्तुत किया गया है जो मनोरजक भी है और महत्त्वपूर्ण भी। लोकोक्तियों और मुहावरो की सूची देकर दोनो भाषाओ की भावाभिव्यजन-शक्ति की तुलना की गयी है तदनन्तर भाषा की शैलीगत विशेषताओ का सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में मीरा तथा भालण की भाषा से सम्बन्धित दो श्लोक भी दे दिये गये हैं।

पहले अध्याय को छोड कर शेष सभी अध्यायो में दी गयी सामग्री तथा उसका विश्लेषण एव विवेचन मौलिक रूप में लेखक द्वारा प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। बीच में यदि कही से सहायता ली गयी है तो उसका उल्लेख भी कर दिया गया है।

दोनो भाषाओ के कृष्ण-काव्य में मिलने वाले बहुमुखी साम्य और वैषम्य के आधार को प्रकट करने के लिए उपसहार में गुजरात और व्रज के युगो पुराने सास्कृतिक सम्बन्धो पर एक विहगम दृष्टि डालते हुए उनके अनेक पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है। इस उपसहार में जिन तथ्यो का प्रतिपादन किया गया है उनके सकलन में विभिन्न विद्वानो की कृतियो से सहायता ली गयी है।

प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित सामग्री की प्राप्ति के लिए लेखक को गुजरात, बम्बई, पूना, नाथद्वारा, काँकरौली, उदयपुर जैसे अनेक स्थानो की यात्रा करनी पडी। गुजरात में रहकर उसने कई महीनों तक अहमदाबाद की 'गुजरात विद्या सभा' (गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी) तथा बडौदा के 'प्राच्यविद्या मदिर' में कार्य किया। बम्बई की 'फार्बस गुजराती सभा' तथा 'भारतीय विद्या भवन' में भी कुछ समय तक उसे कार्य करना पडा। 'भडारकर इन्स्टीट्यूट' पूना तथा 'विद्याविभाग' काँकरौली से भी लेखक ने आवश्यक सामग्री प्राप्त की।

अपने यात्रा काल के शोधकार्य में लेखक को श्री दुर्गाशकर शास्त्री, श्री रणछोडलाल ज्ञानी, डॉ० मोतीचद, श्री पी० के० गोडे, श्री मुनि जिनविजय, श्री रविशकर रावल, श्री रसिकलाल छो० पारीख, श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, श्री जेठालाल गोवर्धन शाह, श्री गोविन्द लाल भट्ट, डॉ० मजूलाल मजमूदार तथा श्री बालचन्द जैन आदि अनेक विद्वान् महानुभावो से सहयोग प्राप्त हुआ जिसके लिए वह उनका हृदय से आभारी है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने साहित्यकार ससद् की ओर से आर्थिक सहायता देकर यात्रा का व्यय-भार कुछ हलका किया अतएव लेखक उनका भी आभार सधन्यवाद स्वीकार करता है। प्रयाग विश्वविद्यालय ने लगातार तीन वर्ष तक डी० फिल्० का रिसर्च स्कॉलरशिप प्रदान करके तथा इस शोध-प्रबध के प्रकाशन की अनुमति देकर जो उपकार किया है उसके लिए धन्यवाद देना लेखक का कर्तव्य है।

श्री के० एम० मुशी तथा स्वर्गस्थ श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक ने परीक्षक रूप में जो अमूल्य सुझाव दिये थे उनका, कृतज्ञता के साथ, ग्रथ में उपयोग किया गया है।

अपने श्रद्धेय गुरु डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का लेखक सबसे अधिक कृतज्ञ है जिनकी देखरेख और निर्देशन में सारा कार्य सम्पन्न हुआ। वस्तुत इस कार्य में मुझे प्रवृत्त करने का सारा श्रेय उन्ही को है और उन्ही के बहुमूल्य परामर्श से इस प्रबन्ध को इतना व्यवस्थित रूप मिल सका।

तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में लेखक को अपना पथ स्वय बनाना पड़ा है क्योंकि आदर्श रूप में कोई कृति उसके सामने नही थी। विवेचन करने और निष्कर्षों पर पहुँचने में उसने यथाशक्ति तटस्थ रहने का प्रयास किया है।

ग्रथ विषयक कुछ सामान्य बातो की ओर भी यहाँ ध्यान दिला देना आवश्यक है। एक तो यह कि प्रत्येक अध्याय की पादटिप्पणियाँ सुविधा के कारण अध्याय के अन्त में दी गयी है दूसरे यह कि इस अध्ययन में सर्वत्र सनो का व्यवहार किया गया है। जहाँ सवतो का व्यवहार हुआ है वहाँ वैसा सकेत कर दिया गया है। कुछ ग्रथो तथा व्यक्तियो के पूरे नाम न देकर सक्षिप्त रूप प्रयुक्त किये गये है जिनके पूर्णरूप सक्षिप्त रूपो के साथ ग्रथ के प्रारभ में दे दिये गये है।

अन्त में मैं उन सब लोगो का साभार स्मरण करना चाहता हूँ जिनके श्रम और सद्भाव ने ग्रथ को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने में योग दिया। श्री गगाप्रसाद श्रीवास्तव ने कुछ अशो के सक्षिप्तीकरण एव अनुलेखन में, श्री पुरुषोत्तमदास मोदी तथा श्री कृष्ण चन्द्र कपूर ने टाइपिंग की व्यवस्था में, आदरणीय श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय तथा मेरे प्रिय शोध-छात्र श्री योगेन्द्र पाण्डेय ने प्रूफ-सशोधन में सहायता दी। श्री शेषकुमार रस्तोगी तथा श्री सुदर्शन मिश्र ने अनुक्रमणिकाएँ निर्मित करने में जिस लगन से कार्य किया वह सराहनीय है। न चाहते हुए भी अनेक त्रुटियाँ यत्र तत्र रह गयी है जिनका सुधार अगले सस्करण में अवश्य ही कर दिया जायगा। अपनी सीमाएँ और विषय विस्तार दोनो का ध्यान करके मैं विनम्र भाव से यह ग्रथ आपके हाथो में अर्पित करता हूँ।

जगदीश गुप्त

प्रयाग,
कार्तिकी पूर्णिमा, स० २०१४

विषय-क्रम

[अंक पृष्ठ-संख्या के द्योतक हैं।]

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

संक्षिप्त रूप

अ०	अध्याय
अ० व०	अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय
उत्त०	उत्तरार्ध
उप०	उपनिषद
क० च०	कवि चरित
कृ० खं०	कृष्ण जन्म खंड
कृ० गी०	कृष्ण गीतावली
गु० व० सो०	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी
गु० सा०	गुजराती साहित्य
गू० हा० संकलित यादी	गूजराती हायप्रतोनी संकलित यादी
छं० सं०	छंद संख्या
झावेरी	कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी
तारापोरवाला	इरच जहाँगीर सोराबजी तारापोरवाला
त्रिपाठी	गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी
थूथी	एन० ए० थूथी
द० स्कं०	दशम स्कंध
दिवेटिया	नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया
ध्रुव	आनन्दशंकर ध्रुव
न० कृ० का०	नरसिंह महेता कृत काव्य-संग्रह
नि० मा०	निम्बार्क माधुरी
नं०	नंबर
नंद०	नंददास
पु०	पुराण
प्रा० का० मा०	प्राचीन काव्य माला

संक्षिप्त रूप

अ०	अध्याय
अ० व०	अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय
उत्त०	उत्तरार्ध
उप०	उपनिषद
क० च०	कवि चरित
कृ० खं०	कृष्ण जन्म खंड
कृ० गी०	कृष्ण गीतावली
गु० व० सो०	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी
गु० सा०	गुजराती साहित्य
गू० हा० संकलित यादी	गूजराती हायप्रतोनी संकलित यादी
छं० सं०	छंद संख्या
झावेरी	कृष्णलाल मोहनलाल झावेरी
तारापोरवाला	इरच जहाँगीर सोराबजी तारापोरवाला
त्रिपाठी	गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी
थूथी	एन० ए० थूथी
द० स्कं०	दशम स्कंध
दिवेटिया	नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया
ध्रुव	आनन्दशंकर ध्रुव
न० कृ० का०	नरसिंह महेता कृत काव्य-संग्रह
नि० मा०	निम्बार्क माधुरी
नं०	नंबर
नंद०	नंददास
पु०	पुराण
प्रा० का० मा०	प्राचीन काव्य माला

प्रा० गु० छ०	प्राचीन गुजराती छदो
पृ०	पृष्ठ
फा० गु० स०	फार्बस गुजराती सभा
ब्र० वै०	ब्रह्म वैवर्त
बृ० का० दो०	बृहत् काव्य दोहन
भा०	भागवत
मा० वा०	माधुरी वाणी
मीतल	प्रभुदयाल मीतल
मी० प०	मीरा पदावली
मुशी०	कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
ले०	लेखक
सू० सा०	सूरसागर
स०	सवत तथा सपादक (प्रसगानुसार)
श्लो०	श्लोक
शास्त्री	केशवराम काशीराम शास्त्री
श्रीकृ० ली० का०	श्रीकृष्ण लीला काव्य
श्रीकृ० वृ० रा०	श्रीकृष्ण वृन्दावन रास
श्रीगदा० वा०	श्रीगदाधर भट्ट की वाणी
श्रीम० भा०	श्रीमदभागवत (प्रेमानद कृत)
श्रीव० र० वा०	श्रीवल्लभ रसिक की वाणी
श्रीहि० चौ० से० वा०	श्रीहित चौरासी सेवक वाणी
वा०	वाणी
व्या० वा०	व्यास वाणी (हरिरामव्यास कृत)
ह० प्र०	हस्त प्रति
हरि० षो०	हरिलीला षोडशकला
हि० चौ०	हित चौरासी

अंग्रेज़ी

A. G.	Archaeology of Gujarat, Sankalia.
Chap.	Chapter.
C. P. G.	Classical Poets of Gujarat and their Influence on Society and Morals, G. M. Tripathi.
G. G.	The Glory that was Gurjara desha.
G. L.	Gujarat and Its Literature, Munshi.
G. L. L.	Gujarati Language and Literature, N. B. Divetia.
J. O. I. B.	Journal of Oriental Institute, Baroda
J. I. S. O. A.	Journal of The Indian Society of Oriental Art
M. G. L.	Milestones in Gujarati Literature, Jhaveri.
S.C. G. L.	Selections from Classical Gujarati Literature, Taraporewala.
Vol.	Volume.
V. G.	Vaishnavas of Gujarat, Thoothi.

१

ने और काव्य

ी शती—गुजराती

.तिहासकारों में १५वी शती के कृष्णपरक कवियों और उनके समय के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए इस शती के जिन कवियों और काव्यों को स्वीकार किया गया है उनके नाम चित्र न० १ में दिये गये हैं तथा चित्र नं० ४ में विभिन्न इतिहासकारो द्वारा दिये गये कवियों के समय एवं तत्सम्बन्धी जटिलता को स्पष्ट किया गया है।

चित्र नं० ४ के देखने से ज्ञात होता है कि इस शती में कुल सात कवि उपलब्ध हुए हैं जिनमें से मयण का उल्लेख मुशी और शास्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी इतिहासकार ने नही किया है।[1] नर्यपि तथा केशवदास का परिचय भी मुशी और शास्त्री दो ही ने दिया है। मीरां के विषय में दिवेटिया मौन है तथा मुशी और शास्त्री ने उन्हें १५वीं शती में स्वीकार नही किया है किन्तु शेष इतिहासकारो ने १५वीं में ही माना है। भालण को सबने स्वीकार किया है और भीम को भी। केवल दिवेटिया ने भीम का परिचय नही दिया। नरसी को मुंशी और दिवेटिया के अतिरिक्त सबने १५वी शती में रखा है। इस विषय में दिवेटिया की धारणा उतनी दृढ नही है जितनी मुशी की। अधिकतर कवियों के जीवनकाल के विषय में अनिश्चय एवं मतवैविध्य है जिसका निराकरण करते हुए निष्कर्ष रूप में १५वी शती में निम्नलिखित चार कवियो को स्वीकार किया गया है।

१. नर्यपि
२. मयण
३. भालण
४. भीम

शेष कवि १६वीं शती के अन्तर्गत स्वीकृत हुए हैं। उक्त चार कवियो तथा उनके काव्यो का परिचय आगे दिया गया है।

मुशी ने 'नरसिंह युगना कवियो' तथा अपने इतिहास में इस कवि का समय स० १४९५ (सन् १४३९) के आसपास दिया है किन्तु नाम नर्तपि माना है ।[3]

नयर्षि

कीर्तिमेरु नामक जैन कवि की स० १४९७ की एक हस्त-प्रति में 'फागु' नामक रचना के प्राप्त होने तथा उसकी एक पक्ति 'कीरति मेरु समाण' के आधार पर उन्होने फागु-कार को कीर्तिमेरु का शिष्य होना भी सभव माना है । नर्तपि नाम का आधार ग्रथ के अत में प्राप्त सस्कृत के दो श्लोको मे से निम्नलिखित श्लोक है ।

पौराणं कीर्तिसो देव स्वामेव भुवनाधिप. ।
नत (य) र्षि. श्री जगद्वन्द्यो ज्ञानी ध्यानी गुणी कविः ॥

शास्त्री नर्तपि को निरर्थक समझते हुए नयर्षि (नय+ऋषि) को उचित समझते है ।[3] यही दूसरे श्लोक की पक्ति 'रमा रमा रमा राम तस्य येन नयोनते' को देखते हुए अधिक सभाव्य लगता है । वसतविलास नामक काव्य, जिसकी हस्तप्रति स० १५०८ तक की उपलब्ध है, की अनेक पक्तियाँ फागु की अनेक पक्तियो से समानता रखती है जिसके कारण मुशी एक ही व्यक्ति को दोनो का रचयिता मानते है परन्तु शास्त्री दोनो का रचनाकाल स० १४५० से स० १५०० के बीच मानते है और इनके रचयिता के एक ही होने के सम्बन्ध में शकालु है । उनके मत से फागु का रचयिता यदि भिन्न है तो लगभग २५ वर्ष बाद फागु की रचना हुई होगी ।[4] जो भी हो इतना स्पष्ट है कि फागु का रचयिता स० १४९७ के आसपास का अर्थात् १५वी शती ईसवी का कवि है । यहाँ इतना ही अभिप्रेत है ।

रचना : फागु—कवि की कृष्ण विषयक रचना केवल एक ही प्राप्त है जिसे 'फागु' की सज्ञा दी जाती है । वसतविलास यदि नयर्षि की ही रचना हो तो भी वह प्रस्तुत विषय की सीमा में नही आती । इस 'फागु' नामक काव्य का विषय बसत ऋतु में द्वारकावासी कृष्ण की गोपियो सहित रासक्रीडा है । प्रारभ में सरस्वती वदना के उपरान्त सोरठ देश का परिचयात्मक निरूपण है । काव्य के नाम का आधार यह अन्तिम पक्तियाँ है ।

देव तणउ अे फाग । पढइ गुणइ अणुराग ।
नव निधि ते लहइ अे । जे भाणि समलइ अे ॥ ६४॥

इस कवि के काल निर्णय के सम्बन्ध में कोई स्थूल प्रमाण उपस्थित नही किया जा सकता तो भी 'मयणछद' की भाषा के आधार पर इतना अवश्य अनुमान होता है कि इसकी रचना १५वी शती के बाद की नही है । शास्त्री इस कवि का समय स० १५०० के आसपास मानते है ।[5]

मयण

रचना : मयणछंद—मयण की एक मात्र कृति मयणछंद ही उपलब्ध है। सारी रचना में विविध प्रकार से 'स्यामास्याम' का सभोग शृंगार वर्णित है। यत्र तत्र विरह एवं मान सम्बन्धी छद भी है।

यद्यपि सामान्यतः सभी इतिहासकारों ने भालण को १५वी शती में माना है तथापि उनका समय पूर्णरूप से असदिग्ध नही कहा जा सकता। भालण के विशेषज्ञ रामलाल चुन्नीलाल मोदी एक स्थल पर उन्हें नरसी का समकालीन मानते हुए सं० १४९० से सं० १५७० के बीच स्थापित करते है और दूसरे स्थल पर वे ही उनका मृत्यु समय स० १५४५-४६ होने का अनुमान करते हैं।[१] मुन्शी इनका समय सन् १४२६ से १५०० के बीच मानते हुए उसे एक प्रकार से अनिश्चित बताते हैं। शास्त्री भालण का जन्म सं० १५१५-२० के आसपास सभव मानते हैं किन्तु आश्चर्य है कि इसी के साथ भालण की कादम्बरी की भाषा को वे दूसरी भूमिका न मानकर गुजराती की तीसरी भूमिका मानते हुए 'सं० १६२५ लगभग मां स्थापित थयेली भाषा छे' भी लिखते हैं।[२] यदि कादम्बरी की भाषा के सम्बन्ध में उनका यह निर्णय स्वीकार किया जाय तो भाषा की यह अपेक्षाकृत अर्वाचीनता भालण के सर्वमान्य काल को स्वीकृत करने में बाधक सिद्ध होती है। संभव है कि गुजराती के अन्य विद्वान कादम्बरी की भाषा विषयक शास्त्री जी की उक्त धारणा से सहमत न हों। ऐसी स्थिति में भालण के समय की सीमा निर्धारित करने वाली अन्य सामग्री का परीक्षण आवश्यक है।

भालण

जिस सामग्री के आधार पर भालण का समय निश्चित किया जाता है उसकी प्रामाणिकता प्रधानतः चार मान्यताओं पर आधारित है।

१. भालण और 'हरिलीलाषोडशकला' के रचयिता भीम के वेदान्तपारंगत गुरु 'पुरुषोत्तम' की एकता

२. नारायण भारती द्वारा भालण के घर से प्राप्त सामग्री की सत्यता एवं प्रामाणिकता

३. भालण की तथाकथित रचना 'बीजुं नलाख्यान' में दिया हुआ समय सं० १५४५[८]

४. भालणसुत विष्णुदास के उत्तरकाड की समाप्ति का समय सं० १५७५[९]

इन चारों में से एक भी बात ऐसी नहीं है जिसे स्वतः सिद्ध प्रमाण माना जा सके। सभी सदेह से युक्त है।

भीम ने गुरु रूप में पुरुषोत्तम का उल्लेख केवल 'प्रबोधप्रकाश' में किया है। 'हरिलीलाषोडशकला' में 'महारिषि' एवं 'द्विज' मात्र कहा गया है। पूरा नाम उसमें नहीं मिलता। इस स्थिति को समझाने के लिए मोदी ने यह कल्पना की कि जिस काल में पुरुषोत्तम भालण जीवित थे उनका नाम परपरानुसार कवि ने नहीं दिया किन्तु 'प्रबोधप्रकाश' की रचना के समय तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी अत उसमें उनका नामोल्लेख किया गया।[१०] शास्त्री के अनुसार यह कल्पना भी सभव नहीं।[११] सबसे मुख्य बात तो यह है कि न तो भालण की किसी रचना से उनके पुरुषोत्तम नाम का प्रमाण मिलता है और न भीम की किसी रचना से भालण नाम का। फिर भालण के वेदान्तपारगत होने का भी कोई समर्थन नहीं है। नारायण भारती द्वारा भालण के घर से प्राप्त ताम्रपत्र पर 'पुरुषोत्तम महाराज पाटणना' खुदे होने से यह कभी सिद्ध नहीं होता कि पुरुषोत्तम भालण का ही नाम था। रही मानने की बात सो तो भीम को भालण का शिष्य ही नहीं पुत्र तक मानने की निराधार कल्पना की जा चुकी है जिसके लिए मोदी को लिखना पडा कि 'भीम भालण नो पुत्र होवो शक्य नथी'।[१२]

'बीजु नलाख्यान' में दिये गये सवत् की प्रामाणिकता से पहले स्वत उसी की प्रामाणिकता विचारणीय है। मोदी इसे भालण की रचना ही नहीं मानते यद्यपि शास्त्री को यह पूर्णतया अमान्य भी नहीं।[१३] किन्तु वे भी 'आ काव्य नी रच्या साल तेमने मळली' 'क' प्रत मा छे 'ख' मा न थी' की सूचना देकर स० १५४५ की पूर्ण मान्यता को सदिग्ध बना देते हैं। अतएव इस तिथि, वार, दिवस शून्य सवत् के आधार पर, भालण का समय निश्चित नहीं किया जा सकता।

रामजनकुअर रचित उत्तरकाड में 'भालण सुत विष्णुदास' के दो कडवो से जो समय निकलता है (स० १५७५) वह भी अशुद्ध ठहरता है। यह बात मोदी और शास्त्री दोनों ने ही स्वीकार की है। वहाँ बुधवार दिया है जबकि गणनानुसार शनिवार ही आता है।

इधर भालण के दशमस्कध में कवि की छाप वाले छ व्रजभाषा के पदो की स्थिति पर विचार करने से एक नयी ही समस्या उत्पन्न हो गयी है।[१४] इस दृष्टि से भालण के समय पर इतिहासकारो द्वारा अभी तक विचार नहीं किया गया था। हरगोविददास काटावाला, नारायण भारती तथा मोदी आदि जिन अन्य विद्वानो ने भालण का समय निश्चित करने की चेष्टा की उन्होंने भी उनके व्रजभाषा के पदो को कोई महत्व नहीं दिया। मोदी को तो इसका भान भी नहीं है। उनकी दृष्टि में केवल विष्णुदास के ही पद आये।[१५] शास्त्री ने भालण छापवाले केवल चार व्रज-

भापा के पदों का उल्लेख किया। सन् १९४९ की ओरियंटल कान्फ्रेंस में गुजराती सेक्शन के लिए उन्होंने इस विषय पर एक लेख भेजा जिसमें पाँच पदो को स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचे है वह उनके लेख की सिनॉप्सिस के निम्न उद्धरण से स्पष्ट है :

'These five padas should be considered either later interpolations by some one else, giving the Bhālaṇachāpa, or Bhālaṇa's own composition By accepting the latter view, it is easy to say that he knew vaisṇava vraja Bhāṣa poetry of Suradāṣ, and imitated him by giving five padas in vraja Bhāṣā.

Bhālaṇ's Akhyānas are of the same type as those of Nākar. It will be easier to put Bhālana in the second half of the 16th century V. S. and to consider him a contemporary, but a senior contemporary of Nākara.

भालण को १६वी शती विक्रमी के उत्तरार्ध में मानने का तात्पर्य है उनको १५वी शती ईसवी से बहिष्कृत करना। परन्तु ऐसा करना तब तक उचित नही है जब तक यह पूर्णतया प्रमाणित न कर दिया जाय कि भालण छाप वाले पद स्वय भालण की ही कृति है। भालण के उक्त पदो के अन्य व्यक्ति द्वारा रचे जाने और प्रक्षिप्त होने की संभावना को शास्त्री ने स्वीकार भी किया है। साथ ही विष्णुदास, रसातलनाथ, सीतलनाथ तथा सूर के पद दशमस्कंध में प्रक्षिप्त रूप मे मिलते ही है। अतएव जिस समय तक प्रक्षेप की संभावना का पूर्ण निराकरण नही हो जाता तब तक इसी आधार पर भालण को समय-च्युत करना युक्ति-सगत प्रतीत नही होता। वस्तुतः इन पदों और कादम्बरी की भापा के सम्बन्ध में अधिकारी तथा विशेपज्ञ विद्वानो का निर्णय प्राप्त होने से पूर्व भालण का समय संदिग्ध मानते हुए भी उन्हें १५वी शती में रखना ही उचित लगता है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन में उन्हें समय-च्युत नही किया गया है।

रचनाएँ: दशमस्कंध, कृष्णविष्टि—यों तो भालण ने कादम्बरी, नलाख्यान, सप्तशती, रामबालचरित आदि अनेक रचनाएँ की है किन्तु कृष्ण सम्बन्धी उनकी केवल दो ही कृतियाँ प्राप्त होती है।

१. दशमस्कंध
२. कृष्णविष्टि

मोदी के अनुसार यह दोनों रचनाएँ उनके उत्तरकाल की है, शास्त्री के मत से उत्तम कोटि की।" मुंशी ने रुक्मिणीहरण, सत्यभामाविवाह तथा कृष्णबाल-

चरित का भी उल्लेख किया है।[१७] किन्तु यह सारी की सारी रचनाएँ दशमस्कध के अन्तर्गत ही आ जाती है।

दशमस्कध—भागवत के दशमस्कध का अनुवाद होते हुए भी कई कारणो से भालण की यह रचना अत्यन्त महत्व रखती है। कृष्ण की बाल लीला के पद, राधा का वर्णन तथा ब्रजभाषा के पद ऐसे ही कारण है। इसमें अनेक प्रक्षिप्त पद भी है जिनकी ओर समय के प्रसग में सकेत किया जा चुका है। रासपचाध्यायी के ११ पद (पद न० १५७ से १६७ तक) लक्ष्मीदास के रचे हुए है। इस ग्रथ की प्राचीन हस्त-प्रतियो में भी यह क्षेपक यथावत् विद्यमान मिलते है।

कृष्णविष्टि—इस रचना के केवल चार पद ही प्राप्त है। इनमें कृष्ण के दूतत्व की भूमिका रूप द्रौपदी के मनोभावो को व्यक्त करने वाला सदेश पद्यबद्ध है। इस आधार पर एक विद्वान इसे 'द्रौपदी प्रकोप' नाम देना अधिक उचित समझते है।[१८] नडियाद वाली हस्तप्रति में भी 'पाचाली ना पद' शीर्षक दिया है परन्तु अन्य में 'इति श्री विष्टि समाप्त' लिखा है जिससे अनुमान होता है कि कदाचित् भालण ने पूर्ण कृष्णविष्टि की रचना की होगी जिसमें से केवल यह चार पद ही उपलब्ध है।

भीम

भीम के समय के सम्बन्ध में भालण की तरह न कोई मतभेद है और न उसकी सभावना ही क्योकि भीम ने अपनी दोनो रचनाओ 'प्रबोधप्रकाश' और 'हरिलीला-षोडशकला' में रचना सवतो का उल्लेख कर दिया है जो प्रामाणिक तथा शुद्ध सिद्ध होता है।[१९] स० १५४६ प्रथम ग्रथ का तथा स० १५४१ द्वितीय ग्रथ का रचनाकाल है। इससे स्पष्ट है कि कवि का काव्य काल १५वी शती ईसवी के अन्तर्गत आता है। भाषा और वस्तु की दृष्टि से भी कोई विरोध स्थापित नही होता।

रचना : हरिलीलाषोडशकला—भीम की कृष्ण विषयक रचना केवल हरि-लीलाषोडशकला ही है। इसका आधार वोपदेव की हरिलीला है। हरिलीला एक प्रकार से भागवत का सक्षेप मात्र है किन्तु भीम ने उसे षोडशकला का रूपक देकर श्रीकृष्णचद्र की निष्कलक कथा का निरूपण किया है।[२०] वर्णन अधिकतर सक्षिप्त एव अनुवादात्मक है। स्थान स्थान पर सस्कृत श्लोक और उनके अनुवाद दिये गये है।

१५वीं शती—ब्रजभाषा

अभी तक की शोध के आधार पर १५वी शती में कोई निर्विवाद महत्त्वपूर्ण कवि ऐसा प्राप्त नही होता जिसने ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक काव्य की रचना की हो।

इस स्थान पर इस विषय के विशेषज्ञ डॉ० दीनदयालु गुप्त का मत उद्धृत कर देना अनुचित न होगा।

'भाषा की दृष्टि से सूर और परमानन्ददास के पहले ब्रजभाषा में रचना करने वाले किसी भी कवि का परिचय इतिहास नही देता। नामदेव की ब्रजभाषा भी परिवर्तित रूप मे हमारे सामने आती है। इस प्रकार अष्टछाप का प्रथमवर्ग ही ब्रज-भाषा का आदि कवि वर्ग है और उसमें भी सबसे अधिक श्रेय सूर को है।'[११]

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के मत से भी इसी तथ्य का पोषण होता है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा से सम्बन्ध रखने वाली १५वीं शताब्दी तक की प्रकाशित प्रामाणिक सामग्री अभी शून्य के बराबर है।[१२]

अन्यत्र वे पुन: लिखते है।

'सोलहवीं' शताब्दी से पहले भी कृष्ण काव्य लिखा गया था लेकिन वह सब का सब या तो सस्कृत में है जैसे जयदेव कृत गीतगोविंद या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में जैसे मैथिलकोकिल कृत पदावली। ब्रजभाषा में लिखी हुई सोलहवी शताब्दी से पहले की प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।'[१३]

हिन्दी साहित्य की १५वी शती में मुख्यतया कबीर, विद्यापति, लालचदास तथा बैजूबावरा आदि के नाम आते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट तथा हरिव्यास को साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार १४वीं शताब्दी मे स्वीकार किया जाता है।[१४] कबीर ने कृष्ण काव्य की रचना नहीं की। विद्यापति मैथिली के तथा दशमस्कध के अनुवादक लालचदास अवधी के कवि होने से प्रस्तुत विषय की सीमा मे नहीं आते। विचारणीय केवल बैजूबावरा, श्रीभट्ट और हरिव्यास ही रह जाते हैं। बैजूबावरा के कुछ पदो के प्राप्त होने का उल्लेख प्रभुदयाल मीतल ने किया है।[१५] किन्तु ऐसी स्वल्प सामग्री से प्रस्तुत अध्ययन में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। जहाँ तक श्रीभट्ट का प्रश्न है उनके विषय में प्राप्त एक दोहे के 'नैनवान पुनि राम ससि' को आधार मानकर उनका समय स० १३५२ के आस-पास निश्चित करना उचित प्रतीत नहीं होता।[१६] समय निर्णय में प्राप्त ग्रथ की भाषा, भाव तथा वस्तु और तत्सम्बन्धी बहिस्साक्ष्य पर भी विचार करने की आवश्यकता होती है। और इस दृष्टि से श्रीभट्ट का समय १६वीं शती के पहले नहीं आता। दोहे में दिये गये सवत् के साथ तिथि, वार, मास आदि का निर्देश न होने से ज्योतिष गणना द्वारा उसकी प्रामाणिकता भी सिद्ध नहीं की जा सकती। निम्बार्क-माधुरी के रचयिता विहारीशरण के अतिरिक्त कदाचित् हिन्दी के किसी अन्य विद्वान ने श्रीभट्ट को १६वीं शती के पहले का कवि नहीं माना।[१७] यही दशा हरिव्यास

की है। वे श्रीभट्ट के शिष्य होने से वे श्रीभट्ट के परवर्ती ठहरते हैं। डॉ० राम-कुमार वर्मा हरिव्यास को चैतन्य और वल्लभाचार्य का समकालीन मानते है तथा उन पर चैतन्य का प्रभाव भी स्वीकार करते हैं।[२८] ऐसी स्थिति मे पूर्वोक्त मतो के अनुसार यही सिद्ध होना है कि १५वी शती में व्रजभाषा का कोई महत्त्वपूर्ण कवि नही हुआ तथा किसी की कोई भी प्रामाणिक रचना उपलब्ध नही होती।

१६वीं शती—गुजराती

जैसा कि चित्र न० २ से स्पष्ट है १६वी शती के कृष्णपरक कवियो में निम्न-लिखित बारह कवियो का स्वीकार किया गया है।

१	नरसी मेहता	७	ब्रहेदेव
२	मीरा	८	कोकु वसही
३	केशवदास	९	वासणदास
४	नाकर	१०	काशी सुत शेधजी
५.	चतुर्भुज	११.	सत
६.	भीम वैष्णव	१२	फूढ

इन कवियों की सूची में से प्रथम तीन कवि तो ऐसे हैं जिन्हें अनेक इतिहास-कारो ने १५वी शती में स्वीकार किया है किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में उन्हें १६वी शती में ही रखना उचित समझा गया है। इस सम्बन्ध में आधारभूत कारणो का उल्लेख तीनो कवियो के परिचय के साथ कर दिया गया है। नरसी और मीरा को मुंशी ने अपने इतिहास में १६वी शती के कवियो में स्थान दिया है। केशवदास के विषय में इतिहास ग्रंथो के आधार को छोडना पडा है। नाकर का समय थूथी, मुशी और शास्त्री तीनों को इसी शताब्दी में मान्य है। शेष आठ कवियों का परिचय केवल शास्त्री के कविचरित में ही मिलता है।

त्रिपाठी ने इस शती में जिन तीन कवियो को माना है[२९] उनमें से किसी ने कृष्ण-परक काव्य नही रचा। झावेरी ने भी उन्ही का अनुकरण किया है।[३०] तारा-पोरवाला ने कुछ और कवियों के नाम दिये हैं किन्तु वे भी विषय की सीमा में नही आते। नरसी के अतिरिक्त दिवेटिया ने नाकर का उल्लेख मात्र किया है तथा इस शती के अन्य किसी कवि के सम्बन्ध में उनके ग्रंथ से कोई सूचना नही मिलती। गोपालदास का उल्लेख मुशी, थूथी तथा शास्त्री ने किया है किन्तु वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद भी उन्हें कृष्ण-काव्य का रचयिता नही माना जा सकता यद्यपि उनका 'वल्लभाख्यान' ग्रन्थ अनेक दृष्टियो से प्रस्तुत अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

आगे १६वीं शती के कृष्णपरक कवियों का पृथक् पृथक् परिचय दिया गया है ।

कवि नर्मदाशंकर, इच्छाराम सूर्यराम देसाई तथा हरगोविंददास कांटावाला जैसे प्राचीन गुजराती संशोधकों ने अपने समय में प्राप्त सामग्री के आधार पर नरसी मेहता का समय सं० १४७०, निश्चित मान लिया था । यह वृद्धमान्य समय बहुत काल तक स्वीकृत किया जाता रहा । झावेरी, थूथी, तारापोरवाला तथा शास्त्री ने इसी का प्रतिपादन किया है । इस विषय में सबसे पहली शंका उठाने वाले थे आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव ।[११] गोवर्धनराम त्रिपाठी ने भी १९०५ की साहित्य परिषद् के प्रमुख पद से दिये गये भाषण में उसका समर्थन किया ।[१२] बाद में मुंशी ने अपने अनेक लेखों में नवीन-नवीन तर्क देकर विवाद को आगे बढ़ाया ।[१३] १९३० में न० भो० दिवेटियां ने इस प्रश्न को पुनर्जीवन दिया । मुंशी को और भी बल मिला और उन्होंने अपने इतिहास में नरसी को स्पष्टतया वृद्धमान्य समय से च्युत करके १६वीं शती में स्थापित किया ।[१४] नरसी को समय-च्युत करने के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं वे बहुसंख्यक हैं । उनकी आधारभूत प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं ।।

नरसी मेहता

क. नरसी में जो सखी भाव मिलता है वह गुजरात की प्रकृति के प्रतिकूल है अतः उन पर निश्चय ही चैतन्य की शुद्ध वृन्दावनीय भक्ति का प्रभाव पड़ा जिसका प्रमाण 'गोविंददासरे कडछा' है जिसमें चैतन्य की गुजरात यात्रा और जूनागढ में मीराजी ब्राह्मण के घर निवास तथा रणछोड़दास के मंदिर दर्शन का वर्णन है । यह १५११ की रचना है । इसमें नरसी का कोई उल्लेख न मिलना महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि वे उस समय रहे होते तो उनकी ख्याति से जूनागढ जाकर भी गोविंददास का अपरिचित रह जाना संभव नहीं । अतः नरसी का समय चैतन्य की गुजरात यात्रा के बाद होना चाहिए ।

ख. नरसी जीवगोस्वामी की रचना 'उज्ज्वलनीलमणि' तथा 'विदग्धमाधव, की टीका से परिचित प्रतीत होते हैं । इसके दो प्रमाण हैं ।

(१) ललिता, विशाखा तथा चन्द्रावली आदि राधा की सखियों के जो नाम नरसी के 'गोविंद गमन' तथा 'सुरतसंग्राम' में मिलते हैं उनका आधार उज्ज्वलनीलमणि का निम्नलिखित अंश है ।

'तत्र शास्त्र प्रसिद्धास्तु राधा चन्द्रावली तथा विशाखा ललिता श्यामा'

जीवगोस्वामी को शायद यह नाम भविष्योतर पुराण में मिले होंगे ।

की है। वे श्रीभट्ट के शिष्य होने से वे श्रीभट्ट के परवर्ती ठहरते हैं। डॉ० राम-कुमार वर्मा हरिव्यास को चैतन्य और वल्लभाचार्य का समकालीन मानते हैं तथा उन पर चैतन्य का प्रभाव भी स्वीकार करते हैं।[२८] ऐसी स्थिति में पूर्वोक्त मतों के अनुसार यही सिद्ध होता है कि १५वीं शती में व्रजभाषा का कोई महत्वपूर्ण कवि नहीं हुआ तथा किसी की कोई भी प्रामाणिक रचना उपलब्ध नहीं होती।

१६वीं शती—गुजराती

जैसा कि चित्र न० २ से स्पष्ट है १६वीं शती के कृष्णपरक कवियों में निम्नलिखित बारह कवियों को स्वीकार किया गया है।

१	नरसी मेहता	७	ब्रेहेदेव
२.	मीरा	८.	कीकु वसही
३.	केशवदास	९.	वासणदास
४.	नाकर	१०.	काशी सुत शेधजी
५.	चतुर्भुज	११.	सत
६.	भीम वैष्णव	१२.	फूढ

इन कवियों की सूची में से प्रथम तीन कवि तो ऐसे हैं जिन्हें अनेक इतिहासकारों ने १५वीं शती में स्वीकार किया है किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में उन्हें १६वीं शती में ही रखना उचित समझा गया है। इस सम्बन्ध में आधारभूत कारणों का उल्लेख तीनों कवियों के परिचय के साथ कर दिया गया है। नरसी और मीरा को मुंशी ने अपने इतिहास में १६वीं शती के कवियों में स्थान दिया है। केशवदास के विषय में इतिहास ग्रंथों के आधार को छोड़ना पड़ा है। नाकर का समय थूथी, मुंशी और शास्त्री तीनों को इसी शताब्दी में मान्य है। शेष आठ कवियों का परिचय केवल शास्त्री के कविचरित में ही मिलता है।

त्रिपाठी ने इस शती में जिन तीन कवियों को माना है[२९] उनमें से किसी ने कृष्णपरक काव्य नहीं रचा। झावेरी ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है।[३०] तारापोरवाला ने कुछ और कवियों के नाम दिये हैं किन्तु वे भी विषय की सीमा में नहीं आते। नरसी के अतिरिक्त दिवेटिया ने नाकर का उल्लेख मात्र किया है तथा इस शती के अन्य किसी कवि के सम्बन्ध में उनके ग्रंथ से कोई सूचना नहीं मिलती। गोपालदास का उल्लेख मुंशी, थूथी तथा शास्त्री ने किया है किन्तु वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद भी उन्हें कृष्ण-काव्य का रचयिता नहीं माना जा सकता यद्यपि उनका 'वल्लभाख्यान' अन्य अनेक दृष्टियों से प्रस्तुत अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।

आगे १६वी शती के कृष्णपरक कवियो का पृथक् पृथक् परिचय दिया गया है।

कवि नर्मदाशकर, इच्छाराम सूर्यराम देसाई तथा हरगोविंददास काटावाला जैसे प्राचीन गुजराती सशोधको ने अपने समय में प्राप्त सामग्री के आधार पर नरसी मेहता का समय स० १४७०, निश्चित मान लिया था। यह

नरसी मेहता

वृद्धमान्य समय बहुत काल तक स्वीकृत किया जाता रहा। झावेरी, थूथी, तारापोरवाला तथा शास्त्री ने इसी का प्रतिपादन किया है। इस विषय में सबसे पहली शका उठाने वाले थे आचार्य आनन्दशकर ध्रुव।[११] गोवर्धनराम त्रिपाठी ने भी १९०५ की साहित्य परिषद् के प्रमुख पद से दिये गये भाषण मे उसका समर्थन किया।[१२] बाद मे मुशी ने अपने अनेक लेखो मे नवीन-नवीन तर्क देकर विवाद को आगे बढाया।[१३] १९३० मे न० भो० दिवेटिया ने इस प्रश्न को पुनर्जीवन दिया। मुशी को और भी बल मिला और उन्होने अपने इतिहास में नरसी को स्पष्टतया वृद्धमान्य समय से च्युत करके १६वी शती में स्थापित किया।[१४] नरसी को समय-च्युत करने के पक्ष में जो तर्क दिये जाते हैं वे बहुसख्यक हैं। उनकी आधारभूत प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं।।

क. नरसी में जो सखी भाव मिलता है वह गुजरात की प्रकृति के प्रतिकूल है अत. उन पर निश्चय ही चैतन्य की शुद्ध वृन्दावनीय भक्ति का प्रभाव पडा जिसका प्रमाण 'गोविंददासरे कडछा' है जिसमें चैतन्य की गुजरात यात्रा और जूनागढ मे मीराजी ब्राह्मण के घर निवास तथा रणछोडदास के मदिर दर्शन का वर्णन है। यह १५११ की रचना है। इसमें नरसी का कोई उल्लेख न मिलना महत्त्वपूर्ण है क्योकि यदि वे उस समय रहे होते तो उनकी ख्याति से जूनागढ जाकर भी गोविंददास का अपरिचित रह जाना सभव नही। अत नरसी का समय चैतन्य की गुजरात यात्रा के बाद होना चाहिए।

ख नरसी जीवगोस्वामी की रचना 'उज्ज्वलनीलमणि' तथा 'विदग्धमाधव, की टीका से परिचित प्रतीत होते हैं। इसके दो प्रमाण हैं।

(१) ललिता, विशाखा तथा चन्द्रावली आदि राधा की सखियो के जो नाम नरसी के 'गोविंद गमन' तथा 'सुरतसग्राम' में मिलते हैं उनका आधार उज्ज्वलनीलमणि का निम्नलिखित अश है।

'तत्र शास्त्र प्रसिद्धास्तु राधा चन्द्रावली तथा विशाला ललिता श्यामा' जीवगोस्वामी को शायद यह नाम भविष्योत्तर पुराण से मिले होंगे।

प्राचीन गुजराती साहित्य में यह नाम उपलब्ध नही होते। भविष्योतर में से नरसी ने यह नाम लिये हो इससे अधिक सभव यही है कि उन पर गौडीय सम्प्रदाय के उक्त ग्रथो का प्रभाव पडा हो।

(२) नरसी के उपास्य गोपनाथ महादेव से मिलता नाम गोपीश्वर महादेव का है। आचार्य ध्रुव ने यह साम्य देखकर लिखा कि 'काठियावाडना गोपनाथ महादेवनु नाम पूर्वोक्त गोपीश्वर ऊपर थी पडयु होइ अेम सहज कल्पना थई आवे छे'[१५] विदग्धमाधव नाटक की प्रस्तावना में जो 'अद्याह स्वप्नान्तरे समादिष्टोस्मि भक्तावतारेण श्री शकरदेवेन' वाक्य आया है उसकी टीका में जीव गोस्वामी ने उन महादेव का नाम गोपीश्वर दिया है।

ग नरसी की रचनाओ की १६वी शती से पूर्व की हस्तप्रतियाँ उपलब्ध नही होती। हारमाला की प्राचीनतम प्रति स० १६७५ की है। फिर प्राचीन प्रतियो में दी हुई तिथियो में समानता नही है। हारप्रसग का समय स० १५१२ पाठभेद से स० १५७२ भी पढा जा सकता है। वृद्ध मान्य समय का सर्वप्रमुख आधार नरसी तथा रामाडलिक की समकालीनता है जो ऐतिहासिक दृष्टि से किसी प्रकार श्रद्धेय नही है। वस्तुत हार का प्रसङ्ग एक दतकथा है तथा हारमाला नरसी की अपनी कृति न होकर किसी परवर्ती कवि की रचना है।

घ नरसी का उल्लेख १५वी शती के भीम, भालण, केशवदास, यहाँ तक कि उनके परवर्ती नाकर तक ने नही किया है। १६वी शती के विष्णुदास, मीरा, नाभा, वस्ता, विश्वनाथ जानी तथा स० १६६० में कल्याणराय द्वारा लिखित 'लौकिकेपु इदानी प्रसिद्धेषु नरसिंहाख्यादिपु अपि प्रसिद्धि बोधको हि शब्दा'[१६] से स्पष्ट ज्ञात होता है कि नरसी की ख्याति १६वी शती में और इसके बाद हुई।

इन प्रमुख बाता के साथ पेढीनामा, नरसी द्वारा प्रयुक्त छद प्रणाली तथा भाषा आदि को लेकर अन्य नवीन-नवीन तर्कों से इन्ही का प्रतिपादन किया गया। वाद-विवाद विचारो तक ही सीमित न रह कर भावो का भी स्पर्श करने लगा। दूसरी ओर से भी इनके उत्तर में बहुत कुछ कहा गया। अम्बालाल बुलाखीराम जानी, नटवरलाल देसाई तथा कल्पित प्रमाण देते हुए जगजीवनराम बधका ने इस मत का सशक्त विरोध किया। मुशी के 'नरसिह महेतानो कोयडो' पर दुर्गाशकर शास्त्री ने

अत्यन्त गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए 'नरसिंह मेहताना कोयडा नो विचार' लिखा।[१४] 'भागवत नी छाप न थी,' का उत्तर देते हुए उन्होंने भागवत से नरसी की रचनाओं की विस्तृत तुलना की और निष्कर्ष रूप में कहा कि 'नरसिंह महेतानाकाव्यो भागवतमय छे' तथा 'नरसिंह ऊपर सौ थी वधारे असर भागवतनी छे । उन्होंने नरसी पर वृंदावनीय भक्ति के प्रभाव एवं जीवगोस्वामी के ऋण को अस्वीकार करते हुए उनके सखी भाव को भागवत तथा गीतगोविंद के आधार पर विकसित माना। सखियों के नामों के सम्बन्ध में उनका मत है कि वे नरसी को भक्त संतों की देश व्याप्त वाणी से प्राप्त हुए, उज्ज्वलनीलमणि से नहीं। चैतन्य से नरसी को सम्बद्ध करने में उन्हें शंका हुई फलतः वे इस परिणाम पर पहुँचे कि जूनागढ़ के नरसी मेहता, आंध्र के श्री वल्लभाचार्य तथा नदिया के श्री चैतन्य तीनों ने अपनी अपनी रीति से भागवतोक्त गोपी जनों की प्रेमलक्षणा भक्ति का, जयदेव तथा बिल्वमंगल आदि भक्तों के सम्प्रदाय का अनुसरण करके विस्तार किया है। 'कडछा' को उन्होंने अप्रामाणिक घोषित किया। उनके पश्चात के० का० शास्त्री ने अपने कविचरित में तथा अन्यत्र इस प्रश्न के उक्त सभी मूलाधारों को हठपूर्वक ध्वस्त करने की चेष्टा की। उन्होंने बहुत से ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये जो सर्वथा नवीन थे। 'सुरतसंग्राम' तथा 'गोविंदगमन' को, जिनमें राधा की सखियों के नाम मिलते हैं, उन्होंने भाषा के आधार पर अप्रामाणिक ठहराया।[१५] परन्तु ललिता का नाम नरसी की 'चातुरी षोडशी' में भी प्राप्त होता है जिसके समाधान के लिए उन्होंने जीवगोस्वामी से पूर्ववर्ती गुजराती कवि चतुर्भुज की सं० १५७६ की भ्रमरगीता में 'सुनी तनी थई सर्व सखी चंद्राउली जानि चित्रामि लिखी' पंक्ति की ओर संकेत करके दिखाया कि उज्ज्वलनीलमणि की रचना से पहले गुजरात राधा की सखियों के नामों से परिचित था। साथ ही सं० १४७८ के 'पृथ्वीचन्द्रचरित' में भविष्योत्तर, ब्रह्मवैवर्त तथा पद्मपुराण का उल्लेख निर्दिष्ट करते हुए सिद्ध किया कि चैतन्य से पहले ही गुजरात में भविष्योत्तर पुराण प्रचलित था। अतः सखियों के नामों के लिए नरसी को चैतन्य सम्प्रदायी जीवगोस्वामी का ऋणी मानना न अनिवार्य है और न उचित ही।

'गोविंददासेर कडछा' को तो उन्होंने अप्रामाणिक अथवा 'झूठग्रंथ' माना ही, साथ ही साथ यह भी दावा किया कि उसमें दिया हुआ चैतन्य के जूनागढ़ निवास का सारा वर्णन, उसमें आने वाले सारे नाम असत्य हैं। शास्त्री के अनुसार चैतन्य के समय जूनागढ़ में रणछोड़ का कोई मंदिर ही नहीं था। मांगरोल में अवश्य सं० १५०१ का मंदिर है जिसकी प्रेरणा से सं० १८३५-३८ में पहले पहल जूनागढ़ में रणछोड़राय का मंदिर स्थापित हुआ। इसी प्रकार मीराजी ब्राह्मण के स्थान पर वहाँ मुसलमानों

के पीर मीरादातार का पता चलता है। उनके मत से किसी १९वीं शती के लेखक ने कर्णोपकर्ण नाम सुनकर मीराजी तथा रणछोड को अपने वर्णन में स्थान दिया। इस प्रकार 'कडछा' की सामग्री के साक्ष्य को उन्होंने पूर्णतया अस्वीकार किया और अपने समर्थन में बगाली विद्वान डॉ० आर० सी० मजूमदार द्वारा १९३६ की अमृत-पत्रिका में प्रकाशित कडछा के खडन की ओर सकेत किया। इसके विरुद्ध हारप्रसग तथा नरसी और रामाडलिक की समकालीनता को उन्होंने ऐतिहासिक माना। 'हारमाला' म प्रक्षेप एव परिवर्धन मानते हुए भी उसके सात पद वाले आदि रूप को प्रामाणिक सिद्ध किया। १५वी शती के कवियो तथा नाकर आदि के नरसी सम्बन्धी मौन के अनेक कारण दिये। कल्याणराय के 'इदानी' का अर्थ उनके मत से "इस जमाने में" होना चाहिए क्योकि स० १६२१ के तिथि काव्य में नरसी का उल्लेख मिलता है और उससे भी पहले मीरा के 'नरसी रा माहेरो' में जिसे अप्रामाणिक नही कहा जा सकता। नरसी के छद विधान की प्राचीनता को उन्होने पूर्ववर्ती जैन रास काव्यो से तुलना करते हुए प्रतिष्ठित किया। अपने दृष्टिकोण के समर्थन में उन्होंने और भी बहुत से प्रमाण प्रस्तुत किये जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं है। कुल मिला कर उन्होंने नरसी को वृद्धमान्य समय से च्युत करने के हर विचार का सायास प्रतिवाद किया।

वस्तुत इस प्रश्न का समाधान पूर्णरूप से तब तक नही हो सकता जब तक नरसी की रचनाओ की प्राचीन प्रामाणिक प्रतियाँ उपलब्ध नही होती। भाषा, छद, पाठ-भेद तथा तिथियो की समस्या बहुत कुछ इसी के आश्रित है। जहाँ तक 'गोविंददासेर कडछा' की सामग्री का सम्बन्ध है उसे पूर्णतया अप्रामाणिक नही कहा जा सकता। इस विषय में बंगला के अधिकारी विद्वान एस० के० दे का मत अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योकि यह उनकी चैतन्य सम्बन्धी नवीनतम शोध पर आधारित है। वे लिखते है[१]-

'It is difficult to pronounce a definite judgement, but it seems probable that some of the matter it contains is old, and this internal evidence itself, in the absence of other proofs, makes the genuineness of the general substance of the work extremely plausible

वास्तव में चैतन्य की गुजरात यात्रा के 'कडछा' में दिये गये विवरण की गभीर ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता है। उसमें दी हुई सामग्री को सहज ही अप्रामाणिक कह कर टाला नही जा सकता। सखिया के प्रश्न को लेकर तो नहीं किन्तु नरसी की भक्ति भावमयता, मडलीबद्ध कीर्तन प्रणाली तथा सखीभाव की उत्कटता को

देखते हुए सहसा यह कहना कठिन है कि उन पर वृन्दावनीय भक्ति का प्रभाव नही पडा। वल्लभ-सम्प्रदाय में नरसी को 'वधैय्या' माना जाता है। जहाँ शुद्ध भक्ति में चैतन्य का प्रभाव झलकता है वहाँ दार्शनिक विचारो में वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत से विचित्र साम्य मिलता है। नरसी के अनेक पदो में मीरा का उल्लेख है। उनके ऐसे सभी पदो को प्रक्षिप्त कहना भी उचित नही लगता। अतएव सारी परिस्थिति पर विचार करते हुए ध्रुव, त्रिपाठी, मुशी तथा दिवेटिया की धारणा में वहुत कुछ सार प्रतीत होता है। इसी विचार से प्रस्तुत अध्ययन मे नरसी को वृद्धमान्य समय के विरुद्ध १६वी शती में स्वीकार किया गया है।

रचनाएँ—विषय और वस्तु की दृष्टि से नरसी की रचनाएँ दो प्रकार की प्राप्त होती है। एक प्रकार की कृतियाँ वे है जिनमें उन्होने अपने जीवन की किसी अलौकिक घटना का वर्णन किया है और दूसरी वे जो पूर्णतया कृष्ण को आलम्बन मान कर लिखी गयी है। द्वितीय प्रकार की रचनाएँ ही प्रस्तुत निबन्ध की सीमा में आती है।

प्रथम प्रकार की रचनाएँ—१. सामलदासनो विवाह
२ हारमाला

द्वितीय प्रकार की रचनाएँ—१. सुरतसग्राम
२ गोविंदगमन
३ चातुरी छत्रीसी
४ चातुरी षोडशी
५ दाणलीला
६. सुदामाचरित
७. रासासहस्रपदी
८ शृगारमाला
९ बाललीला

इन नौ रचनाओं के अतिरिक्त कुछ प्रकीर्णक पद है जिनकी सज्ञा विषय के अनुसार ही दी गयी है।

१०. हीडोलाना पदो
११. भक्तिज्ञानना पदो
१२. कृष्णजन्मसमैना पदो
१३. कृष्णजन्मवधाईना पदो
१४. वसन्तना पदो

उपर्युक्त सभी रचनाएँ 'नरसिंह मेहेताकृत काव्य संग्रह' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त इनका प्रकाशन 'बृहत् काव्य दोहन', 'प्राचीन काव्य त्रैमासिक' तथा 'प्राचीन काव्य सुधा' आदि ग्रंथो के विभिन्न भागो में भी हो चुका हैं। मुशी ने 'नागदमन और 'मानलीला' का भी उल्लेख किया है।[१] स्वतन्त्र रूप से ऐसी कोई रचनाएँ प्राप्त नही है। विषय विशेष के पदो के आधार पर यह नाम दे दिये गये हैं।

शास्त्री ने हस्तलिखित ग्रथो की शोध के आधार पर 'आठ वार', 'कक्को', 'गायनी मागणी, 'द्रौपदी नू कीर्तन', 'पाडवजुगटानू पद, 'बारमास', 'बारमास रामदेना', 'मधुकरना बारमास', 'मामरु', 'मोती नी सनी', 'विष्णुपद', 'शतियर', 'सत्यभामानू रुसरणुं, 'सालवणनी समस्या' तथा 'हूडी' को नरसी की रचनाओ के रूप में उल्लिखित किया है।[२] इनमे से अनेक रचनाओ का कृतित्व सदिग्ध है। कुछ कृष्ण से सम्बन्धित नही है और शेष मात्र स्फुट पदों के रूप में है जो विशेष महत्वपूर्ण नही है।

दूसरे प्रकार की रचनाओ मे 'सुरत सग्राम' और 'गोविंदगमन' की प्रामाणिकता पर अभी कुछ समय पूर्व शास्त्री द्वारा आक्षेप किया जा चुका है। त्रिपाठी से लेकर मुशी तक गुजराती साहित्य के सभी इतिहासकारो ने तथा स्वय शास्त्री ने अपने कविचरित में इन रचनाओ पर कोई सदेह व्यक्त नही किया। किन्तु इनमें आये हुए राधा की सखियो के नामो का नरसी के जीवनकाल के प्रश्न से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण इन पर विशेष विचार करने की आवश्यकता हुई। शास्त्री ने इन रचनाओ की प्रामाणिकता पर जो अविश्वास प्रकट किया उसका समर्थन यद्यपि अन्य गुजराती विद्वानो द्वारा अभी नही हुआ तथापि उनके तर्कों की उपेक्षा नही की जा सकती। उनके मुख्य तर्क यह है।

१ इनकी हस्तप्रतियो का कोई पता नही है। स्व० हरगोविंददास काटा-वाला ने हस्तप्रति मिलने की जो कथा बताई है वह श्रद्धेय नही।

२ कृत्रिम भाषा, अर्वाचीन प्रयोग तथा अस्वाभाविक प्रास योजना।

३ राही और राधा का पृथक्-पृथक् निरूपण।

४ मोहिनी, सोहिणी, गर्विणी, दोहिनी तथा मोदिनी आदि काल्पनिक नाम है जो नारदपाचरात्र, गर्गसहिता, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त आदि प्राचीन ग्रथो में कही नही मिलते।

५ रचनाओ की ही कुछ पक्तियो के आधार पर ज्ञात होता है कि इनका रचयिता प्राचीन न होकर कोई नवीन नरसी है। सभवत हरगोविंद-

दास काटावाला और नाथाशंकर ने मिलकर इन्हें रचा है जो 'हरिनाथ' पद से व्यंजित है।"[3]

इन तर्कों में सबसे प्रबल तर्क पहला ही है। राही और राधा का पृथक्-पृथक् निरूपण प्रेमानंद वासणदास आदि अन्य कई गुजराती कवियों ने किया है।[31] अतः इसे शंका की दृष्टि से देखना अनुचित है। दूसरी ओर ऐसी सूक्ष्म बात का सचेष्ट निरूपण संभव और विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। मोहिनी सोहिनी आदि की तरह काल्पनिक नाम ब्रजभाषा के कवि ध्रुवदास ने भी गिनाये हैं।[32] उनकी रचना की प्रामाणिकता भी असंदिग्ध है अतएव इस तर्क के आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। भाषा की कृत्रिमता आदि अवश्य विचारणीय है परन्तु इनसे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी अर्वाचीन व्यक्ति के द्वारा उक्त रचनाओं का पुनर्लेखन अथवा संशोधन हुआ। ऐसी स्थिति में नाथाशंकर और हर गोविंददास को भी इसका श्रेय दिया जा सकता है। परन्तु वस्तु को देखते हुए दोनों रचनाएँ अप्रामाणिक प्रतीत नहीं होतीं। नारीकुंजर की कल्पना जो गोविंद-गमन में की गयी है वह उस समय के गुजरात की प्रकृति के पूर्णतया अनुकूल है।[33] रचनाओं के शीर्षक भी उचित तथा परम्परापुष्ट हैं। सुरतसंग्राम की कल्पना नरसी की अन्य रचनाओं को देखते हुए अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होती है। शास्त्री के मत को अन्य गुजराती विद्वानों का अभी समर्थन भी प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत अध्ययन में इन रचनाओं को सम्मिलित कर लेना ही उचित समझा गया है।

सुदामाचरित में यद्यपि प्रधान नायकत्व सुदामा का माना जायेगा तथापि भक्ति-भाव और कृष्ण महिमा वर्णन उद्देश्य होने के कारण इसे कृष्ण काव्य की कोटि में स्वीकार किया जा सकता है। राधा, यशोदा, नंद तथा अक्रूर की तरह सुदामा का प्रसंग भी कृष्ण से अभिन्न रहा है।

नरसिंह कृत काव्य संग्रह के परिशिष्ट भाग में दिये हुए कुछ स्फुट पदों के अतिरिक्त इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन के लिए नरसी की केवल तेरह रचनाएँ उपयुक्त जँचती हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

सुरतसंग्राम—यह आख्यानात्मक रचना है। इसका विषय कृष्ण की दान-लीला का ही एक कल्पनात्मक विकसित रूप है। राधाकृष्ण की प्रणय लीला को संग्राम का रूपक देकर चित्रित किया गया है। राधा की ओर से स्वयं नरसी और

कृष्ण की ओर से जयदेव दूत कार्य करते है। अन्त में राधा के पक्ष की विजय होती हैं। समस्त रचना में ८२ समान पद है।

गोविंदगमन—भागवत के शुक-परीक्षित सम्वाद के रूप में कृष्ण के मथुरा-गमन के प्रसग को लेकर इसकी रचना हुई है। इसमें कुल ३३ पद हैं।

चातुरी छत्रीसी—दूती, कुज विहार, श्यामाश्याम रमण तथा दान आदि के प्रसगो को लेकर विविध प्रणय चर्चा को विभिन्न चातुरियो का रूप देकर इसमें वर्णित किया गया हैं। नामानुसार ही इस रचना में छत्रीस चातुरी प्रकरण है।

चातुरी षोडशी—नाम साम्य होने पर भी चातुरी छत्रीसी जैसी विशृखलता इसमें नही है। सारा प्रसग एक आख्यान रूप में चलता हैं। ललिता राधा को महावन में ले जाती है। वहाँ कृष्ण राधा मिलन होता है और अन्त में राधा स्वय अपना रति-सुख ललिता से स्पष्ट शब्दो में वह सुनाती हैं। राधा को खडिता रूप में भी चित्रित किया गया हैं। सारी रचना में कुल १६ पद है।

दाणलीला—यह कोई ग्रथ नही हैं केवल आख्यानात्मक पद हैं। इसकी हस्तप्रति भी अप्राप्य हैं। के० का० शास्त्री ने जिन दो प्रतियों[१५] का उल्लेख किया हैं उनमें से 'द० ८४३ ड' अशुद्ध है तथा 'फा० ५४ ड' में जो दानलीला प्राप्त होती है वह इस पद से भिन्न हैं। परन्तु परिशिष्ट तथा अन्यत्र दिये हुए नरसी के अनेक ऐसे पद है जिनका विषय दानलीला है।

न० कृ० का० सग्रह में निम्नलिखित पद इस विषय के प्राप्त होते हैं।

पृष्ठ सख्या	पद सख्या
३८९	४३३, ४३४, ४३५
३९०	४३६, ४३७, ४३८
४२३	५३२।
परिशिष्ट ५७७	५
५७९	१०
५८०	१४
५८३	२०
५८८	३७
५९४	५८

प्रसगातर से अन्य रचनाओ में भी इस विषय के कुछ पद मिल जाते हैं।

सुदामाचरित—९ पदो की सक्षिप्त रचना हैं। विषय स्वत. स्पष्ट है। भावात्मकता की अपेक्षा पदो में वर्णनात्मकता अधिक है।

राससहस्रपदी—मूलत भागवत के पाँच अध्यायो पर आधारित इस रचना का नाम रूप अत्यन्त भ्रामक है। नाम से प्रतीत होता कि इसमें सहस्र रास-विषयक पद होगें और इसका रूप अत्यन्त विशाल होगा परन्तु वस्तुत सौ सवासौ से अधिक पद इस शीर्षक के अन्तर्गत नही आते। न० क० का० मे इसमें १८९ पद हैं, मुशी ने १२३ पदो का उल्लेख किया है[१७] और शास्त्री ने इसका समुद्धार कर के पदों की सख्या ११३ निश्चित की जिसमें परिशिष्ट तथा शृगारमाला के अन्तर्गत आने वाले पद भी सम्मिलित हैं। शास्त्री ने भागवतानुसार दशम स्कध के २९-३३ अध्यायो के अनुरूप पद-क्रम निर्धारित करने की भी चेष्टा की है।[१८]

यह रचना अत्यन्त विशृखलित है। अनेक पद ऐसे हैं जिनमें पाँचो अध्यायो का सम्पूर्ण रास सक्षेप में वर्णित है। लगता है कि जैसे किसी क्रम के आधार पर ये पद नहीं रचे गये। कई स्थलो पर भागवत के समान भाव वाले पद प्राप्त ही नही होते और कई स्थलो पर राधा आदि के उल्लेख के साथ नवीन भाव वाले पद भी मिल जाते हैं।

शास्त्री द्वारा दी गई पद सख्या मे शृगारमाला के ८, परिशिष्ट द्वितीय के ४, परिशिष्ट-प्रथम के ३३ और शेष ६८ पद राससहस्रपदी के ही हैं। जो अध्यायक्रम उन्हो-ने निश्चित किया है उसमें प्रथम अध्याय मे ४५ पद, द्वितीय में ५ पद और शेष तीनो अध्यायो मे सम्मिलित रूप से ६३ पद दिये गये हैं। इससे स्पष्ट हैं कि राससहस्रपदी की रचना नरसी ने अनुवादात्मक रूप म नही की यद्यपि मूल आधार भागवत का ही लिया है। राधारास के सम्मिश्रण से इसे केवल भागवत तक ही सीमित नही रखा जा सकता। फिर स्वय नरसी गोलोक में अपनी उपस्थिति तथा रास दर्शन के आत्मा-नुभव का वर्णन करके भागवतोक्तरास को और भी अलौकिक बना देते हैं।

शृगारमाला—इस रचना में नरसी के सर्वाधिक पद सकलित हैं। न० क० का० में इन पदो की सख्या ५४१ हैं। इसमें शृगार सम्बन्धी विविधि विषयो एव अन्तर्दशाओ पर विभिन्न प्रकार की शैली के अनेक अनेक पद प्राप्त होते हैं। रास विषयक आठ पद उपर्युक्त राससहस्रपदी में सम्मिलित किये जाने का उल्लेख हो चुका हैं। कुछ पद ऐसे भी हैं जो शृगार के नहीं कहे जा सकते। उदाहरणार्थ यशोदा कृष्ण के वात्सल्य भाव को व्यक्त करने वाले पद न० १८५, ४४६ तथा कृष्ण जन्म से

सम्बद्ध पद न० १८९ आदि प्रस्तुत किये जा सकते है। तो भी अधिकांशपद विरह, प्रेम, रमण, खडिता, परकीया, रतिप्रात तथा नखशिख वर्णन से सम्बन्ध रखते है।

बाललीला—इसमें कृष्ण के बालचरित विषयक पद सकलित हैं किन्तु अन्तिम पद स्पष्टतया रास-आरती का पद है। पदो की सख्या ३० हैं। इस रचना के अन्त में सकलनकर्ता ने जो नोट दिया है उसमें भाषा के आधार पर अन्त के दो पदो के नरसी कृत होने में शका की गई है।[३] रचना का नाम कदाचित सग्रहकार का ही दिया हुआ है जैसा कि नरसी की अधिकाश रचनाओ के विषय में कहा जा सकता है।

हींडोलाना पद—इस शीर्षक के अन्तर्गत ४५ पद सग्रहीत है। वृन्दावन की शोभा, वर्षाऋतु तथा सखियो के साथ राधा कृष्ण का हिंडोला झूलना यही समस्त पदो के मुख्य विषय हैं।

भक्तिज्ञानना पदो—इस नाम से जिन ६६ पदो का सग्रह किया गया है उनमें सभी का विषय भक्ति और ज्ञान नही है। पद न० ४ नरसी का आत्मचरित-परक पद है जिसमें ढेढ के प्रसग का वर्णन है, पद नं० ६, ७, ८ 'द्रौपदी नी प्रार्थना' के पद है जिनमें अनेक अवतारो तथा अनेक भक्तो के उद्धार का कथन है और पद न० ९, १७ कृष्ण के गोचारण से सम्बन्धित है। शेष पद अवश्य नरसी के आध्यात्मिक अनुभवो तथा ईश्वर, जीव, प्रकृति, ब्रह्म, माया एव भक्ति विषयक विचारो को व्यक्त करते है। इस दृष्टि से यह पद समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

कृष्ण जन्म सम्बन्धी पद—

१	जन्म समाना पद	११ पद
२	जन्म वधाईना पद	८ पद

श्री कृष्ण जन्म समाना पद के प्रारभिक पद में गुरु वदना है।[४] इसके अतिरिक्त अन्य किसी ग्रथ के प्रारभ में गुरु वदना प्राप्त नही होती। नरसी ने इसका प्रारभ आख्यानात्मक ढग से किया है जो ढाल और साखी की व्यवस्था से प्रमाणित होता है। पहले ९ पदो में मथुरा में कृष्णजन्म, वसुदेव द्वारा योगमाया का लाया जाना तथा कस द्वारा उसका वध वर्णित है किन्तु अन्त के १०वें और ११वें पद में कसवध तक की लीलाओ का सक्षेप में वर्णन कर दिया गया है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण कृति सी लगती है।

श्रीकृष्ण जन्म वधाई के आठो पदो में नद यशोदा के बालकृष्ण की क्रीडा तथा स्वरूप का वर्णन है।

वसंतना पद—जिस प्रकार हिंडोलाना पद वर्षा ऋतु से सम्बन्धित हैं उसी प्रकार वसतना पद वसत ऋतु तथा होली और फाग से सम्बन्धित हैं। लीला, विलास, शृंगार और नृत्य गायन के वातावरण में राधाकृष्ण तथा सखियों के उल्लास का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। पद न० १४, १८ तथा २२ब में वात्सल्य भाव मिलता है अतएव यह पद अप्रासंगिक प्रतीत होते हैं। वसत के पदों की कुल सख्या ११६ है।

मीरा को १५वीं शती में मानने वाले विद्वानों का मत अब पूर्णतया भ्रान्त सिद्ध हो चुका है। त्रिपाठी और झावेरी की धारणा का आधार कर्नल टाड द्वारा मीरा को महाराणा कुभ (मृत्यु सन् १४६८ ई०) की पत्नी मानना था।[१] यूयी ने झावेरी के अनुकरण पर ही मीरा का समय १४०३—१४७० ई० मान लिया परन्तु

मीरा

तारापोरवाला द्वारा दिये गये समय १४९९—१५४७ ई० का क्या प्रमाण है, ज्ञात नहीं। मुशी और शास्त्री आदि आधुनिक गुजराती इतिहासकार गौरीशकर, हीराचद ओझा तथा मुशी देवीप्रसाद आदि राजस्थानी विद्वानों के आधार पर मीरा को १६वीं शती में ही मानते हैं। हिन्दी साहित्य के गण्यमान्य इतिहासकारों का भी प्राय यही मत है।[२] यों कुछ लोगों का मत कर्नल टाड के मत के पुनर्संस्थापन की ओर भी है अर्थात् वे मीरा को राणा कुभ की पत्नी और १५वीं शती के उत्तरार्ध में स्थित मानना चाहते हैं।[३] उन लोगों द्वारा केवल शका ही उठायी गयी है। ऐसे प्रमाण अभी प्रस्तुत नहीं किये गये जिनके आधार पर उनके मत को निश्चयात्मकता प्राप्त हो। ऐसी स्थिति में मीरा को १६वीं शती में स्वीकार करना ही समुचित प्रतीत होता है। हिन्दी तथा गुजराती के विद्वानों का बहुमत इसी पक्ष में है।

रचनाएँ—मीरा के गुजराती पद बृहत् काव्य दोहन, भाग १, २, ५, ६ और ७ में प्रकाशित हैं। एक 'सत्यभामानु रूसणु' नामक रचना भी प्राप्त होती है।[४] परन्तु देखने से ज्ञात होता है कि यह बीस कड़ियों का एक लम्बा पद ही है। इन समस्त पदों की सख्या १६० है। तारापोरवाला द्वारा SCGL में जो १०६ पद प्रकाशित हैं वे बृहत् काव्य दोहन में से ही सग्रहीत हैं। प्राचीन काव्य सुधा, भाग ४ में भी बहुत से पद छपे हैं जिनका समावेश भी लगभग काव्य दोहन के पदों में ही हो जाता है। सभी पद गुजराती भाषा के सिद्ध नहीं होते। कुछ पद मिश्रित भाषा के हैं। स्थिति की स्पष्टता के लिए अधिक विवेचन की अपेक्षा है अतएव बृहत् काव्य दोहन के विभिन्न भागों को लेकर पृथक्-पृथक् निरूपण आवश्यक है।

भाग १ ल—इस भाग में 'सत्यभामानु रूसणु' समेत कुल १० पद हैं। सभी पदों की भाषा गुजराती है। सत्यभामानु रूसणु, में पारिजात पुष्प न

पाने पर सत्यभामा के मान और कृष्ण द्वारा उनके मनाये जाने का वर्णन है।

भाग २ जु—इसमें भी सब पद गुजराती के हैं और उनकी सख्या १७ है।

भाग ५ मो—इसमें गुजराती के १५ पद प्राप्त होते हैं।

भाग ६ ट्ठो—इस भाग में केवल ५ पद हैं। चौथा पद खड़ी बोली का है। तीसरे में खड़ी बोली और फारसी का मिश्रण है। दूसरा और पाँचवाँ दो पद गुजराती के हैं। पहले में खड़ी, ब्रज तथा गुजराती तीनों का सम्मिश्रण है। दूसरे पद में 'दास मीरा नो स्वामी' में दासी के स्थान पर दास का प्रयोग उसे सशयास्पद बना देता है। खड़ी बोली के पद भी प्रामाणिकता की दृष्टि से संदिग्ध हैं।

भाग ७ मो—इस भाग म मीरा के सर्वाधिक गुजराती पद सकलित हैं। किन्तु इसमें मिश्रित भाषा के पदों के अतिरिक्त विशुद्ध ब्रजभाषा के पदों की सख्या भी कम नहीं है। समस्त पद गिनती में ११३ हैं जिनमें से ३५ पद गुजराती के नहीं हैं[५५]। शेष ७८ पदों में भी कुछ पदों की भाषा मिश्रित है।

सारे पदों का शीर्षक 'कृष्ण कीर्तन' दिया गया है परन्तु राम विषयक पद भी अनेक मिलते हैं।

केशवदास

केशवदास कायस्थ के 'कृष्णक्रीडाकाव्य' का रचना काल मुशी और शास्त्री दोनों ने (स० १५२९) सन् १४७३ माना है जो असत्य है। कवि ने काव्य के रचना काल का उल्लेख स्वय निम्न पंक्तियों में कर दिया है।

तिथि सवत निधि दसका दोय।
संवत्सर शोभन कृत होय।
दक्षिणायन शरद ऋतु सार।
आशवनि शुक्ल पक्ष गुरुवार।
तिथि द्वादशी वली वृद्धि योग।
शत तारक त्रिप्रहरनो भोग।
—पृ० ३१०

इसमें दिये हुए सम्वत्सर, तिथि, मास पक्ष, दिवस एवं योग गणना करने पर स० १५९२ ही में पड़ते हैं, स० १५२९ में नहीं। (पिल्लइ की Indian chronology

के अनुसार)। न जाने किस आधार पर शास्त्री ने स० १५२९ को शुद्ध मान लिया। उन्होंने लिखा है कि 'गणितनी दृष्टि पण आ आषाढी सवत् होवाथी ते दिवसे अेटले मा० १५२९ ना आश्विन सुदि १२ ने दिवसे बरोबर गुरुवार आवी रहे छे। अे जोता शका करवा कोई खास कारण न थी।'[५१] अब स्वय वे भी इस के पक्ष में नही है। कदाचित् यह लिखते समय उन्होंने योग तथा सम्वत्सर को ध्यान में नही रक्खा था अन्यथा दूसरा कोई कारण प्रतीत नही होता। रामलाल चुनीलाल मोदी स० १५९२ के पक्ष मे है। वे केशवदास को वल्लभाचार्य का परवर्ती विट्ठलनाथ का समकालीन समझते है तथा इन पर अष्ट सखाओं के काव्य का असर भी मानते है।[५२] कृष्णक्रीडा-काव्य के सर्ग १४ मे कुछ ब्रजभाषा मिश्रित पद मिलते है। स० १५२९ मे अर्थात् सूर के जन्म स० १५३५ से पहले गुजरात में ब्रजभाषा की रचनाएँ मिलना आश्चर्य-जनक ही नही असभव भी है। स० १५९२ तक अवश्य अष्टछाप के कवियो का प्रभाव गुजरात तक व्याप्त हो चुका था। फिर 'निधि दसका दोय' से स्पष्ट ही 'नौ दशक और दो' अर्थात् ९२ का बोध होता है। 'वामतो गति' का प्रश्न यहाँ उठाना असगत है क्योंकि कवि ने १५ के लिये एक पूर्ण पद 'तिथि' ने दिया है जिसे पहले ही लेना होगा अन्यथा स० २९१५ सिद्ध होगा।

स० १५२९ की मान्यता का मूल कारण यह है कि कन्ठ से उतारी हुई स० १७८७ की फार्बस गुजराती सभा वाली जिस हस्तप्रति के आधार पर कृष्णक्रीडाकाव्य का प्रकाशन हुआ है उसके हाशिये में 'सवत १५२९, वर्ष उलध' लिखा हुआ है। साथ ही पाचवी गुजराती साहित्य परिषद के विवरण मे छपे 'कायस्थ कविओ' नामक लेख में लीलुभाई चु० मजूमदार ने 'सवत पदर ओगणतीस होय' ऐसा मत दिया है परन्तु यह कहाँ से प्राप्त हुआ है यह अज्ञात है।

अतएव केशवदास को १५वी शती मे मानना सर्वथा अनुपयुक्त है। 'कृष्णक्रीडा-काव्य' के रचनाकाल की दृष्टि से वे स्पष्टतया १६वी शती में आते है।

रचना : कृष्णक्रीडाकाव्य—फार्बस गुजराती सभा से प्रकाशित इनकी रचना पर 'श्रीकृष्णलीलाकाव्य' नाम छपा हुआ है जो अशुद्ध है। वस्तुत नाम 'कृष्णक्रीडाकाव्य' होना चाहिए क्योंकि सर्गान्त में लेखक ने सर्वत्र 'कृष्णक्रीडाया' का प्रयोग किया है। भालण के दशम स्कध की तरह यह भी भागवत दशमस्कध का अनुवाद है। राधा, ब्रजभाषा के पद तथा अन्य पुराणो के सदर्भों के कारण इसका भी वैसा ही महत्व है। प्रारम्भ में सस्कृत का 'गोपीजनवल्लभाष्टक' दिया हुआ है जिसे पुष्टिमार्गीय साहित्य में हरिराय कृत माना जाता है।[५३] सभव यह भी है कि यह अष्टक केशवदास तथा हरिराय दोनों के अतिरिक्त किसी अन्य प्राचीनतर कवि की रचना हो। केशवदास

ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर मानुवाद श्लोक दिये हैं। रचना के अन्त में कवि ने रचना के विस्तार का निर्देश कर दिया है।

नाकर — नाकर ने अपने 'हरिश्चन्द्राख्यान' में समय का निर्देश कर दिया है जो असंदिग्ध है। अतः उनके समय के विषय में कोई शंका प्रस्तुत नहीं होती।

रचना भ्रमरगीता—गुजराती साहित्य में नाकर का स्थान उनके आख्यानों के कारण ही श्रेष्ठ माना जाता है। कृष्ण सम्बन्धी काव्य उनका एक मात्र 'भ्रमरगीता' ही मिलता है जो अप्रकाशित है। आख्यान शैली में लिखित तथा भागवत पर आधारित यह काव्य नाकर की अन्य रचनाओं की तुलना में साधारण कोटि का है। प्रारंभ में कवि गणेश, सरस्वती ही की वंदना नहीं करता वरन् कालिदास, श्रीहर्ष आदि कवियों एवं ज्योतिष, गीता आदि शास्त्रों का भी स्मरण करता है। काव्य का रूप भावात्मक न होकर वर्णनात्मक है। भागवत के गोपी उद्धव संवाद का एक प्रकार से पुनर्लेखन जैसा कर दिया गया है।

चतुर्भुज — कवि के स्वतः दिये हुये 'छिहुतरि' शब्द से, उपलब्ध हस्त प्रति के सं० १६२२ की संगति बैठाकर कुछ विद्वानों ने सं० १५७६ के आसपास चतुर्भुज का समय निश्चित किया है।[1०]

रचना भ्रमरगीता—चतुर्भुज की एकमात्र रचना भ्रमरगीता है। इसकी शैली फागु काव्यों जैसी है। कवि रचना का अन्त 'इतिश्री कृष्ण गोपी विरह मेलापक भ्रमरगीता फाग' लिखकर करता है। इस पुष्पिका में प्रयुक्त 'फाग' शब्द से सिद्ध होता है कि कवि ने सजग होकर फागु शैली में काव्य रचना की। भाषा प्राचीन है। 'गुजराती' के सं० १९८९ के दीपोत्सवांक में भोगीलाल साडेसरा ने इसे प्रकाशित किया। रचना का विषय स्पष्ट ही भागवत पर आधारित उद्धव गोपी संवाद है। चंद्रावली के नामोल्लेख की दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है।

भीम वैष्णव — भीम द्वारा काव्य के अन्त में लिखित 'प्रगट बीठलो' तथा विट्ठल नाथ विषयक घोल के आधार पर शास्त्री ने इन्हें गोसाईं विट्ठलनाथ का समकालीन माना है और इनका जीवन काल सं० १५७२-१६३६ के बीच निर्धारित किया है।[11]

रचना : रसिकगीता—कृष्ण सम्बन्धी इनकी एकमात्र रचना है रसिकगीता। यह विषय की दृष्टि से भ्रमरगीता ही है। इसका प्रकाशन बृ० का० दोहन, भाग

३ जु तथा S C G L में हो चुका है । काव्य के अन्त मे विट्ठलनाथ तथा वल्लभाचार्य का स्मरण किया गया है ।

कवि द्वारा स्वयं दिये गये समय के आधार पर उसका काव्य काल सं० १६०९ के आसपास निर्धारित होता है ।[६२]

त्रेहेदेव

रचना : भ्रमरगीता—त्रेहेदेव की निस्संदिग्ध रचना केवल भ्रमरगीता ही है । यो पांडवगीता की भी संभावना है किन्तु उसके विषय में शास्त्री किसी निर्णय पर नही पहुँच सके है ।[६३] भ्रमरगीता का आधार अन्य भ्रमरगीताओं की तरह भागवत का भ्रमर प्रसंग ही है । शैली की दृष्टि से इसमें नरसी की चातुरी की छाया प्रतीत होती है । 'रढियालो रास सोहायणो' कह कर कवि इसे 'रास' काव्य की परम्परा से सम्बद्ध करता है । यह वृ० का० दोहन, भाग १लु में प्रकाशित है और चालीस कडवों की सक्षिप्त रचना है ।

कीकुवसही

कीकु के काव्य की हस्तप्रतियाँ स० १६०० के आसपास की प्राप्त होने के कारण शास्त्री ने इनका समय सं० १५५० के लगभग माना है । कीकु का काव्यकाल १६वी शती के पूर्वार्ध में ही कही हो सकता है ।

रचना : बालचरित—कृष्णपरक काव्य कीकु ने एक ही लिखा है जिसका नाम है 'बालचरित' । विषय की दृष्टि से यह अप्रकाशित रचना महत्वपूर्ण है । इसमें कृष्ण के बाल रूप तथा बाल क्रीड़ाओं का वर्णन मिलता है । दोहा चौपाई की आख्यानात्मक शैली मे कवि ने भागवत की कथा के अनुसरण पर इस काव्य का निर्माण किया है ।

वासणदास

स० १६४९ तक की प्राचीन हस्तप्रतियों तथा भाषा के कतिपय प्राचीन प्रयोगों के आधार पर शास्त्री वासणदास को सं० १६०० के आसपास स्थापित करते है ।[६४] अन्य अपेक्षित प्रमाणों के अभाव में यह उचित ही प्रतीत होता है ।

रचनाएँ—कृष्णवृन्दावन राधारास, हरिचुआक्षरा तथा सत्यभामानी रूसणेनरी, यह तीन ऐसी रचनाएँ है जिन्हें वासणदासकृत माना जाता है । दूसरी और तीसरी की सूचना गु० ह० सकलित यादी से प्राप्त होती है और पहली की कविचरित से । तीसरी रचना सशयास्पद है ।[६५] सभी रचनाएँ अप्रकाशित है ।

कृष्ण वृन्दावन राधवरास—रचना का मुख्य विषय वृन्दावन में राधाकृष्ण और गोपियों की रासक्रीडा है। प्रतिलिपिकार अमरचंद बुट ने पुष्पिका में 'इतिश्री भागवते महापुराणे कृष्णवृन्दावने राधवरास' लिखा है। शास्त्री ने 'राधवरास' को अशुद्ध समझकर उसके स्थान पर 'राधारास' शुद्ध समझा। परन्तु कवि की रचना मे 'राधव-रास' का स्पष्ट प्रयोग मिलता है—यथा 'ते ता राधवरास भावि भणता'। शार्दूल-विक्रीडित वृत्त होने के कारण गण और वर्णक्रम में भी यहाँ राधवरास ही उचित है। ऐसी स्थिति में इसे निश्चयपूर्वक 'कृष्ण वृन्दावन राधारास' नहीं कहा जा सकता। सभव है कवि भालण की तरह रामानदी हो और इसलिए उसने 'राघव' शब्द का प्रयोग किया हो। रचना के अन्त में कृष्ण की बाललीलाओ का वर्णन है। प्रारभ में शीर्ष स्थान पर 'श्री कृष्ण लीला' लिखा भी है। वर्णन कई भागो मे विभाजित है और प्रत्येक अपने में पूर्ण है। एक प्रकार से यह रचना कई रचनाओं की शृखला जैसी है। 'चन्द्राउली विलास सम्पूर्ण' 'लीलाउली विलास', 'इति श्री गोपी सम्वाद सम्पूर्ण' तथा 'इति श्री राधारस सम्पूर्ण' लिखकर पृथक् पृथक् प्रसगो की पूर्णता का निर्देश किया गया है। एक प्रकार से इसमें समस्त कृष्ण लीला समाहित है किन्तु 'राधारस' की प्रधानता के कारण कदाचित ग्रथान्त में इसे पूर्ण रचना मान लिया गया है। सारी रचना सस्कृत वृत्त शार्दूलविक्रीडित में है। कुल वृत्त १३५ है। विविध खडो में विभाजित होने पर भी छदो की क्रम-सख्या टूटी नहीं है जिससे इसके एक ही रचना समझे जाने का प्रमाण मिलता है।

हरिचुआक्षरा—यह १०३ दोहो में वृदावन सौन्दर्य तथा होली एव फाग के विषय को लेकर लिखी गयी रचना है। वर्णन की दृष्टि से पहली रचना के सदृश है। कवि कृष्ण को राधा तथा अन्य सखियो से सयुक्त रूप में चित्रित करता है।

काशीसुत शेधजी

काशीसुत शेधजी ने अपनी अनेक रचनाओं में रचना सवत् का उल्लेख किया है जिससे उनका समय स० १६४७–४८ निर्धारित होता है।[७]

रचना : रुक्मिणीहरण—यो तो शेधजी ने विराटपर्व, सभापर्व, हनुमानचरित तथा अबरीष कथा आदि अनेक काव्य रचे परन्तु कृष्णपरक उनकी एकमात्र रचना रुक्मिणीहरण ही प्राप्त है जो अप्रकाशित है। कवि ने कृष्ण रुक्मिणी विवाह विषयक इस काव्य की रचना अनेक पुराणो की कथाओ के आधार पर की है। भागवत, हरि-वश तथा विष्णुपुराण का स्वत उल्लेख किया है।

> **श्रीभागवत, हरीवश मा अे कथा वीष्णुपुराण।**
> **कहीअेक छ वीस्तार कंही सक्षेप सुध जाण ।।१३।।**

अतएव कथा-वस्तु की दृष्टि से रचना छोटी होने हुए भी महत्वपूर्ण है। 'शेषजी' नाम इसमें नही है। केवल 'दासीसुत' का ही प्रयोग मिलता है। कवि की अन्य रचनाओ से इस नाम की पुष्टि होती है। शैली कडवाबद्ध है तथा कथा के अनेक प्रसग रोचक एव नवीन है।

इनकी भाषा में प्राप्त 'अतरि' जैसे प्रयोगो के आधार पर शास्त्री ने इनका समय विक्रम की १७वी शताब्दी का पूर्वार्ध माना है।[१८] किन्तु इस विषय मे अधिक निश्चित होने के लिए अन्य प्रमाणो की आवश्यकता है।

संत

रचना : भागवत अनुवाद—संत की एकमात्र रचना भागवत का अनुवाद ही है। ग्रंथ अप्रकाशित है। प्राप्त प्रति में १, २, ३, ४, ८, ९ तथा ११वाँ स्कध पूर्ण है। दशमस्कध आदि अत में तथा द्वादश स्कध अत मे टूटा है। दोहा चौपाई में सरल रीति से सारी भागवत को अनुवादित किया गया है।

फूढ १६वी तथा १७वी शती ई० के सधिकाल के कवि है। शास्त्री ने इनका समय स० १६५२ –१६८३ के आसपास माना है।[१९] स० १६५७ तक का समय १६वी शती ई० के अन्तर्गत आता है। इसमे उनकी एक रचना का निर्माण हुआ है। अन्य कृष्ण विषयक रचना 'मल्लअखाडाना चद्रावला' का समय ज्ञात नही। पाडवविष्टि स० १६७७ में रची गयी जो १६वी शती की सीमा मे नही आती। उसकी हस्तप्रति भी उपलब्ध नही है।[२०]

फूढ

रचनाएँ—फूढ की कृष्णपरक दो रचनाएँ, 'रुक्मिणीहरण' तथा 'मल्लअखाडाना-चन्द्रावळा' प्राप्त होती है जो इस शती में ग्राह्य है। दोनो अप्रकाशित है।

रुक्मिणीहरण—राग, वलण तथा कडवा पद्धति में इसका निर्माण हुआ है। कथावस्तु की दृष्टि से यह भागवत पर ही आधारित है।

मल्लअखाडानाचद्रावला—इसमें फूढ ने ७५ चद्रावलो में कसवघ का वर्णन किया है। इसका भी आधार भागवत ही है।

१६वीं शती—व्रजभाषा

व्रजभाषा में कृष्ण सबन्धी अधिकाश काव्य रचना सम्प्रदायो के अन्तर्गत हुई। इन सम्प्रदायों में वल्लभ, राधावल्लभीय, गौडीय, निम्बार्क तथा हरिदासी सम्प्रदाय प्रमुख है। १६वी शती के कवियो तथा उनके काव्य का परिचय स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने के लिये प्रत्येक सम्प्रदाय के साहित्य का पृथक-पृथक निरूपण हुआ है। इसके

अतिरिक्त जो कृष्णपरक काव्य इन सम्प्रदायों से स्वतन्त्र होकर रचा गया उसका वर्णन एक भिन्न वर्ग में किया गया है।

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत अष्टछाप के आठों कवि सूरदास, कुम्भनदास, परमानददास, कृष्णदास, गोविंद स्वामी, नददास, छीत स्वामी तथा चतुर्भुजदास आते हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय

इनमें से पहले चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और अन्तिम चार गो० विट्ठलनाथ के। डॉ० दीनदयालु गुप्त तथा प्रभुदयाल मीतल द्वारा दिये गये इन कवियों के जीवन काल में कुछ विभिन्नता है किन्तु उसे नगण्य माना जा सकता है क्योंकि सभी कवि अनन्त १६वी शती की सीमा में ही आते हैं। इन कवियों की रचनाओं पर हिंदी साहित्य के कई विद्वानों द्वारा स्वतन्त्र रूप से विचार किया जा चुका है अतएव आवश्यक मतभेद का निर्देश मात्र करते हुए यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय दे देना ही पर्याप्त होगा।

सूरदास की रचनाएँ (सं० १५३५—१६३८—३९)—सूरदास की रचनाएँ आज भी विवाद का विषय हैं। डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा एकमात्र सूरसागर को प्रामाणिक मानते हैं पर डॉ० दीनदयालु गुप्त, मुंशीराम शर्मा, प्रभुदयाल मीतल तथा द्वारिकादास परीख आदि विद्वान् साहित्यलहरी और सूरसारावली को भी प्रामाणिक सिद्ध करते हैं।[1] इनके अतिरिक्त सूर की अन्य रचनाओं सूरसाठी, सूरपचीसी, मेवाफल आदि की स्थिति भी विवादास्पद है। एक ओर 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' में उन्हें सूरसागर के अन्तर्गत ही स्वीकार किया गया है।[2] दूसरी ओर सूरनिर्णय में स्वतन्त्र रचना माना गया है।[3] वस्तुत इन्हें स्वतन्त्र रचनाएँ मानना उचित नहीं है क्योंकि सूरसागर से भिन्न इनके अस्तित्व के विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। जहाँ तक सूरसारावली और साहित्यलहरी का प्रश्न है हिन्दी के विद्वानों का बहुमत उन्हें सूरदास की ही रचनाएँ मानने के पक्ष में है। इस सम्बन्ध में और भी गहन अनुसधान की आवश्यकता है। तब तक उन्हें सूरदास की पूर्णतया प्रामाणिक रचनाएँ मानने की अपेक्षा विवादास्पद एव संदिग्ध रचनाएँ कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। इन शब्दों के साथ बहुमत की उपेक्षा न करते हुए इन दोनों रचनाओं को प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार किया गया है।

सूरसागर—यह सूरदास की एकमात्र पूर्णतया प्रामाणिक रचना है किन्तु इसका रूप और विस्तार बहुत अंशों में अनिश्चित है। सूरदास के नाम से प्रचलित अनेक रचनाएं वास्तव में इसी का अंश मात्र हैं। दूसरी ओर इसके अनेक ऐसे अंग हैं जो स्वतन्त्र रचनाओं जैसे लगते हैं। यों इसे 'श्रीमद्भागवत, बारहों स्कन्धों का ललित रागरागिनियों में अनुवाद' माना जाता रहा परन्तु वस्तुत अनुवाद की अपेक्षा इसे

मौलिक रचना मानना अधिक उपयुक्त होगा। इसके अन्तर्गत कई कथाओं का एक से अधिक बार वर्णन हुआ है। एक प्रकार से यह सूर की कृष्ण विषयक लगभग समस्त रचनाओं का सकलन है जिनका मुख्य आधार भागवत पुराण है। किन्तु भागवतेतर कथाओं का भी इसमें स्पष्ट समावेश है। अनेक कथाएँ तथा वर्णन पूर्णतया मौलिक है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने सूरसागर के अन्तर्गत निम्नलिखित १६ प्रामाणिक रचनाओं को समाविष्ट माना है।[७४]

१	भागवत भाषा	९	दशमस्कध भाषा
२	सूरदास के पद	१०	नागलीला
३	गोवर्धन लीला	११	सूरपचीसी
४	ब्याहलो	१२	भँवरगीत
५	सूर रामायण	१३	दानलीला
६	सूर साठी	१४	मानलीला
७	राधारसकेलि कौतूहल	१५.	सेवाफल
८	सूरसागर सार	१६	सूर शतक

उपलब्ध सूरसागर भागवत की तरह ही 'द्वादश स्कध' मे विभाजित है। कदाचित् स्वय सूरदास ने ही इसे स्कधबद्ध रूप मे रचा है।[७५] सूरसागर में प्रथम नवम तथा दशम पूर्वार्ध और उत्तरार्ध सबसे अधिक विशाल एव महत्वपूर्ण है। शेष इनकी तुलना में अत्यन्त अल्प और नगण्य से है। सम्पूर्ण पद-सख्या ४५७८ है और स्कधवार पद-सख्या निम्नाकित रूप में प्राप्त होती है।

(१) २१९, (२) ३८, (३) १८, (४) १२, (५) ४, (६) ४, (७) ८, (८) १४, (९) ७२, (१०) पूर्वार्ध ३९३६, (१०) उत्तरार्ध १४२, (११) ६, (१२) ५

प्रथमस्कध मे प्रारम्भिक ११२ पद विनय के है। स्कधवार पद सख्या से नितान्त स्पष्ट है कि सूरसागर का मुख्य भाग दशमस्कध के आधार पर ही निर्मित हुआ है। सूरसागर और भागवत मे समानता से अधिक भिन्नता प्राप्त होने के कारण दो एक विद्वानो का अनुमान है कि 'वल्लभाचार्य जी ने व्यासजी की जिस समाधिभाषा को प्रमाण रूप माना है उसी का सूरदास ने गायन किया'।[७६] विचार करने पर यह अनुमान अधिक यथार्थ प्रतीत नही होता। यह भी अनुमान किया जाने लगा है कि सूरसागर के इस द्वादशस्कधी रूप में भिन्न विषय-क्रमानुसारी जो एक अन्य रूप मिलता है वह कदाचित् मूल के अधिक निकट रहा होगा। वस्तुत यह प्रश्न अभी प्रमाण सापेक्ष है। सूरसागर की एक विशेषता यह भी है कि भागवत के प्रथम स्कध

से द्वादश स्कंध पर्यन्त की प्रत्येक प्रमुख कथा का वर्णनात्मक रीति से बड़े पदों में भी गया है। इनकी शैली पद शैली से भिन्न है।

सूरसागर का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ तथा नागरीप्रचारिणी सभा काशी से हुआ है। वेंकटेश्वर प्रेस वाले सूरसागर के सब पदों को अष्टछापी सूर कृत मानने में डॉ० दीनदयालु गुप्त को कुछ संदेह है।[३७] नवल किशोर प्रेस की प्रति के दो भाग हैं। एक में भिन्न-भिन्न रागों के अनुसार नित्य कीर्तन के पद हैं और दूसरे में कृष्णकथानुसार लीला के पद। इसमें सूर के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियों के पद भी मिश्रित हैं।

सूरसारावली—११०७ द्विपद छंदों में निर्मित इस रचना को सूरसागर का सार ही नहीं सूचीपत्र तक माना गया परन्तु वस्तुतः यह एक स्वतन्त्र रचना है जिसमें सूरसागर तथा भागवत की कथा का सम्मिश्रण भी प्राप्त है। कथाओं का प्रवाह अविच्छिन्न है किन्तु स्कंधक्रम में विभाजित नहीं। इसकी कथावस्तु का आरम्भ प्रकृति पुरुष रूप पारब्रह्म के सृष्टि विस्तार को होली और फाग का रूपक देकर होता है और इस रूपक का निर्वाह अन्त तक किया गया है। अवतारों के वर्णन में भागवत का अनुकरण है। रामावतार की कथा सांगोपांग रूप में विस्तार से दी गई है तथा कृष्णावतार की कथा में मथुरालीला की प्रमुखता है। अनेक नवीन कल्पनाएँ हैं। अन्तिम भाग में रुक्मिणी के प्रश्न के उत्तर के रूप में व्रज, वृंदावन, राधा, यशोदा तथा रास आदि लीलाओं का समावेश है। यह रचना सूरसागर के बम्बई और लखनऊ वाले संस्करणों के आरंभ में प्रकाशित हुई है।

साहित्यलहरी—यह कृष्ण राधा के नायक नायिका भेद के रूप में प्रस्तुत करने वाले ११८ दृष्टिकूट पदों का संग्रह है। उपसंहारों के रूप में ५३ पद और संग्रहीत हैं जो सूरसागर में भी प्राप्त होते हैं। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस बांकीपुर से हो चुका है।

कुंभनदास की रचनाएँ (सं० १५२५–१६३९)—दानलीला के एक ३१ छंद के विस्तृत पद, जो स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हो चुका है, के अतिरिक्त कुंभनदास का समस्त काव्य स्फुट पदों के ही रूप में प्राप्त है।

नाथद्वार के निज पुस्तकालय में ३६७ पदों का एक संग्रह प्राप्त होता है और विद्याविभाग कांकरौली में १८६ पदों का जिसका डॉ० दीनदयालु गुप्त ने उल्लेख किया है।[३८] किन्तु कांकरौली में अब हजारीलाल शर्मा द्वारा कुंभनदास के २३२ पद संग्रहीत हो चुके हैं।

कुभनदास के इन पदो में राधाकृष्ण से सम्बन्धित विविध लीलाओ का वर्णन मिल जाता है। दान प्रसग, युगलरूप, मिलन, विरह, मान, खडिता, गोदोहन तथा रास आदि सभी विषयो के पद प्राप्त होते हैं।

परमानददास की रचनाएँ (स० १५५०–१६४०)—यद्यपि खोज रिपोर्ट में 'ध्रुव चरित्र' तथा 'दानलीला' नामक रचनाओ का भी उल्लेख मिलता है किन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से एकमात्र 'परमानदसागर' ही परमानद की असदिग्ध रचना सिद्ध होती है।[७९] मीतल ने इन रचनाओ के अतिरिक्त 'उद्धवलीला' परमानद दास के पद तथा सस्कृत रत्नमाला का भी उल्लेख किया है किन्तु न तो इनका कोई परिचय ही दिया है न इनकी प्रामाणिकता पर ही विचार किया गया है।[८०] परमानदसागर का विस्तार लगभग २००० पदो तक जाता है। यह सख्या नाथद्वार तथा काँकरौली में प्राप्त इस ग्रथ की अनेक हस्तलिखित प्रतियो पर आधारित है।

परमानदसागर में सूरसागर की तरह सम्पूर्ण भागवत की कथा का समावेश न होकर दशमस्कध तक के प्रसगो का वर्णन है। भँवरगीत को छोडकर अन्य विषयों पर इसमें कथात्मक लम्बे पद भी नहीं हैं। पदो का वर्गीकरण विषयानुसार है। कृष्ण की बाललीला, गोपी प्रेम, गोपी विरह तथा भ्रमर गीत पर अधिक सख्या में पद उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त राधा को लेकर मान, खडिता, युगल लीला, रास आदि पर तथा अन्य स्फुट विषयो पर भी पद प्राप्त होते हैं।

वल्लभ सम्प्रदायी कीर्तन सग्रह के तीनो भागों में ५०० से अधिक पद ऐसे प्रकाशित हैं जिनके रचयिता परमानददास हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पद सग्रहो में भी यत्रतत्र परमानददास रचित पद उपलब्ध हो जाते हैं।

कृष्णदास की रचनाएँ (स० १५५२–१६३८)—कृष्णदास की प्रामाणिक रचना केवल उनके पद ही सिद्ध होते हैं। कीर्तन सग्रह के तीन भागो मे प्रकाशित २४८ पदों के अतिरिक्त इनके ६७६ पदो के हस्तलिखित सग्रह की दो प्रतियाँ एक कॉकरौली तथा एक नाथद्वार में उपलब्ध हैं। इन स्थानो में प्राप्त अन्य सग्रहो में भी 'कृष्णदास के पद' मिलते हैं।[८१]

कृष्णदास की सदिग्ध रचनाओ के रूप में डॉ० दीनदयालु गुप्त ने भ्रमरगीत, प्रेमसत्व निरूपिता तथा वैष्णववदना को स्वीकार किया है साथ साथ रास-पचाध्यायी विषयक ३१ छद के एक लम्बे पद को प्रेमरसरास तथा पद सग्रह को 'कृष्ण-दास की बानी' नाम दिये जाने की सम्भावना व्यक्त की है।[८२]

मीतल ने कृष्णदास की रचनाओ का नामोल्लेख मात्र किया है यथा—

'भ्रमरगीत, प्रेमतत्व निरूपण, भक्तमाल की टीका, वैष्णव वदन, बानी, प्रेम रसराशि, हिंडोरा लीला आदि'।[१] इनमें कुछ नाम अशुद्ध प्रतीत होते हैं।

गोविंदस्वामी की रचनाएँ (सं० १५६२-१६४२)—गोविंदस्वामी की प्रामाणिक रचना के रूप में उनके २५२ पदों का संग्रह ही स्वीकार किया गया है जिसकी अनेक हस्तप्रतियाँ काँकरौली तथा नाथद्वार के पुस्तकालयों में उपलब्ध हुई हैं।[२] इन प्रतियों में नाथद्वार की सं० १७३३ की प्रति सब से पुरानी है। इधर काँकरौली में विभिन्न पद संग्रहों के आधार पर गोविंदस्वामी के पदों का जो संग्रह किया गया है उसकी पद संख्या ७६० है। इस प्रकार २५२ पदों के अतिरिक्त इतनी संख्या में प्राप्त सभी पदों को संदिग्ध नहीं माना जा सकता। गोविंदस्वामी के पद यद्यपि कृष्ण की अनेक लीलाओं से सम्बद्ध हैं फिर भी कुंज लीला और किशोर लीला के पद विशेष रूप से प्राप्त होते हैं।

नंददास की रचनाएँ (सं० १५७०-१६४०)—नंददास की रचनाओं के विषय में पर्याप्त शोधन हो चुका है। उनके नाम से प्राप्त २८ या ३० रचनाओं में से अधिकतर अप्रामाणिक सिद्ध हुई हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त के अनुसार प्रामाणिकता का श्रेय निम्नलिखित १४ रचनाओं को प्राप्त हुआ है।[३]

१	रसमंजरी	८	विरहमंजरी
२	अनेकार्थमंजरी	९	रूपमंजरी
३	मानमंजरी	१०	रुक्मिणीमंगल
४	दशमस्कंध	११	रासपंचाध्यायी
५	श्यामसगाई	१२	भँवरगीत
६	गोवर्धनलीला	१३	सिद्धान्तपंचाध्यायी
७	सुदामाचरित्र	१४	पदावली

किन्तु इनमें से दो एक रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद है। उमाशंकर शुक्ल गोवर्धनलीला को स्वतन्त्र रचना के रूप में स्वीकार नहीं करते और सुदामाचरित को संदिग्ध मानते हैं।[४] प्रभुदयाल मीतल ने गोवर्धनलीला का उल्लेख ही नहीं किया है। सुदामाचरित को स्वीकार करने के साथ साथ उस पर संदेह किये जाने का संकेत कर के भी स्थिति स्पष्ट नहीं की।[५] गोवर्धनलीला को स्वतन्त्र रचना मानना अनुचित नहीं क्योंकि दशमस्कंध की लीला से कुछ साम्य होते हुए भी आद्यन्त युक्त यह रचना सर्वथा वही नहीं है। जहाँ तक पदावली का प्रश्न है उसकी प्रामाणिकता तो सिद्ध है किन्तु पद संख्या के विषय में उक्त तीनों विद्वानों के मत में पर्याप्त

भिन्नता है। मीतल के अनुसार 'नंददास कृत लगभग ४०० पद उपलब्ध है'।[८]
उमाशंकर शुक्ल ने मूलपाठ में ३५ और परिशिष्ट में २४८, इस प्रकार पदावली के अन्तर्गत कुल २८३ पद प्रकाशित किये हैं।[९] जवाहरलाल चतुर्वेदी के पास 'नंददास पदावली' के नाम से लगभग ७०० पदों का संग्रह है इसका उल्लेख कई विद्वानों ने किया है।[१०] कांकरौली के विद्या विभाग की ओर से नंददास के स्फुट पदों का जो संकलन हुआ है उसमें ७६२ पद हैं। ऐसी स्थिति में चतुर्वेदी जी के संग्रह में ७०० के लगभग पदों का उपलब्ध होना अविश्वसनीय नहीं।

विषय की दृष्टि से नंददास की उक्त प्रामाणिक रचनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि अन्ततः कृष्ण से सम्बद्ध होते हुए भी यह सभी रचनाएँ पूर्णतया कृष्ण-परक नहीं कही जा सकती। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने विषयानुसार चार वर्गों में विभाजित करके वस्तु स्थिति को अधिक स्पष्ट कर दिया है।[११]

मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी तथा रसमंजरी कवि की इन तीनों प्रारंभिक रचनाओं का उद्देश्य मूलतः कृष्णलीला वर्णन नहीं है। यद्यपि प्रारंभ में कृष्ण वंदना मिलती है और यत्रतत्र उनकी प्रेम लीलाओं का संकेत भी, तथापि वस्तु की दृष्टि से यह प्रस्तुत अध्ययन में किसी प्रकार भी उपयोगी नहीं है। रसमंजरी के नायिका भेद के उदाहरणों का अवश्य रीतिकालीन अन्य कृतियों की तरह महत्व हो सकता है किन्तु शेष दो केवल कोश काव्य हैं। इनके अतिरिक्त शेष सभी रचनाएँ विषय की दृष्टि से उपयोगी हैं और उनका परिचय नीचे दिया जाता है।

दशमस्कंध—दोहा चौपाई की शैली में लिखित नंददास की यह अपूर्ण रचना है। भागवत दशमस्कंध के उन्तीस अध्यायों को इसमें एक प्रकार से अनूदित किया गया है। वार्ता साहित्य में इस रचना के अपूर्ण रहने का कारण कथावाचक ब्राह्मणों का विरोध कहा गया है तथा उसमें यह भी ज्ञात होता है इसके निर्माण की प्रेरणा कवि को तुलसीदास की रामायण से मिली थी इस दृष्टि से, इसका रचना काल सं० १६३१ के बाद ही संभव है।[१२]

श्यामसगाई—यद्यपि इसकी कुछ प्रतियों में 'तारपाणि' की छाप भी प्राप्त होती है तथापि अनेक, हस्तप्रतियों, रचनाशैली एवं वस्तु के आधार पर यह रचना नंददास की ही सिद्ध होती है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इसे स्वतंत्र ग्रंथ न मानकर 'एक लम्बा पद मात्र' माना है।[१३] वंदना और अंत के अभाव से यह उचित ही है। २८ छंदों के इस वर्णनात्मक पद में राधाकृष्ण की सगाई का वर्णन है। कृष्ण गारुडी बनकर छल से राधा का काल्पनिक विष उतारते हैं और इस प्रकार अंत में सगाई स्वीकृत कराने में सफल होते हैं।

गोवर्धनलीला—नददास के दशमस्कध में तया इस रचना में कुछ पक्तियो एव भावो की समानता होते हुए भी प्रारम्भ में गुरु वदना तथा अन्त में कवि की छाप से युक्त यह काव्य भी स्वतन्त्र कृति ही ज्ञात होता है। नाथद्वार की प्रति में इसको 'गोवर्धनपूजा' और गोवधनलीला दोनो सज्ञाएँ दी गयी हैं। विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है। रचना वणनात्मक होते हुए भी सक्षिप्त है।

सुदामाचरित्र—इस रचना के विषय म डॉ० दीनदयालु गुप्त का यह अनुमान कि यह रचना नददास कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा का, जो अब अप्राप्य है, अश है'।[१] उचित ही प्रतीत होता है। इसकी रचना शैली ठीक वैसी ही है जैसी दशमस्कध की। कवि न दशमस्कध विमल सुख बानी, मुनत परीछित अतिरति मानी' लिखकर स्वय इसी तथ्य का स्वीकार किया है। रचना का विषय नाम स स्वत प्रकट है।

विरहमजरी—इस छोटी सी कृति म नददास ने 'द्वादश मास विरह की कथा का चित्रण किया है। प्रारभ म चार प्रकार के विरह का उल्लख करके फिर क्रम से चैत से लकर फागुन मास तक नाना प्रकार स उद्दीपन सामग्री प्रस्तुत करते हुए व्रजवासिनियो की विरह व्यथा का वणन किया गया है। प्रत्येक मास के वर्णन का आदि अत दोहे में तथा मध्य आठ दस चौपाइयो में विरचित है।

रूपमजरी—५८० पक्तियो की यह प्रेम कथा रूपमजरी नामक निर्भयपुरी के राजा की कन्या को नायिका रूप म प्रस्तुत करता है। गिरिगोवर्धन पर कृष्ण की प्रतिमा देखकर तथा स्वप्न म दर्शन पाकर वह उनकी ओर आकृष्ट होती है और अन्त म अपनी सखी इदुमती की सहायता से कुज में उनसे मिलकर कृतार्थ भी होती है। दोहा चौपाई की शैली म विस्तार से इसी कथा का वर्णन किया गया है। कथा वस्तु का आधार भागवत से नही लिया गया है।

रुक्मिणीमगल—१३३ रोला छदो में कृष्ण रुक्मिणी विवाह की भागवतोक्त कथा को मूलाधार मानकर इसकी रचना की गई है। 'विधिवत कियो विवाह तिहि पुर मगल गावै' मे प्रयुक्त मगल शब्द इसके नामकरण की व्याख्या करता है। कथा वर्णन में कल्पना का भी पर्याप्त आश्रय लिया गया है।

रासपचाध्यायी—यह नददास की सर्वमान्य एव सर्वप्रसिद्ध कृति है। २९ से ३ तक भागवत दशमस्कध पूर्वार्ध के पाँच अध्यायो म वर्णित रासलीला का उसी क्र से ३०१ रोला छदो में वर्णन किया गया है। कवि ने भाव युक्त होकर रास का आ लेखन किया है अतएव इसे अनुवाद नहीं कहा जा सकता। उमाशकर शुक्ल ने इस ८३ सदिग्ध छद 'नददास' की परिशिष्ट मे दे दिये है।

भवरगीत—७५ छदो मे विरचित गोपी-उद्धव-सवाद विषयक इस रचना की अनेक हस्तप्रतियो में 'जनमुकुद' नामक कवि की भी छाप प्राप्त होती है।[11] परन्तु रचना शैली और वस्तु की दृष्टि से यह नददास की ही रचना सिद्ध होती है। इसके प्रारभ में न वदना है और न कथा की भूमिका, जिससे ज्ञात होता है कि कदाचित यह रचना किसी अन्य विशाल रचना का अश हो। यह भी सभव है कि सूरदास के भ्रमर गीत से प्रभावित होने के कारण इसका ऐसा रूप हो।[12]

सिद्धान्तपचाध्यायी—नददास की यह रचना रासपचाध्यायी मे वर्णित रास-क्रीडा की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। रासप्रसग के शृगारिक वर्णनो की आलोचना का तथा तद्विषयक अलौकिकता पर की गई शकाओं का शास्त्रीय उत्तर एव समाधान उपस्थित करना ही इस रचना के निर्माण की मूल प्रेरणा प्रतीत होती है, जो निम्नलिखित पक्तियो से स्पष्ट है।

जे पडित सिंगार ग्रथ मत यामें सानें।
ते कछु भेद न जानें हरि कौ विषई मानें ॥४९॥

१३८ रोला छदों मे रास का यह सैद्धान्तिक विवेचन समाप्त हुआ है। रास पचाध्यायी की कुछ प्रतियो मे इसकी पक्तियाँ भी प्रक्षिप्त मिलती है।[13]

पदावली—पदावली के पदो की सख्या ७०० तथा ८०० के बीच में है, इसका निर्देश किया जा चुका है। विषय की दृष्टि मे इन पदो मे पुष्टिमार्गीय वर्षोत्सव सबधी लगभग सभी प्रसगो का वर्णन मिल जाता है। यो नददास ने बाललीला पर कोई स्वतन्त्र रचना नही की किन्तु पदो में इस विषय का भी समावेश है। हिंडोला, वसत, खडिता, मान आदि प्रसगो पर भी पर्याप्त पद प्राप्त होते है।

छीतस्वामी की रचनाएँ (स० १५६७—१६४२)—स्फुट पदो के अतिरिक्त छीतस्वामी की कोई सम्बद्ध रचना उपलब्ध नही होती। इन पदो की सख्या के विषय में मतऐक्य नही है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने 'वल्लभ सम्प्रदायी छपे कीर्तन सग्रहो' मे से ६४ पदो की, जो छीतस्वामी विरचित है, सूची दी है और मिश्र बन्धुओ के ३४ पदो के अप्राप्य सग्रह तथा जवाहरलाल चतुर्वेदी के निजी सग्रह का उल्लेख किया है।[14] प्रभुदयाल मीतल के अनुसार, उनके रचे हुए अधिक से अधिक २०० पद प्राप्त हो सके है, जिनमें से अधिकाश कीर्तन सग्रहो में दिये हुए है।[15] विद्याविभाग कांकरौली मे हजारीलाल शर्मा द्वारा जो सग्रह किया गया है उसमे २३२ पद है। इस सग्रह का आधार विभिन्न हस्तलिखित पद-सग्रह है। विषय की दृष्टि से इन पदो की स्थिति अष्टछाप के अन्य कवियो की पदावली के ही समान है। कृष्णलीला से सम्बन्धित

लगभग सभी विषयों पर पद प्राप्त होते हैं इनमें दान, मान, संभोग, बाल-लीला तथा यमुना-प्रशंसा प्रमुख हैं।

चतुर्भुजदास की रचनाएँ (सं० १५९७—१६४२)—अन्य अष्टछापी कवियों की तरह चतुर्भुजदास के पदों का संग्रह भी विद्याविभाग काँकरौली की ओर से उक्त शर्मा द्वारा किया गया है जिसमें ४३६ पद संग्रहीत हैं। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने चतुर्भुजदास के अनेक हस्तलिखित पदसंग्रहों का उल्लेख किया है जिनकी पदसंख्या ३०० के लगभग है।[१००] कवि की प्रामाणिक रचना के रूप में उन्होंने इन्हीं को स्वीकार किया है। इनके अतिरिक्त 'दानलीला' को भी प्रामाणिक माना है, जो वास्तव में कवि का एक लम्बा पद है। ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट में उल्लिखित 'मधुमालती', 'भक्तिप्रताप', 'द्वादशयश', तथा 'हितूज को मंगल' अष्टछापी चतुर्भुजदास की रचनाएँ नहीं हैं। इनमें से अन्तिम तीन राधावल्लभीय चतुर्भुजदास द्वारा रचित हैं।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

वृंदावन में गोस्वामी हितहरिवंश[१०१] द्वारा संस्थापित युगल रूप राधावल्लभ के उपासक इस सम्प्रदाय के कवियों ने भी पर्याप्त कृष्ण-काव्य का सृजन किया। १६वीं शताब्दी में हितहरिवंश के अतिरिक्त उनके अनुयायी सेवक जी, व्यासजी, भगवतहित, परमानन्ददास, चतुर्भुजदास तथा धुंठास्वामी के नाम प्रमुख हैं। इनमें से भगवतहित, परमानन्ददास तथा धुंठास्वामी की कोई सुसम्बद्ध रचना प्राप्त नहीं होती। केवल स्फुट पद यत्र तत्र प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। हितहरिवंश के पुत्र वनचंद आदि ने भी कविता की किन्तु उनके भी कतिपय स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं। शेष कवियों की कृतियों का परिचय नीचे दिया जाता है।

हितहरिवंश की वाणी—ब्रजभाषा में हितहरिवंश की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

१ श्रीहितचौरासी २ श्रीहित स्फुटवाणीजी

ये दोनों ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। हितचौरासी में ८४ पद संग्रहीत हैं जिनमें राधाकृष्ण के अनुराग, संभोग, कुंजक्रीडा, रास, मान, नखशिख, आदि का वर्णन है। सभी पद रागबद्ध हैं। यह रचना हित सम्प्रदाय में गीता भागवत की तरह पूज्य मानी जाती है और सभी साम्प्रदायिक कवियों द्वारा आदर्श रूप में ग्रहण की गई है।

स्फुटवाणी में १५ पद, ३ सवैये, २ कुंडलियाँ, २ छप्पय तथा १ अरिल्ल, इस प्रकार कुल २३ मुक्तक संग्रहीत हैं। यह कवि की प्रारंभिक रचना प्रतीत होती है।

विषय की दृष्टि से अधिकाश पद हितचौरासी के पदो के समान हैं। कुछ पदा में (११, १६) नद और वृषभानु के द्वार का आनन्दोत्सव वर्णित हैं। स्फुटवाणी के शेष अशा में कृष्ण भक्ति की महत्ता का गायन किया गया हैं।

सेवक जी की वाणी—हितहरिवश के शिष्य सेवक जी (जन्म स० १५७०) की वाणी 'श्री हितचौरासी सेवकवाणी' के नाम से गुरु की रचना के साथ ही प्रकाशित हो चुकी हैं।[१०२] इस वाणी का विषय यद्यपि प्रधान रूप से हितहरिवश की प्रशसा हैं तथापि 'श्री हितरसरीतिप्रकरण' और 'श्री हितभक्तभजन प्रकरण' आदि कुछ प्रकरणा में राधाकृष्ण की कुज क्रीडा का वर्णन भी मिलता हैं। मिश्र-बन्धुआ ने वाणी के अतिरिक्त इनके 'भक्ति परचावली मगल' नामक ग्रथ का भी उल्लेख किया हैं[१०३] पर वह उपलब्ध नहीं हैं। सेवकवाणी के पदा तथा छदो की सख्या सीमित ही हैं किन्तु समस्त वाणी का विस्तार लगभग २०० मुक्तको तक हैं जिसमें दोहा, छप्पय, सवैया आदि अनेक छद प्रयुक्त हैं।

व्यास जी की वाणी—ओड़छा नरेश मधुकरशाह के गुरु हरिराम व्यास ने (जन्म स० १५६७)[१०४] जो हितहरिवश के सर्वप्रधान शिष्य थे, विस्तृत रूप में काव्य रचना की। उनकी समस्त रचनाएँ 'श्रीव्यासवाणी' नाम से दो भागा में प्रकाशित हो चुकी हैं। इस प्रकाशन का आधार तीन विभिन्न हस्तप्रतियाँ हैं। पहली में ६२७ पद, दूसरी मे ६९० पद तथा तीसरी मे, जो स० १८९० की हैं ७२२ पद मिले किन्तु प्रस्तुत प्रकाशित वाणी में पद सख्या ७५६ हैं और साथ में १४६ साखियाँ और दोहे भी हैं।[१०५] यह ७५६ पद दो भागो में विभाजित हैं। पहले भाग में 'सिद्धान्त रस' के ३०१ पद हैं तथा दूसरे में 'रस विहार' के ४५५ पद हैं।

सिद्धान्तरस के पद—इस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले सभी पद सिद्धान्तपरक नही हैं। प्रारम्भ में वृन्दावन, मधुपुरी, यमुना, महाप्रसाद तथा नाम रूप की स्तुति तथा गुरु महिमा का वर्णन हैं। इसके उपरान्त 'श्री साधुन की स्तुति' के रूप में समस्त प्रसिद्ध भक्तों का यश वर्णन हैं जो एक प्रकार से कृष्णकाव्य की सीमा से बाहर की वस्तु हैं। शाक्त निन्दा कलिकाल प्रवाह आदि प्रकरण भी इसी कोटि में आते हैं। किन्तु शेष अश किसी न किसी तरह कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध हैं। विनय, विरह, मनोपदेश, भक्ति ज्ञान आदि विभिन्न विषयो के व्याज से युगलरूप की उपासना ही व्यजित होती हैं।

रस विहार के पद—इन पदो में राधाकृष्ण का कुजविहार, शय्याविहार, जलक्रीडा, षड्ऋतुरास, षोडशशृगार, नखशिख, मान, भोजनविलास, होली, हिंडोला,

विवाह आदि अनेक अनेक प्रकार से वर्णित हैं। 'रासपंचाध्यायी' पृथक रूप से पद्य-बद्ध की गई है जिसमें राधारास को छोड़ कर शेष अंश भागवत के आधार पर लिखित है। राधा और कृष्ण के जन्मोत्सव से सम्बन्धित पद भी प्राप्त होते हैं और कुछ में गोपाल मंडली का भी चित्रण है। कतिपय पदों में खंडिता के भाव भी व्यक्त हैं। इन थोड़े से अपवादों के अतिरिक्त सभी पदों में राधा कृष्ण के युगलरूप का ही आलेखन हुआ है।

गौड़ीय सम्प्रदाय

ब्रज प्रदेश चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र रहा है किन्तु जहाँ तक ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का प्रश्न है १६वीं शती में केवल दो कवियों की कृतियाँ ही उपलब्ध होती हैं। ये कवि हैं गदाधर भट्ट तथा सूरदास मदनमोहन। गदाधर भट्ट जीव गोस्वामी के शिष्य थे और सूरदास मदन-मोहन सनातन गोस्वामी के। ये चैतन्य के समकालीन थे।[101] रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार गदाधर भट्ट का कविताकाल सं० १५८०—१६०० के बाद तथा सूरदास मदनमोहन का सं० १५९०—१६०० के लगभग है।[102] स्फुट पदों के अतिरिक्त दोनों कवियों का कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता।

गदाधर भट्ट की वाणी—'मोहिनी वाणी श्री श्री गदाधर भट्ट जी की' के नाम से प्रकाशित इनकी संग्रहीत वाणी में पदों के अतिरिक्त कतिपय संस्कृत के गीत तथा वृन्दावन की प्रशंसा में लिखित ५४ रोला छंदों का 'योगपीठ' भी सम्मिलित है। संग्रह में छोटे बड़े सभी प्रकार के पद हैं जिनकी संख्या ८० के लगभग है।

यशोदा, नंद, बधाई, वन्दना, यमुना, वंशी, वर्षा, वसन्त, होरी, हिंडोला आदि पर अनेक तो पद हैं ही किन्तु राधा कृष्ण के शृंगार, रास, विलास, विवाह तथा मान का विशेष विस्तार से वर्णन किया गया है। एक दो स्थल पर श्रीकृष्ण की ब्रज-गोकुल लीलाओं का भी संदर्भ प्राप्त हो जाता है। कुछ पदों में नाम माहात्म्य तथा दैन्य भाव भी व्यक्त हैं। पदों का वर्गीकरण एवं क्रम निर्धारण उचित रूप से नहीं हुआ है।

सूरदास मदनमोहन की वाणी—'सुहृद् वाणी श्री श्री सूरदास मदनमोहन की' नामक प्रकाशित संग्रह में इनके १०५ स्फुट पद उपलब्ध होते हैं। इनके काव्य के प्रधान विषय बाल रूप, मुरली रास, विवाह, खंडिता, होली धमार, फाग तथा हिंडोला आदि हैं। यों प्रारम्भ के उपदेश तथा राधा कृष्ण जन्म की बधाई के पद भी हैं। नखशिख, कुंज विलास तथा दान मान का भी वर्णन प्राप्त हो जाता है। वर्णनात्मक शैली में लिखा हुआ धमार का विस्तृत वर्णन (पद नं० ८२, रागगौरी) एक स्वतन्त्र रचना जैसा प्रतीत होता है।

यह सम्प्रदाय ब्रज के उक्त अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की अपेक्षा प्राचीनतर है किन्तु १६वी शती से पहले इसमें भी कोई काव्य रचना उपलब्ध नहीं होती। १५वी शती के प्रसग में श्रीभट्ट और हरिव्यास को १६वी शती का निर्णीत किया जा चुका है। इन दो कवियों के अतिरिक्त एक कवि परशुरामदेव भी इसी शती में प्राप्त होते हैं।[१०८]

निम्बार्क सम्प्रदाय

श्रीभट्ट की रचना : जुगलसत—किंवदन्ती के अनुसार तो यह एक सहस्र पद के रचयिता है किन्तु इनकी उपलब्ध रचना एकमात्र 'जुगलसत' ही है।[१०९] श्रीभट्ट की इस कृति में राधा कृष्ण के युगलरूप को आलम्बन मान कर १०० पदों का निर्माण किया गया है यह शीर्षक से ही व्यंजित है। पद विभिन्न प्रकार के है और उनके साथ एक एक दोहा भी समाविष्ट है जो पद का संक्षेप मात्र होता है। इन सौ पदों का विषयानुसार वर्गीकरण प्रस्तुत करने के लिये निम्नलिखित उद्धरण दे देना ही पर्याप्त होगा।

दस पद हैं सिद्धान्त, बीस पद ब्रजलीला पद।
सेवा सुख सोलहौं, सहज सुख एक बीस हद।
आठे सुरत, अरु उनत बीस उच्छव सुख लहिए।
श्री जुत श्रीभटदेव रच्यो 'सत जुगल' जो कहिए।[११०]

हरिव्यास की रचना : महावाणी—श्रीभट्ट के शिष्य इन हरिव्यास देव की ब्रजभाषा की केवल एकमात्र रचना महावाणी ही प्राप्त होती है जो गुरु के 'जुगलशत' का भाष्य कहा जाता है।[१११] इस महावाणी के पाँच सुख हैं:—

१. सेवा २. उत्साह ३. सुरत ४. सहज ५. सिद्धान्त

सेवा सुख में अष्टयाम सेवा का वर्णन है। उत्साह-सुख और सहज-सुख में सभोग शृंगार का उदय, विकास एवं पर्यवसान वर्णित है। सिद्धान्त सुख के अन्तर्गत उपास्य तत्व, सखीनामावली तथा महावाणी के गूढ विषयो की तालिका प्रस्तुत की गयी है। अनेक स्त्रोत भी इस रचना में समाविष्ट है। हरिव्यास ने अपने समस्त पदों मे 'श्री हरिप्रिया' की छाप दी है। 'जुगलसत' के आधार पर निर्मित होने के कारण 'महावाणी' का विस्तार भी उसी प्रकार निश्चित है।

परशुराम देव की रचना: परशुरामसागर—श्री हरिव्यास देव के शिष्य परशुराम देव की एकमात्र रचना परशुरामसागर ही उपलब्ध होती है। इस अप्रकाशित वृहत् काव्य के कतिपय अश 'निम्बार्क माधुरी' में उद्धृत है।[११२] उसमें इस रचना का

जो विवरण दिया है उससे ज्ञात होता है कि इसमें 'वाइस सौ दोहा छप्पै, छन्द और हजारो पद है जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, गुरुनिष्ठा, प्रेम-सम्बन्धी तथा उपदेशात्मक हैं'।[११३] जो अश प्रकाशित है उनमे शृंगार विषयक पदो का नितान्त अभाव है केवल भक्त, विनय, आत्मनिवेदन तथा ज्ञान वैराग्य की चर्चा है। निम्बार्क माधुरी में परशुराम सागर से १०० दोहे तथा ३३ पद उद्धत है।

१६वी शती में इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास के अतिरिक्त उनके शिष्य विट्ठल विपुलदेव और प्रशिष्य विहारिन देव के द्वारा काव्य रचना हुई। स्वामी हरिदास का कविता काल सम्वत १६००—१६१७ के लगभग माना जाता है।

हरिदासी सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास की रचना—इनकी रचनाओ के विषय में हिन्दी के इतिहासकार एक मत नही है। डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार इनके अनेक सग्रह प्राप्त हुए है जिनमें 'हरिदास जी की वानी' और 'हरिदास जी के पद' प्रमुख है।[११४] रामचन्द्र शुक्ल ने तीन निम्नलिखित रचनाओ का उल्लेख किया है[११५]

१ हरिदास जी को ग्रथ
२ स्वामी हरिदास जी के पद
३ हरिदास जी की वानी

मिश्र बन्धुओ ने 'भरथरी वैराग्य' नामक रचना को हरिदास कृत माना है।[११६] उक्त सभी रचनाओ का इतिहासकारो द्वारा केवल उल्लेख मात्र प्राप्त होता है। किसी ने उनकी रूपरेखा तथा परिचय प्रस्तुत नही किया। वास्तव में इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध होती है जो पदावली के रूप में हैं। पहली रचना में १८ 'सिद्धान्त के पद' है तथा दूसरी 'केलिमाल' नामक रचना में युगल रूप राधाकृष्ण के नित्यविहार, नखशिख, मान, दान, हारी तथा रास आदि विषयो के १०८ पद है।[११७] ये दोनो रचनाएँ 'निम्बार्क माधुरी' में प्रकाशित है। वियोगीहरि ने भी इन्ही दोनो रचनाओ की चर्चा की है किन्तु पद सख्या क्रमश १९ तथा ११० दी है और नाम 'केलिमाल' के स्थान पर 'केलिमाला'। डॉ० दीनदयाल गुप्त ने कदाचित् इन्ही का 'साधारण सिद्धान्त' तथा 'रास के पद' नाम से उल्लेख किया है।[११८]

इन रचनाओ में सर्वत्र 'श्री हरिदास' अथवा 'हरिदास' की छाप मिलती है अत नाभा जी के कथन 'रसिक छाप हरिदास की' की सार्थकता सिद्ध नही होती। उनके 'अवलोकत रहे केलि सखी सुख को अधिकारी' से 'केलिमाल' नाम की व्यजना होती है जिसमें सखी भाव स्पष्ट है।

विट्ठल विपुलदेव की रचनाएँ—इनकी कोई सवद्ध रचना प्राप्त नही होती। केवल चालीस स्फुट पद उपलब्ध होते हैं। इन पदो मे श्री राधाकृष्ण के नित्य विहार सम्बन्धी विषयो का वर्णन है।[११९] ३९ पद निम्बार्क माधुरी में प्रकाशित हैं।

विहारिनदेव की रचनाएँ—इनके द्वारा निर्मित ७०० दोहे और ३०० के लगभग पद प्राप्त होते हैं जिनकी रचना भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, उपदेश, आचार्य निष्ठा, शृगार आदि विविध विषयो पर हुई है।[१२०] जहाँ तक दोहो का प्रश्न है वे प्रकाशित रूप में उपलब्ध नही होते किन्तु पदो में से ९० पद सकलित करके निम्बार्क माधुरी मे प्रकाशित कर दिये गये हैं।

इस वर्ग में १६वी शती के वे सभी कवि आ जाते हैं जिन्होने उक्त किसी सम्प्रदाय की सीमा में रह कर कृष्ण काव्य की रचना नही की। ऐसे कवियो के भी दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग के कवियो की रचनाएँ स्वतन्त्र रूप में प्रेरणा पाकर कृष्ण-भक्ति अथवा कृष्ण-यशगान के उद्देश्य से लिखी गई हैं किन्तु द्वितीय वर्ग के कवियो ने रीति अथवा नायिका-भेद के ग्रथो के उदाहरण प्रस्तुत करने की दृष्टि से कृष्ण-काव्य की रचना की। प्रथम श्रेणी में मीरा, तुलसी, रहीम और नरोत्तमदास प्रमुख हैं तथा द्वितीय मे कृपाराम, केशवदास, गग और आलम। नीचे इन समस्त कवियो की रचनाओ का परिचय दिया जाता है।

सम्प्रदाय-मुक्त कवि

प्रथम वर्ग के कवियो की रचनाएँ—व्रजभाषा में मीरा के स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं। इन पदो के अनेक सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं[१२१] जिनमें परशुराम चतुर्वेदी का 'मीराबाई की पदावली' तथा महावीरसिंह गहलौत का 'मीरा जीवनी और काव्य' विशेष महत्वपूर्ण हैं। चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत सग्रह में शताधिक पद सुसपादित एव वर्गीकृत रूप में प्राप्त होते हैं तथा गहलौत के सग्रह का महत्व १०८ पदो में ४० अप्रकाशित पदो को पहली बार प्रकाश में लाने के कारण है। प्रस्तुत लेखक को भी मीरा के कतिपय अप्रकाशित पद प्राप्त हुए जो मीरास्मृतिग्रथ में प्रकाशित हो चुके हैं।[१२२] इस ग्रथ में ललिताप्रसाद शुक्ल ने डाकोर वाली स० १६४२ की हस्तप्रति से ६९ तथा काशीवाली हस्तप्रति से ३४ पदो को मुद्रित कराया है जिनकी भाषा प्राचीन राजस्थानी है। इसके विषय में विशेष विचार भाषा के प्रसग में किया जायेगा।

मीरां

विषय की दृष्टि से मीरा के उपलब्ध पद मुख्यतया तीन निम्नलिखित भागो में विभाजित किये जा सकते हैं:

१ स्वचरित सम्बन्धी पद
२. निर्गुण भक्ति परक पद
३. सगुण भक्ति परक पद

अन्तिम भाग के अन्तर्गत मीरा का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम, विरह, मिलन, व निवेदन आदि भावों से प्रेरित होकर लिखे गये तथा 'रूपवर्णन' होली, वसंत, दान, मान, कुंज क्रीडा, पनघट आदि विषयों पर लिखित सभी पद आ जाते हैं।

तुलसीदास

तुलसीदास की समस्त रचनाओं में कृष्णविषयक केवल एक रचना 'कृष्णगीतावली' ही उपलब्ध होती है। यह रचना 'तुलसी ग्रंथावली' तथा 'तुलसी रचनावली' दोनों में प्रकाशित हैं। कवि की गीतावली में जिस प्रकार राम सम्बन्धी पद संग्रहीत हैं उसी प्रकार इस श्रीकृष्ण-गीतावली में कृष्ण सम्बन्धी ६१ पद संग्रहीत हैं। इन पदों में कृष्ण के बाल रूप तथा भ्रमरगीत का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। कुछ पदों में ब्रजलीला, रास तथा नखशिख का भी वर्णन है।

रहीम

अब्दुर्रहीम खानखाना की रचनाओं में से केवल दो रचनाएँ, १ मदनाष्टक तथा २. रासपंचाध्यायी कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आती हैं किन्तु इनमें से पहली रचना में मात्र आठ चौपदे हैं तथा दूसरी के केवल दो पद ही उपलब्ध होते हैं।[१२३]

नरोत्तमदास

इनकी कृष्ण सम्बन्धी एकमात्र रचना 'सुदामाचरित' है जो अनेक स्थलों से प्रकाशित हो चुकी है। रचना का विषय शीर्षक से प्रकट है। यह एक सुप्रसिद्ध खंडकाव्य है जिसमें दोहा, कवित्त, सवैया, छंद में सम्बद्ध रूप से कृष्ण-सुदामा मिलन की सारी कथा वर्णित है।

द्वितीय वर्ग के कवियों की रचनाएँ—इस वर्ग में कृपाराम की 'हिततरंगिनी', केशवदास की 'कविप्रिया' तथा 'रसिक प्रिया' और आलम-शेख की 'आलमकेलि' जैसी रचनाएँ आती हैं। इन रचनाओं में लक्षणों के उदाहरण रूप में प्रस्तुत मुक्तकों में राधाकृष्ण की विविध शृंगार लीलाओं का वर्णन प्राप्त होता है। गंग के नाम से उपलब्धकृष्ण सम्बन्धी कतिपय कवित्त भी इसी श्रेणी में आते हैं।

ये सभी रचनाएँ प्रकाशित हैं।

१७वीं शती—गुजराती

१६वीं शती की तरह इस शती में भी बहुसंख्यक कवि ऐसे मिलते हैं जिन्होंने कृष्ण सम्बन्धी काव्य रचना की। इनमें से अनेक को पहली बार प्रकाश में लाने का श्रेय शास्त्री को है। चित्र नं० ४ के देखने से विदित होता है कि उन्हीं के द्वारा सर्वाधिक

कवियो का उल्लेख हुआ है । किसी कवि का सभी इतिहासकारों ने परिचय नही दिया ।[१४] झावेरी ने देवीदास, शिवदास तथा नरहरि, इन तीन अन्य कवियो का परिचय दिया है और मुंशी ने शिवदास एव रत्नेश्वर का। रत्नेश्वर का उल्लेख त्रिपाठी ने भी किया है । देवीदास और शिवदास तारापोरवाला के SCGL में भी मिलते हैं । माधवदास तक के सभी कवि तथा केशवदास वैष्णव शास्त्री द्वारा उल्लिखित हुए हैं । विष्णुदास का भी किसी ने परिचय नही दिया है । चित्र नं० ३ के अनुसार आगे निम्नलिखित १५ कवियो तथा उनके काव्यो का संक्षिप्त परिचय क्रमश: दिया गया है ।

१.	लक्ष्मीदास	९.	फाग
२.	देवीदास	१०.	माधवदास
३.	शिवदास	११.	प्रेमानद
४.	भाऊ	१२.	रत्नेश्वर
५.	वैकुंठदास	१३.	विष्णुदास
६	परमाणद	१४.	केशवदास वैष्णव
७.	कृष्णदास	१५.	रविदास
८	नरहरिदास		

लक्ष्मीदास

लक्ष्मीदास ने अपने 'गजेन्द्रमोक्ष' मे रचना समय स० १६३९ तथा 'चन्द्रहासाख्यान' में स० १६४७ दिया है जिससे उनका १६वीं शती में होना सिद्ध होता है परन्तु उनके जिस 'दशमस्कध' के कारण उन्हें प्रस्तुत अध्ययन मे स्वीकार किया गया है उसका रचनाकाल स० १६७४ है ।[१५] एक हस्तप्रति में स० १६०४ भी दिया है जो संदिग्ध है ।[१६] दशमस्कध एक तो उनकी प्रारम्भिक रचना नहीं लगती दूसरे उनका काव्यकाल स० १६७४ के आसपास तक माना भी जाता है क्योंकि उनकी एक छोटी रचना 'ज्ञानबोध' स० १६७२ में रची गयी मिलती है ।[१७] अतएव स० १६७४ की प्रामाणिक एव संभव प्रतीत होता है । ऐसी दशा में लक्ष्मीदास को १७वीं शती के अन्तर्गत स्वीकार करना अनुचित नही है ।

रचनाएँ : दसमस्कंध, स्फुट पद—लक्ष्मीदास की कृष्णपरक रचनाओ में उनका 'दशमस्कध' तथा कुछ स्फुट पद ही आते हैं । शेष रचनाओ में कुछ आख्यान काव्य हैं जो प्रस्तुत विषय की सीमा से बाहर हैं ।

दसमस्कंध—लक्ष्मीदास की रास पचाध्यायी के भालणकृत दसमस्कध में प्रक्षिप्त रूप में पाये जाने का उल्लेख भालण के प्रसग में हो चुका है । वह पचाध्यायी इसी

दशमस्कध का एक अश है। यह दशमस्कध अभी अप्रकाशित है। १९५ कडवो में भागवत दशमस्कध के ९० अध्यायो का अनुवाद किया गया है।

स्फुट पद—रामविषयक पदो की तरह इनके कुछ पद कृष्णविष्यक भी प्राप्त होते हैं जो मुख्यतया स्तुति रूप है। चार मुक्तक सवैये भी मिलते हैं। इन स्वतन्त्र स्फुट रचनाओ की भाषा मिश्रित है।[१२८]

देवीदास

देवीदास के समय का उल्लेख उनकी रचना 'रुक्मिणीहरण' के अन्तिम कडवे में मिल जाता है।[१२९] उससे ज्ञात होता है कि उनका काव्य-काल स० १६६० के लगभग रहा है। स० १६७५ की तो हस्तप्रति ही प्राप्त होती है।

रचनाएँ—इस कवि की लगभग सभी रचनाएँ भागवत पर आधारित हैं और कृष्णविषयक है। तीस कडवा की रचना 'रुक्मिणीहरण' बृहत् काव्यदोहन, भाग छठु में प्रकाशित है। 'भागवतसार तथा 'रासपचाध्यायी नो सार' में प्रथम अप्रकाशित है और दूसरी बृहत् काव्यदोहन भाग ८ मु म छपी है। रचनाओ के विषय नाम मे ही स्पष्ट हैं।

शिवदास

शिवदास का काव्य-काल देवीदास के काव्य काल के समानान्तर ही रहा है जो उनकी अनेक रचनाओ मे दिए हुए समय से प्रमाणित होता है।[१३०] स० १६६७–७७ तक के समय में उन्होंने अपनी विभिन्न कृतियो का सृजन किया।

रचना बालचरित—शिवदास आख्यानकार थे। उनकी मात्र एक रचना 'बाल चरित्र' कृष्ण काव्य के अन्तर्गत आती है। भागवत का आधार लेकर कवि ने इसे 'दीन ग्रथ्य' में ही 'पदवध' कर दिया। रचना कडवाबद्ध और वर्णनात्मक है तथा अभी तक अप्रकाशित है।

भाऊ

भाऊ का काव्यकाल स० १६७६—७९ के लगभग निश्चित है।[१३१] शिवदास की तरह भाऊ भी आख्यानकार ही थे।

रचना पाडवविष्टि—कृष्ण से सम्बन्धित इनकी एक रचना 'पाडवविष्टि' ही प्राप्त है। यह प्राचीन काव्य त्रैमासिक १८९० अक ३, में प्रकाशित है। रचना का विषय कौरवों पाडवो के बीच कृष्ण का दूतत्व है।

इस कवि के समय के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं हैं। कवि अपनी रचना के प्रारंभ में 'श्रीगोकुल वदनि' को प्रणाम करता है जिससे उसे गोकुलनाथ का शिष्य मान कर १७वी शती वि० के उत्तरार्ध में स्वीकार किया है।[१११] गोकुलनाथ की शिष्यता के विषय में शास्त्री ने अन्य प्रमाण नहीं दिये हैं अतएव कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता फिर भी भाषा और वस्तु के आधार पर कवि १७वी शती का ही प्रतीत होता है।

वैकुंठदास

रचना : रासलीला—कवि की एकमात्र उपलब्ध रचना 'रासलीला' है जो अप्रकाशित है। विषय कृष्ण और गोपियों का रासप्रसग है जो सक्षिप्त रूप में वर्णित है।

फार्बस गुजराती सभा में परमाणद के 'हरिरस' नामक काव्य की जितनी भी प्रतियाँ हैं उनमे ज्ञात होता है कि इसका रचनाकाल स० १६८९[१११] हैं। गुजराती प्रेस की प्रति में स० १५०९ हैं जो पूर्णत. असत्य हैं। परमानद का समय निस्सदेह १७वी शती के अन्तर्गत ही आता हैं।

परमाणंद

रचना : हरिरस—इनकी केवल एक कृति हरिरस ही प्राप्त है। इसका आधार भागवत का दशम और एकादश स्कध है। सारी रचना १२ वर्गों में विभाजित है। शैली वर्णनात्मक है। कुछ प्रसग अत्यन्त सक्षिप्त कर दिये गये हैं और कुछ विस्तृत। अनुवाद पर विशेष आग्रह नहीं है। यह अभी अप्रकाशित है।

स० १६७३ में रचित 'सुदामाचरित' स० १७०१ में रचित 'मामेरु' तथा स० १७०३ की रचना 'हुडी' के आधार पर कृष्णदास का काव्य काल १७वीं शती ही स्थिर होता है।[११८]

कृष्णदास

रचनाएँ—'सुदामाचरित', 'रुक्मिणी विवाह' तथा 'रुक्मिणी हरण ह्मचडी' यही तीन रचनाएँ ऐसी हैं जो कृष्ण से सम्बन्धित हैं।[११९]

सुदामाचरित—१५ कडवों की यह आख्यानात्मक रचना अभी अप्रकाशित है। विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है।

रुक्मिणी विवाह—कृष्णदास के नाम से प्रसिद्ध इस सक्षिप्त रचना में अनेक कवियो के पद सग्रहीत है। यही नहीं कुछ प्रक्षिप्त पद ऐसे भी हैं जिनका प्रसग मे कोई सम्बन्ध ही नहीं हैं। अन्तिम पाँच पद वल्लभ नामक कवि के हैं और उन्हें

सुगमता मे 'राधाविवाह' शीर्षक दिया जा सकता है। 'कृष्णोदास' की छाप प्रारम्भिक पद और पाचव, छठे तथा सातवें कडवे मे ही है। दूसरे कडवे में सूरदास का 'विप्र-योउ द्वारका पे जाय' पद, तीसरे में 'विजयो' का चौथे में 'जन रघुनाथ' का तथा आठवें में अन्तिम 'टपा' पीताम्बर का है। 'कृष्णोदास' छाप वाले पदो की भाषा भी व्रज मिश्रित है। एसी स्थिति म इस रचना को किसी एक कवि की कृति कहना समुचित नही लगता। पर जो पद कृष्णदास के इसमें है उनको 'रुक्मिणी विवाह' कहना अनुपयुक्त नही। रागबद्ध पदो के कारण ही कदाचित् इसके प्रकाशक श्री काशीराम करसन जी न इसकी सज्ञा 'श्री रुक्मिणी विवाहना पदो' दे दी। 'वैष्णवा ने त्या विवाहोत्सव प्रसगे गवाता' लिखकर प्रकाशक ने इसकी लोक प्रियता की ओर सकेत किया है।

रुक्मिणीहरण हमचडी—सदेह के लिए थोडा-सा स्थान देते हुए भी शास्त्री हमचडी को शिवदाससुत कृष्णदास की ही रचना मानने के पक्ष में है। उन्होने प्रयारभ मे आये हुए दामोदर के स्मरण की समता लेखक की अन्य रचनाओ से दिखाते हुए अपनी-अपनी उक्त धारणा व्यक्त की है।[111] रचनाकाल की दृष्टि से ऐसा मानने में कोई व्याघात नही उपस्थित होता।

यह रचना अप्रकाशित है। 'हमची' 'हमाचडी', हमचडी' आदि शब्द इसके एक विशष प्रकार से गेय होने का बोध कराते है। ५३ कडी की यह सक्षिप्त कृति कवि की अन्य रचनाओं की अपेक्षा निम्नकोटि की है।

नरहरिदास

नरहरिदास का समय उनकी अनेक गीताओ में दिये सवतो से पूर्णतया निश्चित हो जाता है। ज्ञानगीता में स० १६७२, वासिष्ठगीता में स० १६७४ और भगवद्गीता में स० १६७७ दिया है।[112] इस प्रकार इनका १७वी शती म होना असदिग्ध है।

रचनाएँ : आनंदरास, गोपीउद्धव सवाद—नरहरि मुख्यतया ज्ञानमार्गी कवि थे फिर भी दो रचनाएँ कृष्ण से सम्बन्धित मिलती है, आनदरास और गोपीउद्धव सवाद। दोनो अप्रकाशित है।

आनदरास—इसका विषय कृष्ण की रासलीला से नितान्त भिन्न है। कवि ने सारी रचना में आनद स्वरूप, परब्रह्म कृष्ण की भक्ति, सतसग तथा प्रपचत्याग की महिमा का गान किया है। २५ कडिया की यह छोटी सी रचना ज्ञानपरक होने के कारण अपना स्वतन्त्र महत्व रखती है।

गोपी उद्धव संवाद—'हरिगुरु सत प्रसादे करी गाये ते रगभरे रास रे' कह कर नरहरिदास इसे भी आनदरास की तरह रास शैली में रचित स्वीकार करते हैं। रचना का आधार भागवत का गोपीउद्धव सवाद होते हुए भी कवि ने अपने ज्ञानमार्गी होने के कारण उद्धव के तर्कों को विस्तार एव मनोयोग से लिखा है। रचना छोटी और वर्णनात्मक है।

फाग

फाग के एकमात्र काव्य 'कंसोद्धरण' की उपलब्ध प्रतिलिपि में प्रतिलिपि-काल स० १७५९ तथा रचनाकाल स० '१६९७ फागण सुदी १२ बुधवार, विजय-सम्वत्सर' दिया हुआ है। अतएव फाग को १७वी शती के अन्तर्गत ही स्वीकार करना होगा। जो तिथि दी है वह गणना से शुद्ध है केवल सम्वत्सर 'विजय' नही आता है।

रचना : कंसोधारण—कवि ने स्वय अपनी रचना का नाम 'कसोधारण' दिया है जिसे शुद्ध करके शास्त्री ने 'कसोद्धारण' लिखा है।[१३८] शीर्षक से विषय केवल कस के उद्धार तक ही सीमित प्रतीत होता है परन्तु कवि ने वास्तव में कस-वध तक की समस्त कृष्णलीलाओ का प्रसगान्तर से समावेश कर लिया है। यही नही कसवध के बाद की कतिपय घटनाओं का भी उल्लेख है। शैली की दृष्टि से रचना वर्णनात्मक एवं कड़वाबद्ध है और अभी अप्रकाशित है।

माधवदास

माधवदास ने अपनी रचना 'दशमस्कध' का रचनाकाल स० १७०५ दिया है जिससे उनका काव्यकाल १७वी शती में ही निश्चित होता है।[१३९]

रचना : दशमस्कंध—कृष्ण सम्बन्धी इनकी एक रचना दशमस्कध ही प्राप्त है। यह भागवत दशम का अनुवाद मात्र है। कवि ने स्वतन्त्र रूप से कुछ परिवर्तन परिवर्धन नही किया है।

प्रेमानंद

नरसी की तरह ही प्रेमानद के जीवन और रचनाओ को लेकर गुजराती विद्वानो में पर्याप्त विसवाद चलता रहा। जिसका अन्त अभी तक नही हो सका है। पर जहाँ तक उनके जीवनकाल का सम्बन्ध है, विशेष मत-भेद नही है। चित्र न ४ से विदित होता है कि झावेरी, तारापोरवाला और मुंशी के मत से इनका जीवन काल सन् १६३६—१७३४ निश्चित है। शास्त्री ने दूसरे ढग से विचार करके प्रेमानद का जन्मकाल स० १७०० के लगभग माना है जिसमें केवल कुछ ही वर्षो का अतर पड़ता

हैं। शास्त्री का मत प्रेमानंद के तिथियुक्त ग्रन्थों पर आश्रित है। इनमें सर्व-प्रथम रचना 'ओखाहरण' सं० १७२२–२३ की है और अन्तिम 'रणयज्ञ' सं० १७४६ की।[१९०] १७वीं शती ई० की सीमा सं० १७५७ तक जाती है अतएव इन तिथि-युक्त ग्रंथों का निर्माणकाल इसी शती में आता है। इस विषय में सभी विद्वान एकमत हैं कि प्रेमानंद का अधिकांश काव्यकाल १७वीं शती ई० की सीमा में ही है।

रचनाएँ—यों तो प्रेमानंद की रचनाएँ बहुसंख्यक हैं परन्तु उनमें प्रामाणिक बहुत अधिक नहीं हैं। प्रेमानन्द की केवल निम्नलिखित रचनाएँ ही प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत आती हैं।

१	रुक्मिणी हरण	६	भ्रमरगीता
२	रुक्मिणीहरण ना सलोको	७	भ्रमरपचीसी
३	बाल लीला	८	मास
४	व्रजवेलि	९	सुदामाचरित
५	दाणलीला	१०	दशमस्कंध (मोटो)

यहाँ दशमस्कंध के समाविष्ट करने पर कुछ आपत्ति की जा सकती है क्योंकि शास्त्री उसे प्रेमानंद के काव्यकाल के अन्तिम अंश की रचना मानते हैं।[१९१] इस विषय में उन्होंने जो तर्क उपस्थित किये हैं वे अनुमान पर अधिक आधारित हैं। दशमस्कंध में रचना समय दिया नहीं है अतएव कुछ निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। ऐसी स्थिति में इस रचना की महत्ता देखते हुए तथा स्पष्ट विरोधी प्रमाणों के अभाव में इसे प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार कर लिया गया है। प्रेमानन्द के नाम से एक 'नानु दशमस्कंध' भी प्रचलित है परन्तु वस्तुतः वह उनकी रचना सिद्ध नहीं होता। इस विषय के प्रमाण दशमस्कंध का परिचय देते हुए प्रस्तुत किये जायेंगे। मास को छोड़कर उपर्युक्त सभी रचनाओं को शास्त्री ने प्रेमानंद की शंकारहित कृतियों की कोटि में स्वीकार किया है साथही व्रजवेलि को बाललीला से पृथक नहीं माना है।[१९२] इन रचनाओं के अतिरिक्त मुंशी ने 'भगवद्गीता' का भी उल्लेख किया है।[१९३] अम्बालाल बुलाखीराम जानी ने भी 'भागवत सम्पूर्ण' का नाम गिनाया है।[१९४] भगवद्गीता की कोई हस्तप्रति नहीं मिलती और भागवत सम्पूर्ण की सत्ता भी नाममात्र की ही है।

रुक्मिणीहरण ना सलोको, बाललीला, व्रजवेलि, भ्रमरगीता तथा मास को मुंशी द्वारा दी गयी प्रेमानंद के काव्यों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है।[१९५] शास्त्री ने 'प्रेमानंद, एक अध्ययन' में जो सूची दी है उसमें उक्त अन्य रचनाएँ तो हैं

पर 'मास' सम्मिलित नहीं हैं । गु० ह० सकलितयादी मे अवश्य शास्त्री ने 'महिना' नाम से मास का उल्लेख किया है ।[१८१] पर यह सूची भी पूर्ण नहीं कही जा सकती क्योंकि व्रजवेलि का समावेश इसमें नहीं मिलता । थूथी ने मास की सत्ता 'बार मास नो बिरह' नाम से स्वीकार की है ।[१८२] ब्रह्मानद, शिवानद तथा अन्य प्रेमानद के पद प्रक्षिप्त हो जाने से इसके कर्तृत्व के विषय में शका की गयी परन्तु विचार करने पर ज्ञात होता है कि यह वास्तव मे प्रेमानद की ही रचना है । के० ह० ध्रुव ने इसे सम्पादित करके गु० व० सो० के 'बुद्धि प्रकाश' में प्रकाशित किया। प्रेमानद की उपर्युक्त रचनाओ मे मास के अतिरिक्त, रुक्मिणीहरण, दशमस्कध, दाणलीला, भ्रमर-पचीशी, भ्रमरगीता तथा सुदामाचरित भी प्रकाशित हो चुके हैं । व्रजवेलि, रुक्मिणी हरण ना सलोको, बाललीला तथा भ्रमरगीता अभी अप्रकाशित ही हैं । नीचे प्रेमानद की स्वीकृत रचनाओ का सक्षिप्त परिचय क्रमश दिया गया है ।

रुक्मिणीहरण—इस रचना में रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की कथा को अनेक पुराणा का आधार लेकर वर्णित किया गया है । यह एक आख्यान काव्य है जिसमें कुल २५ कडवे हैं । बीच बीच मे पद भी मिलते हैं । यह प्राचीन काव्यमाला, ग्रथ १४ में प्रकाशित है ।

रुक्मिणीहरण ना सलोको—इस रचना का विषय भी रुक्मिणी-कृष्ण-विवाह ही है । एक प्रकार से यह 'रुक्मिणीहरण' का सक्षेप-सा है जिसे कवि ने स्वय स्वीकार किया है ।[१८४] रचनाकाल स० १७४० दिया हुआ है ।[१८५]

बाललीला—यह केवल एक लम्बा-सा पद है, ग्रथ नही । यशोदा नाना प्रकार की बातें कह कह कर कृष्ण को जगाने का प्रयत्न करती है । सारी बाललीलाएँ प्रसगान्तर से आ जाती हैं । यह दीर्घ पद कदाचित् कृष्णविषयक लिखे रास का अवशिष्ट है क्योंकि शीर्ष स्थान पर हस्तप्रति मे 'कृष्ण ना रास मा थी बाललीला' दिया हुआ है ।[१५०]

व्रजवेलि—व्रजवेलि मे प्रेमानद ने दशमस्कध की लीला का सक्षेप में वर्णन किया है । यह कवि के 'सक्षेपे दशम लीला कही विस्तारी जी' कथन से भी प्रमाणित होता है । इस रचना का वस्तुविधान स्वतन्त्र है अत इसे बाललीला के अन्तर्गत मानना भ्रामक है ।

दाणलीला—राधा तथा उनकी सखियो से कृष्ण द्वारा दधिदान लिये जाने की कथा को आख्यान का रूप देकर इस काव्य की रचना की गयी है। रचना छोटी ही है और इसमें कुल १५ अश हैं । १३ तक कडवाबद्ध है और १४वें तथा १५वें अगो मे पद हैं । यह वृहत् काव्य दोहन भाग १ लु० में प्रकाशित है ।

समेत आठ पद तथा १५वाँ, १८वाँ और २४वाँ पद नवीन रचना हैं किन्तु शेष सभी पद नानी भ्रमरगीता में भी हैं।

मास—अंतिम पंक्ति 'भट प्रेमानंद मास गाये' के अनुसार 'मास' नाम ही उचित प्रतीत होता है यद्यपि 'द्वादश मास', 'बार मास' 'मास बार', 'सुरति महीना', 'सुरति-मास' तथा 'मास सुरती' आदि अनेक नाम विभिन्न हस्तप्रतियों में मिलते हैं। इसमें अनेक कवियों के पद प्रक्षिप्त होने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। संभवत यह कवि की प्रारंभिक कृतियों में से है। प्रतिलिपिकार के जैन साधु होने से इसकी व्यापक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

इस 'मास' काव्य में कवि ने प्रत्येक मास की प्राकृतिक उद्दीपन सामग्री से वातावरण चित्रित करके राधा के मन पर होने वाली विविध प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया है। सारी रचना बारह अंशों में विभाजित है और प्रत्येक अंश में १६ पंक्तियाँ हैं। हर अंश क्रम का निर्वाह करते हुए भी अपने में स्वतन्त्र है।

सुदामाचरित—आख्यान के रूप में लिखी हुई यह रचना अधिक बड़ी नहीं है। कथानक का आधार भागवत होते हुए भी इसमें अनुवाद नहीं किया गया है। कल्पना द्वारा वर्णना को विस्तार दिया गया है। प्रेमानंद ने इसकी रचना नंदरबार में की थी। बृ० का० दोहन भाग १ लुं के अतिरिक्त और भी कई व्यक्तियों ने इसे प्रकाशित किया।[53] इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है। किसी प्रति में सं० १७०५, किसी में सं० १७४८ और किसी में सं० १७३२ या सं० १७३८ मिलता है।[54] गुजरात में प्रति शनिवार की संध्या को इसके पाठ का प्रचलन है।[55]

दशमस्कंध—रचना के नाम के साथ यहाँ 'मोटु' विशेषण नहीं लगाया गया है क्योंकि उसकी आवश्यकता 'नानु दशमस्कंध' की सापेक्षता के कारण हुई थी जिसके रचयिता प्रेमानंद नहीं सिद्ध होते। प्रेमानंद का यह दशमस्कंध एक अपूर्ण रचना है। शेष भाग को उनके शिष्य सुन्दर ने पूर्ण किया। प्रेमानंद की रचना कहाँ तक है यह विवादग्रस्त है। ५३वें अध्याय के १६१ वें कडवे तक प्रेमानन्द की छाप मिलती है किन्तु १६२ से १६५ तक के कडवों को भी उन्हीं की रचना कहा जाता है। इस ग्रंथ के संशोधक एवं प्रकाशक इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने अनेक कारण देकर निष्कर्ष रूप में लिखा है कि 'आ १६५ मा सुधीनी सव कृति प्रेमानंद नी निर्विवाद ठरे छे।[56] प्रेमानंद अपनी इस रचना में अनन्य राम-भक्त के रूप में सम्मुख आते हैं। 'विवेक वणझारो' तथा 'रणयज्ञ' की तरह इस ग्रंथ का प्रारंभ भी राम की ही वंदना से होता है। 'रामचरण कमल मकरंद, लेवा इच्छे प्रेमानंद'। इस

भ्रमरगीता—भागवत के भ्रमर प्रसग पर आधारित प्रेमानद की रचनाएँ कई रूपो में प्राप्त होती हैं अतएव उनके यथार्थ रूप का निश्चय करना सरल नही है। प्राचीन काव्य सुधा, भाग १ लु, मे प्रकाशित भ्रमरगीता को सकलितयादी में 'नानी' विशपण के साथ दिया गया है।[५१] यह कदाचित् इसलिए कि इसका मूल 'नानु' दशमस्कध में प्राप्त होता है। इस दशमस्कध मे प्राप्त भ्रमरगीता में प्रेमानद की छाप है और भाषा, शैली आदि के आधार पर भी कर्तृत्व के विषय मे कोई शका नही उठती। किन्तु 'नानी भ्रमरगीता' और प्रा०का० सुधा में प्रकाशित भ्रमरगीता एक होते हुए भी कुछ भिनता रखती है। पहली में दूसरी की अपेक्षा कुछ पक्तियाँ अधिक है यद्यपि इन पक्तियो मे भ्रमरगीता का कुछ भी सदर्भ नही है। इनमें कृष्ण के जन्म से लेकर अध्ययन काल तक का वर्णन करते हुए भ्रमर प्रसग से पहले तक की सारी कथा समाविष्ट है।

दूसरी ओर इस भ्रमरगीता की तुलना प्रेमानद के मोटु दशमस्कध के भ्रमर प्रसग से करने पर ज्ञात होता है कि यह एक प्रकार से उसका पूर्व रूप जैसी है। दोनों में पर्याप्त समानता है। सभवत नानु दशमस्कध की भ्रमरगीता का ही परिवर्धित एव पुनर्निमित रूप मोटु दशमस्कध में रख दिया गया है। कथा के रूप में अनेक परिवर्तन हो गये है फिर भी कुछ वर्णन लगभग एक जैसे ही हैं। कुछ पद तो ज्यो के त्यो समाविष्ट कर लिये गये हे। मोटु के १२७, १३१, १३२ और १३३वें कडवो में आये पद क्रमश नानु के ३, ९, १०, ११ और १२वें कडवो में आये पदो के समान हैं। बडी भ्रमरगीता में 'भ्रमरगीता समाप्त' लिखकर अत का निर्देश भी कर दिया गया है जिससे ज्ञात होता है कि दशमस्कध के अन्तर्गत होकर भी यह एक स्वतन्त्र एव अपने में पूर्ण रचना है। छोटी भ्रमरगीता में ऐसा कोई निर्देश नही है।

इस प्रकार सभी गीताओ को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमानद ने भ्रमरगीता को उत्तरोत्तर परिवर्धित करके कई बार लिखा।

भ्रमरपचीशी—यह भी विषय की दृष्टि से एक भ्रमरगीता ही है केवल नाम और आकार का भेद है। कवि ने 'सवाद उद्धव व्रज वनिता नो भ्रमरगीता नो भापु जो' लिखकर इस वस्तुगत अभेद को स्वीकार भी किया है। इसकी हस्तप्रति का प्रारभ 'अथ भ्रमरपचीसी लखी छे' के द्वारा होता है और अत 'इति भ्रमरगीता सम्पूर्ण समाप्त' के द्वारा।[५२] इस प्रकार दोनो ही नाम समाव्य हैं। छद सख्या को विषय के साथ सम्बद्ध करके नामकरण करने की प्रथा भी प्राचीन है अतएव सभव है कि प्रेमानद ने 'भ्रमरपचीसी' नाम दे दिया हो। इसके २५ पदों में अनेक पद ऐसे है जो पूर्वोल्लिखित भ्रमरगीताओं में प्राप्त हो जाते है। प्रारभिक अश

समेत आठ पद तथा १५वाँ, १८वाँ और २४वाँ पद नवीन रचना है किन्तु शेष सभी पद नानी भ्रमरगीता में भी हैं।

मास—अंतिम पंक्ति 'भट प्रेमानंद मास गाये' के अनुसार 'मास' नाम ही उचित प्रतीत होता है यद्यपि 'द्वादश मास', 'बार मास' 'मास वार', 'सुरति महीना', 'सुरति-मास' तथा 'मास सुरती' आदि अनेक नाम विभिन्न हस्तप्रतियों में मिलते हैं। इसमें अनेक कवियों के पद प्रक्षिप्त होने का उल्लेख पहले किया जा चुका है। संभवतः यह कवि की प्रारंभिक कृतियों में से है। प्रतिलिपिकार के जैन साधु होने से इसकी व्यापक लोकप्रियता सिद्ध होती है।

इस 'मास' काव्य में कवि ने प्रत्येक मास की प्राकृतिक उद्दीपन सामग्री से वातावरण चित्रित करके राधा के मन पर होने वाली विविध प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया है। सारी रचना बारह अंशों में विभाजित है और प्रत्येक अंश में १६ पंक्तियाँ हैं। हर अंश क्रम का निर्वाह करते हुए भी अपने में स्वतन्त्र है।

सुदामाचरित—आख्यान के रूप में लिखी हुई यह रचना अधिक बड़ी नहीं है। कथानक का आधार भागवत होते हुए भी इसमें अनुवाद नहीं किया गया है। कल्पना द्वारा वर्णनों को विस्तार दिया गया है। प्रेमानंद ने इसकी रचना नंदरबार में की थी। बृ० का० दोहन भाग १ लुं के अतिरिक्त और भी कई व्यक्तियों ने इसे प्रकाशित किया।[५३] इसका रचनाकाल निश्चित नहीं है। किसी प्रति में सं० १७०५, किसी में सं० १७४८ और किसी में सं० १७३२ या सं० १७३८ मिलता है।[५४] गुजरात में प्रति शनिवार की संध्या को इसके पाठ का प्रचलन है।[५५]

दशमस्कंध—रचना के नाम के साथ यहाँ 'मोटु' विशेषण नहीं लगाया गया है क्योंकि उसकी आवश्यकता 'नानु दशमस्कंध' की सापेक्षता के कारण हुई थी जिसके रचयिता प्रेमानंद नहीं सिद्ध होते। प्रेमानंद का यह दशमस्कंध एक अपूर्ण रचना है। शेष भाग को उनके शिष्य सुन्दर ने पूर्ण किया। प्रेमानंद की रचना कहाँ तक है यह विवादग्रस्त है। ५३वें अध्याय के १६१ वें कडवे तक प्रेमानन्द की छाप मिलती है किन्तु १६२ से १६५ तक के कडवों को भी उन्हीं की रचना कहा जाता है। इस ग्रंथ के संशोधक एवं प्रकाशक इच्छाराम सूर्यराम देसाई ने अनेक कारण देकर निष्कर्ष रूप में लिखा है कि 'आ १६५ मा सूधीनी सर्व कृति प्रेमानंद नी निर्विवाद ठरे छे।'[५६] प्रेमानंद अपनी इस रचना में अनन्य राम-भक्त के रूप में सम्मुख आते हैं। 'विवेक वणझारो' तथा 'रणयज्ञ' की तरह इस ग्रंथ का प्रारंभ भी राम की ही वंदना से होता है। 'रामचरण कमल मकरंद, लेवा इच्छे प्रेमानंद'। इस

पक्ति को बीच-बीच में लिखकर उन्होने अपनी इस अनन्यता को और भी स्पष्ट कर दिया है ।

'व्यासवाणी जाणी जथा, तेहवी प्राकृत जोडी कथा' स प्रकट है कि प्रेमानद ने मुख्यतया भागवत के दशम स्कध को आधार मानकर इसकी रचना की है किन्तु इसको अनुवाद किसी तरह भी नही कहा जा सकता । कही-कही अन्य पुराणो की कथाएँ भी दी गयी हैं । कवि ने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा से सर्वत्र नवीनता लाने का प्रयास किया है । प्रेमानद के दशमस्कध के एक सुविज्ञ सपादक की भी यही धारणा है ।[५७] पर एक विद्वान् का ऐसा भी मत है कि प्रेमानद ने सस्कृत भाषा तथा मूलभागवत से अनभिज्ञ होन के कारण रूपान्तर मे फरफार कर दिया है ।[५८] प्रेमानद की कृष्णपरक रचनाओ मे यह सबसे विशाल कृति है । इसका निर्माण उदर पोषण के निमित्त न होकर भक्ति के उद्देश्य से हुआ है । आख्यान शैली के अतिरिक्त इसमें कही-कही पद शैली का भी प्रयोग मिलता है । प्रेमानद ने दशमस्कध की रचना उसको समस्त ज्ञान का सार समझ कर की, यह कवि की निम्नलिखित पक्तियो से प्रकट है

सकल शास्त्र निगमनुं तत्व । सर्व शिरोमणि श्री भागवत ।
ते मध्ये सार छे दशमस्कध । जोडुं हु प्राकृत पदबध ।

उसके पीछे सस्कृत की प्रतिस्पर्धा में प्राकृत भाषा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करने की भावना भी निहित थी । प्रेमानद ने इसे स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार भी किया है ।

'नानु दशमस्कध' प्रेमानद की रचना नही है । अब तक नटवरलाल द्वारा स्थापित मान्यता के अनुसार नानु दशमस्कध प्रेमानद की रचना माना जाता रहा । शास्त्री न भी इसको स्वीकार किया और उसे प्रेमानद की शकारहित कृतियो में स्थान दिया ।[५९] किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत प्रतीत होती है जिसके प्रमाण इस प्रकार है

१　प्रेमानद की छाप कडवा ४२ और कडवा ४३ के बीच आने वाली भ्रमरगीता में ही है अत यह अश स्पष्टतया प्रक्षिप्त है ।

२　सारी रचना कडवाबद्ध है, मात्र प्रेमानद छाप वाला अश पद शैली में है । 'पद पुरणे' लिखकर उस अश की पूर्णता का बोध करा दिया गया है ।

३　इस रचना में अनुवादात्मकता है जो प्रेमानद के स्वभाव के प्रतिकूल है । प्रेमानद का तथाकथित 'मोटु दशमस्कध' इसका साक्षी है ।

४ प्रेमानद ने मोटु दशमस्कध' में सर्वत्र राम को इष्टदेव माना हैं पर इस रचना का रचयिता रामोवसाव नही है ।

५ यह रचना शिव-पार्वती सवाद और उनके विवाह के उपाख्यान से प्रारभ होती हैं जो पद्मपुराण पर आधारित हैं । यह अश भी प्रेमानद का रचा हुआ नही लगता ।

६ हस्तप्रति के आदि अत त्रुटक होने से वास्तविक कवि का नाम एव रचनाकाल अज्ञात है ।

ऐसी स्थिति में इसे प्रेमानद कृत मानना बुद्धिसगत नही है । प्रेमानद की भ्रमरगीता के प्रक्षिप्त होने के कारण भ्रमवश सम्पूर्ण रचना को प्रेमानदकृत मान लिया गया । प्रस्तुत अध्ययन में इसीलिए इसे प्रेमानद की कृतियो मे स्थान नही दिया गया हैं ।

रत्नेश्वर का अधिकाश काव्य-काल १७वी शती के अन्तर्गत ही आता हैं । उनके दशमस्कध के अत में दिया हुआ समय स० १७३९ इसका समर्थक है ।[१०] दो एक को छोड कर कवि की सभी रचनाएँ इसी शती की सीमा में आती है ।[११]

रत्नेश्वर

रचनाएँ. दशम एव एकादश स्कध, बारमास—कृष्णपरक रचनाओ में भागवत के 'दशम और एकादश स्कध' का अनुवाद तथा 'बारमास' की गणना की जा सकती है । रत्नेश्वर ने वैसे पहले और दूसरे स्कध का भी अनुवाद किया हैं किन्तु वे कृष्ण से सम्बद्ध नही है । स० १७३९ में दशमस्कध को समाप्त करने के बाद ही स० १७४० में एकादश स्कध की भी रचना हुई । दशमस्कध तो गोवरधनदास नारायणभाई तथा गट्टूलाल द्वारा दो स्थानो से प्रकाशित हो चुका है किन्तु एकादशस्कध अभी अप्रकाशित ही है ।[१२] रत्नेश्वर ने एक प्रकार से श्रीधर के तिलक का भाषान्तर किया है जिसके कारण काव्य की दृष्टि से उनके दोनो स्कधो का कोई स्वतन्त्र महत्व नही हैं । प्रत्येक अध्याय के प्रारभ में उसका साराश एक सस्कृत श्लोक तथा दो एक गुजराती के छदो में दे दिया गया है । सम्पूर्ण अध्याय की रचना एक ही राग या रागिनी में की गई हैं ।

बारमास मे प्रेमानद के मास के तरह ही राधा के मनोभावो का वर्णन हैं । 'राधा विरहना बारमास' के नाम से यह रचना बृ० का० दोहन भाग ६ठु तथा प्रा० का० सुधा भाग १ लु में मुद्रित हो चुकी हैं । रचनाकाल स० १६९८ दिया गया हैं जो सदेहास्पद है ।[१३]

अप्रकाशित काव्य 'रुक्मिणीहरण' के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध आख्यानकार

विष्णुदास को ही स्वीकार किया जाता रहा। शास्त्री ने इस रचना का गणना उन्ही की रचनाओं के साथ ही है।[१११] किन्तु बाद में सदेह हो जाने के कारण उन्होंने इसे विष्णुदास की शकास्पद रचनाओं की कोटि में स्थान दिया।[११२]

विष्णुदास

इस रचना में निर्माण-काल स० १७१६ दिया हुआ है।[११३] प्रसिद्ध विष्णुदास का काव्य-काल स० १६२४-१६६८ के लगभग आता है। इस कृति को उन्ही की रचना मानने से यह अत्यन्त वृद्धावस्था की रचना सिद्ध होती है जो काव्य की अप्रौढ़ता को देखते हुए सभव प्रतीत नही होता। अधिक सभावना इसी बात की है कि यह किसी इतर विष्णुदास की कृति है।

रचना : रुक्मिणीहरण—रुक्मिणीहरण की हस्तप्रति का आदि अश खडित है। कवि स्पष्टतया भागवत का आधार स्वीकार करता है।[११४] काव्य साधारण कोटि का है। अनुवाद भी सुन्दर नही है।

एक केशवदास का उल्लेख १६वी शती में हो चुका है। उसी नाम का यह अन्य कवि १७वी शती में उपलब्ध होता है। कवि ने अपनी एक रचना का समय स० १७३३ दिया है जिससे काल निर्णय में कोई कठिनाई प्रस्तुत नही होती।[११८]

केशवदास वैष्णव

रचना : मथुरामहिमा—इन केशवदास की कृष्णविषयक केवल एक ही रचना उपलब्ध होती है जो 'मथुरालीला' के नाम से प्रा० का० सुधा के तीसरे चौथे भाग में प्रकाशित हो चुकी है। शास्त्री ने 'वल्लभवेल' के रचयिता केशवदास वैष्णव का वर्णन कविचरित में किया है किन्तु उसमें इसका उल्लेख तक नही है।[११९] वे 'वल्लभवेल' के लिए 'एक मात्र मळता काव्य' का प्रयोग करते है जिससे स्पष्ट है कि वे मथुरालीला को उन्ही केशवदास की कृति नही मानते। पर ऐसा भी नही है क्योकि गु० ह० सकलित यादी में केशवदास की रचनाओ में 'मथुरालीला' का भी समावेश उन्होंने किया है।[१२०] वस्तुत गोकुलनाथ जी के शिष्य यही केशवदास दोनो काव्यो के रचयिता थे। वल्लभवेल में वल्लभाचार्य के वश का वर्णन है अतएव वह कृष्ण काव्य की श्रेणी में नही आती।

'मथुरालीला' का वास्तविक नाम 'मथुरामहिमा' है क्योकि स्वय कवि ने इसी नाम का अनेक स्थल पर व्यवहार किया है।[१२१] सपादक ने मूल को ध्यान से देखे बिना ग्रथ का नाम 'मथुरालीला' दे दिया जिसका कारण कदाचित् ग्रथान्त में प्रयुक्त 'कृष्णलीला' शब्द है।[१२२]

मथुरामहिमा—'पूरणकर्यु' ये आख्यान' लिख कर कवि ने मथुरामहिमा को स्वतः एक आख्यान काव्य माना है। कड़वाबद्ध इस रचना में यत्र यत्र रागों का निर्देश भी है।

भागवत को मूलाधार मानकर भी कवि ने स्वतन्त्र रूप से रचना की है। फलतः अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं जो भागवत में प्राप्त नहीं होते। विषय विस्तार की दृष्टि से कवि का निम्नलिखित कथन महत्वपूर्ण है—

'. . . . मथुरा महिमा श्री भगवान।
दारामति नी लीला जेह, श्री शुक विस्तारी कहे अेह।
प्राकृत महिमा बुध अनुसार। दास केशव कहे कर्यो विस्तार।

मथुरामहिमा में इस प्रकार जरासंध और मुचकुंद वध तक की कथा समाविष्ट है। कवि ने विशेष विस्तार गोपी उद्धव के प्रसंग में किया है। इस स्थान पर षड्ऋतु वर्णन भी मिलता है। कवि की स्वाभाविक वृत्ति ब्रजगोपी-विरह के चित्रण की ओर है। राधा के वर्णन और कृष्ण के जीवन की उत्तरकालीन लीलाओं के चित्रण के कारण यह काव्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

१७वीं शती—ब्रजभाषा

इस शती में भी ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य के सृजन की परिस्थिति लगभग १६वीं शती के समानान्तर ही रही। उक्त वल्लभीय, राधावल्लभीय, गौडीय, निम्बार्क तथा हरिदासी में से प्रत्येक के अन्तर्गत कुछ न कुछ काव्य रचना उपलब्ध होती है। रीति-काव्य-धारा में अपेक्षाकृत अधिक काव्य-निर्माण हुआ। नीचे पूर्वनिर्धारित क्रम के अनुसार ही १७वीं शती के कृष्ण-काव्य का परिचय दिया गया है।

वल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में इस शती में जिन कवि का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है वह है रसखान। रसखान विट्ठलनाथ के शिष्य थे और उनका काव्य-काल सं० १६७० के लगभग है। इनके अतिरिक्त हरिरायजी (सं० १६४७–१७७२) तथा विट्ठलनाथ के अन्य शिष्य शोभाचंद द्वारा भी काव्य-रचना के प्रमाण मिलते हैं।

रसखान की रचनाएँ—रसखान की दो रचनाएँ प्राप्त होती है जो प्रकाशित हैं।

१. प्रेमवाटिका (रचनाकाल स० १६७१)
२. सुजान रसखान

प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं जिनमें प्रेम की महिमा का वर्णन किया गया है। 'सुजान

रसखान में विभिन्न प्रकार के कुल १२९ पद्य हैं। रागरत्नाकर में भी रसखान के १३० पद्य संग्रहीत हैं।[१७१] इन पद्यों में कवि ने मुख्यतया राधा-कृष्ण की प्रीति तथा प्रणयलीलाओं का ही विशेष वर्णन किया है। कुछ छंदों में बालरूप का भी चित्रण मिलता है।

हरिरायजी की रचनाएँ—इन्होंने रसिक, रसिकराय, हरिधन, हरिदास आदि कई नामों से काव्य रचना की।[१७२] संस्कृत में तो इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं परन्तु ब्रजभाषा में कुछ स्फुट पद, कवित्त और धोल आदि ही उपलब्ध होते हैं जिनमें दैन्यभाव तथा वल्लभ-यश वर्णन की प्रधानता है।[१७३] इन स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त एक छोटी सी प्रबन्धात्मक रचना 'दानलीला' भी प्राप्त हुई है। इसकी हस्तप्रति काँकरौली में है। दानलीला में ३६ दोहे हैं और प्रत्येक के अन्त में 'नागरि दान दै' जोड़ दिया गया है।

शोभाचंद की रचना : भक्तिविधान—भक्तिविधान का रचनाकाल सं० १६८१ दिया हुआ है। सारा ग्रंथ प्रश्नोत्तर के रूप में है। कुल ९३१ दोहे हैं। श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व, उनके अनेक नाम रूप, तन्त्र मन्त्र आदि से भक्ति की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। उपासना विधान, पूजा-प्रकार, भोग इत्यादि का भी विस्तार से निरूपण मिलता है साथ ही व्रत उपवास के नियम तथा प्रत्येक मास की साधना का पुष्टिमार्ग के अनुसार प्रतिपादन भी किया गया है। रचना अप्रकाशित है और हस्तप्रति विद्या-विभाग काँकरौली में है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में, १७वीं शती में यद्यपि अनेक कवियों कान्हर, स्वामी, लालस्वामी, दामोदरदास, ध्रुवदास तथा हितविट्ठल आदि की गणना की जाती है तथापि ध्रुवदास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अन्य कवियों में कान्हर स्वामी तथा हितविट्ठल के केवल स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं जिनकी प्रामाणिकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लालस्वामी तथा दामोदरदास के नाम से अनेक ग्रंथों का उल्लेख मिलता है परन्तु उपलब्ध उनमें से एक भी नहीं होते।[१७६] अतएव केवल ध्रुवदास की रचनाओं का परिचय यहाँ दिया गया है।

ध्रुवदास की रचनाएँ—'राधावल्लभ भक्तमाल' में ध्रुवदास के नाम से निम्नलिखित पाँच रचनाएँ उल्लिखित हैं।[१७७]

१ ब्यालीस लीला
२ पदावली
३ खिचरी उत्सव
४ सिद्धान्त पद माझ
५ शृंगाररहस्यमुक्तावली

ब्यालीस लीला वस्तुत ब्यालीस रचनाओ का सकलन है किन्तु उसे एक ग्रथ माना गया है।[१७८] डॉ० रामकुमार वर्मा ने ब्यालीस लीला का 'ध्रुवदास की वानी' के नाम से उल्लेख किया है तथा उसके अन्तर्गत आने वाली अनेक रचनाओ को अनेक 'विषय' समझा है। यही नही 'सिद्धान्तविचार' तथा 'भक्तनामावली' का जा ब्यालीस लीला मे ही सम्मिलित है पृथक् रूप से उल्लेख किया है।[१७९]

राधावल्लभ-भक्तमाल मे जिन पाँच रचनाओ का उल्लेख मिलता है उनमे से पहली को छोडकर शेष चार के विषय में नाम के अतिरिक्त और कुछ भी सूचना प्राप्त नही है। पहली रचना ब्यालीस लीला की स० १८२५ की एक हस्तप्रति प्रयाग म्युनिसिपल सग्रहालय में मिलती है।[१८०] काँकरौली में भी एक प्रति है (ब० न० ८३ ९) किन्तु उसमें केवल २४ लीलाएँ ही है। ध्रुवसर्वस्व नाम से 'ब्यालीस लीला' में स निम्नलिखित २३ रचनाएँ रामकृष्ण वर्मा द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है

१ वृन्दावन सत	१३ नृत्यविलास
२ सिंगार सत	१४ रगहुलास
३ रसरत्नावली	१५ मानरसलीला
४ नेहमजरी	१६ रहसिलता
५ रहस्यमजरी	१७ प्रमलता
६ सुखमजरी	१८ प्रमावली
७ रतिमजरी	१९ भजन कुडली
८ वनविहार	२० वृहद्वामनपुराण की भाषा
९ रगविहार	२१ भक्तनामावली
१० रसविहार	२२ मनसिगार
११ आनन्ददशाविनोद	२३ भजनसत
१२ रगविनोद	

इन २३ रचनाओ के अतिरिक्त 'ब्यालीस लीला' की शेष १९ अप्रकाशित रचनाओ के नाम नीचे दिये जाते है

१ हितसिंगार	६ अनुरागलता
२ रसानद	७ आनन्दलता
३ व्रजलीला	८ भजनाष्टक
४ दानविनोद	९ आनन्दाष्टक
५ रसहीरावली	१० वैदकलीला

११ सिद्धान्तविचार
१२ जुगलध्यान
१३ स्यालहुलास
१४ प्रिया जु की नामावली
१५ सुखमजरी
१६. मनसिक्षा
१७ प्रीतिचौवैंनी
१८ रसमुक्तावली
१९ मडलसभासिंगार

नामकरण की दृष्टि से वर्गीकृत करने पर इन रचनाओं में ६ अवली रसमुक्ता, रसहीरा, रसरत्न, प्रेम, प्रियाजु की नाम, भक्तनाम, ५ लीला रसानद मान, दान, व्रज, वैद्यकज्ञान, ४ मजरी नह, रति, रहस्य, सुख, ४ लता रहस्य, आनन्द, प्रेम, अनुराग ३ विहार वन, रग, रस, ३ सिंगार मनि, हित, मडलसभा, ३ सत वृदावन, भजन, सिंगार, २ विनोद रग, अनददमा, २ हुलास रग, रयाल तथा २ अष्टक भजन, आनन्द मिलते हैं। शेष ८ रचनाएँ निर्तविलास, प्रीति चौंवनी, मनसिक्षा, वृहद्वामन पुराणभाषा, सिद्धान्त विचार, जीवदशा, जुगलध्यान तथा भजन कुडली एकाकी हैं।

प्रकाशित एव अप्रकाशित रचनाओं की इस समस्त सूची में कई ऐसी रचनाएँ सम्मिलित हैं जो प्रस्तुत निबन्ध की सीमा में नहीं आती। 'प्रियाजु की नामावली' काव्य कृति न होकर साधारण नामावली मात्र हैं। 'सिद्धान्त विचार' भी गद्य ग्रंथ है। इसी प्रकार भक्तनामावली में भी भक्तमाल की तरह भक्तों का परिचय दिया गया है। 'वैदकलीला' कृष्ण काव्य से सीधे सम्बन्ध नहीं है। 'वृहद्वामनपुराण की भाषा' का शीर्षक से ही अनुवाद ग्रंथ होना सिद्ध है। अतएव इनके अतिरिक्त शेष कृतियो का परिचय सक्षेप में आगे दिया जाता है।

रसमुक्तावली—आदि में गुरुवदना से युक्त १९० दोहा चौपाइयो की इस रचना का मुख्य विषय 'सखीभाव' का प्रदर्शन है। स्नानकुज, सिंगारकुज, भोजनकुज आदि विविध कुज-भवनों में ललितादिक सखियाँ राधाकृष्ण की सेवा में रह रहकर उनका विहार देखती है।

रसहीरावली—इस रचना की विशेषता इसका षड्ऋतु वर्णन है। प्रत्येक ऋतु में राधाकृष्ण का विलास अकित किया गया है। रचना १६३ दोहा चौपाइयो में समाप्त हुई है।

रसरत्नावली—५० दोहो की इस कृति की मूल वर्ण्यवस्तु कवि के अनुसार 'रसिकरसिकनी केलि' ही है। प्रसगान्तर से नखशिख आदि का भी वर्णन मिल जाता है।

प्रेमावली—इसके अन्तर्गत राधाकृष्ण का "प्रेमरस" विपरीत वेश धारण तथा सभोग शृगार का वर्णन है। एक कुडलिया को छोडकर शेप सारी रचना दोहो में है। कुल छद सख्या १२७ है।

रसानद लीला—कवि ने इस ग्रथ का रचनाकाल 'सवत सौपोडस पचामी' स० १६८५ दिया है। प्रारभ में की गई श्री हितहरिवश की वदना तथा 'मोपै है अवही मति थोरी' से व्यजित होता है कि कदाचित् यह कवि की प्रारभिक काल की रचना है। वस्तु के रूप में वृदावन, नखशिख, रतिविलास, विविध व्यजन तथा पुष्प-शृगार का वर्णन है। सारी रचना में १८६ दोहा चौपाइयाँ है।

मानलीला—काँकरोली की प्रति में इसकी पुष्पिका में इसका नाम 'मान विनोदलीला' दिया है किन्तु प्रयागवाली प्रति में 'मानलीला' ही लिखा है। ध्रुवसर्वस्व मे इसका प्रकाशन 'मानरसलीला' के नाम से हुआ है। इसमें अपने ही प्रतिबिम्ब में अन्य स्त्री की धारणा हो जाने से राधा मान करती है। वाद में सखी की मध्यस्थता द्वारा उसका परिहार हो जाता है। छद सख्या ३८ है जिसमे दोहा सोरठा अरिल्ल तीनो प्रयुक्त है।

दानविनोदलीला—इस नाम का सकेत स्वय कवि ने पहले ही दोहे मे 'देखे लाडिली लाल की लीला दान विनोद' लिखकर कर दिया है। विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है यद्यपि सारी घटना एक नवीन रूप से कल्पित की गई है। रचना छोटी है और केवल २२ दोहो में ही समाप्त है।

व्रजलीला—इसमे राधाकृष्ण के प्रथम परिचय, तज्जन्य प्रीति तथा उनके विनास की विविध स्थितियाँ, विछोह, मूर्छा तथा ललिता की सहायता से स्त्रीवेप धारण करके मिलन, प्राप्ति आदि का वर्णन है। समस्त रचना दोहा चौपाइयो में है जिनकी सख्या १९२ है।

नेहमजरी—१७० दोहा चौपाइयो में लिखित प्रारभिक अपौढवृत्ति जैसी इस रचना में वृदावन, कुसुमशृगार, राधाकृष्ण, रति तथा उसके दर्शन से गोपियो के उल्लास का वर्णन है।

रतिमजरी—इस रचना में अमर्यादित रूप से सभोग शृगार का वर्णन प्राप्त होता है। शैली की दृष्टि से नेहमजरी के ही समान है और छद सख्या ८२ है।

रहस्यमजरी—यह विषय और शैली दोनो ही दृष्टियो से नेहमजरी के समान है और छद सख्या १०४ है।

सुखमंजरी—'अद्भुत वैदक मधुररस दोहा भये पचीस' से प्रकट [illegible] की इस रचना का विषय वैद्यक लीला है। कामज्वर से पीडित कृष्ण को राधा व्याधिमुक्त करती है।

रहसिलता—ध्रुवसर्वस्व में इसको 'रहसिलीला' सज्ञा दी गई है। इसमें मुख्यतया रासक्रीडा का वर्णन है। यद्यपि कवि ने रचना की सीमा 'दोहा रहसिलतानि के अष्ट उपर पचास' लिखकर निर्धारित की है तथापि यह कथन यथार्थ नही है। रचना में दोहे के अतिरिक्त चन्द्रायण छद भी प्रयुक्त है तथा अन्त मे कवि की 'भजन कुडली' नामक रचना की १९वी कुडली भी सम्मिलित करली गई है।

आनन्दलता—इसमें राधाकृष्ण की केलि, क्रीडा, यमुना, कुज, आदि भाव तथा स्थल सभी में आनन्द का अस्तित्व प्रदर्शित किया गया है। 'दोहा तीसरु बीस कहे आनंदलता अनम' से स्पष्ट है कि इस रचना में ५० दोहे है। कांकरोली की प्रति में यह उपलब्ध नही है।

प्रेमलता—इस रचना में ६८ दोहा चौपाइयो में प्रेम की प्रशसा की गई है तथा उसके सूक्ष्म स्थूल भेद का भी वर्णन है। बीच बीच मे कुजविहार, सखी-सग और लाल-लाडिली की प्रीति का दिग्दर्शन भी है।

अनुरागलता—इस रचना में भी प्रेमलता की तरह राधाकृष्ण के अनुराग का वर्णन है। शैली की दृष्टि से भी कोई नवीनता नही है।

वनविहार—इसमें ५५ दोहे में वन का, वसत का तथा दूलह-दुलहिनी राधा-कृष्ण के विवाह एव विलास का वर्णन है।

रंगविहार—सखी द्वारा आरसी में राधा का रूप दिखाये जाने पर कृष्ण का विकल हो जाना तदुपरान्त मिलन, सभोग और नखशिख आदि इसमें ५६ दोहो में वर्णित है।

रसविहार—२२ दोहो की इस सक्षिप्त रचना का विषय राधाकृष्ण का सखियो समेत यमुनाजल-विहार है।

मनसिंगार—इस रचना की सीमा 'दोहा कहि सिंगार मनि साठ सु चौतिस आठ' यह कर कवि द्वारा निर्धारित की गई है जिसके अनुसार इसमें १०२ दोहे होना चाहिये परन्तु वस्तुत ९२ दोहे ही उपलब्ध है। इस दृष्टि से चौतिस के स्थान पर 'चौबिस' पाठ की सभावना अधिक प्रतीत होती है। यही नही दोहे के अति-

रिक्त अरिल्ल छद भी इसमे प्रयुक्त है जिसकी कवि ने दोहो में ही गणना कर ली है। वर्ण्य वस्तु मे राधाकृष्ण को नायक नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा उनके शृगार एव नखशिख का प्रचुर वर्णन है।

हितसिगार—निकुज विलास, शतरज खल, नखशिख तथा कोककला का वर्णन कवि ने इस रचना के 'अस्सी दोइ दोहा कवित' में प्रस्तुत किया है।

मडलसभासिगार—ध्रुवदास की यह रचना अन्य रचनाओ की अपेक्षा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसमें कवि ने अपनी कल्पना के आधार पर राधा की अगणित सखियो के नाम गिनाने का प्रयास किया है। मडलाकार कुजो की पक्ति में बने चौसठ द्वारो वाले सभा मडप के मध्य स्थित युगल रूप का विशद वर्णन किया गया है। प्रत्येक कुज का भिन्न नाम है और उसका भिन्न प्रयोजन। इन सबमें विहार करने के उपरान्त समस्त सखी समूह के साथ राधाकृष्ण का रास होना है तदुपरान्त जलक्रीडा। इसका रचना काल स० १६८१ दिया हुआ है और इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि कुल २२१ छद है।

वृंदावन सत—रचना का विषय शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह रचना स० १६८६ में पूर्ण हुई।[61] 'यह प्रवन्ध पूरन भयो' लिख कर कवि इसे प्रबन्ध कहना चाहता है परन्तु १२२ दोहो की इस रचना में वस्तुत प्रबन्धात्मकता का अभाव है। केवल वृदावन के लता कुजो तथा उसकी महिमा का वर्णन किया गया है।

भजनसत—भजनसत में ध्रुवदास ने भक्ति के स्वरूप की व्याख्या, विषयो की निंदा, ज्ञान के पथ का तिरस्कार तथा युगलरूप के प्रेम की चर्चा की है। वस्तु की दृष्टि से अन्य रचनाओ से पृथक् होने के कारण इसका स्वतत्र महत्त्व है। दोहो की सख्या ११३ है।

सिगारसत—भजनसत की तरह यह भी महत्त्वपूर्ण रचना है यद्यपि इसका महत्त्व दूसरी दिशा में है। रचना के स्वरूप को स्पष्टतया व्यक्त करने के लिये कवि के शब्द ही उद्धृत कर देना उपयुक्त होगा

बाधी ध्रुव गुन शृखला प्रथम चालीस र तीन।
दुतिय चालीसद तीसरी द्वे पर चालीस कीन ॥ ३ ॥
प्रथम शृखला माहि कछु कह्यो लाडिली रूप।
निरखिलाल सखि रहे छवि सो छवि अतिहि अनूप ॥ ४ ॥
दुतिय शृखला सुनतही श्रवननि अति सुख होइ।
प्रेम रतन गुन रुप सों मानों राखे गोइ ॥ ५ ॥

अब सुनि तीजी शृखला रति विलास आनद।
तिहि रसमादक मत रहैं श्री वृंदावन चद ॥ ९७ ॥
भये कवित सिगार के इकसत अरु पच्चीस।
दोहनि मिलि सब ठीक ही इकसत दस चालीस ॥ १५० ॥

इस प्रकार इसका निर्माण विशेष रूप से कविन सवैया में हुआ है। विषय की दृष्टि से विशेष नवीनता नही है।

रगविनोद—'दोहा रगविनोद के रचि कीन्हें चालीस' के अन्तर्गत ध्रुवदास ने अपनी धारणा के अनुसार, नवरस, ज्योनार तथा राधा-कृष्ण विहार का वर्णन किया है।

आनन्ददसाविनोद—इस रचना में नायिका-भेद के साथ स्थूल तथा सूक्ष्म दोनो प्रकार के 'मदनरस' का चित्रण है। छद सख्या ५७ है जिसमें दोनो के अतिरिक्त ३ कवित्त भी सम्मिलित है।

रगहुलास—५२ दोहो की इस कृति का विषय वही नखशिख, वनविहार तथा रति वर्णन है। आदि अन्तहीन इस रचना का नाम पुष्पिका से ही ज्ञात होता है।

ख्यालहुलास—यह प्रयागवाली 'ब्यालीसलीला' की हस्तप्रति की अन्तिम 'लीला' है और कांकरोली वाली प्रति में अप्राप्य है। इस की रचना किसी निश्चित क्रम के अनुसार नही हुई है इसे कवि 'दोहा ख्याल हुलास के तहाँ प्रबन्ध कछु नाहिं। आगे पाछे है भये जो आए उर माहि।' लिखकर स्वीकार करता है। विषय की दृष्टि से इसमें युगलप्रीति उपदेश, चेतावनी आदि की प्रधानता है। समस्त दोहो की सख्या ६० है।

भजनाष्टक—नाम से ही आकार प्रकार स्पष्ट है। फलश्रुति के नवें दोहे मे इस अष्टक को 'हृद्रोग' का नाशक कहा गया है क्योकि वर्ण्यवस्तु के अनुसार पचबाण के बाण फिर कर उसी को लगे है जिससे वह जर्जर होकर नतशीश हो चुका है।

आनन्दाष्टक—यह भी भजनाष्टक की तरह ध्रुवदास की लघुतम रचना है। जिसमें वृंदावनरस तथा राधाकृष्ण की प्रीति की बखान है। इसमें भी फलश्रुति के दोहे समेत ९ दोहे है। इसके पाठ का फल त्रिगुण अधकार का नाश कहा गया है।

नित्तविलास—नृत्य का वातावरण उपस्थित करके कवि ने इस रचना के अन्तर्गत विभिन्न गतियों में होने वाले राधा रास का चित्रण किया है। दोहा चौपाई के साथ कुंडलिया का भी प्रयोग है। सारी रचना ४६ छंदों में समाप्त है।

प्रीतिचौवनी—इस कृति के निर्माण का उद्देश्य 'वृंदावन रसरीति' समझाने के निमित्त पाठक के हृदय में 'प्रीति' प्रस्फुटित करना है जिसके लिए प्रेम का सोदाहरण सैद्धान्तिक निरूपण ५४ दोहों में किया गया है। अन्त के दो अतिरिक्त दोहों में फलश्रुति का कथन है।

मनसिक्षा—ध्रुवदास ने इस रचना के ६४ दोहों में मन को नाना रूप से विषय वासना की निंदा करते हुए वृंदावनरस में रमण तथा राधा-वल्लभलाल के भजन करने का उपदेश दिया है।

जिवदिसा—'दिशा' से कदाचित् यहाँ 'दशा' का तात्पर्य है। ३९ दोहा चौपाई कवित्त में कवि ने कृष्ण-भक्ति तथा नामस्मरण की महिमा का गान किया है और योग, ज्ञान तथा मोक्ष को अनावश्यक ठहराया है। यह रचना प्रयागवाली प्रति में ही है।

जुगलध्यान—जुगलध्यान की कांकरौली की प्रति में अनुपलब्ध है। जीवदिसा की तरह यह भी प्रयाग की हस्तप्रति में ही प्राप्त होती है। इसमें राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति का रूप-वर्णन है। मेंहदी, आभूषण, नखशिख तथा शृंगार आदि विषयों पर 'अष्टदस दोहा' 'वरने' गए हैं।

भजन कुंडली—इस रचना में १२ दोहे तथा १० कुंडलियाँ संकलित हैं। सारी कृति में प्रेमभक्ति का महत्व, वृंदावन की प्रशसा और युगलरूप का यश वर्णित है। प्रेमभक्ति के आगे नवधाभक्ति को भी अरुचिकर माना गया है।

इस शती में इस सम्प्रदाय के दो प्रमुख कवि उपलब्ध होते हैं।

१. वल्लभ रसिक

गौड़ीय सम्प्रदाय २. माधवदास

वल्लभरसिक षड्गोस्वामियों में से गोस्वामी रघुनाथ भट्ट के शिष्य गदाधर भट्ट के पुत्र थे।[८२] गदाधर भट्ट का समय नाभाजी के प्रमाण से १६वी शती निश्चित होने के कारण स्वभावत. इनका कविताकाल १७वी शती के अन्तर्गत आ जाता है।

माधवदास इस सम्प्रदाय में 'माधुरी जी' के नाम से विख्यात हैं। उनके वास्तविक नाम का ज्ञान विद्या विभाग कांकरौली में उपलब्ध उनकी 'माधुरियों' की एक हस्तप्रति (बंध स० ७४) से होता है। इनकी पुष्पिकाओं में 'श्री माधवदास विरचिता' अभिन्न रूप से प्राप्त होता है। वंशीवट माधुरी में 'माधवदास कपुर श्री वृंदावन वासी रचित' दिया है जिससे ज्ञात होता है कि यह जाति के कपूर खत्री थे।

आगे इन दोनों कवियों की रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

वल्लभरसिक की वाणी—वल्लभरसिक का संग्रहीत-काव्य बाबा कृष्णदास द्वारा 'वाणी वल्लभरसिक जी की' के नाम से प्रकाशित किया जा चुका है। इसकी भूमिका में इसे 'पद संग्रह' कहा गया है।[८] परन्तु वस्तुतः यह एक काव्य संग्रह है क्योंकि पदों के अतिरिक्त इसमें कई प्रबन्धात्मक ऐसे अंश भी उपलब्ध होते हैं जो पदों से भिन्न शैली में लिखित हैं। इन्हें पदों के अन्तर्गत परिगणित कर लेना उचित नहीं। ऐसी छोटी-छोटी रचनाओं का शीर्षक सहित संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है

साझी रागगौरी—२१८ पंक्तियों की इस सम्पूर्ण रचना में ललिता विशाखादि सखियों से सेवित राधाकृष्ण के महल निवास, भोग विलास, नखशिख, कुसुम-शृंगार, नृत्य गान तथा रति रमण का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

होरी खेल—इस रचना के ५९ दोहों में कवि ने साजबाज से होली का वर्णन किया है। राधाकृष्ण आपस में तथा उनकी 'जोरी' के साथ सखियाँ फाग खेलती हैं।

उक्त दोनों रचनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित कई रचनाएँ माझ शीर्षक से दी गई हैं जिनका विषय नाम से विदित हो जाता है।

१. रास की माझ
२ दिवारी का माझ
३ गुलाबकुंज की माझ
४ जलक्रीडा की माझ
५ वर्षा की माझ
६ वर्षा के बगला पर की माझ
७ सदा की माझ

सातवीं रचना इन सब में बड़ी है और उसकी भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा है।

इनके बाद ६७ दोहे एक स्थल पर संकलित हैं जिनके विषय विभिन्न हैं। इन्हीं के साथ २२ कवित्त सवैये भी हैं जिनमें युगल मूर्ति की विविध शृंगार चेष्टाओं का वर्णन है।

'सुरतोल्लास' नाम से २७ दोहा चौपाइयों की कुंज-रति विषयक रचना स्वतन्त्र कृति जैसी लगती है इसमें आदि अंत तथा नाम का संकेत नहीं मिलता।

'बारह बाट अठारह पैंडे' में अवश्य कवि ने नाम का उल्लेख स्पष्टतया कर दिया है। यथा—

> जब अंखियन अंखियां लखियां तौ बारह बाट अठारह पैंडे
> पैरी करी एक सं आठ। वल्लभरसिकन को जब पाठे ॥१०८॥

शीर्षक से रचना का विषय स्पष्ट नहीं होता। इस रचना में नेत्रों की विशेष महत्ता वर्णित है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त ५० पद प्राप्त होते हैं जिनमें लगभग इन्हीं रचनाओं के विषयों का पुनरावर्तन है।

माधवदास की रचनाएँ—इनके द्वारा विरचित 'ग्रंथ समूह' में निम्नलिखित आठ रचनाएँ मिलती हैं।[१०८]

१.	उत्कंठामाधुरी	५.	दानमाधुरी
२.	वंशीवटमाधुरी	६.	मानमाधुरी
३.	केलिमाधुरी	७.	होरीमाधुरी
४.	वृंदावनविहारमाधुरी	८.	प्रिया जू की बधाई

ये सभी 'श्री माधुरी वाणी' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। कांकरौली में जो प्रति है उसमें तीसरी, सातवीं और आठवीं रचना उपलब्ध नहीं है। 'होरी माधुरी' नाम कल्पित प्रतीत होता है क्योंकि होली विषयक इन छे पदों के अन्त साक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता। संभवतया संपादक ने अन्य रचनाओं के सादृश्य के आधार पर इसकी कल्पना कर ली हो। 'प्रिया जू की बधाई' में राधा के जन्म से सम्बन्धित केवल दो पद ही प्राप्त होते हैं अतएव इसे भी स्वतन्त्र रचना मानना भ्रामक है। पहली छे रचनाओं का परिचय क्रम से संक्षेप में आगे दिया जाता है इन सभी रचनाओं के आदि में कृष्ण रूप चैतन्य महाप्रभु की वन्दना की गई है।

उत्कंठामाधुरी—आरम्भिक अंश में 'मिलन उत्कंठा' तथा विरह वेदना पर विशेष बल देते हुए इसमें राधाकृष्ण की कुंजकेलि, होरी खेलि, तथा उनके रूप शृंगार का वर्णन किया गया है।

वंशीवटमाधुरी—इस 'माधुरी' के अन्तर्गत वृंदावन की निकुंज शोभा विविध वर्ण की वनस्पतियाँ, जलक्रीडा, भोजन, सेजसुख, नौराविहार तथा रास

आदि का विशद आलेखन है। रचना-काल काँकरौली की प्रति के अनुसार स० १६९९ है।

केलिमाधुरी—कवि ने इसका रचनाकाल स० १६८७ अन्तिम दोहे

'वत सोलह सै असी सात अधिक हियधार।
केलिमाधुरी छवि लिखो श्रावण वदि बुधवार ॥१२९॥

में लिख दिया है। रचना का विषय राधाकृष्ण का केलि विलास है।

वृंदावनमाधुरी—इस रचना में वृंदावन के विशाल कुंज, उनकी प्राकृतिक शोभा तथा उनमें राधाकृष्ण की कामक्रीडा का चित्रण है। काँकरौली की प्रति में इसका निर्माण-काल स० १६९९ दिया हुआ है।

दानमाधुरी—इसमें कृष्ण राधा ललितादि सखियो से दान माँगते है। वाद-विवाद की चरम परिणति 'दम्पति सुख' में होती है।

मानमाधुरी—इस रचना का विषय कृष्ण के शरीर में आत्मप्रतिबिम्ब देखकर राधा का मान करना तदुपरान्त ललिता की सहायता से उसका परिहार होना है। इन सारी रचनाओ की छद सख्या का परिचय श्री माधुरी वाणी की भूमिका में दिया हुआ है जो यहाँ उद्धृत किया जाता है।[१०]

'उत्कठा माधुरी में ३ कवित्त २०३ दोहा। वशीवटमाधुरी में ३६ कवित्त ५ सवैया १४ रोला ३२ चौपाई १ सोरठा २२० दोहा। वृंदावन माधुरी में १२ कवित २ सवैया ३१ चौपाई ३ सोरठा ४५ दोहा। केलिमाधुरी में ६ कवित्त ९२ चौपाई १ छद १ सवैया ११ सोरठा १ छप्पै १५ दोहा ६ रोला। दानमाधुरी में १७ कवित्त ३ सोरठा १६ दोहा। मानमाधुरी में १६ कवित्त १५ सवैया ६ सोरठा ९ दोहा।

निम्बार्क सम्प्रदाय

निश्चित रूप से इस शती में निम्बार्क सम्प्रदाय के दो कवि 'रूपरसिक देवजी' तथा 'तत्ववेत्ता जी' ही प्राप्त होते है। 'ये दोनो ही १६वी शती के प्रसग में उल्लिखित हरिव्यासदेव के शिष्य थे।'[१०] इस दृष्टि से इनका अस्तित्व १७वी शती में असदिग्ध है। इनके अतिरिक्त वृंदावनदेव जी तथा गोविन्ददेव जी के नाम भी विचारणीय है। एक ओर वृंदावनदेव का अस्तित्व स० १७५६ में माना गया है और उन्हें हरिव्यासदेव के शिष्य परशुरामदेव का प्रशिष्य कहा गया है।[१०] दूसरी ओर उनके शिष्य गोविंददेव के लिये लिखा गया है कि 'इनका कविता

काल संवत् १६७० के लगभग समझना चाहिये।[188] यह स्थिति स्पष्टतया अनुभव है। वास्तविक बात यह है कि इन दोनो में से किसी का भी समय निश्चित नही है अतएव ऐसी अनिश्चित दशा मे इनको १७वी शती के अन्तर्गत न स्वीकार करना ही समीचीन प्रतीत होता है। नीचे पहले दोनो कवियो की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

रूपरसिक देव जी की रचनाएँ—इनकी तीन रचनाओं का परिचय मिलता है।[189]

१. वृहदोत्सव मणिमाल
२. हरिव्यासयशामृत
३. नित्यविहार पदावली

इनमें से पहली और तीसरी अभी अप्रकाशित है। निम्बार्कमाधुरी में केवल आरंभ की दो रचनाओं से उद्धरण दिये गये हैं। उसमें नित्यविहार पदावली का कोई उद्धरण नही मिलता।

वृहदोत्सव मणिमाल—इसमें कृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारो का भी समावेश है किन्तु राधाकृष्ण के जन्म, मगल वधाई, से लेकर नित्य वसत, होरी, झूला प्रभृति समस्त उत्सव व्यवस्थित एव विस्तृत रूप से वर्णित है। इस विशाल रचना की पद संख्या १९९४ है।[190]

हरिव्यासयशामृत—इसका प्रधान विषय स्वगुरु महिमा है परन्तु कृष्ण-भक्ति के स्वरूप पर भी पर्याप्त पद, दोहे तथा चौपाइयाँ मिलती है।

नित्यविहार पदावली—यह केवल १२० पदो की संग्रहीत एक छोटी वाणी है। इसमें केवल शुद्ध नित्यविहार रस के पद वर्णित हैं। गोकुल लीला का सर्वथा अभाव है।[191]

तत्ववेता जी की वाणी—इनकी कोई प्रबन्धात्मक रचना तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु हस्तलिखित रूप में छप्पय, छदो का एक संग्रह अजमेर में महन्त श्री हरि-शरण जी के पास अवश्य प्राप्त हुआ है।[192] इसमें से ५२ छप्पय निम्बार्क माधुरी में उद्धृत है। ये सभी एक प्रकार की शैली में रचित हैं। 'कृष्ण वसुदेव कुमारा' को विराट रूप में प्रस्तुत किया गया है यही इनकी मुख्य विशेषता है।

हरिदासी सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा को देखने से स्पष्ट रूप से ज्ञान हो जाता है कि १७वी शती में इस सम्प्रदाय के तीन कवि सरसदेव जी, नरहरिदेव जी तथा

रसिक देव की रचनाएँ—इनके द्वारा विचरित ११ ग्रथो का उल्लेख मिलता है ।[१९८]

१ भक्त सिद्धान्तमणि
२ पूजाविलास
३ सिद्धान्त के पद
४ रस के पद
५ रससिद्धान्त के साखी
६ कुजकौतुक
७ रससार
८ गुरुमगल यश
९ वाललीला
१० ध्यानलीला
११ वाराहमहिता

इन रचनाओ के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नही हैं। निम्वार्कमाधुरी में रसिक देव के १० पद, ४ साखी तथा 'युगलध्यान' के ८३ दोहे उद्धृत है। 'वाराहसहिता' नामक रचना प्रस्तुत विपय की सीमा से वाहर प्रतीत होती है।

स्वतन्त्र वर्ग के कवि

ऐसे कवियो में इस शती में सेनापति, विहारी, मतिराम तथा देव के नाम प्रमुख हैं। इनम से बिहारी और देव को निश्चित रूप से सम्प्रदाय मुक्त कवि नही कहा जा सकता। निम्बार्कमाधुरी मे दोनो को निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना गया है।[१९९] सेनापति (जन्म स० १६४६) को टट्टी सम्प्रदाय का वैष्णव कहा गया है।[२००] यो सेनापति रामोपासक प्रतीत होते है जिसके प्रमाण उनकी रचना मे ही उपलब्ध हो जाते हैं। ब्रजमाधुरीसार के अनुसार बिहारी और देव दोनो ही राधावल्लभीय अथवा 'हितकुल' के कवि ठहरते हैं।[२०१] डॉ० नगेन्द्र देव के गुरु को विश्वसनीय रूप से राधावल्लभीय न मानकर उसकी सभावना मात्र स्वीकार करते है।[२०२] ऐसी अनिश्चित स्थिति में इन कवियो की रचनाओ में साम्प्रदायिक तत्व के अभाव तथा रीति-परम्परा की प्रधानता के कारण इनको स्वतन्त्र वर्ग में रखना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

सेनापति की रचना : कवित्तरत्नाकर—सेनापति की दो रचनाएँ 'कवित्तरत्नाकर' तथा 'काव्यकल्पद्रुम' कही जाती हैं जिनमें से दूसरी अप्राप्य है।[२०३] कवित्तरत्नाकर की चतुर्थ तरग प्रस्तुत विषय की सीमा के अन्तर्गत नही आती। यह कृति प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है।

बिहारी की रचना : सतसई—सतसई के प्रधान आराध्य राधाकृष्ण है इसमें सदेह नही परन्तु उसमें अनेक दोहे ऐसे भी है जिनका कृष्ण से कोई सम्बन्ध नही है। विहारी सतसई काव्य-कला की दृष्टि से ब्रजभाषा की अमूल्य निधि है।

मतिराम की रचनाएँ : रसराज, ललितललाम, सतसई—मतिराम के ग्रथो में 'रसराज' और 'ललितललाम' प्रमुख हैं। रसराज में शृंगार रस को 'रसराज' मानकर

रसिकदेव जी आते हैं।[१५१] इनके अतिरिक्त विहारिनिदेव के शिष्य नागरीदासजी भी गणनीय हैं। इन चारो कवियों की वाणी टट्टी सम्प्रदाय

हरिदासी सम्प्रदाय

के अष्टाचार्यों की वाणी में गिनी जाती हैं। काल-क्रम की दृष्टि से इनका स्थान सरसदेवजी (स० १६११—८३) से भी पहले आता है क्योंकि इनका समय स० १६०० से १६७० माना जाता है।[१५२] एक प्रकार से इनका काव्यकाल १६वी तथा १७वीं शती ईसवी का सधिकाल है। नरहरिदेव के शिष्य रसिकदेव भी इसी शती के अन्तर्गत आ जाते हैं। उनका निकुज प्राप्तिकाल स० १७५८ दिया हुआ है।[१५३] इसी क्रम से नीचे इन कवियों की रचनाओ का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

नागरीदास की वाणी—'इनकी सौ पदो की वाणी प्राप्त है'।[१५४] यह अप्रकाशित है। इसमें से ५० पद तथा सवैये निम्बार्कमाधुरी में उद्धृत हैं। ये पद मुख्यतया राधाकृष्ण के वनविहार, जलविहार तथा हिंडोला आदि विषयो से सम्बद्ध हैं। 'नवल चौबोला', 'सरस चौबोला' जैसे पदो में एक विशेषण का निर्वाह आदि से अत तक किया गया है और सारी वस्तु उसी के अनुसार निरूपित है।

सरसदेव की वाणी—इनकी वाणी के ५१ कवित्त तथा पद निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित रूप में प्राप्त होते हैं। कवित्तो का विषय उपदेश तथा पदो का युगल रूप राधाकृष्ण की विविध शृगार क्रीडाएँ हैं। कुजविलास, जलविहार तथा झूला आदि विषयो के भी पद हैं।

नरहरिदेव की वाणी—इनके फुटकर पद ही प्राप्त होते हैं जिनमें से ७ पद निम्बार्कमाधुरी में प्रकाशित हैं। इनका विषय राधाकृष्ण का शृगार तथा सुरतविहार आदि हैं।

पीताम्बरदेव की रचनाएँ—इनके द्वारा निर्मित रचनाओ का नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है।[१५५]

१	रस के पद	४	सिद्धान्त की साखी
२	सिंगार के पद	५	सिंगार की साखी
३	केलिमाल की टीका		

इनमें स्पष्टतया पदो और दोहो की प्रधानता है। विषय की दृष्टि से पदो में गुरुवदना, राधाकृष्ण-प्रीति-वर्णन तथा शृगार एव विहार का चित्रण है। गौडीय कवि वल्लभरसिक की शैली में लिखित एक ६४ पक्तियो की 'माझ' भी मिलती है जिसमें पजाबी का पुट है इसका विषय भी शृगार, नखशिख तथा विहार वर्णन है।

रसिक देव की रचनाएँ—इनके द्वारा विचरित ११ ग्रंथो का उल्लेख मिलता है।[१९८]

१	भक्त सिद्धान्तमणि	७	रससार
२	पूजाविलास	८	गुरुमगल यश
३	सिद्धान्त के पद	९	बाललीला
४.	रस के पद	१०	ध्यानलीला
५	रससिद्धान्त के साखी	११	वाराहसहिता
६	कुजकौतुक		

इन रचनाओ के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नही है। निम्वार्कमाधुरी में रसिक देव के १० पद, ४ साखी तथा 'युगलध्यान' के ८३ दोहे उद्धृत हैं। 'वाराहसहिता' नामक रचना प्रस्तुत विषय की सीमा से बाहर प्रतीत होती है।

स्वतन्त्र वर्ग के कवि

ऐसे कवियो मे इस शती में सेनापति, बिहारी, मतिराम तथा देव के नाम प्रमुख हैं। इनमें से बिहारी और देव को निश्चित रूप से सम्प्रदाय मुक्त कवि नही कहा जा सकता। निम्वार्कमाधुरी में दोनो को निम्वार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना गया है।[१९९] सेनापति (जन्म स० १६४६) को टट्टी सम्प्रदाय का वैष्णव कहा गया है।[२००] यो सेनापति रामोपासक प्रतीत होते हैं जिसके प्रमाण उनकी रचना में ही उपलब्ध हो जाते हैं। ब्रजमाधुरीसार के अनुसार बिहारी और देव दोनो ही राधावल्लभीय अथवा 'हितकुल' के कवि ठहरते हैं।[२०१] डॉ० नगेन्द्र देव के गुरु को विश्वसनीय रूप से राधावल्लभीय न मानकर उसकी सभावना मात्र स्वीकार करते हैं।[२०२] ऐसी अनिश्चित स्थिति मे इन कवियों की रचनाओ मे साम्प्रदायिक तत्व के अभाव तथा रीति-परम्परा की प्रधानता के कारण इनको स्वतन्त्र वर्ग में रखना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

सेनापति की रचना : कवित्तरत्नाकर—सेनापति की दो रचनाएँ 'कवित्तरत्नाकर' तथा 'काव्यकल्पद्रुम' कही जाती हैं जिनमें से दूसरी अप्राप्य है।[२०३] कवित्तरत्नाकर की चतुर्थ तरग प्रस्तुत विषय की सीमा के अन्तर्गत नही आती। यह कृति प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है।

बिहारी की रचना : सतसई—सतसई के प्रधान आराध्य राधाकृष्ण हैं इसमें सदेह नही परन्तु उसमें अनेक दोहे ऐसे भी हैं जिनका कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है। बिहारी सतसई काव्य-कला की दृष्टि से ब्रजभाषा की अमूल्य निधि है।

मतिराम की रचनाएँ : रसराज, ललितललाम, सतसई—मतिराम के ग्रंथो में 'रसराज' और 'ललितललाम' प्रमुख हैं। रसराज में शृंगार रस को 'रसराज' मानकर

शास्त्रीय पद्धति से रस एव नायिका भेद का निरूपण है। ललितललाम अलकार ग्रथ है। दोनों रचनाओ के अधिकतर उदाहरण कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत आते है। सतसई आद्योपान्त दोहो मे रची गयी एक श्रृगारिक रचना है।

देव की रचनाएँ : भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास—देव के काव्य-काल का प्रारभिक अश ही इस शती मे आता है क्योकि उनका जन्म स० १७३० मे हुआ था। फिर भी १७वी शती ई० के अन्त (स० १७५७) के पहले उनकी तीन रचनाएँ भावविलास, अष्टयाम तथा भवानीविलास निर्मित हो चुकी थी।[१०४] अतएव प्रस्तुत अध्ययन मे उनकी अन्य अनेक रचनाओ को छोडकर केवल इन्ही तीन को स्वीकार किया गया है। यह रचनाएँ पूर्णतया रीति-परम्परा के अनुकूल रची गयी है। उदाहरण प्राय कृष्ण से सम्बद्ध है।

पादटिप्पणियाँ

१. अपने इतिहास में तो नहीं किन्तु फार्बस गुजराती सभा के त्रैमासिक में छपे एक लेख में मुंशी ने मयण का परिचय दिया है। स० १६६४, पृ० ३२५।२६

२. क. फार्बस गुजराती सभा त्रैमासिक, पुस्तक १ छु० ई० १६३७, जनवरी मार्च।
ख. G L Part II Chap I. Old Gujarati, page 91.

३. क च, भाग १, पृ० ५८

४ वही, पृ० ६०

५. वही, पृ० ६१

६. क. "नरसिंह अने भालण कंईक अंशे समकालीन छे . . . . भालणनो पूर्वकाल ते नरसिंहनो उत्तरकाल हतो . . . . आथी भालण नो समय लांबा मा लांबो सं० १४९० थी सं० १५७० सुधी मूकी शकाये।"

भालण, पृ० ३

ख. "आथी भालण सं० १५४५:४६ मां मरण पाम्यो हतो अेम आपणे अनुमान करी शकिये"

भालण उद्भव अने भीम, पृ० ६.८

७. "भालणनी कादंबरी मां प्राप्त थती मध्यकालीन गूजराती नी ३जी भूमिका भालण समय नो भाषा मिश्र २जी भूमिका पछीनो सां० १६२५ लगभग मां स्थापित थयेली भाषा छे"

क च, भाग १, पृ० १००-१०१

८. पंदर से पीसतालीस मांहि गाया नलगुणग्राम जी।
पद्य खटशत नें सात कर्यां छे हरिजन ना विश्राम जी॥

९. संवत पंदर पंचोतरे शुक्लपक्ष कार्तिक मास।
पंचमी तिथि बुधवासरे पुर्ण ग्रंथ अतीहास॥२१॥
उत्तरकांड संपूर्ण सुणता उपजे मन हुलास।
करजोडी भालणसुत वीनवे नीज सेवक वीष्णुदास॥२२॥

उत्तरकांड, ५७

१०. 'कौमुदी' मार्च १६३१, पृ० २२६

११ प्रबोध प्रकाश, भूमिका, पृ० २५

१२. भालण, पृ० ६४

१३. क च भाग १, पृ० ६८ पाद टिप्पणी २

१४. भालण कृत दशमस्कंध, स० हृ० कांटावाला पद संख्या ७७, २५१, २५३, २५४, २५५ तथा २६९

१५. "भालणना दशमस्कंध मा कोई विष्णुदासना नामनां व्रजभाषाना केटलाक पद जोवामां आवे छे। अे कदाच आ विष्णुदासना पण होय केमके अे नामनो कोई कवि व्रजभाषा मां थयो होय अेम जणातु नथी।

भालण, पृ० ६२.

१६. क भालण रा० चु० मोदी पृ० ७८

ख. क च, भाग १ पृ० ११०

१७. G L page 122.

१८ भालण, उद्धव अने भीम रा० चु० मोदी विरचित, पृ० ३१

"आ काव्य खरी रीति कृष्णविष्टि कहेवाय नहि, आतो कृष्णविष्टि करवा जाय छे ते सम्बन्धी अेटले तेने "द्रौपदी प्रकोप" नाम आपी शकाय, भालण आखी कृष्णविष्टि लखी हशे के ते शंका भरेलु छे, केम के वधीअे प्रतोमां मात्र आ चार ज पदो जोवामां आवे छे।

१९. क. संवत पंद्र रुद्रनी बीस। वरस ऊपरि अेक चालीस।

हरिलीला षोडशकला, फलश्रुति, ८, पृ० २१३

ख. संवत पंदर रुद्रनी बीस, षट आगला वरस चालीस।

प्रबोध प्रकाश, अक छट्ठो, ७२, पृ० ७४

२० क. पंडित वोपदेव द्विज अेक, कीधुं हरिलीला विवेक।
तिणि आधारि मि करी कथा, सरोवर जमलु कूड यथा।

हरिलीला षोडशकला, पृ० २१२

ख. सोलकला शशिहर सकलंक, अेह श्रीकृष्ण कथा निकलंक।

वही, फलश्रुति, ७, पृ० २१६

२१. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २६

२२. ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० ३६।

२३. नाम माहात्म्य, श्री ब्रजांक, अगस्त १९४०, ब्रजभाषा नामक लेख से

२४. निम्बार्क माधुरी, पृ० ६ तथा २३

२५ "सूरदास के पूर्ववर्ती बंजू बावरा के कुछ शृंगार गीत प्राप्त हुए हैं जिनसे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि इस प्रकार की रचना पहिले से ही होती आ रही थी।"

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद, नवीन संस्करण, पृ० ४३

२६ नैन बान, पुनि राम, ससि गिनो अक गति वाम ।
श्रीभट प्रगट जु जुगलसत यह् सवत अभिराम ।।
निम्बार्क माधुरी पृ० ६

२७ क रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म स० १३६१, कविता काल स० १३२५ के लगभग दिया है। [हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८८]
ख वियोगीहरि ने भी लिखा है कि श्रीभट्ट का जन्मकाल अनुमानत १३६५ के लगभग जान पडता है और इनका कविता-काल सवत् १६२५ सिद्ध हुआ। [ब्रजमाधुरीसार पृ० १३८]

२८ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७४०

२९ वर्मा, वत्सराज तुलसी, 'Gujarat had only three poets and those of obscure fame in the sixteenth century and yet this century is not without its significance' CPG, page 30

३० M G L, page 52 53

३१ वसत १९६१ सवत् वर्ष ४ अक ८

३२ गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट १९०९

'आ मूल दीवाओ मा कोई पण अन्य ज्योतिना प्रभाव थी ज्वालाओ प्रकटी होवी जोइओ।'

३३ क गुजरात स० १९८२ श्रावण नरसिंह महेतानो कोयडो
ख कौमुदी १९३२
ग नरसैयो भक्त हरिनो, उपोद्घात

३४ GL Chap IV, Note A, page 149

३५ वसत, १९६१ सवत् भाद्र, अक ८

३६ पुष्टिप्रवाहमर्यादा की टीका

३७ प्रस्थान, स० १९८२, वैशाख-ज्येष्ठ तथा ऐतिहासिक सशोधन, पृ० १२३

३८ गुजरात सभा कार्यवही, १९९२ ९३, पृ० ८७ ९५

३९ Vaisnava Faith and Movement, page 47

४० GL page 143

४१ गुजराती हाथप्रतोनी सकलित यादी गु व सो पृ० ८१ ८८

४२ क. नरसो ने गुणगावानो शे ते थी ई दशा मा भाखियु रे ।
ख. ते नरसैइओ गाई रे विविधि विलास मा रे नाम तिनु सहस्र पदनो रास ।
ते अहीं वाचो रे जिन्हें इच्छा वसे रे पुनि पुनि कहइ नव नरसइदास ।
ग. नृसिह अनाथ, थावो हरिनाथ, सावो मम हाथ ते कष्टि खोजो ।

४३. क प्रेमानन्द की 'भ्रमरपचीशी' में राधा का केवल उल्लेख ही नहीं है वरन् राधा, चन्द्रावली आदि सखियों के साथ वह उद्धव से सभाषण करती हुई भी चित्रित की गई है।

ख. त्याहां तेडी सवि नारि सोलसहसे साथि ते चन्द्राउली।
राधा संग रमे ते सोलसहसे साथि ते लीलाउली।

५१, राधारंग

४४ महल सभा सिंगार, ४४ से ७५वें दोहे तक

४५ Significance of Vari Kunjar picture By M R Majmudar, Baroda Oriental Conference Report, 1933, page 829

४६ गुजराती हाथ प्रतोनी सकलित यादी, पृ० ८२

४७ GL, page 142. Rasasahasrapadi as it stands at present, it is a loosely woven poem of about one hundred and twenty three padas

४८. राससहस्रपदी, केशवराम काशीराम शास्त्री द्वारा सम्पादित

४९. न कृ. का. पृ० ४६८

५० श्री गुरु ने प्रणाम करी ने वर्णवुं श्री जदुराय।
श्री कृष्णनी लीला सांभलतां पातिक दूर पलाय।

न कृ का, पृ० ४२८

५१ इस विषय का विशेष विवरण 'मीरांबाई की पदावली' के परिशिष्ट 'क' में परशुराम चतुर्वेदी द्वारा दिया गया है

५२ क. मिश्रबन्धु, मीरां का जन्मकाल, सं० १५७३
ख रामचन्द्र शुक्ल, वहीं
ग. डॉ० रामकुमार वर्मा, मीरां का जीवनकाल सं० १५५५ १६१०
घ. परशुराम चतुर्वेदी, मीरां का जीवनकाल सं० १५५५-१६०३ विवाह काल, सं० १५७३

५३. क. मीरां स्मृति ग्रन्थ, पृ० ४४
शंभुप्रसाद बहुगुना का लेख 'जनम जोगिणी मीरां'
ख मीरां, एक अध्ययन, पद्मावती 'शबनम' विरचित, जीवन खंड, पृ० १४-८४

५४. गु. हा. सकलित यादी, पृ० १५७

५५. इन पैंतीसो पदों की क्रम संख्याएँ इस प्रकार हैं।—
२, ३, २६ ३५, ३७, ४४, ४७, ४८, ५३, ५४, ५६, ७३, ७८, ८३, ८४, ८६, ९०, ९२, ९५, १०२, १०७, १११ ११३

५६. क च, प्रथम भाग, पृ० ८०

५७. 'गुजराती', सं० १९९१

५८. श्रीकृष्णलीला काव्य, भूमिका पृ० १४

५९ संवत पंदर बोतेर अभ्यास। बुधाष्टमी भादरवो मास।

बृ का. दोहन, भाग ६, पृ० ७०६

६०. क च, भाग १, पृ० २३१ २३२

६१ क च, भाग १, पृ० २६१ २६२

६२ बृ का. दोहन भाग १लो, पृ० ६८३

संवत १६०९ सोलनवोतरो वैसाख सुदि अेकादशी ।
महीदास सुत बहदे कहे, कृपा करी श्री हरि कहाविउ ।

६३. क च, भाग १, पृ० २०६

६४. क च, भाग ३, पृ० २९९

६५. प च, भाग २, पृ० ३७५

६६. क. गु हा. सकलित यादी, पृ०
ख. क च, भाग २, पृ० २७५

६७ क संवत सोल सतांना जाणूय—रुक्मिणीहरण
ख सवन शौल शब्ताला सोय—हनुमान चरित्र
ग. सवन शौल आठनाला विराटपर्व

६८. क च, भाग २, पृ० ४०५

६९. क च, भाग २, पृ० ४०९

७०. पूड की 'पांडवविष्टि' के अन्तिम पृष्ठ का उल्लेख सूरतसाहित्य परिषद के विवरण में पृ० ७८ पर दिया है। इसी से इसकी सत्ता का ज्ञान होता है

७१. क. सूरदास, पृ० ९७
ख. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० २६८
ग. सूरसौरभ, प्रथम भाग, पृ० ९'
घ. अष्टछाप परिचय, पृ० ९६
ङ. सूरनिर्णय, पृ० १६९

७२. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २६८

७३. सूरनिर्णय, पृ० १६९

७४. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २६८

७५. ब्यास कहे सुकदेव सौं द्वादशस्कंध बनाइ ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ ।।

सू सा. स्कंध १

७६. सूरनिर्णय, पृ० १६१

७७. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० २८०

७८. वही, पृ० ३१४:३१५

७९. वही, पृ० ३११

८० अष्टछाप परिचय, पृ० १३५

८१. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग २, पृ० ३१५ ३२३

८२. वही, पृ० ३२४

८३. अष्टछाप परिचय, पृ० १६६

८४. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३८८, ३८६

८५ वही, पृ० ३७२, ३७७

८६ नददास, भाग १, भूमिका, पृ० २० २१

८७ अष्टछाप परिचय, पृ० १६८, २००

८८ वही, पृ० १६८

८६. नददास, भाग १, भूमिका, पृ० ८६

६०. क वही,
 ख अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० ३००

६१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृ० ३०४

६२ वही, पृ० ३३८, ३३६

६३. वही, पृ० ३४०

६४. वही, पृ० ३४१

६५. क वही, पृ० ३४७ ३४८
 ख. नंददास, भाग १, पृ० ६८,६६

६६ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३४६

६७. नददास, भाग १, पृ० ८२

६८ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३६० ३६१

६६. अष्टछाप परिचय, पृ० २१२

१०० अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १, पृ० ३८१,३८३

१०१ सम्प्रदाय में प्रचलित हिताब्द के आधार पर इनका जन्म सं० १५३० सिद्ध होता है और जीवन काल स० १५३० १६०६ तक परन्तु भागवतमुदित नामक कवि के 'हितहरिवशचरित्र' में जन्म काल 'पन्द्रह सौ उनसठ सम्वत्सर' दिया है।

१०२ इस विषय में साम्प्रदायिक मान्यता है

रीझे श्री वनचन्द्र जू, बोले सघन उमंग।
सेवकवाणी कूं पढ़ो, श्री चतुराशो संग॥

१०३ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३३२

१०४ **सुभ सत पन्द्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक।**
ता सवत मे आन, प्रगट भये श्री व्यास जो॥

श्री व्यासवाणी, पूर्वार्ध वक्तव्य पृ० व०

१०५ वही, पृ० व०

१०६ ब्रजमाधुरीसार, पृ० ९७

१०७ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १८३, १८७

१०८. निम्बार्क माधुरी पृ० ६२

१०६ वही, पृ० ९

११० ब्रजमाधुरीसार, पृ० १५६

१११ निम्बार्क माधुरी, पृ० २७

११२ वही, पृ० ७४ ७५

११३ वही, पृ० ७४ ७५

११४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७१४

११५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८६

११६ निम्बार्कमाधुरी पृ० २०२

११७ प्रनम थुरीसार, पृ० १२४

११८ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० ६६

११९ निम्बार्कमाधुरी, पृ० २२४

१२० वही, पृ० २३३

१२१ मीरां स्मृति ग्रन्थ, परिशिष्ट 'ख' मीरां परिचय पृ० ५८

१२२ वही, पृ० १४१

१२३ रहीम रत्नावली, मायाशंकर याज्ञिक द्वारा सपादित, पृ० ३२

१२४ शास्त्री के कविचरित के अभी दो भाग ही प्रकाश में आये हैं जिसमें स० १७१६ तक के कवियों का समावेश है। प्रमानद का काव्यकाल इसके बाद आता है। उन्होंने अपनी नवीन कृति 'प्रेमानद एक अध्ययन' में प्रेमानद के समय पर प्रकाश डाला है

१२५ गु हा सकलित यादी पृ० २५१

१२६ वहा पृ० १८६ २६२

१२७ वहा, पृ० १८६

१२८ क च, पृ० ३६५ ३६६

१२९ स० १६ सवछर साठो, माघ सुदी पलवाडो जी।
ग्रथ समर्पण करी गोविंद ने, प्रणमें जन देवीदास जी।
गु व सो ह प्र नं० २६४

१३० परशुराम आख्यान, सवत सोल सडसठ वर्षे, बाल चरित्र, 'सवत सोल सडसठावर्षे', तथा एकादशी माहात्म्य 'सवत सोल शानर'

१३१ क च, भाग २, पृ० ४५२

१३२ वहा, भाग २ पृ० ५०२

१३३ सवत सोल नवासो अे। साके पनरचोपने कही अे।
ह प्र नं० ३२९

१३४ क च, भाग २, पृ० ४४६

१३५ कृष्णदास के नाम से एक 'रासक्रीडा' का भी उल्लेख मिलता है परन्तु हस्तप्रति देखने पर ज्ञात होता है कि यह अष्टछापी कृष्णदास के रास विषयक पदों का सग्रह मात्र है
गु हा सकलित यादी पृ० २२, ह प्र नं० ४६८४ बड़ौदा

१३६ क च, भाग २ पृ० ४४९, ४५१

१३७ वही, भाग २ पृ० ५२७

१३८ फा० गु० सभा हस्तप्रति नं० ३६१

८६ नददास, भाग १, भूमिका, पृ० २० २१

८७. अष्टछाप परिचय, पृ० १६८, २००

८८ वही, पृ० १६८

८९ नददास, भाग १, भूमिका पृ० ८६

९०. क वही,
ख अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० ३००

९१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १, पृ० ३०४

९२ वही, पृ० ३३८, ३३९

९३. वही, पृ० ३४०

९४. वही, पृ० ३४१

९५. क वही, पृ० ३४७ ३४८
ख. नंददास, भाग १, पृ० ६८,६९

९६ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३४६

९७. नददास, भाग १, पृ० ८२

९८ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ३६० ३६१

९९. अष्टछाप परिचय, पृ० २१२

१०० अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १, पृ० ३८१,३८४

१०१ सम्प्रदाय में प्रचलित हिताब्द के आधार पर इनका जन्म सं० १५३० सिद्ध होता है और जीवन-काल स० १५३० १६०६ तक परन्तु भागवतमुदित नामक कवि के 'हितहरिवंशचरित्र' में जन्म काल 'पन्द्रह सौ उनसठ सम्वत्सर' दिया है।

१०२ इस विषय में साम्प्रदायिक मान्यता है

रीझे श्री वनचन्द्र जू, बोले सघन उमंग।
सेवकवाणी कूं पढौं, श्री चतुराशी संग॥

१०३ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३३२

१०४ सुभ सत पन्द्रह जान, सरसठ ता ऊपर अधिक।
ता संवत मे आन, प्रगट भये श्री व्यास जी॥

श्री व्यासवाणी, पूर्वार्ध वक्तव्य पृ० ४०

१०५ वही, पृ० ४०

१०६ व्रजमाधुरीसार, पृ० ९७

१०७ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १८३, १८७

१०८ निम्बार्क माधुरी पृ० ६९

१०९ वही, पृ० ९

११० व्रजमाधुरीसार, पृ० १५६

१११. निम्बार्क माधुरी, पृ० २७

११२ वही, पृ० ७४ ७५

११३ वही, पृ० ७४ ७५

११४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७१४

११५ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८६

११६ निम्बार्कमाधुरी, पृ० २०२

११७ व्रजमाधुरीसार, पृ० १२४

११८ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय भाग १, पृ० ६६

११९ निम्बार्कमाधुरी, पृ० २२४

१२० वही, पृ० २३३

१२१ मीरां स्मृति ग्रन्थ, परिशिष्ट 'ख मीरां परिचय, पृ० ५८

१२२ वही, पृ० १४१

१२३ रहीम रत्नावली, मायाशंकर याज्ञिक द्वारा सपादित, पृ० ३२

१२४ शास्त्री के कविचरित के अभी दो भाग ही प्रकाश में आये हैं जिनमें स० १७१६ तक के कवियों का समावेश है। प्रमानद का काव्यकाल इसके बाद आता है। उन्होंने अपनी नवीन कृति 'प्रेमानद एक अध्ययन' में प्रेमानद के समय पर प्रकाश डाला है

१२५ गु हा सकलित यादी पृ० २९५

१२६ वही, पृ० १८६, २६२

१२७ वही, पृ० १८६

१२८ क च, पृ० ३६५ ३६६

१२९ **स० १६ सवछर साठो, माघ सुदी पखवाडो जी।**
ग्रथ समर्पण करो गोविद ने, प्रणमें जन देवीदास जी।

गु व सो ह प्र नं० २६४

१३० परशुराम आख्यान 'सवत सोल सडसठ वर्षे, बाल चरित्र, 'सवत सोल सडसठावन्य', तथा एकादशी माहात्म्य, 'सवत सोल शातर'

१३१ क च, भाग २, पृ० ४५२

१३२ वही, भाग २, पृ० ५०२

१३३ **सवत सोल नवासो अे। साके पनरचोपने कह्यो अे।**

ह प्र नं० ३२५

१३४ क च, भाग २, पृ० ४४६

१३५ कृष्णदास के नाम से एक रासक्रीडा का भी उल्लेख मिलता है परन्तु हस्तप्रति देखने पर ज्ञात होता है कि यह अष्टछापी कृष्णदास के रास विषयक पदों का सग्रह मात्र है

गु हा सकलित यादी, पृ० २२, ह प्र नं० ४६८४ बड़ौदा

१३६ क च, भाग २ पृ० ४४९, ४५१

१३७ वही, भाग २, पृ० ५२७

१३८ फा० गु० सभा, हस्तप्रति नं० ३६१

क. श्री कंसोवारण लीक्षते

ख. इति श्री कंसोवारण आख्यांन सम्पूर्ण समाप्त ।

१३६. संवत सतर पाचय नें साल नो सक्षा कहू

पनर सत ने एकोतेर ने ..

गु व सो हस्तप्रति न० ७१

१४०. प्रेमानद एक अध्ययन, पृ० ३० ३१

१४१ सुयोधन ने मार्गे पृ० ३१

मोटो दशमस्कंध सिद्धरूपो अंनी आत्मरनी कृति समझाव वैं च ।

१४२ प्रेमानद एक अध्ययन, पृ० ६०

१४३ G L Page, 183

१४४ सुभद्राहरण प्रस्तावना पृ० ११३ ११५

१४५ G L Page, 189

१४६ गु हा सकलित यादी, पृ० १२२

१४७. V G Page, 245 246

१४८ रुक्मिणी विवाह् वरणी न जाए। संक्षेप मात्र आ सलोको थाए ।

गु व सो ह प्र न० ८८५

१४९ संमत सतर नें चालीस साल। वैशाख सुदी बारस गुरुवार ।

—वही

१५० गु व सो हु प्र नं० ७३९ भ

१५१ गु ह. सकलित यादी पृ० १२२

१५२ गु व सो ह. प्र न० द ४१२

१५३ गु ह सकलित यादी, पृ० १२६

१५४ वही, पृ० १२६ १२७

१५५ सुभद्राहरण, भूमिका अम्बालाल बुलाकीराम जानी रचित, पृ० ४७ ४८

१५६ श्रीमद्भागवत, कवि प्रेमानदवृत पद्यबध, पृ० ३५१

१५७ नर्मदाशकर द्वारा सम्पादित श्रीमद्भागवत दशमस्कध की भूमिका से।

विशेष कहेवानु आछे के प्रेमानंद ना ग्रंथ मा संस्कृत श्लोके श्लोक नुं भाषा-
न्तर नयो पण अध्याय अध्यायना कथा प्रसंगो ने वर्णन विस्तारे प्रफुल्ल कर्या
छे । भक्तिबोध ने माटे कथा प्रसंग अने भक्तिबोध आनद साथे हृदय मां
धरे तेने माटे लोकप्रिय वर्णन विस्तार छे।

१५८ गोवर्धनदास द्वारा सम्पादित रत्नेश्वर कृत दशमस्कंध के उपोद्घात से—

'कवि प्रेमानंद जातनो ब्राह्मण अने संस्कृत भाषा थी अज्ञान होवाने लीधे मूल भागवत ग्रंथ मां शु लख्युं छे तेनी बराबर अर्थ न समझता अे कविये पोताना ध्यान मा आव्या प्रमाणे साधारण कथा भाग लइ तेमां अनेक फेरफार करी ने भाषान्तर कर्युं छे।

१५९ प्रेमानंद, एक अध्ययन, पृ० ३०

१६० संवत सतर ओगणचालीस, भाद्रपदे निर्धार जी।
दशमस्कंध थयो संपूर्ण ऋषि पंचमो रविवार जी।
श्री मद्भागवत, दशमस्कंध

१६१ गु ह्रा सकलित यादी, पृ० १७३, १७५

१६२ वही, पृ० १७४

१६३ वही, पृ० १७३

१६४ वही, पृ० २०३

१६५ क च, भाग २, पृ० ३१५

१६६ संवत १७१६ संवच्छरम् शाठो माघ शुध पख जी
बड़ौदा सग्रह, ह प्र नं० ८८४

१६७ चोपन में अध्याये संपूरण साभलता सुखकारी जी।
शुकदेवपरीक्षत ने कहे कथातणु विस्तारी जी।
—वही।

१६८ सवत सत्तरसै तेत्रीशसार असाडसुद द्वितीया शनिवार ३

१६९ क च, भाग २, पृ० ४६४

१७०. गु ह्रा सकलित यादा, पृ० २५

१७१ प्रा० का० सुधा० भाग ३. पृ० १४१ 'मथुरामहिमा गाई शु जात गुरुजगदोश' मथुरा महिमा गायो सार. श्री गुरुदेव सत आधार।
- वहा, भाग ३

१७२ तेना चर्ण प्रतापे करी श्रीकृष्ण लीला विस्तरी—वहा।

१७३ ब्रजमाधुरीसार, पृ० २०५

१७४ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग १, पृ० ८०

१७५. 'संस्कृत न जाणनाराने अर्थे भाषामा पण केटलाक पदो आप श्रीअे रच्यो छे, अने अे मार्गे पण भावनु मान कर्यु छे। घोलो पण प्रकट कर्या छे। ते ज रीतिअे आपना केटलाक ख्यालादि पण संप्रदाय ———

—श्री हरिराय नी जीवन अने बोध, पृ० २१ २२

१७६ राधावल्लभ भक्तमाल पृ० ३२२, ३२५ ३२६

१७७ वही पृ० ३३०

१७८ वही पृ० ३२९

'इस प्रकार आपने ब्यालीसलीला एक ग्रंथ बनाया यह ध्रुवदास जी की ब्यालीसलीला के नाम के विख्यात है।

१७९ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ७२४

१८० बंध संख्या २१४ पुस्तक नं० १६ ३०

१८१ सोलह से ध्रुव छासिया पून्यो अगहन मास

१८२ वाणी वल्लभ रसिक जी की, पृ० १, भूमिका

१८३ वही पृ० २, भूमिका

१८४ श्री माधुरी वाणी पृ० ४, भूमिका

१८५ वही, पृ० ५, भूमिका

१८६ निम्बार्क माधुरी पृ० ९३ १२९

१८७ वही पृ० १४३

१८८ वही पृ० १६६

१८९ वही पृ० ९९

१९० वही, पृ० ९४, १००

१९१ वही पृ० ९४

१९२ वही, पृ० १३१

१९३ वही, पृ० ३४० ३४१

१९४ वही, पृ० २६९

१९५ वही, पृ० ३१६

१९६ वही, पृ० २६९

१९७ वही, पृ० २९९

१९८ वही, पृ० ३१६

१९९ वही, पृ० ४७९, ५००

२०० वही, पृ० ५००

२०१ ब्रजमाधुरीसार, पृ० ४४५

२०२ देव और उनकी कविता, पृ० २७

२०३ कवित्तरत्नाकर, भूमिका, पृ० ६

२०४ देव और उनकी कविता पृ० ३१ ४१

२

वर्ण्य वस्तु

विश्लेषण तथा विवेचन

कृष्ण-लीलाएँ—लीलास्थल की दृष्टि से कृष्ण-चरित को त्रिधा विभाजित किया जाता है।[1]

१. ब्रज-लीला
२. मथुरा-लीला
३. द्वारका-लीला

ब्रज-लीला पुनः दो भागों में विभाजित की जा सकती है जिनमें लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार का चरित समाविष्ट है।

आगे लीलाओं के इसी विभाजन के अनुसार गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की समस्त वर्ण्य-वस्तु का तुलनात्मक निरूपण किया गया है।

ब्रज-लीला

दोनों भाषाओं में साधारणतया इन कृष्ण-लीलाओं का वर्णन भागवत के दशमस्कंध पर आधारित मौलिक तथा अनूदित रचनाओं में प्राप्त होता है। लीला विशेष से सम्बन्धित स्वतंत्र उल्लेखनीय रचनाओं का निर्देश यथावसर कर दिया गया है।

पुराणोल्लिखित लीलाओं में से अनेक के वर्णन में कवियों ने पर्याप्त स्वतंत्रता तथा मौलिकता का प्रदर्शन किया है, कतिपय कवियों ने ब्रज-लीला के अंतर्गत कई नितान्त नवीन प्रसंगों की उद्भावना की है, ऐसे कवियों में ब्रजभाषा के सूरदास तथा गुजराती के प्रेमानन्द का नाम सर्वोपरि है, विश्लेषण की सुगमता के लिए विशिष्ट प्रसंगों का पृथक् निरूपण अपेक्षित है।

अलौकिक गोकुल लीलाएँ

कृष्ण जन्म—भालण, प्रेमानद आदि दशमस्कधकारो के अतिरिक्त इस विषय में गुजराती में नरसी के 'श्रीकृष्णजन्मसमाना पद' तथा 'श्रीकृष्णजन्म वधाई ना पद' विशेष उल्लेखनीय हैं, व्रजभाषा में अष्टछाप के समस्त कवियो द्वारा जन्म तथा वधाई के पद रचे गए। अन्य सम्प्रदायो के कुछ कवियो द्वारा भी वधाई के पदो का निर्माण हुआ।

कृष्ण-जन्म से पूर्व पृथ्वी की प्रार्थना से द्रवित हो कर 'हरि' ने भूभार उतारने के निमित्त अवतार धारण करने का वचन दिया जिसका वर्णन अनेक कवियो ने किया है किन्तु विष्णुपुराण का आधार लेकर 'हरिलीला षोडशकला' के रचयिता ने लिखा है कि देवेश ने अपने मस्तक के दो केश भी दिये। 'वलता वचन कहि देवेश, मस्तकना आप्या दोइ केश' (पृ० १३०,) इसका उल्लेख भागवत में नहीं है फलत अन्य कवियो ने ऐसा नही लिखा। भागवत में 'यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं' तथा 'निशीथे' के अतिरिक्त कृष्ण-जन्म को तिथि मास दिवस का कोई निर्देश नही किया है किन्तु लगभग सभी कवियो ने कदाचित् ब्रह्मवैवर्त का आधार लेकर स्पष्टतया इसका निर्देश किया है। ब्रह्मवैवर्त में जन्म के समय 'अर्धरात्रेसमुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ' (कृ० पू० ७ ६४) मास का उल्लेख व्रत के प्रसग में किया गया है पर वार वहाँ भी नही मिलता। फल भाद्रपदेऽष्टम्या भवेत्कोटिगुण द्विज (वही, ८ ६)। इस विषय में गुजराती तथा व्रजभाषा में दी गई जन्म-तिथियो में मास और वार का अतर महत्त्वपूर्ण है।[१] नरसी ने श्रावण मास, मगलवार तथा लक्ष्मीदास और प्रेमानद ने 'श्रावण वदनी अष्टमी' दिन बुधवार दिया है। सूर ने केवल 'भादो की रात' और नददास ने कृष्णपक्ष की अष्टमी तथा रोहिणी नक्षत्र का भी उल्लेख किया है।[२]

गुजराती कवि भालण ने कृष्ण-जन्म के अवसर पर इन्द्र-इन्द्राणी के सम्वाद का वर्णन एक पद में किया है। इद्राणी अहीर बन कर गोकुल मे निवास करने की इच्छा प्रकट करती है परन्तु इद्र 'प्रभु' की आज्ञा न समझ कर गगन में ही स्थिर रहने का निश्चय करते है।[३]

अष्टछाप के कवियो ने जन्मोत्सव के समय ढाढी ढाढिन, के पद रचे हैं। चैतन्य सम्प्रदायी कवि गदाधर भट्ट ने कृष्ण जन्म की वधाई के पद भी लिखे हैं और अपने को 'मागनो' भी कहा है।

१. आज कहूँ ते गोकुल में अद्भुत बरखा आई हो।

—ग० वाणी, पृ० १०

२. हो ब्रज माँगनो जू ब्रज तज अनत न जाऊँ जू।

—वही, पृ० २१

गुजराती कृष्णकाव्य में ढाढी का प्रसग नही मिलता केवल भालण के दशम स्कध में जहाँ सूर का 'ब्रज भयो महरि के पूत' वाला पद प्रक्षिप्त मिलता है वही उनका ढाढी के प्रसग का यह पद भी प्राप्त होता है।

नदजू मेरे मन आनद भयो सुनि गोवर्धन ते आयो।
हो तो तुम्हारे घर को ढाढी सूरदास मेरो नाउँ।

यह प्रक्षेप प्रकाशित प्रतियो में ही नही वरन् हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों में भी उपलब्ध होता है।

कारागृह में कृष्णजन्म के समय की परिस्थिति का चित्रण प्राय एक-सा ही मिलता है। दोनो भाषाओ के कवियो ने प्रकट होने के बाद कृष्ण को चतुर्भुज रूप में चित्रित किया है जो भागवत के 'चतुर्भुज' के अनुकूल है। किसी ने भी ब्रह्मवैवर्त के 'द्विभुज मुरलिहस्तम्' का अनुसरण नही किया।

किन्तु कृष्ण को गोकुल ले जाते हुए वसुदेव को जहाँ यमुना मार्ग देती है वहाँ कई कवियो के वर्णन में भास के बालचरित की छाया प्रतीत होती है। ब्रह्मवैवर्त में उसका वर्णन ही नही है। भागवत में यमुना के लिए 'मार्ग ददौ' मात्र लिखा है किन्तु बालचरित में 'द्विधा छिन्न जलम्' मिलता है। भास की इस कल्पना का कारण रगमच की सुविधा कहा जा सकता है। गुजराती के भालण केशवदास तथा प्रेमानन्द और ब्रजभाषा के नन्ददास ने बालचरित जैसा ही वर्णन किया है, सूरदास में इसका वर्णन ही नही मिलता।[१] कृष्ण के हुँकारने की तथा पीछे के जल के रुकने और आगे के जल के बह जाने की बात प्रेमानन्द ने अपनी ओर से सम्मिलित कर दी है। शिशु-विनिमय की बात भागवत में कृष्ण द्वारा ही वसुदेव को ज्ञात हुई और भागवतानुयायी कवियो ने इसी का अनुसरण भी किया है। गुजराती के केशवदास ने कृष्ण द्वारा स्पष्ट कथन न कराके उनकी प्रेरणा से ही वसुदेव में ऐसी बुद्धि आना लिखा है।

'हरिये हइये प्रेर्यो वसुदेव'—श्रीकृ० नी०, पृ० १९

बालचरित में शिशु-विनिमय का प्रसग नितान्त भिन्न एव अपूर्वनिश्चित आकस्मिक रूप में घटित हुआ है किन्तु उसका किसी कवि द्वारा अनुकरण नही किया गया। गोकुल में कृष्ण-जन्म के समय उत्सव, उत्साह, बधाई आदि का जितना विस्तृत वर्णन सूरदास ने किया उतना किसी भी कवि ने नहीं किया।

पूतना-वध

भागवत में पूतना के लिए 'कसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी' कहा है और वध के उपरात उसके दाह-सस्कार का भी वर्णन है।[५] ब्रह्मवैवर्त में उसे कस की भगिनी तथा हरिवश में धात्री बताया गया है।[६] स्तन में विष लगाने तथा सुन्दरी स्त्री का वेश धारण करने का वर्णन सब मे प्राप्त होता है।

गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनो भाषाओ के कवियो ने पूतना को 'बकी' के रूप में ग्रहण किया है जिसका आधार सभवत भागवत का पूतना के लिए प्रयुक्त 'खेचरि' शब्द हो सकता है। कुछ गुजराती कवियो ने ब्रह्मवैवर्त के अनुसार उसे कस की बहिन भी लिखा है और उसके द्वारा कृष्ण की मासी बनने का भी उल्लेख किया है।[७] गुजराती कवियो में भालण ने न 'पूतना' नाम दिया है और न 'बकी' ही।

गुजराती में नरसी तथा भालण और ब्रजभाषामें सूर द्वारा भागवतोक्त पूतना के दानवी रूप और दाह-सस्कार का वर्णन नही किया गया है। ब्रजभाषा के कवियो द्वारा पूतना का कस की भगिनी एव कृष्ण की मासी के रूप में भी चित्रण नहीं हुआ है। गुजराती के कवि प्रेमानन्द ने वसुदेव देवकी को पूतना के व्रज-प्रयाण की सूचना से दुखी चित्रित किया है।[८]

पूतना गई गोकुळ विषे वसुदेव जाणी वात,
दपती दुखीया थया ते करे बहु अश्रुपात।

ब्रजभाषा के किसी कवि ने इसका चित्रण नही किया।

सिद्धर ब्राह्मण

सूरसागर में पूतना-वध के अनन्तर कस द्वारा कृष्ण-वध के लिए भेजे हुए 'सिद्धर बाभन' का प्रसग वर्णित है। इसका भागवत में अभाव है। किसी परवर्ती कवि द्वारा भी इसका अनुवर्णन नही किया गया।

सूरदास के सिद्धर की कथा पूतना की कथा से पर्याप्त साम्य रखती है। पूतना की तरह ही वह भी नदभवन में कृष्ण को मारने पहुचता है और जब यशोदा यमुना जाती है तो अपना मनोरथ पूर्ण करना चाहता है। भेद यह है कि कृष्ण पूतना की तरह सिद्धर का वध नही करते वरन् उसे ब्राह्मण समझ कर केवल भूमि पर गिराने के बाद उसकी जीभ मरोड देते है। अपना भोलापन दिखाने के लिए मटकियाँ फोड कर कुछ दधिमाखन उसके मुँह में लिपटा देते है। तब तक यशोदा पानी लेकर आ जाती है और ब्राह्मण को घर से बाहर कर देती है।[१] सूरसागर में जिस स्थल पर

यह पद है वहाँ पूर्वापर प्रसग देखते हुए यह अप्रासांगिक है क्योंकि पदान्त के बाद पुन 'सुन्यो कस पूतना मारो' लिखकर पूतना के प्रसग को ही उठा लिया जाता है। सिद्धर की असफलता का न तो कोई समाचार कस तक पहुचता है और न उसकी किसी प्रतिक्रिया का ही चित्रण मिलता है। सभव है इस कथा का मूल हरिवश में पूतना वध के बाद वर्णित एक ब्राह्मण द्वारा रक्षा कवच देने की कथा मे निहित हो।

कागासुर-वध—'सिद्धर बाभन, की तरह कागासुर की कथा भी भागवत में नही मिलती किन्तु पद्मपुराण मे काकरूपधारी एक राक्षस के द्वारा कृष्ण की हथेली पर प्रहार किये जाने का वर्णन है जिसका अनुमोदन ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण से भी होता है।[१०] सूरसागर में इसका वर्णन है किन्तु नददास के दशमस्कध में कागासुर की घटना का कोई सकेत नही है। गुजराती के कवियो द्वारा भी इसका वर्णन नही किया गया है, केवल फाग नामक कवि के 'कसोद्धरण' काव्य में एक स्थल पर 'वक बक' का उल्लेख मिलता है जिसमें कस उन्हें कृष्ण की आँख निकालने तथा अग मरोडने की आज्ञा देता है।[११] सूरदास ने कागासुर की कथा का सागोपाग वर्णन किया है। उन्होंने काग को भी अन्य असुरो की तरह कस प्रेरित बताया है।

कागासुर को निकट बुलायो तासा कहि सब वचन सुनायो।

—सू० सा० पृ० १६५

मोती बोने की कथा—यह मोती बोने की कथा सभवत गर्गसहिता से ली गई है। गुजराती कवि पूजासुत परमानद ने अपने हरिरस के द्वितीय वर्ग मे इसका वर्णन किया है :

सीचो दुधहसे अवणपर फल फलीआ बेहु मोती।
मुगताफल उगीया देपीने वीसमे पामी जसोदा जोती॥

छद स० १९५, फा. ह. प्र. ३२५

विराट् आम्र वृक्ष—नरसी मेहता ने गोकुल में एक बौरे हुए विराट आम्र वृक्ष का वर्णन किया है जिसे यशोदा ने सींचकर बडा किया और जिसकी अलौकिकता के कारण व्रजनारियाँ उसे देखने आती है।[११] नरसी का इसी प्रकार का एक अन्य पद है जिसमें सभवत कृष्ण को ही आम्र वृक्ष के रूप में एक रूपक के द्वारा वर्णित किया गया है। 'सोल सहस्र कोकिला' से सोल्ह हजार गोपियों की और यदुकुल में वसुदेव द्वारा बोने तथा यशोदा द्वारा दूध से सींचे जाने से गोकुल में मथुरा में उत्पन्न हुए कृष्ण के लालन पालन की व्यजना होती है।[११]

शकट-भजन अथवा शकटासुर-वध—यह प्रसग भागवत के दशम स्कध के सातवें अध्याय में उपलब्ध होता है और पूतना-वध के ठीक बाद में वर्णित है। और वहाँ न इसमें किसी असुर की कल्पना का मिश्रण है और न इससे कस का कोई सम्बन्ध ही ज्ञात होता है। भास ने अवश्य शकट को 'दाणव' के रूप मे प्रस्तुत किया है

सअडो णाम दाणदो सअडवेषम् गहिवअ आअदो त पि जाणिअ एक पादप्पहारेण चुण्णो किदो सो वि दाणवो भविअ तत्तो एव्व मुदो।

इस प्रकार कवियो में भी दो वर्ग हो गए हैं। भागवतानुयायी भीम, भालण तथा केशवदास न शकट में असुरत्व नही देखा।[१५] इसके प्रतिकूल नरसी, प्रेमानन्द, परमानन्द, सूरदास तथा नददास ने असुरत्व की स्थापना की है।[१६]

वर्णन की दृष्टि से शकट को असुरत्व प्रदान करने वाले कवियो की निम्नलिखित कोटियाँ स्थापित हो जाती है।

प्रथम कोटि—इसमें भीम, भालण आदि गुजराती के वे कवि है जिन्होने भागवत के शकट भजन का अनुवाद मात्र कर दिया है।

द्वितीय कोटि—इसमें गुजराती के परमानद तथा व्रजभाषा के नददास आते है जिन्होने शकट को असुरत्व प्रदान तो किया किन्तु कस से उसका कोई सम्बन्ध व्यक्त नही किया। नददास ने उसे अभिचार का असुर कहा है और उसका शकटरूप धारण करना न कह कर उसमें अटकना कहा है।

तृतीय कोटि—इस कोटि में गुजराती के नरसी, प्रेमानद तथा व्रजभाषा के सूरदास आते है जिन्होने शकटासुर को पूतना की तरह कस द्वारा प्रेरित लिखा है। इस कोटि के कवियो में भी प्रत्येक कवि ने अपनी अपनी इच्छा के अनुसार कथा को विकसित तथा कल्पित किया है।

नरसी तथा प्रेमानद ने कस द्वारा शकटासुर के भजे जाने का उल्लेख किया है। इस असुर ने शकट का रूप धारण कर लिया इस विषय में 'शकट रूपे थयो' लिखकर प्रेमानद और 'शकट को रूप धरि असुर लीनो' लिखकर सूरदास दोनो एक मत है। प्रेमानद तथा सूरदास ने इस कथा के विकास में विशेष मौलिकता प्रदर्शित की है।

प्रेमानद के अनुसार कस ने पूतना-वध सुनकर शकट, वच्छ, तृणावर्त, बग, अघ आदि को तत्काल बुलाकर कृष्ण को मारने का आदेश दिया जिसका सर्वप्रथम पालन था शकटासुर।

भेद सांभली चाल्या भूर, प्रेथमे आव्यो शकटासुर।
—श्रीमद् भा०, पृ० २४८

सूरदास ने शकटासुर के मुख से कस के सामने कृष्ण का नाश कर आने अथवा जीवित लाने की करबद्ध याचना कराई है जिसे सुनकर कंस उसे बीड़ा देता है—

दोउ कर जोरि भयो तब ठाढ़ो प्रभु आयसु में पाऊँ।
ह्यां ते जाइ तुरत ही मारों कहौ तो जीवित ल्याऊँ।
यह सुनि नृपति हर्ष मन कीनो तुरतहिं बीरा दीनो।
—सू० सा०, पृ० १३६

तदुपरांत सूर ने एक ही पद में शकट संहार का वर्णन समाप्त कर दिया किन्तु प्रेमानंद ने कुछ अन्य उद्भावनाएँ भी की हैं। पहली तो यह कि द्वार की कुंडी आदि खटखटाकर यत्नपूर्वक रुदन से चुप कराकर जब यशोदा कृष्ण को शकट के नीचे छोड़ जाती है तो कुछ बालकों से कह जाती है कि ताली बजाते रहना 'बीजा बालकोने कहे ताली पाडो' दूसरी यह कि कृष्ण क्रुद्ध होकर अपने वामपाद की वृद्धि करके स्थूल रूप में परिणत हो जाने वाले उस शकट का संहार करते हैं।

क्रोध रुप थया अशरण शर्ण।
वृद्धि पमाड्यो डाबो चर्ण।

तीसरी यह कि यशोदा लौटकर शकट-भंग को उन बालकों का अन्याय बताती है जिसका वे प्रतिवाद करते हैं।

बीजा बाळ ने यशोदा कहे छे, अे अन्या सर्व तमारो छे;
तमो शकट भाज्यु सर्वे मळी खीजी यशोदा थई आकळी;
बालक कहे अन्या न थी अतमणो, तारे पुने पग वधार्यो घणो;

ऐसा वर्णन ब्रह्मवैवर्त में भी है परन्तु प्रेमानंद ने उसे अधिक स्वाभाविक तथा नवीन रूप प्रदान कर दिया है।

पप्रच्छुर्बालबलिकान् गोपा बभंज शकटं कथम्
—अ० १२, श्लो० ११

चौथी यह कि शकटासुर मरने पर अपना काष्ठाकार त्यागकर पुनः दानव रूप ग्रहण कर लेता है जिसको नंद बाहर निकलवा फेंकते हैं—

काष्ठाकार गाडानो गयो । शक्ट दानव रूपे ययो ।

नदे दैत्य नखाव्यो बहार .

पांचवी और अतिम यह कि शकटासुर को लेने विमान आता है 'आव्यु शकटासुर ने विमान रे' ।

गुजराती कवियो में पालणू उल्लेख करने वाले केवल केशवदास है। शेष ने झोली का उल्लेख किया है जो गुजरात की विशेषता है । प्रेमानद ने इसके लिए यशोदा के किंकरी द्वारा सारी भगवाने तक का वर्णन किया है ।

साडी एक लावी किंकरी

ब्रजभापा के कवियो ने पालने का ही उल्लेख किया है ।

गुजराती कवियो में प्रेमानद तथा केशवदास ने शकट के नीचे कृष्ण को सुलाने के प्रयत्न में यशोदा से 'हालरू' अथवा लोरी गवाई है । सूरदास ने शकट के प्रसग में तो नही किन्तु तृणावर्त वध के उपरात 'हालरू' गाने का उल्लेख किया है

जन बलि जाइ हालरू हालरो गोपाल ।

—सू० सा०, पृ० १३९

तृणावर्त्त-वध

—तृणावर्त की स्थिति शकटासुर से भिन्न है । भागवत में ही इसके दैत्य होने तथा कस द्वारा भेजे जाने का स्पष्ट उल्लेख है

दैत्यो नाम्ना तृणावर्त कसभृत्य: प्रणोदित

—१० ७ २०

भागवत के अनुसार एक दिन अचानक गोद में कृष्ण का पर्वत तुल्य असह्य भार अनुभव करके यशोदा ने उन्हें पृथ्वी पर छोड दिया और गृह काज में लग गई । समस्त ब्रज को त्रस्त करता हुआ तृणावर्त आया और कृष्ण को उठा ले गया किन्तु कृष्ण का भार न वहन करने के कारण और उनके द्वारा कठ ग्रसे जाने से उसकी मृत्यु हो गई । ब्रज में एक शिला पर उसकी देह गिरी और उसके सारे अवयव विशीर्ण हो गए । गोपियो ने कृष्ण को राक्षस की छाती से उठाकर यशोदा को दिया जिसे देखकर नदादि सभी प्रसन्न हुए ।

इस मूल कथा भाग में से कवियो द्वारा बहुत से अश स्वीकृत किये गए और बहुत से नही भी । गुजराती में केशवदास ने पूर्णतया भागवत का अनुकरण किया है । ब्रजभापा में सूर और नददास ने तथा गुजराती में भालण, केशवदास और प्रेमानद ने भार-वृद्धि का वर्णन किया है किन्तु भारी पडने का जो कारण दोनो ने दिया है वह एक दूसरे से भिन्न है, भागवत में इसका कोई भी कारण नही दिया है ।[१०] भालण

तथा नंददास के अनुसार कृष्ण इसलिए भार वृद्धि करते हैं कि वे यशोदा को तृणावर्त के आघात से दूर रखना चाहते हैं किन्तु सूर तथा प्रेमानंद ने इसे स्पष्ट नही किया है।

गुजराती के एक कवि फाग ने अपने कसोद्धरण में अघासुर के साथ तृणावर्त की घटना के भी वृन्दावन में घटित होने के उल्लेख किया है जो भ्रांत है

वृन्दावन माहे असूर अघासूर त्रणावत संघारयो।

गुजराती के अन्य कवियों में नरसी ने 'तृणावंत तत्क्षण हण्यो रे' लिखकर तृणावर्त-वध का संकेत मात्र किया है वर्णन नही। नंददास ने तृणावर्त के कस द्वारा भेजे जाने का कथन नही किया है किन्तु भालण, सूर और प्रेमानन्द आदि ने किया है।[१८]

भालण की गोपियाँ कृष्ण को अकेला छोड़ने पर यशोदा को गालियाँ देती हैं।

वीलो मूक्यो रे बाल, जशोदा ने दे गाळ।
—द० स्क०, पृ० ३१

और नंदादि गोप खोए हुए कृष्ण की खोज बताने वाले को पुरस्कार देने की बात करते हैं

दृष्टे देखाडे कहान ने तो रिद्धि आपु अति घणी।

प्रेमानंद तृणावर्त के कारण यमुना को उलटी दिशा में प्रवाहित चिनित करते हैं जो अन्य किसी कवि ने नही किया है और न भागवत में ही है।

विपरीत यमुना जी नु जळ वहेतुं हरि हर्यां हवो हाहाकार
—श्रीमद् भा०, पृ० २५०

गोपियो के क्रंदन के अतिरिक्त प्रेमानंद ने नद तथा उपनंद द्वारा कृष्ण की खोज करने का भी उल्लेख किया है, यह भी अन्यत्र नही मिलता।

गोपीनां वृंद आक्रंदकरे, उपनन्द नन्द जी शोधता फरे।

कृष्ण द्वारा तृणावर्त के संहार का वर्णन सभी कवियो ने प्रायः भागवत के अनुसार किया है किन्तु सहार के अनन्तर उसके पूतना सदृश दाह-कर्म तथा दिव्यदेह पाकर विमान द्वारा स्वर्ग-गमन का वर्णन दोनो भाषाओ में केवल प्रेमानन्द ने ही किया है।[१९] भालण तथा सूरदास ने शकटासुर-वध तथा तृणावर्त-वध के बीच बाल-छवि वर्णन के कतिपय पद लिखे हैं।

कृष्ण का मृत्तिका-भक्षण एवं यशोदा द्वारा विश्व-दर्शन

भागवत में मृत्तिका-भक्षण के प्रसग में यशोदा द्वारा कृष्ण के मुख में विश्व दर्शन का वर्णन तो है ही किन्तु इससे पूर्व भी एक स्थल पर जम्हाई लेते समय इसका उल्लेख है—

> प्रीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम्।
> मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥
> सा वीक्ष्य विश्वं सहसा... ॥ ३७ ॥
>
> —स्कंध १०, अ० ७

मृत्तिका-भक्षण के समय भागवतकार ने पुन. इसी का वर्णन कुछ विस्तृत रूप में किया है.

> सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः।
>
> —अ० ८, श्लो० ३७

शार्गधरपद्धति में इस विषय का एक श्लोक है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन काल से ही मृत्तिका-भक्षण काव्य का स्वतन्त्र विषय बन चुका था।

> कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया,
> सत्यं कृष्ण, क आह ह्येष, मुसली मिथ्याम्बपश्याननम्,
> व्यादेहीति विदारिते च वदने दृष्ट्वा समस्तं जगत्,
> माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात् स वः केशवः॥

जम्हाई लेते समय के विश्व-दर्शन का वर्णन ब्रजभाषा मे नन्ददास के दशम स्कंध में मिलता है।[२०] सूरदास ने इसका यमलार्जुन के प्रसग में उल्लेखमात्र किया है।[२१] नन्ददास ने आगे चल कर इससे नामकरण का प्रसग सम्बद्ध कर दिया।[२२] इस प्रसग में प्रेमानन्द ने कृष्ण द्वारा मुख में विश्व-रूप-दर्शन कराने का कारण यशोदा का दुःखी होना बताया, इस प्रकार उन्होने एक नवीनता उत्पन्न कर दी है। तथा विराट विश्व का विस्तृत चित्रण करने के साथसाथ यशोदा के ज्ञान पाने तथा पुन. माया-वश होने का वर्णन करके और भी मौलिकता का प्रदर्शन किया है।[२४]

जृम्भा के स्थान पर मृत्तिका-भक्षण के प्रसग मे विश्व-दर्शन का विषय अधिक परम्परासिद्ध प्रतीत होता है क्योकि दोनो भाषाओ के अनेक कवियो ने इसे इसी रूप में प्रस्तुत किया है

भागवतकार ने कृष्ण के मिट्टी खाने का वर्णन स्वतन्त्रतापूर्वक न करके बलदेव ादि अन्य गोप बालको द्वारा की गयी शिकायत से उसकी व्यजना की है किन्तु र ने स्पष्टतया उसका चित्रण किया है।[25] उन्होने शिकायत का भी वर्णन किया ।[6] भागवत के 'हितैषिणी' शब्द को चरितार्थ करते हुए नददास ने यशोदा द्वारा ृष्ण के साथी बालको की देखभाल करने का आदेश दिलवाया है जिसका वर्णन वय भागवत में नही है।[7] इसके अतिरिक्त विश्व-दर्शन में भागवत के 'ब्रज राहा-यानमवाप' को निम्न पक्तियो मे अत्यधिक स्पष्ट करके प्रस्तुत किया है जो सूरसागर ें भी नही मिलता।

पुनि अपन पै सहित ब्रज देखि, जसुमति चकित भई जु विसेखि।
तहँ पुनि सुतहि लिये कर साँटी, डाँटति ज्यो न भखन करै माटी।

नरसी और भीम ने मृत्तिका-भक्षण के प्रसग का उल्लेख मात्र किया है।[28] ालण ने इस विषय का वर्णन ही नही किया है। उनके दशमस्कध मे जो प्रक्षिप्त पद वह व्रजभाषा का है।[29] केशवदास के श्री कृष्णक्रीडाकाव्य के पचम सर्ग का नाम-रण ही यह मृद्-भक्षण पर किया गया है।[30] सूर की तरह केशवदास ने मिट्टी ाने का स्पष्ट वर्णन किया है।[31] उन्होने नददास की तरह मुख में ब्रज का वर्णन तो दया है किन्तु उसमें कृष्ण यशोदा के उसी रूप में दीखने का चित्रण नही किया।

वदन माह् व्रज दीशे वस्पू, चराचर देखी कहे कारण किशू।
—श्रीकृ० क्री० का०, पृ० ४७

मानद ने इस विषय मे विशेष मौलिकता न प्रदर्शित करके भागवत का ही अनु-रण किया है। स्वाद के कारण मुट्ठी भर भर मिट्टी खाने की भावना अवश्य वीन है।

अक बार कौतिक कोधु नाथे मृत्तिका भक्षण करी,
स्वाद लाग्यो सामळिया ने मुखमा मूके मुठडी भरी।
—श्रीमद् भा०, पृ० २५४

महराने के पाडे का भोग और नंद का देवार्चन

व्रजभाषा म प्राप्त महराने के पाँडे की कथा तथा गुजराती मे उपल्ध नद के ार्चन के प्रसग में पर्याप्त साम्य है। पाँडे की कथा का वर्णन एकमात्र सूर के ाव्य में मिलता है और नद के देवार्चन का केशवदास के श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य तथा रमानन्द के हरिरस में। सूरसागर में पाँड की कथा से सम्बन्धित पाँच पद मिलते

है।[13] एक प्रकार से सारी कथा प्रथम पद में ही पूर्ण हो जाती है।[14] कथा का मुख्य आधार यह है कि कृष्ण अपना ध्यान किये जाने पर स्वत प्रकट होकर भोग लगाने लगते हैं और इस प्रकार अपना अवतारी होना चरितार्थ करते हैं। गुजरात के उक्त कवियो द्वारा वर्णित नद के देवार्चन का प्रसग भी इसी आधार पर निर्मित है, उसका लक्ष्य भी कृष्ण का ईश्वरत्व प्रदर्शन है।[15]

केशवदास तथा परमानन्द द्वारा वर्णित प्रसग लगभग समान ही है। परमानन्द के अनुसार कृष्ण के उठाये न उठने के कारण उनके अवतारी होने का बोध यशोदा को होता है और केशवदास के अनुसार गर्ग की भविष्यवाणी के स्मरण से।

पाँडे की कथा में कृष्ण स्वय अपने मुख से अपना भोग लगाने का आदेश ब्राह्मण को नही देते किन्तु नद के देवार्चन में वे स्पष्टतया अपनी पूजा कराने की आज्ञा देते हैं।

उलूखल बंधन और यमलार्जुन मोक्ष

भागवत में दी हुई यह कथा हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त तथा पद्मपुराण की कथा से कुछ भिन्न और अधिक परिवर्धित है। दोनो भाषाओ के कवियो ने इस विषय में भागवत का ही अनुकरण किया है। केवल प्रेमानन्द ही अपवाद हैं। प्रेमानन्द ने भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त दोनों का मिश्रण कर दिया है, ब्रजभाषा में सूर ने इसका दो बार वर्णन किया है। पहले वर्णन में कई स्थलो पर मौलिकता का प्रदर्शन मिलता है। पर दूसरा वर्णन अनुवादात्मक अधिक है। प्रेमानद के अतिरिक्त भालण तथा केशवदास आदि अन्य दशमस्कधकारो ने भी यमलार्जुन-मोक्ष का वर्णन किया है।

प्रेमानद द्वारा दोनो कथाओं का सम्मिश्रण तथा स्वकल्पित वर्णन—ब्रह्मवैवर्त में नारद के शाप से केवल एक कुबेरपुत्र नलकूबर का, जो रंभा के साथ क्रीडा कर रहा था अर्जुन वृक्ष हो जाना वर्णित है किन्तु भागवत में नलकूवर और मणिग्रीव दोनो का।[16] प्रेमानद ने नलकूवर और मणिग्रीव दोनो का रभा के साथ रमण वर्णित किया है।[17] ब्रह्मवैवर्त में जहाँ 'बद्ध वस्त्रेण वृक्षे च' लिखा है प्रेमानद ने वस्त्र को न स्वीकार करके भागवतोक्त 'दाम' को ही स्वीकार किया है। परन्तु दूसरी ओर वृक्ष-पात को लेकर होने वाले नद यसोदा के विसवाद को जिसका सकेत ब्रह्मवैवर्त में है, उन्होंने स्थान दिया है।[18] यही नही प्रेमानद ने अपनी ओर से इस गभीर परिस्थिति का शुभ परिहार भी करा दिया है जो ब्रह्मवैवर्त में भी नही है।

प्रेमानद ने यमलार्जुन का यमुनातटवर्ती होना तथा उनके गिरने से कृष्ण का छिप जाना चित्रित किया हैं यह भी उनकी अपनी कल्पना प्रतीत होती हैं।[३८] भागवत के वर्णन से ऐसा लगता है कि वृक्ष घर के समीप ही थे। इस घटना के अंत में कृष्ण के यमुनातट पर खेलने जाने का उल्लेख 'सरित् तीर गतं कृष्णं भग्नार्जुनमथा ह्वयत्' इसकी और भी पुष्टि करता है।

भागवत में डोरी के लिये 'तदपि द्व्यगुल न्यून' लिखा है और अन्य कवियो द्वारा इसका अनुकरण भी किया गया हैं परन्तु प्रेमानद ने दो के स्थान पर 'चार' कर दिया है।

साधी साधी थाकी यशोमती
रहे टुकडु आगळ चार रे।

—श्रीमद भा०, पृ० २५६

सूरदास की मौलिकता—भागवत के अनुसार यशोदा द्वारा कृष्ण के उलूखल बधन का कारण उनका घर में माखन चुराना है किन्तु सूरदास ने इससे भिन्न कारण दिये हैं। सवेरे एक ग्वालिन शिकायत करती हैं और दूसरी कृष्ण की बाँह पकड कर यशोदा के सामने लाती हैं तथा उलाहना देती है।[३९] सूर ने इसी के साथ भागवत के 'ययावुसिच्यमाने पयसि' का भी सकेत 'उफनत क्षीर जननि करि व्याकुल, इहि विधि भुजा छुडायो' लिखकर कर दिया है, परन्तु यहाँ कृष्ण बँधी हुई भुजा को छुडाते हैं और फिर बाँधे जाते हैं, इसके अनन्तर अन्य ग्वालिनें यशोदा को कृष्ण के बाँधने पर फिर उलाहना देती हैं।

दूसरा कारण नितान्त नवीन है। कृष्ण ने किसी ग्वालिन के लडके को मारा हैं और वह इसकी सूचना बलराम को देती हैं। इसके अनन्तर बलराम का यशोदा के पास आकर कृष्ण के बाँधने पर रोप प्रकट करना और अपने को स्थानान्तरित करने की याचना करना आदि सारा का सारा प्रसग मौलिक हैं।[४०]

उलूखल-बधन ही कृष्ण के 'दामोदर' नाम के मूल में माना जाता है। सूर तथा अन्य कई कवियो ने इसका स्पष्ट निर्देश किया है।[४१] भागवत में दामोदर शब्द के द्वारा इसका सकेत मात्र कर दिया गया है।[४२]

तद्दामोदरेणतरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ

भास ने अवश्य इसका उल्लेख किया है—

'दामोदलोणाम होदु त्ति'

—बालचरित, अ ३

परन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि सूर ने इस सत्य से अवगत होते हुए भी कृष्ण के उदर-बन्धन के स्थान पर कर-बन्धन का वर्णन किया है ।[१]

कृष्ण द्वारा यक्षो को चतुर्भुज रूप में दर्शन देने की बात भी सूर की अपनी कल्पना प्रतीत होती है ।

दोउ कर जोरि करत दोउ अस्तुति चारि भुजा तिन्हें प्रकट दिखाई ।
—सू० सा०, पृ० १८३

इसके अतिरिक्त बन्धन के प्रसग मे भागवत मे तो यशोदा 'स्वगेहदामानि' अर्थात् अपने घर को रस्सियो का ही प्रयोग करती है किन्तु व्रजभाषा के कई कवियो ने इसे बढा कर कई घरो की रस्सियो से बाँधने का वर्णन किया है । गुजराती कवियो ने इसी को दूसरे प्रकार से प्रस्तुत किया है ।[२]

लौकिक गोकुल लीलाएँ

कृष्ण के सस्कार

नामकरण—नामकरण का उल्लेख भागवत के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त, विष्णु तथा ब्रह्मपुराण में भी मिलता है । इसका वर्णन दोनो भाषाओ के कवियो ने किया है परन्तु प्रेमानद ने सर्वाधिक विस्तार दिया है । नददास, भालण केशवदास आदि ने भागवत का ही आधार लेकर अनुवाद कर दिया है । सूर के वर्णन में अनुवादात्मकता तो नही है परन्तु सक्षेप अधिक है ।

ा में वसुदेव द्वारा नामकरण के लिये गर्ग के भेजे जाने का उल्लेख मात्र मानद ने अपनी कल्पना से इस प्रसग का सागोपाग वर्णन किया है । ाम स्कध में वसुदेव द्वारा गर्ग का बुलाया जाना तथा उनका अच्छी र एव चरणामृत लेना वर्णित करते है । फिर वसुदेव उनसे सारा रहस्य ातापूर्वक गोकुल जाने, नामकरण कर आने तथा जन्मपत्र बनाने की ो है । इसके साथ वसुदेव को दक्षिणा का स्मरण आता है जिसे चुकाने ो असमर्थ पाकर वे भविष्य मे कृष्ण द्वारा चुकाए जाने की बात इसके उत्तर में गर्ग कहते हैं कि वे कृष्ण रूप में भगवान के दर्शन करने अतएव ऐसी ओछी बात कहना उचित नही ।[३]

बलकर गोकुल में नामकरण सस्कार का भी जो वर्णन प्रेमानद ने किया वत पर ही सर्वथा आधारित नही है । भागवत में बलराम के नामकरण ाम' 'बल' और 'सकर्पण' इन तीन का ही कथन है किन्तु ब्रह्मवैवर्त में

'हलधर', 'मुसली' आदि अन्य नामों का भी समावेश है। दोनो में 'संकर्षण' नाम की व्युत्पत्ति भी विभिन्न प्रकार से दी गई है।[४८] प्रेमानंद ने यहाँ पर स्पष्टतया ब्रह्मवैवर्त का अनुसरण किया है।[४९] 'मुसली' आदि नाम न देने से यह भी स्पष्ट है कि यह केवल आंशिक अनुकरण है, अनुवाद नही।

दूसरी बात यह है कि प्रेमानंद ने बलराम से कृष्ण के नामकरण के समय की परिस्थिति में भेद कर दिया है जिसका श्रेय कदाचित उन्ही को है। भागवत आदि पुराणो में सम्पूर्ण नामकरण संस्कार एकान्त में होता है किन्तु प्रेमानद न केवल कृष्ण का नामकरण एकान्त में कराया और साथ ही गर्ग द्वारा उनकी प्रदक्षिणाएँ भी।[५०] भागवत में एकान्त की बात वसुदेव अथवा गर्ग से न कहला कर नंद के मुख से कहलाई गई है। भागवत में बलराम का नामकरण कृष्ण से पहले होता है परन्तु ब्रह्मवैवर्त में बाद को। प्रेमानद ने इस विषय में भागवत का आधार लिया है। ब्रह्मवैवर्त में गर्ग इस अवसर पर गोलोक का वृत्तान्त सुनाते है। प्रेमानंद ने उसे ग्रहण नही किया। परन्तु गर्ग द्वारा कहे गये कृष्ण जन्म के रहस्य को अधिक विस्तार से वर्णित किया है।[५१] नंद कृष्ण को देखकर मोहग्रस्त हो जाते है और उक्त रहस्य उन्हें भूल जाता है।[५२]

सूरसागर में इस प्रसंग से सम्बन्धित केवल दो ही पद मिलते हैं जिसमें न वसुदेव के द्वारा गर्ग के भेजे जाने की बात है और न नामकरण की ही। एकान्त की भी बात नही है क्योकि वदीजन चारण आदि सभी नंद गृह में जा पहुँचते है।[५३]

नददास ने नामकरण के प्रसंग को उसके पूर्व आने वाले जम्हाई के प्रसंग से सम्बद्ध कर दिया है जिसका उल्लेख उसके अन्तर्गत किया जा चुका है। उनका तथा गुजराती के भालण और केशवदास आदि के द्वारा किया हुआ वर्णन भागवत पर ही आधारित है।

अन्नप्राशन—भागवत में तो नहीं किन्तु ब्रह्मवैवर्त में इसका उल्लेख है 'अस्यान्नप्राशनायाहं नामनुकरणाय च' (कृ० ख० १३, ४७) सूरदास तथा परमानद दास आदि अष्टछापी कवियों के अतिरिक्त अन्य किसी भी कवि ने इसका वर्णन नही किया है।[५४] सूर ने इसका कई पदों में पूर्णता से वर्णन किया। मणि-कंचन के थालों में षटरस व्यंजन बनते है और नंद स्वयं जाकर सारी जाति को बुला लाते है।

वर्षगांठ—वर्षगाँठ का प्रछन्न उल्लेख जन्मनक्षत्र के रूप में भागवत में दो स्थानों पर मिलता है।[५५] प्रथम में स्त्रियों के एकत्र होकर विधिपूर्वक कार्य सम्पादित करने का वर्णन है। इसका सूर तथा वल्लभरसिक ने अनुसरण किया है।[५६]

कर्णछेदन—कर्णछेदन का कोई पौराणिक उल्लेख नही मिलता और सूर ने ही इसका वर्णन किया है।[५७]

रक्षावन्धन—इसका भी पौराणिक आधार नही है, व्रजभाषा के ही कुछ कवियो ने इसका भी वर्णन किया है।[५८]

बाल-लीला

पुराणो में कृष्ण की बाल-लीलाओ को सर्वाधिक महत्व भागवत में प्राप्त हुआ। पूतना तृणावर्त आदि से सम्बन्धित पूर्वोक्त अलौकिक लीलाओ के अतिरिक्त अनेक लौकिक लीलाओ का भी वर्णन उसमें मिलता है। भागवत की लौकिक लीलाओ को आधार मानकर तथा स्वतत्र रूप से भी अनेक कवियो द्वारा कृष्ण के बाल-चरित का विशेष विस्तार किया गया। ऐसे कवियो में व्रजभाषा के सूर तथा गुजराती के भालण के नाम अग्रगण्य है। व्रजभाषा में सूर के अतिरिक्त अन्य अष्टछापी कवियो तथा रसखान, तुलसीदास आदि ने भी कृष्ण के बाल-विनोद का चित्रण किया है, इसी प्रकार गुजराती में नरसी, केशवदास, प्रेमानद, तथा शिवदास आदि ने।

आगे कृष्ण के घुटनो चलने, तुतलाने, खेलने माखन चोरी करने आदि लौकिक बाल-लीलाओ का उनकी पौराणिक पृष्ठभूमि अथवा स्वतत्र स्थिति को स्पष्ट करते हुए सक्षम तुलनात्मक निरूपण किया गया है।

घुटनों और पैरो चलना—इसका आधार भागवत ही है किन्तु एक तो उसमें बलराम और कृष्ण दोनो को समान महत्व दिया गया है दूसरे यशोदा, रोहिणी तथा नद किसी के द्वारा चलना सिखाने का कोई सकेत नही मिलता।[५९] सूर ने कृष्ण के उलटने, घुटनो चलने तथा पैरो चलना सीखने का अत्यन्त सूक्ष्म रूप से वर्णन किया है। नददास के नद भी कृष्ण को उँगली पकडा कर चलाते है। भाल्ण ने इसका वर्णन न करके केवल कृष्ण के रेगने का वर्णन किया है। उन्होने तथा केशवदास ने इसके अतिरिक्त कीचड में हाथ डालने तथा सोते हुए सर्प की पूँछ पकड लेने का भी वर्णन किया है। कीचड से खेलने की बात भागवत पर आधारित होने के कारण प्रेमानद आदि अन्य दशमस्कधकारो ने भी वर्णित की है।[६०]

हाथ में नवनीत लिए प्रतिबिम्ब दर्शन—इसका वर्णन सूर, नददास, भालण आदि के द्वारा हुआ है।[६१] सूर ने प्रतिबिम्ब सबन्धी चित्रण अनेक रूप में किया है।

बछडे की पूँछ पकडना—भागवत में 'प्रगृहीतपुच्छैं' के रूप में इसका उल्लेख है। गुजराती भाषा के ही कवियो ने इसका वर्णन किया है।[६२]

तोतली बोली—इसका वर्णन भागवत में नही मिलता किन्तु दोनो भाषाओ के कवियो ने किया है। प्रेमानद ने तोतली बोली के स्थान पर बोलना सीखने का वर्णन किया है।[१३]

आँगन में नृत्य—इस लीला का उल्लेख भागवत में नहीं है पर दोनो भाषाओ के कई कविया ने इसे चित्रित किया है।[१४]

मुँह में अँगूठा डालना—भागवत में इसका वर्णन मार्कण्डय ऋषि के प्रसग म बारहवें स्कध म मिलता है।

> **चार्वंगुलिभ्या पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम् ।**
> **मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयत वीक्ष्य विस्मित ॥ २५ ॥**

—अ० ९

दोनो भाषाओ के कवियो ने कदाचित् इसी को आधार मान कर ऐसा चित्रण किया है।[१५]

लघुशका करना—भागवत के 'कुरुते मेहनादीनि वास्तौ' के आधार पर कुछ गुजराती कवियो ने इसका वर्णन किया है।[१६]

मथानी पकडना—उलूखल-बधन के प्रसग में भागवत के एक श्लोक में इसका उल्लेख है।

> **ता स्तन्यकाम आसाद्य मथ्यन्तीं जननीं हरि ।**
> **गृहीत्वा दधिमन्थान न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥४॥**

—स्क १०, अ० ९

दोना भाषाओ के कवियो ने इसका वर्णन किया है।[१७] सूर तथा नरसी ने मथानी पकडने को लेकर पौराणिकता के आधार पर असाधारण परिस्थिति का चित्रण किया है जिसका सकेत भागवत में नही है। भालण ने भागवत का ही अनुकरण किया है और प्रमानद ने भी।

चोटी बढने की लालसा से दुग्धपान—यशोदा द्वारा चोटी बढने का प्रलोभन देकर दूध पिलाने की बात भागवतकार ने नही लिखी है पर सूर ने उसका वर्णन किया है।[१८] नरसी के पद में भी दूध पीने के कारण वेणी के बलभद्र की वेणी से भी अधिक मोटी हो जाने का वर्णन है।

> वेण वागे वहला जी तमारी, बलभद्र पे मोटी थाय रे।

—ना० कृ० का०, पृ० ४६२

'वेण' का अर्थ यहाँ बाँसुरी नहीं है अतएव 'वागे' शब्द 'बाढो' के अर्थ में प्रयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि इसके बिना 'वलभद्र थे मोटो थाय रे' से इसकी सगति ही नहीं बैठती। भालण ने यद्यपि चोटी बढने तथा दूध पीने का वर्णन एक ही पद में किया है परन्तु दूसरे को पहले का कारण बता कर प्रलोभन देने की बात व्यक्त नहीं की।[९]

जेंवन—इसका भी भागवतकार द्वारा वर्णन नहीं मिलता। सूर ने 'नन्द' और 'कान्ह' को एक साथ जीमते हुए चित्रित किया है।

'जेंवत कान्ह नन्द इक ठौरे'।

—सू० सा० पृ० १६१

नरसी ने यशोदा द्वारा कृष्ण के जिमाने का वर्णन किया। वहाँ इस प्रसग में नन्द तथा रोहिणी का कोई स्थान नहीं है केवल बलराम के साथ भोजन करने का उल्लेख है।[७०]

चदखिलौना—भागवत में इसका उल्लेख है ही नहीं, यह प्रसग कदाचित किसी अपौराणिक लोक प्रचलित परम्परा के कारण कृष्ण की बाल-क्रीडा के साथ समाविष्ट हुआ है क्योंकि नवी शती के मध्य की कृति तिरुमोली (दक्षिण के कवियो की कृष्ण लीला विषयक गीतियो का सग्रह) में पेरियालवार द्वारा लिखित चन्द्र और कृष्ण विषयक एक गीत उपलब्ध होता है।[७१] पेरियालवार के इष्टदेव वटपत्रशायी बालमुकुन्द बताए जाते हैं।[७२] गीत में यशोदा की भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई है किन्तु इसका कही भी वर्णन नहीं मिलता कि यशोदा चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को दिखाकर कृष्ण का मन बहलाती है। गुजराती और ब्रज दोनो भाषाओ में उसका वर्णन मिलता है।[७३]

सूरदास के कृष्ण चन्द्रमा को खेलने के लिये ही नहीं चाहते वरन् उससे क्षुधा शान्ति करने की इच्छा भी करते हैं और वे जलभाजन में प्रदर्शित चन्द्र बिम्ब से सतुष्ट न होकर रोते रोते सो जाते हैं, परन्तु नरसी के कृष्ण यह सब नहीं करते। एक बार तो वे माखन पाकर चन्द्रमा की याचना करना भूल जाते हैं और दुबारा जल में उसका प्रतिबिम्ब देखकर शात हो जाते हैं। न वे चन्द्रमा को भोजन के लिए चाहते हैं और न यशोदा उनसे यही कहती है कि चन्द्र तुम से डरता है। सूरदास का वर्णन अधिक विस्तृत है और उसमें नन्द आदि का उल्लेख करके विविध प्रकार की परिस्थितियों का सकेत किया गया है।

नरसी के अतिरिक्त किसी अन्य गुजराती कवि द्वारा इस प्रसग का वर्णन प्राप्त नहीं होता।

कृष्ण का सोना और मीठी कथा—शकट-भजन के प्रारम्भ मे भागवत में कृष्ण के शयन का वर्णन है जिसकी ओर शकट के प्रसग में सकेत कर दिया गया है। यहाँ तात्पर्य उन कवियो से है जिन्होने कृष्ण के शयन को स्वतन्त्र रूप से वर्णित किया है।

सूरदास ने यशोदा द्वारा कृष्ण के बहलाने सुलाने के निमित्त रामकथा कहलाई है जिसमें कृष्ण सीताहरण के प्रसग को सुनते ही चौंक कर लक्ष्मण से धनुष माँगने लगते है। इस प्रकार के वर्णन से उनका अवतारी रूप स्पष्ट किया गया है।

> रावण हरण कर्‍यो सीता को सुनि करुणामय नीद बिसारी।
> सूर श्याम कर उठे चाप को लछिमन देहु जननी भ्रम भारी।
>
> —सू० सा०, पृ० १५७

इसके अतिरिक्त सूर ने कई अन्य प्रसगो मे तथा स्वतत्र रूप से भी सोने का वर्णन किया है।[1] ब्रजभाषा के अन्य किसी कवि ने सभवत उपर्युक्त प्रकार का वर्णन नही किया। गुजराती कवियो में भी शयन का ही वर्णन मिलता है, इसका नही।[2] भालण के 'सूतो सूतो अति हसे' और सूर के 'कबहुँ अधर फरकावें' वाले पद लगभग समान स्थिति को व्यक्त करते हैं।

कृष्ण का जगाया जाना, प्रभाती—सूर ने कृष्ण के जगाये जाने का वर्णन किया है। प्रभात होने पर कृष्ण के साथी ग्वाल-बाल आ जाते है। यशोदा उन्हे इसकी सूचना दे कर जगाती है।[3] नरसी की यशोदा ग्वाल-बालो को बुला देने के लिए कहती है।

> हमणा हु तेडावु सगे रमवा गोवाला।
>
> —न० कृ० का०, पृ० ४६६

यो नरसी ने अनेक प्रभातियाँ लिखी है जिनमे जगाये जाने का वर्णन भी है।

(पृ० ४७५)

खेल—सखाओ के साथ कृष्ण नाना प्रकार के खेल खेलते है। सूर ने भौंरा-चकडोरी, चौगान, चोरमिहीचिनी आदि खेलन का वर्णन किया है।[4] नरसी ने भी आँख मिचौनी का उल्लेख किया है किन्तु प्रसग नितात पृथक् है। उद्धव से अपने जीवन की क्रीडाओ को कहते हुए कृष्ण इस खेल की भी याद करते है:

> ते दाडेने रम्या रे आखविचामणी रे,
> छबीलो छुपाणा कदम केरी छाह।
>
> —न० कृ० का०, पृ० ५३१

भागवत में इन खेलो का वर्णन वृदावन जाने के बाद मिलता है।

हाऊ—कृष्ण को डराने के लिए हाऊ का वर्णन दोनो भाषाओ में मिलता है भालण और केशवदास के पद आपस में बहुत मिलते हैं, केवल एक दो जगह पाठभेद है। सूर ने इसे कृष्ण के ईश्वरत्व से समन्वित करके भी प्रस्तुत किया है

माखनचोरी—कृष्ण की लौकिक बाललीलाओ में कदाचित् सबसे प्रमुख स्थ माखनचोरी का ही है। यह कथा न तो विष्णुपुराण में है न महाभारत में, हरिवंश प्रसगवश आ गई है, भागवत में अवश्य इसकी बडी धूमधाम है। भागवत के अतिरि यह ब्रह्मवैवर्त तथा भास के बालचरित में भी है।[९]

भागवत में यह एक प्रकार से यमलार्जुन-मोक्ष तथा उलूखल-बधन की भूमि स्वरूप भी आती है और उससे पहले भी इसका वर्णन है। कृष्ण चोरी से मार स्वय ही नही खाते वरन् बदरो को भी खिलाते हैं, बर्तनो को तोड देते हैं, क कुछ न पाने पर सोते हुए बालको को रुला देते हैं। छीके पर रखे हुए बर्तनो उलूखल आदि पर चढ कर छेद कर देते हैं और अँधेरे घर में अपनी मणियो प्रकाश में चोरी करते हैं।[८]

दोनो भाषाओ के कवियों ने इस लीला का वर्णन किया है। सूरसागर भागवत से इस विषय में निम्नलिखित भिन्नताएँ है।

१. माखनचोरी का वर्णन गोपियो के उपालभ के माध्यम से ही न कर स्वतत्र रूप से भी किया गया है।

२ स्वतत्र रूप से किये गए वर्णनो में अनेक ऐसी बातें हैं जिनका भागवत सकेत तक नही है।

३ भागवतोक्त कई बातो का वर्णन या तो मिलता ही नही या परिवर्ति रूप में मिलता है। न मिलने वाली बातों में उदाहरणार्थ कृष्ण के द्वारा बन्दरो क माखन खिलाना और परिवर्तित रूप में सोते हुए बालको पर दही छिडक देना। भाग वत में उन्हें जगाने का ही वर्णन है।

सूर द्वारा वर्णित माखनचोरी के विभिन्न रूप[११]—

अ. अतर्यामी कृष्ण एक ब्रज युवती के मन की बात समझ कर उसकी इच्छा पूर्ति के लिये अकेले माखनचोरी करते हैं और अपने प्रतिबिम्ब को अन्य बाल समझ कर उससे चोरी छिपाने का आग्रह करते हैं।

आ. ग्वाल-बालों के साथ चोरी करते हैं।

इ. अँधेरी साँझ में ग्वालिन के घर जाते है, छिपने के लिये चतुर्भुज रूप धारण कर लेते हैं। ग्वालिन उन्हे पकड़ कर यशोदा के पास ले जाती है।

ई. चींटी निकालने के बहाने चोरी करते हैं।

उ. अनेक ब्रज बालाएँ कृष्ण को आलिंगन में भर कर सुख पाती और चाहती थी कि कृष्ण उनके घर चोरी करें। ऐसी एक विशिष्ट गोपी को कृष्ण पाँच वर्ष की अवस्था से बारह वर्ष के होकर रिझाते हैं। उपालभ देते हुए वह अपनी फटी चोली यशोदा को दिखाती है।

ऊ. पकड़े जाने पर स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं।

ए. कृष्ण रास्ते चलती गोपियों के पास से माखन लूट भी लेते हैं।

अन्य कवियों द्वारा माखनचोरी का वर्णन[१]

नददास ने भी उलूखल एव सखाओं के सहारे ऊपर चढ कर माखन चुराने तथा अपने प्रतिबिम्ब से भेद न बताने की बात कहने का वर्णन किया है। तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली में भागवत की ही तरह गोपियों द्वारा 'गोरस हानि' के उलाहने देने का वर्णन किया है। नरसी का वर्णन भी उपालभ के ही रूप में है परन्तु उसमे कुछ भिन्नता है। कृष्ण बाँसुरी फेंक कर ऊँची मटकी को तोड़ देते है, तसले से दही पी लेते है और गोपी को भुला देने के लिए उसका हार तोड देते है। भालण और केशवदास के वर्णनों का आधार भागवत ही हैं किन्तु केशवदास ने यशोदा-गोपी-संवाद को विशेष विस्तार से प्रस्तुत किया है, उसमें कुछ नवीनताओं का भी समावेश मिलता है जैसे, कृष्ण गोपी द्वारा पकड़े जाने पर उसी गोपी के बालक का रूप बना लेते हैं। प्रेमानंद ने भी भागवत के अनुसरण के अतिरिक्त इस प्रसग में माखनचोरी को एक नवीन रूप दिया है। एक बार कृष्ण एक गोपी के घर घुस जाते हैं। वह जान जाती है और द्वार बंद करके उन्हें समझाती है फिर यशोदा के पास आ कर कहती है कि मैंने कृष्ण को माखन चुराते पकड़ लिया। यशोदा जब आकर देखती हैं तो कृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं। सारी गोपियाँ चकित होती हैं कि वे किस प्रकार निकल भागे इतने में यशोदा को एक दासी आकर सूचना देती है कि कृष्ण जाग गये है, चलो। यशोदा घर आती है तो कृष्ण वही मिलते हैं। इस प्रकार गोपियों का कथन असत्य सिद्ध हो जाता है।

बाल कृष्ण के व्याह की बात—तुलसीदास तथा भालण ने इसका भी उल्लेख किया है। तुलसी की यशोदा सास ससुर और दुलहिन का नाम लेकर कृष्ण को माखन चोरी से रोकती है।[२]

गोदोहन सीखना—भागवत में गोकुलवासी कृष्ण को गोदोहन में प्रवृत्त नहीं दिखाया गया है, किन्तु सूरसागर में उनके द्वारा गोदोहन-कार्य सीखने का वर्णन प्राप्त होता है।[८] नरसी ने गोदोहन का जो वर्णन किया है उसमें कृष्ण सीखने की इच्छा व्यक्त नहीं करते वरन् एक गोपी उन्हें इस कार्य में पटु समझ कर आमंत्रित करती है।[८] नरसी के अतिरिक्त गुजराती के अन्य किसी कवि ने इस प्रकार का वर्णन नहीं किया है।

अलौकिक वृन्दावन-लीलाएँ

वृन्दावन गमन—गोकुल से वृन्दावन गमन करने का निश्चय सूर के अनुसार यशोदा और नंद, नंददास, भालण तथा केशवदास के अनुसार उपनंद, प्रेमानंद के अनुसार नंद, उपनंद तथा वृषभानु की सम्मति से हुआ।[८] इन सबमें भालण, नंददास और केशवदास के वर्णन भागवत के अधिक निकट हैं क्योंकि उसमें उपनंद का इसी प्रकार उल्लेख है।

. तत्रोपनन्द नामाह गोपोज्ञान वयोधिक

—१०।११।२०

इस घटना का अन्य पुराणों में कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन है किन्तु सभी कवियों ने भागवत का ही आधार लिया है। हरिवंश में भेड़ियों का आक्रमण भी गोकुल छोड़ने का कारण बनता है।[८] किन्तु किसी भाषा के कवि ने ऐसा नहीं लिखा। हरिवंश में वृन्दावन-गमन के समय कृष्ण की आयु सात वर्ष की है पर सूर ने पाँच वर्ष और प्रेमानंद ने चार वर्ष की मानी है।[८] सूर का वर्णन संक्षिप्त तथा प्रेमानंद का विस्तृत है।

प्रेमानंद के विस्तृत वर्णन में वस्तु की दृष्टि से कई बातें विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

प्रेमानंद ने वृन्दावनस्थ इस नवीन निवास-स्थल में भी गोकुल नाम का उल्लेख किया है।

वहूल निवास श्री गोकुळ गाम, घणी गाय माटे गोकुळ नाम।

—श्रीम० भा०, पृ० २६०

यहाँ नहीं सध्या समय कृष्ण के गोकुल फिर जाने और वृन्दावन में आए हुए वत्सासुर के नाशोपरान्त उन्होंने गोकुल में आनंदोत्सव होने का स्पष्ट संकेत किया है।

आणद गोकुळ मा घणो, वच्छ-वध पराक्रम कह्यु रे।

—श्रीम० भा०, पृ० २६१

इसके अतिरिक्त प्रेमानद ने वृन्दावन में आ जाने के बाद भी गोकुल की बाल-लीलाओ, माखन-चोरी आदि का वर्णन किया है।[९] ऐसा मिश्रण कदाचित् प्रेमानद ने ब्रह्मवैवर्त के 'बकप्रलम्बकेशिवधपूर्वकवृन्दावनगमननामषोडशोध्यायः' के अनुसार किया हो। नरसी ने भी बकासुर, अघासुर तथा केशी आदि का गोकुल ही में उल्लेख किया है।[१०]

वत्सासुर तथा बकासुर—इनके सम्बन्ध में दोनो भाषाओ के कवियो में प्राय बहुतो ने भागवत का अनुसरण किया है केवल प्रेमानद ने परिवर्धित करके नवीनता प्रदान की है। सूर के वत्सासुर-वध मे भी एक नवीनता है वह यह है कि एक बार बलराम और दुबारा कृष्ण द्वारा उसे मृत्यु प्राप्त हुई।[११] प्रेमानन्द ने वत्स और बक दोनो असुरो को गोकुल के अन्य असुरो की तरह कस से सम्बद्ध कर दिया है तथा वपु-वृद्धि द्वारा उनके वध के पश्चात् विमान के आने का वर्णन किया है। भागवत में इन बातो का किंचित् सकेत नही है। प्रेमानद ने बक को बकी अर्थात् पूतना का भाई बताया है। भालण तथा नददास ने भी वैसा ही उल्लेख किया है। नददास ने तो बक का कस से स्पष्ट सम्बन्ध बताया है।[१२] जिसका आधार कदाचित् भागवत का 'बक कस सख' है। इस स्थल पर बकी बक का यह सम्बन्ध न भागवत में दिया है न ब्रह्मवैवर्त में। दूसरी ओर कृष्ण के अग्निवत् होने के कारण बक के मुख से निकलने का वर्णन दोनो पुराणो मे है पर प्रेमानद ने नही किया।

अघासुर-वध—इस प्रसग में आकर भागवत में भी बकी-बक के साथ अघासुर के भ्रातृ सम्बन्ध तथा कस प्रेरित होने की बात स्वीकार की गई है।[१३] सभवत इसी उल्लेख के कारण कवियो ने बकासुर को पूतना का भाई लिखा है। सूरदास ने अघासुर के वध का दो बार वर्णन किया है फिर भी उक्त दोनो बातो में से किसी का उल्लेख नही किया, नददास में अवश्य यह बातें पाई जाती है।[१४] भालण ने अघासुर को कस से सम्बद्ध न करके केवल पूतना से ही सम्बन्धित माना है। प्रेमानद की स्थिति भालण के विपरीत है। उन्होंने अघासुर को कस द्वारा प्रेरित लिखा है पर पूतना के भाई होने की ओर सकेत नही किया। अघासुर के लिए भी स्वर्ग से विमान आया यह बात लिखना प्रेमानद नहीं भूले।

अघासुर स्वर्ग गयो बेसी दिव्य विमान रे।

—प्रेम० भा०, पृ० २६३

विधि मोह—इस कथा का भी आधार भागवत ही है। सूर ने इसका वर्णन चार पाँच बार किया है।[१५] परन्तु किसी भी स्थान पर भागवत की तरह बलराम को

जिज्ञासा की बात *'सर्व पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणावलोऽर्पयत्'* (१० १३ ३९) का उल्लेख नही मिलता। फिर सूर ने भागवत के 'अन्यत्रे' को स्पष्टतया ब्रह्मलोक में बदल दिया ।

'हरि लै बालक वत्स ब्रह्मलोकहिं पहुँचाये'

—सू० सा० पृ० १९३

इसके अतिरिक्त एक स्थल पर क्षण में ब्रह्मा का भूतल और क्षण में ब्रह्मलोक आना जाना भी लिखा है।[९४] यह एक नवीनता है। सारी कथा को संक्षेप में कहते हुए भालण ने भी सूर की तरह ब्रह्मा के बार बार आने जाने का उल्लेख किया है।[९५] नंददास और केशवदास ने भागवत का प्राय अनुवाद ही किया है। प्रेमानंद ने विधि-मोह वर्णन में भी अनेक नवीनताएँ हैं ब्रह्मा को परीक्षा लेने की प्रेरणा अघासुर-वध में प्रदर्शित कृष्ण की अलौकिक शक्ति को देखकर ही नही हुई वरन् उसके चर्म पर बैठ कर ग्वालो का जूठा खाते देख ब्रह्मा को उनके ईश्वरत्व पर सन्देह हुआ जिसके कारण उन्होने गोवत्सहरण किया।[९६] सूर की तरह प्रेमानंद ने भी 'अन्यत्रे' के स्थान पर स्पष्टतया ब्रह्मलोक का उल्लेख किया है।

वच्छ मूक्या ब्रह्मलोकमा वळी ब्रह्माजी आव्या फरी ।

—श्रीम० भा०, पृ० २६४

ब्रह्मा द्वारा मीन-रूप धारण—नरसी मेहता ने विधि-मोह का वर्णन न करके एक नवीन कथा दी है जिसका वर्णन कदाचित् अन्य किसी कवि ने नही किया। इस कथा में ब्रह्मा कृष्ण को ग्वाल बालो के समेत कलेऊ करते देखकर महाप्रसाद पाने की इच्छा से मीन रूप धारण करके यमुना में प्रविष्ट हो जाते हैं, कृष्ण इसे जान कर यमुना मे हाथ न धोकर कमली से ही हाथ पोछ डालते है। एक अन्य स्थल पर यही कथा पाठ भेद से पुन वर्णित मिलती है।[९९]

धेनुकासुर वध—इस प्रसग में पुराणो में महत्त्वपूर्ण मतभेद है। हरिवंश और भागवत के अनुसार तालवनवासी गर्दभो का स्वामी धेनुकासुर बलराम पर प्रहार करता है और वे ही उसका सहार करते है किन्तु ब्रह्मवैवर्त मे एक तो यह कथा कालीय दमन और गोवर्धन धारण आदि के पश्चात् दी गई है दूसरे उसमें धेनुक को दुर्वासा शापित बालिपुत्र साहसिक बतलाते हुए उसके वध का श्रेय कृष्ण को दिया गया है।[१००]

दोनो भाषाओ के उन सब कवियो में जिन्होने इस प्रसग का वर्णन किया है केवल भालण और प्रेमानद ने ब्रह्मवैवर्त का अनुसरण करके कृष्ण द्वारा धेनुक का वध कराया है। भागवत के १५वें अध्याय की इस कथा को भालण ने १९वें अध्याय में प्रलम्ब-वध और दावाग्निपान के पश्चात् दिया है। भालण ने भी धेनुक के वध का श्रेय कृष्ण को दिया है और ब्रह्मवैवर्त के अनुसार ही गोकुल का उल्लेख किया है अन्यथा भागवत के अनुसार घटनास्थल तो वृन्दावन ही है।[101] प्रेमानद का यह अनुसरण आशिक है क्योकि न तो उन्होने दुर्वासा-शाप का उल्लेख किया है और न क्रम मे ही उन्होने भागवत की भाँति इसको कालीय-दमन के पूर्व रक्खा है। गुजराती के केशवदास और ब्रजभाषा के सूर तथा नददास ने भागवतानुसार धेनुकासुर का वध बलराम से ही कराया है।[102]

कालीय-दमन—यह कथा भागवत के अतिरिक्त ब्रह्म, विष्णु, पद्म, हरिवंश और ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्राप्त होती है परन्तु सूरदास ने जिस रूप में इसे प्रस्तुत किया है वह इनमें से किसी पुराण में नही मिलता। सूरदास ने इस प्रसग को कस से सम्बद्ध कर दिया है। नारद कस के पास जाकर उसके सामने कालीदह के कमल नद के द्वारा मँगवाने का प्रस्ताव रखते है फलत कस एक दूत के हाथ तत्काल राजाज्ञा पत्र द्वारा नद के पास भेज देता है। पत्र पाकर नद और यशोदा भयभीत एव दुखी हो जाते है। तब अतर्यामी कृष्ण उनके पास जाकर कारण पूछते है और जानने पर कस के पास कमल भेजने का आश्वासन देते है। कालीदह से फूल लाने तथा गोप कन्याओ को देने का उल्लेख भास ने अपने बालचरित के चतुर्थ अक मे किया है परन्तु कस से उसका कोई सबन्ध नही है। इस भूमिका के पहले सूर कृष्ण को यमुनादह में गिरने का स्वप्न देखते हुए चित्रित करते है।[103] यमुनादह में कूदने का दूसरा कारण भी सूर ने दिया है। कृष्ण सखाओ के साथ यमुना तट पर कदुक-क्रीडा करने जाते है। खेलते खेलते उनके द्वारा श्रीदामा की गेंद यमुनादह में गिर जाती है। श्रीदामा उसे पाने का हठ करता है और तब कृष्ण अपना वास्तविक उद्देश्य बताकर एक तट-वर्ती कदम्ब से कूद कर जल में प्रविष्ट हो जाते है।[104] भागवत में इस कथा-वस्तु का उल्लेख नही है।

गुजराती कवि प्रेमानद ने कमल लाने की बात का सकेत किया है और कदुक-क्रीडा का वर्णन भी जो सूर जैसा ही है। यहाँ अन्तर एक तो यह है कि श्रीदामा का उल्लेख नही है दूसरे यमुना से गेंद निकालने की शर्त भी कृष्ण ने ही लगाई है।[105]

दह में प्रविष्ट होते ही कृष्ण और नागपत्नियों में वार्तालाप होना है जिसे ब्रज-भाषा में सूर ने प्रस्तुत किया है और गुजराती में नरसी तथा प्रेमानद ने। भागवत

में नागपत्नियाँ नाग नाथे जाने के बाद उसकी मुक्ति के लिए प्रार्थना करती दिखाई गई हैं, उसके पहले नहीं। नरसी ने नाग-दमन का पूर्णत भिन्न कारण दिया है। कृष्ण मथुरा में द्यूत-क्रीडा में नाग का शीश हार आए हैं उसी को प्राप्त करने के लिए वह यमुनादह में प्रवेश करते हैं ।[१०६]

सूरदास के अनुसार कृष्ण ने सोते हुए नाग की पूँछ पर पैर रख कर उसे बलात् जगा दिया किन्तु प्रेमानद ने कृष्ण की मुरली के नाद से उसके जग जाने का वर्णन किया है।[१०७] भागवत में नाग कृष्ण के कूदने से प्रताडित जल के शब्द को सुनकर आ जाता है सोने की बात वहाँ है ही नहीं। इसके अतिरिक्त शेष वर्णन प्राय सभी कवियो ने भागवत के ही अनुसार दिया है। सूर ने अपनी नवीन कथा का उपसहार भी अत में दिया है। कृष्ण नाग नाथने के बाद कमलो का समूह उस पर लाद कर तट तक लाते हैं। बाद में सब कमल सहस्र गाडियो मे भरकर पत्र सहित गोपो के द्वारा कस के पास भिजवा दिये गए। कस प्रसन्न हो कर नद को 'शिरो पाव' देता है और कृष्ण बलराम को कलेवा भी भेजता है।[१०८] प्रेमानद ने नाग-लीला को गोकुल मे ही घटित माना है। इसके अतिरिक्त उन्होने १६वें अध्याय के वर्णन में कदम्ब विषयक परीक्षित की जिज्ञासा का शुकदेव द्वारा जो समाधान कराया है वह भी भागवत के दशम स्कध के १६वे अध्याय में नही है। ऐसा वर्णन भालण ने भी किया है जो उनके दशम स्कध के उनीसवें अध्याय में मिलता है।
प्रेमानद—'कदमनो वृक्ष केम रह्यो ते वदो व्यास कुमार'॥ श्रीम० भा०, पृ० २७३
भालण—'वृक्ष कदव जे सूक्यो नहि ते कहो मुजने खरु'॥ द० स्क०, पृ० ६५

प्रेमानद का कालीय-दमन प्रसग कस से किसी प्रकार भी सम्बद्ध नही है और कदव इस दृष्टि से वे सूर की अपेक्षा भागवत के अधिक समीप हैं।

प्रलम्बासुर-वध—भागवत में यह असुर एक गोप के वेश में आता है और उसका सहार बलराम करते हैं, विष्णु, ब्रह्म, हरिवश, आदि पुराणो में भी यही रूप है, परन्तु ब्रह्मवैवर्त में प्रलम्ब एक साँड है जिसका वध कृष्ण करते है।[१०९] भास भी सकर्षण से ही प्रलम्ब का वध कराते हैं।

सूरदास ने इस कथा के दोनो रूपो को सयुक्त कर दिया और कृष्ण द्वारा गोप रूप प्रलम्बासुर का वध उसी प्रकार कराया जिस प्रकार ब्रह्मवैवर्त में है। उसमें कृष्ण वृष रूप असुर के दोनो सीग पकड कर मार डालते हैं, इसमे दोनो हाथ वह कृष्ण को तृणावर्त की भाँति आकाश में उडा ले जाता है।[११०] सूर और प्रमानद नेउसे कंस से सम्बद्ध कर दिया है। प्रेमानद के अनुसार प्रलम्ब को मार कर कृष्ण-बलराम सगोप

गोकुल लौट आते हैं।[111] नंददास, भालण तथा केशवदास इन सभी ने भागवत का ही आधार लेकर इस कथा को लिखा है। फलत कोई उल्लेखनीय अंतर नही मिलता। नरसी ने दावानलपान के अनंतर एक 'वत्सासुर' का उल्लेख किया है। सम्भवत उनका तात्पर्य प्रलम्बासुर से ही है यदि ऐसा है तो नरसी ने उसे गोपरूप में न प्रस्तुत कर के वृषरूप में ही प्रस्तुत किया है।[112]

गुजराती कवि वीकुवसही ने प्रलम्बासुर के आगमन के पहले कृष्ण बलराम की मंडली द्वारा राजा प्रजा तथा हाट का नाटकीय वर्णन किया है। गोप बालकों में से कोई सुनार बनता है कोई बजाज।[113]

दावानल-पान—भागवत में दावानलपान का दो बार वर्णन है तथा ब्रह्मवैवर्त में एक बार। किन्तु दोनों में अंतर यह है कि भागवत के कृष्ण दावानल का पान कर जाते हैं और ब्रह्मवैवर्त में उसका शमन करते हैं।[114] इन दोनों पुराणों में दावाग्नि के उद्भूत होने का कोई कारण नही दिया गया किन्तु सूर ने इसे भी अन्य असुरों की तरह कंस से सम्बद्ध कर दिया। नंददास ने दावानल को अभिचार-जन्य माना पर पान करने के विषय में निश्चित कुछ नही कहा। एक जगह तो कृष्ण की एक शक्ति उनकी आज्ञा से उसका पान करती है और दूसरी जगह स्वयं कृष्ण उसका पान करते हैं।[115]

गुजराती के किसी कवि ने ऐसा वर्णन नही किया। भालण तथा केशवदास ने भागवत का अनुसरण मात्र किया है। सूर ने इस कथा का वर्णन केवल एक बार प्रलम्ब-कथा के पूर्व किया है परन्तु अन्य सभी कवियों ने भागवत की भाँति दो बार वर्णन किया है। दावानल-पान करने से पहले कृष्ण का गोपों को आँख मींचने का आदेश देना भागवत में दूसरे प्रसंग में है किन्तु सूर तथा प्रेमानंद ने कदाचित् उसी के प्रभाव से पहले प्रसंग में भी उसका समावेश किया है। नरसी ने भी ऐसा वर्णन एक स्थल पर किया है परन्तु उन्होंने आँख खुलने पर गोपों का मुंजवन से भांडीरवन पहुँच जाने का उल्लेख किया है।[116]

प्रेमानंद ने १९वें अध्याय में जो वर्णन किया है उसमें दो नवीनताएँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम, गोपों द्वारा दावानल से त्रस्त गायों की रक्षा की प्रार्थना किये जाने पर कृष्ण का वेणुनाद से उन्हें आकर्षित करना, वे सब की सब उनके दर्शनार्थ आग की ओर ही दौड़ती हैं परन्तु उनका एक रोम भी मलिन नहीं होता। द्वितीय यह कि दावाग्नि उनका पीछा करता हुआ कृष्ण के पास आता है और कृष्ण उसे वहीं अंजलि में लेकर पी जाते हैं। घटना के अन्त में प्रेमानंद सबके गोकुल लौट आने का उल्लेख करते हैं, बीच में वृन्दावन नाम आने से यह सिद्ध होता है कि उनका घटनास्थल वृन्दावन ही है गोकुल नहीं।[117]

'वृन्दावन गायक परजल्यो'
—श्रीम० भा०, पृ० ७७४

गोवर्धन-धारण—यह प्रसग भागवत (अ०२४, २५, २६, २७) के अतिरिक्त ब्रह्म, विष्णु, पद्म, हरिवंश तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी प्राप्त होता है किन्तु सूर और प्रेमानद को छोड़कर नददास, भालण, केशवदास आदि दोनों भाषाओं के कवियों ने प्राय भागवत का अनुवाद मात्र कर दिया है। दशम स्कंध से पृथक् नददास ने इस विषय पर स्वतन्त्र रचना 'गोवर्धनलीला' भी रची। सूरसागर में गोवर्धन-धारण का प्रसग तीन बार वर्णित है और यह भागवत से निम्न अशों में भिन्न है।[११८]

१. भागवत में इस कथा का प्रारम्भ नद और कृष्ण के विचार-विनिमय से होता है किन्तु सूर इसका प्रारम्भ यशोदा और नद के सवाद से करते हैं। नद इन्द्रपूजा को विस्मृत कर देते हैं जिसका स्मरण यशोदा दिलाती हैं तथा साथ ही अपनी सखियों को भी सूचित करती हैं।

२ नद, उपनद और वृषभान को बुलवाते हैं। भागवत में 'वृद्धानन्दपुरोगमान्' के द्वारा अन्य गोपों की उपस्थिति का सकेत मात्र है।

३. सूर के कृष्ण नद के आगे इन्द्र के स्थान पर गोवर्धन की पूजा का प्रस्ताव अत्यन्त सक्षेप में रख देते हैं, भागवत की तरह वे उसकी श्रेष्ठता के प्रतिपादन में कर्म-विधान की दार्शनिक व्याख्या नहीं करते। इस विषय में कृष्ण को एक स्वप्न होता है। गोवर्धन-पूजा के लिए जाने वालों में सूर राधा का भी उल्लेख करते हैं।

४. भागवत में कृष्ण स्वय द्वितीय रूप धारण करके अपने को पर्वत कहते हुए भोग स्वीकार करते हैं किन्तु सूर के अनुसार पर्वत ही सहस्र भुजशाली रूप धारण करके भोग लगाता है और उसका यह रूप बिल्कुल कृष्ण के समान है।

५. इन्द्र ने जलवृष्टि के लिए भागवत में केवल 'सावर्तक' गण को आज्ञा दी है जबकि सूर ने 'मेघवर्तक' आदि अनेक नाम दिए हैं।

६. भागवत के अनुसार गर्व भजन के अनन्तर इन्द्र केवल सुरभि को लेकर एकान्त में कृष्ण के आगे प्रणत होते हैं किन्तु सूर ने उनके साथ समस्त देवताओं के आने का वर्णन किया है।

इसी प्रकार प्रेमानद के वर्णन की निम्न विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं।[११९]

१. कथारम्भ के समय सवाद के प्रसग में यशोदा और नद के स्थान पर वृषभानु और उपनद का उल्लेख मिलता है।

२. कृष्ण ने गोवर्धन-पूजा के पक्ष में जो तर्क दिये हैं उनमें कर्म-विधान का आधार नहीं लिया गया है।

३. प्रेमानद के अनुसार कृष्ण ही पर्वत में से हाथ लम्बा करके पूजा स्वीकार करते हैं।

४. इन्द्र को उसकी उपेक्षा की सूचना नारद द्वारा मिलती है तब इन्द्र बारह मेघो को आज्ञा देते हैं जिनके नाम नही दिये गए हैं।

५. प्रसंग के अत में परीक्षित प्रश्न करते हैं कि सात दिन जो मूसलाधार वृष्टि इन्द्र ने की उसका सारा जल कहाँ गया और शुकदेव जी उत्तर देते हैं कि वह उनकी क्रोधाग्नि से प्रतप्त गोवर्धन में लीन हो गया। एक बूंद भी बाहर नही गई। भागवत में ऐसे प्रश्न का कोई सकेत नहीं मिलता।

समानताएँ—१. गोपो ने अपने लकुट लगाकर गोवर्धन उठाए रखने में कृष्ण की सहायता की थी। इसका वर्णन सूर और प्रेमानद दोनो ने किया है पर प्रेमानद मे विशेष प्रकार का विस्तार तथा मौलिकता है। उनके अनुसार यशोदा ने मथानी लगा दी जो छोटे बालक नही पहुँच पाते उन्होने उलूखल और वृषभ का सहारा लिया। जिसके मन मे गर्व आया कृष्ण ने उसकी ओर पर्वत को झुका दिया आदि।[१३०]

२. कनिष्ठिका उँगली पर पर्वत-धारण की बात ब्रह्मवैवर्त में और हाथ पर उठाने की बात भागवत में है। सूर तथा नददास ने भागवत और प्रेमानद, भालणादि ने ब्रह्मवैवर्त का अनुकरण किया है तथा किसी किसी ने एक पग से सात दिन खड़े रहने का भी उल्लेख किया है।[१३१]

इस समय प्रेमानद ने कृष्ण को चतुर्भुज रूप में प्रस्तुत किया है, नंददास ने दोनो हाथो से वेणु बजाने का वर्णन किया है। नरसी मेहता के एक पद से, जिसमें गोवर्धन-धारण का भी उल्लेख है, ज्ञात होता है कि उनकी कल्पना में कृष्ण का चतुर्भुज रूप था किन्तु उसमें चारो हाथो की जो क्रियाएँ वर्णित हैं वे गोवर्धन धारण की स्थिति की द्योतक नही है।[१३२]

वरुणगृह से नंद का उद्धार तथा गोपो द्वारा वैकुंठ दर्शन—यह घटना केवल भागवत में वर्णित है। एकादशी व्रत के पश्चात् नद यमुना स्नान के लिए जाते हैं वहाँ जल में प्रविष्ट होते हो वरुण का एक असुर उन्हें पकड कर वरुण लोक ले जाता है। कृष्ण उन्हे बचाने के लिए जाते हैं। वरुण उन्हें भगवान समझ कर पूजा स्तुति करते हैं फिर वे नद को साथ लेकर वापस लौट आते हैं। नददास ने इन्द्र की तरह वरुण

के गर्व को भी चूर करने की बात कही है, सूर ने एक भृत्य के स्थान पर वरुण के अनेक दूतों द्वारा वरुणपाश से बद्ध करके नंद को वरुण लोक ले जाने की बात लिखी है। ऐसे ही कुछ अन्य सामान्य अन्तर है।[133]

गुजराती कवियों में प्रेमानंद में इसी प्रकार के कतिपय अन्तर मिलते हैं किन्तु इस कथा के विशेष महत्वपूर्ण न होने के कारण वे भी महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस प्रसंग का एकमात्र उद्देश्य कृष्ण को परमेश्वर सिद्ध करना है।

वैकुंठ दर्शन—भागवत के निम्नलिखित श्लोक में इसका साधारण सा उल्लेख है—

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकस्वं गोपानां तमसः परम् ।।
—१०.२८.१४

सूर ने इसका उल्लेख नहीं किया पर प्रेमानंद ने इसे अधिक विस्तार दिया है। प्रेमानंद के अनुसार कृष्ण गोकुल को ही वैकुंठ में परिणत कर देते हैं। नंददास ने ऐसा चमत्कार प्रदर्शित नहीं किया केवल यही लिखा—

बैकुंठ मधि सुख्ख है जिते। सत्र वृन्दावन ठाठा तिते।
—नंद०, पृ० ३२०

सर्प, शंखचूड, अरिष्ट, केशी और व्योम वध—भागवत में रास के अनन्तर वर्णित इन प्रसंगों में से अरिष्ट तथा केशी की कथा अन्य अनेक पुराणों में प्राप्त होती है। ब्रह्मवैवर्त में केशी वध रास से बहुत पूर्व प्रलम्बासुर वध के ठीक बाद में मिलता है। अरिष्टासुर का नाम इस पुराण में नहीं है किन्तु प्रलम्बासुर का रूप भागवत के अरिष्टासुर के ही समान है। भागवतकार ने पूतना और केशी को ही कंस से सम्बद्ध माना है।[134]

सूरदास ने भी केशी के प्रसंग को इन पाँचों की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। व्रजभाषा में सूरसागर में ही इसका वर्णन है। इसके अतिरिक्त सूर ने सर्प रूपी विद्याधर, शंखचूड, अरिष्ट, केशी तथा व्योमासुर के वध के प्रसंगों को भी वर्णित किया है। सूर ने अरिष्टासुर नाम न दे कर वृषभासुर नाम दिया है तथा केशी को व्योमासुर की तरह गोप रूप दे दिया है और व्योमासुर को भौमासुर कहा है।[135]

गुजराती कवियों में नरसी ने इन घटनाओं का कृष्ण के जीवन में उल्लेख भी नहीं किया है। भालण, केशवदास प्रेमानंद तथा अन्य सभी दशमस्कंधकारों ने यथा-क्रम में यथास्थान इन प्रसंगों का वर्णन किया है। इनमें प्रेमानंद ने स्वभावानुसार

भागवत का अनुवाद मात्र न करके प्राय सभी प्रसगो को कुछ न कुछ परिवर्धित अथवा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। अरिष्टासुर के स्थान पर उन्होंने भी वृषभासुर का प्रयोग किया है साथ ही उसे कस से सम्बद्ध भी कर दिया है। यह वृषभासुर वृन्दावन न जाकर गोकुल जाता है। प्रेमानद ने केशी को सूर की भाँति गोप रूप नही दिया। व्योमासुर को भी कस की आज्ञा से आया हुआ लिखा है और सक्षेप मे उसके वध का भी वर्णन किया है।[१३६]

लौकिक वृन्दावन लीलाएँ

गोचारण—गोचारण का वर्णन प्राय प्रत्येक अलौकिक लीला के प्रारभ में मिलता है क्योकि कृष्ण इसी निमित्त प्रात घोष से बाहर जाते थे और सन्ध्या समय लौटते थे। सूर ने इसका वर्णन अन्य कवियो की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है। उन्होने गोप बालको की विविध क्रीडाओ, गायो के भटक जाने, उन्हें खोजने, वशी बजाकर या वृक्ष पर चढ कर उन्हें बुलाने आदि अनेक बातो का समावेश किया है।[१३७]

भालण और प्रेमानद आदि गुजराती कवियो ने कृष्ण के गाय बछडे चराने का वर्णन किया है। प्रेमानद ने इस प्रसग में सूर की भाँति गायो के नाम भी दिये हैं। उनके कृष्ण बछडे अन्य गोपो को चराने के लिये दे देते हैं और स्वय गायें चराते हैं। सूर ने कृष्ण के साथ जिन बालको का वर्णन किया है वे सयाने हैं पर प्रेमानद के अनुसार समान।[१३८]

कात्यायनि-व्रत और चीरहरण—इसका वर्णन भागवत द० स्क० के अध्याय २२ और ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्मखण्ड के अध्याय २७ मे प्राप्त होता है। दोनो भाषाओ के कवियो ने भागवत का ही अनुसरण किया है केवल दो एक स्थलो पर ब्रह्मवैवर्त का प्रभाव दिखता है। जैसे सूरसागर के एक पद में राधा-कृष्ण के वार्तालाप और कदब का उल्लेख। किन्तु यही पद कुछ पाठभेद से दूसरे रूप मे भालण के दशम स्कध में भी प्राप्त होता है। अत इस विषय में कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इसमें भी वृषभानुदुलारी राधा का उल्लेख नही है केवल 'कदम' का है।[१३९] राधा का उल्लेख इस प्रसग में अन्य किसी गुजराती कवि ने नही किया।

भागवत में चीरहरण करके कृष्ण वस्त्रो को 'नीप' पर तथा ब्रह्मवैवर्त में 'कदब' पर रखते है। सूरदास ने चीरहरण लीला के दोनो वर्णनो में 'कदब' और 'नीप' दोनो का उल्लेख किया है।[१४०] अन्य कवियो में भालण, प्रेमानद आदि ने कदब का ही

वर्णन किया है।[111] नीप और कदम्ब संस्कृत साहित्य में पर्याय रूप से तो व्यवहृत होते ही हैं किन्तु उनका भिन्न अर्थ भी होता है, जैसा कि भागवत के 'कदम्बनीपा' (१० ३० ९) से प्रकट है।

सूर तथा प्रेमानद ने भागवत की कथा के अतिरिक्त कुछ अंश और उद्भावित किये हैं—

सूर द्वारा प्रस्तुत अन्तर

१ कात्यायिनि के स्थान पर शिव की पूजा।

२. कृष्ण का जल के अन्दर प्रकट होकर गोपियों की पीठ मलना।

३. गोपियों का यशोदा के पास उलाहना ले जाना।

४. कृष्ण का सोलह सहस्र गोप कन्याओं के वस्त्र तथा भूषण चुराना।

प्रेमानन्द द्वारा प्रस्तुत अन्तर

१ प्रारम्भ में कृष्ण के अभाव में तुलसी, पीपल, गाय आदि की पूजा का उल्लेख है, मध्य में कात्यायिनि की।

२. कृष्ण वस्त्र वृक्ष पर रख कर खखारते हैं जिससे गोपियों को वहाँ किसी पुरुष के होने का आभास होता है।

३ गोपियाँ वस्त्र पाने के बाद कृष्ण को नग्न करने की बात सोचती हैं जिसे जानकर कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं।

गुजराती के फाग नामक एक कवि ने इसी चीरहरण के अवसर पर गोपियों के नृत्य तथा कृष्ण के साथ रमण का भी वर्णन किया है।[113] इन अन्तरों के अतिरिक्त घटना के मूल उद्देश्य, पति रूप में कृष्ण की प्राप्ति, अन्त में कृष्ण द्वारा रास के समय मनोकामनापूर्ति आदि का वर्णन सभी कवियों ने भागवत के ही अनुरूप किया है।

ब्राह्मण पत्नियों पर अनुग्रह—भागवत दशमस्कन्ध के २३वें अध्याय में दिया हुआ यह प्रसंग कवियों द्वारा प्राय अनुवादात्मक रूप में वर्णित हुआ है। केवल एक ब्राह्मण पत्नी विशेष की कथा ने, जिसमें उसने कृष्ण के पास न पहुँचने पर प्राण त्याग दिये है, सूर तथा प्रेमानद को अधिक आकर्षित किया। सूर ने उसके सम्बन्ध में अनेक पद लिखे हैं और उसे गोपी के रूप में प्रस्तुत किया है।[113] प्रेमानद ने उसके रोके जाने का सम्पूर्ण वर्णन करके मृत्यु के अनन्तर चतुर्भुज रूप में परिणत हो जाने का उल्लेख भी किया है।[114]

राधा प्रधान कृष्ण लीलाएँ

राधा-जन्म—ब्रह्मवैवर्त में राधा के पिता वृषभानु, माता कलावती, पति रायाण तथा जन्मस्थान गोकुल का स्पष्ट निर्देश है।[११०] पद्मपुराण में राधा के जन्म की तिथि 'भाद्रे मासे सितेपक्षे अष्टमी सज्ञके तिथौ' बताई गई है। उज्ज्वलनीलमणि के एक श्लोक से राधा की माता कीर्ति सिद्ध होती है।[१११] कृष्णकाव्य में ब्रह्मवैवर्त के वृषभानु को पिता रूप में सर्वत्र लिया गया है परन्तु माता के रूप में कीर्ति को ही माना गया है। राधा का जन्मस्थान भी बरसाने में स्थित 'रावल' ग्राम माना गया है। ब्रजभाषा में राधा-जन्म की बधाई के पद सूर, नन्ददास, माधवदास, हरिराम व्यास आदि द्वारा लिखे गये हैं और उन्ही में ये बात प्राप्त होती है।[११७]

हरिराम व्यास ने श्रीदामा को राधा का भाई कहा है यद्यपि ब्रह्मवैवर्त में वह कृष्ण का किंकर कहा गया है।[११८] सूर ने राधा-जन्म सम्बन्धी पद नही रचे। गुजराती कवियों में किसी ने राधा-जन्म को काव्य का विषय नही बनाया और न वृषभानु के पितृत्व को छोड कर अन्य किसी सम्बन्ध का ही उल्लेख किया है।

राधा कृष्ण का प्रथम मिलन—सूरदास ने इसका पर्याप्त विस्तार से चित्रण किया है और जिस रूप में यह प्रसग सूरसागर में है, प्राचीन कृष्ण-काव्य में कही भी उस रूप में उपलब्ध नही होता। सूर के कृष्ण बालकों के साथ भौंरा-चकडोरी खेलते ब्रज खोरी में निकलते हैं वहाँ सप्त वर्षीया सुन्दरी राधा से उनकी भेंट होती हैं। कृष्ण उसे अपने घर आमत्रित करते हैं। बिछुडते समय वस्त्र बदल लेते हैं। घर पर जब राधा की माँ पूछती हैं कि देर से क्यो आई तो वह कहती है कि मेरे साथ की एक लडकी को साँप ने डस लिया था कृष्ण ने मत्र से उसे ठीक कर दिया इससे देर हुई। राधा नदमहर के घर आती हैं यशोदा उसकी चोटी गूँथकर, कृष्ण की 'जोटी' समझकर, गोद भर देती हैं। वह अपने घर लौट जाती है और वृषभानु तथा उनकी स्त्री दोनों अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।[११९]

नददास ने भी 'श्यामसगाई' के प्रारम्भिक पदो में राधा के प्रति यशोदा के आकर्षित होने का वर्णन किया है। इस प्रकार का वर्णन अन्य किसी कवि ने नही किया। उज्ज्वलनीलमणि के 'राधाप्रकरणम्' में बालिका राधा के प्रति यशोदा के आकर्षण का वर्णन भी है। भालण में एक स्थल पर यशोदा द्वारा राधा के वधू बनाने की बात लिखी है।

राधा सरखी रूपे रूडी वहुअर वहेली लाऊ जी।

—द० स्क०, पृ० ५०

और गुजराती के अन्य कवियो ने भी ऐसा कोई वर्णन नही किया ।

चतुर राधा अपनी 'मोतिसरी' की माला आँचल से बाँध लेती है और अपनी माँ से यह कहकर कि माला खो गई है, कृष्ण से मिलने जाती है । कृष्ण स्वय सखाओ को जीमता हुआ छोड कर राधा के आगमन की प्रतीक्षा करते है और राधा नद-महर के पिछवाडे उन्हें बुला कर मिलती है । कृष्ण यशोदा से यह कहकर कि जगल में एक गाय ब्याई है भाग आते है और कुज में दोना रमण करते है ।[११]

राधा के मोतियो में ककडी मिलाना—इसका वर्णन हितहरिवश ने किया है । सूर सागर में इस सम्बन्ध का जो पद प्राप्त होता है वह पद वस्तुत हितचौरासी का है ।[१२] गुजराती में यह प्रसग अनुपलब्ध है ।

कृष्ण का राधा की आँखें मींचना—राधा मुकुट देख रही है, कृष्ण पीछे से आकर उसकी आँखें मूँद लेते है । जब चन्द्रावली आती है तो राधा उसके पूछने पर सारी घटना बताती है । इसका भी वर्णन सूर ने ही किया है ।[१३]

पनघट की लीलाएँ—भागवत में कात्यायिनि-व्रत और रास के प्रसग में गोपियो का यमुना तट पर जाना वर्णित है किन्तु उसमें पनघट की लीलाओ का कोई सकेत नही है और न अन्य किसी पुराण में ही है । इन लीलाओ का वर्णन दोनो भाषाओ के कवियो में सूरदास, हरिराम व्यास, मीरा तथा नरसी आदि ने कुछ तो लोक परपरा से प्रेरित होकर और कुछ स्वतन्त्र उद्भावना से किया है ।

सूरदास—सूर के कृष्ण पनघट पर निम्न क्रीडाएँ करते है ।

१. यमुना तट पर मुरली बजाकर तथा अपनी मोहनी मूर्ति दिखाकर गोपियो को मुग्ध बनाते है ।

२. पनघट को रोक लेते है और कोई गोपी जल नहीं भर पाती ।

३ एक बार कृष्ण सखाओ सहित छिपे थे इतने में राधा आई और ज्योही जल भर कर ले चली कृष्ण ने पीछे से उसकी गागर का जल लुढका दिया । उसने 'कनक लकुट' छीन लिया और बोली कि जब तक मेरी गागर नहीं भर देते लकुट न दूँगी । पर कुछ समय बाद विह्वलता के कारण उसके हाथ से लकुट छूट गिरता है । कृष्ण भी उसकी गागर भर कर उठवा देते है ।

४. ऐसे ही एक बार राधा सखियो सहित जल भरने आती है । कृष्ण उसकी छाँह में अपनी छाँह छुवाते है । इस प्रकार अनेक छल करके उसको काम विवश कर देते

हैं फिर गागर में 'ककरी' मारते हैं जो राधा के शरीर में लगती है। वे कभी लट कभी वक्ष का स्पर्श करते हैं।

५. यमुना तट पर गेंड़ुरी फटकार देते हैं, गागरें फोड़ देते हैं। यशोदा के पास गोपियाँ उलाहना लेकर जाती हैं जिस पर अन्त को उन्हें अविश्वास हो जाता है।

व्रजभाषा के अन्य कवियों ने इतने विस्तार से इन लीलाओं का वर्णन नहीं किया। इस विषय में हरिराम व्यास ने कई पद लिखे हैं। किसी में गोपी कृष्ण से सिर पर गागर रख देने की प्रार्थना करती है और पीतपट की इँडुरी बनाने को कहती है तथा किसी में कृष्ण उसके साथ रमण भी करते हैं किन्तु इन पदों में राधा के स्थान पर सामान्यत. नागरि या पनिहारी का उल्लेख है।[१६६]

मीरा के इस प्रसग के पद दोनों भाषाओं में हैं। नरसी ने कहीं सरोवर से कहीं यमुना से जल भरने का उल्लेख किया है। मटकी में ककरी मारने का भी वर्णन है तथा कृष्ण के आलिंगन आदि करने का भी।[१६७]

संभोग वर्णन—राधाकृष्ण के संभोग वर्णन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। गाथा सप्तशती (१३४ वि०), गौडवहो (७७५ वि०), ध्वन्यालोक (९१० वि०) से राधा कृष्ण की शारीरिक समीपता का प्रमाण मिलता है। ब्रह्मवैवर्त में (१२वीं शती वि०) अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ राधा कृष्ण के रति-युद्ध का स्पष्ट वर्णन है। जयदेव ने तो राधाकृष्ण के संभोग की विपरीतादिक दशाओं का विस्तृत वर्णन किया है।[१६८]

गुजराती तथा व्रज दोनों भाषाओं के कवियों ने राधा कृष्ण के संभोग तथा तज्जन्य परिस्थितियों का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। कुछ कवियों ने रास-लीला, दानलीला आदि के अन्तर्गत भी इसका समावेश किया है। व्रज के समस्त कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के काव्य में रति-युद्ध का वर्णन मिलता है। प्राय सभी कवियों ने स्फुट पदों में तथा शृंगार के विभिन्न प्रसंगों के बीच रतिवर्णन किया है किन्तु ध्रुवदास की 'रतिमंजरी' तथा माधवदास की 'केलिमाधुरी' का विषय ही यह है। गुजराती में भी प्रासंगिक वर्णनों के अतिरिक्त सुरत-युद्ध को आधार मान कर कई रचनाएँ हुईं। मयण कवि का 'मयणछंद' नरसी की दोनों चातुरियाँ (षोडशी, छत्तीसी) इसी विषय को लेकर लिखी गयी हैं।

'रतिमंजरी' और 'मयणछन्द' में संभोग का वर्णन प्रस्तुत रूप में है किन्तु चातु-रियों में संवादात्मक है। राधा अपनी प्रिय सखी से रति-रमण की सारी कथा कहती

हैं। नरसी की 'शृगारमाला' में सुरत-सग्राम का कई पदो में वर्णन है और उनके 'सुरत सग्राम' में रूपक का आधार भी यही है।

चौपड और शतरंज खेलना—रूपक के रूप में व्रजभाषा के कई कवियो ने राधाकृष्ण को कही चौपड और कही शतरज खेलते हुए चित्रित किया है।[१५९] पर गुजराती में ऐसा वर्णन नही है।

जल-क्रीडा वर्णन—व्रजभाषा के कतिपय कवियो ने रास-वर्णन के अतर्गत आई हुई जल-क्रीडा से भिन्न जल-केलि का वर्णन किया है। राधा कृष्ण कही नौका-विहार करते हैं कही जल विहार।[१६०] गुजराती कवियो ने ऐसा वर्णन नही किया।

इसके अतिरिक्त वेणी-गूँथना, महावर देना आदि क्रीडाएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन राधा कृष्ण के प्रेम-प्रसग में कवियो ने किया है।

वसंत-क्रीडा

रास के प्रसग में वासतो-रास की परम्परा का जो इतिहास आगे दिया गया है उससे यह सिद्ध होता है कि वसत ऋतु मे राधा-कृष्ण की विलास-लीला के वर्णन की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। रास के साथ ही होलिकोत्सव का भी इसमें समावेश हो जाने तथा वसत ऋतु के स्वय विशेप उद्दीपक होने के कारण दोनो भाषाओ के कवियो ने वसत-क्रीडाओ का विस्तार से वर्णन किया है। कुछ कवियो ने क्रीडाओ के वर्णन के साथ वसत-वर्णन को स्वतत्र महत्व भी दिया है।

गुजराती में इस प्रकार की रचनाओ में मुख्यतया नरसी के 'वसतना पद' वासणदास का 'कृष्ण वृदावन रास' तथा कतिपय अन्य काव्यो के स्फुट अश आते हैं। व्रजभाषा में सूर के वसत तथा होरी सम्बन्धी अनेक पद, ध्रुवदास की 'ब्यालीस लीला' को कई लीलाएँ, गदाधर भट्ट, माधवदास आदि अनेक कवियो द्वारा रचित स्फुट पद एव प्रसग इस सम्बन्ध में गणनीय हैं।

वसत-क्रीडा की मुख्य वस्तु निम्नलिखित हैं

१. वसत के प्रभाव से मानिनी गोपियो का मान मोचन।
२. होली, फाग-क्रीडा अबीर गुलाल आदि डालना, पिचकरी मारना।
३. नृत्य गीत होली धमार चग, ढफ, मृदग झांझ आदि का वादन।
४. कृष्ण के साथ गोपाल-मडली तथा राधा के साथ गोपी-सूमह की प्रतिद्वन्द्विता।

इन रचनाओ मे वस्तु आदि सभी दृष्टियो से नरसी तथा सूर के पद सर्वप्रधान हैं अन्य कवियो द्वारा वर्णित वस्तु प्राय इन्ही कवियो की वस्तु के अतर्गत आ जाती है । सूरदास ने कतिपय ऐसे भी प्रसग वर्णित किए है जो अन्यत्र दुर्लभ है ।

१. क्रीडा में बलराम की उपस्थिति।

आए बलराम स्याम आई तजि काम धाम ।

—सू० सा०, पृ० ५५७

२. शीला नामक गोपी विशेष से कृष्ण का उलझना ।

शीला नाम ग्वालिनी अचानक गहे कन्हाई ।

—सू० सा०, पृ० ५५६

३. बांसो की मार ।

उत जेरी घरे ग्वाल बासन इत परी मार ।

—सू० सा०, पृ० ५५८

वारुणी-दान राधाकृष्ण का गठबन्धन, नद को गाली, गर्दभारोहण, तिथि-क्रम से होली-वर्णन आदि ऐसे ही प्रसग हैं जिनकी उद्भावना सूरदास ने अपनी प्रतिभा से की है ।[११]

नरसी मेहता ने भी होली के प्रसग मे हलधर का उल्लेख किया है । शीला के स्थान पर ललिता तथा चन्द्रभागा का विशेष रूप से वर्णन है । नरसी ने हलधर कदाचित् कृष्ण के पर्याय रूप से व्यवहृत किया है ।

१. ललिता ललीत मुख वचन बोले उठे अबील गुलाल रे ।
२ मुख अबर लइ हलधर हसीया, गोपी गोवाला साथे रे ।
भणे नरसैंयो चन्द्रभागा श्रे हलधर साह्या हाथे रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २३२

नरसी ने यहाँ भी अपने को दर्शक के ही रूप में उपस्थित किया है ।

गोविन्द गोपी होली रमे त्या जोयें नरसैंयो दास ।

—न० कृ० का०, पृ० २३७

नरसी ने बाँस की मार की जगह आपस की मार का चित्रण किया है·

उलट्या हलधर गोप सगाथे पडे परस्पर मार रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २४१

वसत पचमी के उत्सव का वर्णन सूर तथा नरसी दोनो ने किया है ।[१३] नरसी

के एक पद में राधा-कृष्ण विवाह वर्णित मिलता है जिसका साम्य सूर के विस्तृत विवाह-वर्णन से हो सकता है।

वसत विवाह् आदर्यो हो, परणे छे नद जी को लाल।
—न० कृ० का०, पृ० २५३

वर्षा-हिंडोला—इस ऋतु में भी विलास-लीला तथा हिंडोला झूलने का दोनो भाषाओ में वर्णन मिलता है। व्रजभाषा में इस विषय मे कोई स्वतन्त्र रचना नही है। गौडीय और वल्लभीय सम्प्रदाय के अनेक कवियो के पदो मे सूर के 'हिंडोल लीला' के पद अधिक महत्वपूर्ण है। गुजराती में नरसो के 'हिंडोलना पद' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

वर्षा-विहार के अतर्गत निम्न मूल वस्तु पाई जाती है।

१. वर्षा ऋतु का वर्णन
२. वर्षा सम्बन्धी अन्य प्रसग
३ हिंडोले का वर्णन
४. हिंडोले पर राधाकृष्ण के झूलने-झुलाने का वर्णन

इन प्रसगो पर उक्त दोनो कवियो की उद्भावित विशेषताओ का उल्लेख पृथक् पृथक् किया गया है।

वर्षा ऋतु वर्णन—स्वतन्त्र रूप से वर्षा वर्णन पर कोई काव्य नही लिखा गया। सूरदास तथा नरसी ने केवल वर्षा पर कोई सम्पूर्ण पद तक नही रचा, कुछ पक्तियो तथा अशो में ही वर्षा की शोभा का चित्रण है।[१]

वर्षा सम्बन्धी अन्य प्रसग—समस्त कृष्ण चरित में वर्षा सम्बन्धी अन्य प्रसग कृष्ण-जन्म तथा गोवर्धन-धारण है, जिनका वर्णन हो चुका है। सूर ने वर्षा में राधा कृष्ण मिलन का भी वर्णन किया है।

गगन गरजि घहराइ जुरी घटा कारी।
.. ..
दोउ घर जाहु सग, नभ भयो श्याम रग कुवर गह्यो वृषभानवारी।
गए बन घन ओर नवलनदनद किशोर नवल राधा नए कुज भारी।

यह प्रसग ब्रह्मवैवर्त के आधार पर वर्णित गीतगोविंद के पहले श्लोक 'मेघैर्मेदुरमवर...' में है।

मेघावृत नभो दृष्ट्वा श्यामल काननान्तर ।
—ब्र० वै० कृ० ख०, अ० १५

वर्षाकाल मे राधाकृष्ण के कुज-विहार तथा विप्रलभ शृगार का वर्णन ब्रजभाषा के अनेक कवियो द्वारा किया गया है।

हिंडोला वर्णन—सूर तथा नरसी दोनो ने कृष्ण के हिंडोले को मणिरत्नजटित एव स्वर्णविनिर्मित लिखा है दोनो ने ही उसे विश्वकर्मा की रचना माना है।[१६४]

सखियो के साथ झूलना-झुलाना—सूर ने इस क्रीडा में गोपियो के साथ गोपालो और बलराम का भी उल्लेख किया है नरसी में ऐसा नही है। सूर ने यमुनातट के अतिरिक्त रगमहल में भी हिंडोला झूलने का वर्णन किया है और बलराम वहाँ भी है।[१६५]

सखियो में सूर ने ललिता, विशाखा तथा नरसी ने चन्द्रावली का विशेष उल्लेख किया है।[१६६] नरसी ने कृष्ण को हिंडोला खीचते हुए दिखाया है, सूर ने नही।

आ जोने आ जोने हरि हीडोले हीचतो रे।
—न० कृ० का०, पृ० ४४३

वृन्दावन-वर्णन

हरिवश, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त आदि जिन पुराणो में कृष्णचरित उपलब्ध होता है उनमें वृन्दावन का भी वर्णन है। दोनो भाषाओ के अनेक कवियो ने वत्सासुर-वध से रास तक की समस्त लीलाओ के अतर्गत वृन्दावन का भी वर्णन किया है। किन्तु ब्रज के राधावल्लभीय और गौडीय सम्प्रदाय में वृन्दावन की मान्यता विशेष होने के कारण इस प्रसग पर स्वतत्र रचनाएँ भी उपलब्ध हो जाती है, जैसे ध्रुवदास का 'वृन्दावन सत' और माधुरीदास की 'वृन्दावन माधुरी'। गुजराती में प्रासगिक वर्णन के अतिरिक्त कोई स्वतत्र काव्य नही है। केवल १६वी शती के वासणदास के 'कृष्णवृन्दावनरास' में वृन्दावन वर्णन-नाम मात्र को प्राप्त होता है।

वृन्दावन की महत्ता को नरसी, सूर तथा नददास ने स्वीकार किया है। नरसी ने वृन्दावन को वैकुठ से भी श्रेष्ठ तथा शोभावान् कहा है। वृ दावन के द्वादश वनो में नरसी ने 'महावन और वासणदास ने 'परसोली' का उल्लेख किया है। सूर ने द्वादश वनो का सकेत मात्र किया है। नददास ने वृन्दावन को 'चिद्घन' की उपाधि दी है।[१६७]

राधावल्लभीय सम्प्रदाय में वृन्दावन-वर्णन का एक निश्चित रूप था जिसका अनुकरण उस सम्प्रदाय के सभी कवियो ने किया, ध्रुवदास उसमें प्रमुख है। हित हरिवश ने इसका सूत्रपात इस प्रकार किया।

प्रथम जयामति प्रणऊ श्री वृन्दावन अतिरम्य।।५७।।
—हितचौरासी

इस परम्परा को व्यास तथा ध्रुवदास ने पूर्णतया स्वीकार किया। ध्रुवदास ने व्यालीस लीलाओ में बहुत सी लीलाओ का प्रारभ वृन्दावन-वर्णन से ही किया है। 'वृन्दावनसत' में पूर्णरूप से वृन्दावन की महिमा का गान है जिसके अनुसार कोटि वैकुठो से भी श्रेष्ठ वृन्दावन की पृथ्वी मणिखचित स्वर्ण की है, सब लता कल्प-वृक्ष है तथा सब पुष्प पारिजात।[११८] ध्रुवदास ने 'मडलसभा सिगार' में वृन्दावन में अगणित मडलाकार कुज वनो का उल्लेख किया है जैसे, कमल कुज, शृगार कुज, रग कुज, विनोद कुज, आदि। 'रसमुक्तावली' मे स्नान कुज, सिंगार कुज और भोजन कुज का भी वर्णन मिलता है। माधवदास की 'वृन्दावनमाधुरी' के वृन्दावन वर्णन मे निम्न बातें महत्वपूर्ण है।[११९]

१. सात रग के कुज। नरसी ने भी विभिन्न रगो का वर्णन किया है। (न० कृ० का०, पृ० ६०५)

२. सबसे बडा माधुरी-कुज है जिसमें ६४ द्वार है, प्रत्येक द्वार पर एक सहचरी रहती है, जिनमें आठ मुख्य है।

३. वृन्दावन वृंदा नामक सखी की प्रेरणा से इतना सौन्दर्यशाली होता है।

बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन—षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा कालिदास के ऋतुसहार तक जाती है किन्तु बारहमासा सभवत साहित्य को लोक काव्य से प्राप्त हुआ। षड्ऋतुओ का क्रमानुसार वर्णन प्राय सयोग शृगार के उद्दीपन विभाव के अतर्गत किया जाता रहा। बाद में उसका प्रयोग वियोग शृगार मे भी होने लगा। परन्तु बारहमासा में विरह भावना की अभिव्यक्ति होती रही इस प्रकार वह अधिकतर वियोग शृगार के ही अतर्गत आता है।

गुजराती और व्रजभाषा दोनो के कृष्ण-काव्य में इन दोनो परम्पराओ का परिपालन मिलता है। षड्ऋतु-वर्णन व्रजभाषा में नन्ददास की 'रूपमजरी तथा ध्रुवदास की 'रसहीरावली' और सेनापति के 'कवित्तरत्नाकर' के अतर्गत और गुजराती में केशवदास की मथुरालीला में प्राप्त होता है। बारह महीनो का वर्णन व्रजभाषा

में नंददास की विरहमंजरी में तथा गुजराती में १७वीं शती के प्रेमानंद की 'मास', और रत्नेश्वर की 'बारमास' नामक रचनाओं में मिलता है । मास 'बारहमासा' का ही गुजराती रूप है। नरसी मेहता कृत काव्यसंग्रह में भी एक पद के अन्तर्गत द्वादश मास का वर्णन है।

'बार मास पूर्ण थया गाय नरसैंयों दास'

—पृ० ५२५

सूरदास ने वर्षा, वसंत आदि विभिन्न ऋतुओं का पृथक् पृथक् वर्णन किया है किन्तु क्रमबद्ध रूप में षड्ऋतु वर्णन नहीं मिलता। बारहमासा का भी वर्णन सूर-सागर में नहीं है।

गुजराती कवि केशवदास ने जो षड्ऋतु वर्णन किया है वह प्रासंगिक रूप में ही है, प्रधान रूप में नहीं, क्योंकि गोपियाँ उद्धव को उत्तर देते समय कृष्ण की क्रीड़ाओं का ऋतु क्रम से वर्णन करती है।[१३०] यह वर्णन सयोग शृंगार का उद्दीपक न होकर वियोग शृगार के अन्तर्गत आता है। नंददास का षड्ऋतु वर्णन भी वियोग पक्ष का ही प्रकाश करता है। रूपमंजरी नामक कुमारी अपना हृदय कृष्ण को दे देती है और उनकी प्रतीक्षा में दिन बिताती है। नंददास ने इसी स्थान पर षड्ऋतुओं के प्रभाव का वर्णन किया है।[१३१] केशवदास की गोपियाँ मिलन सुख से परिचित है किन्तु नंददास की रूपमंजरी अपरिचित। केशवदास ने शरद से और नंददास ने वर्षा से वर्णन प्रारंभ किया है। इतना अन्तर होते हुए भी दोनो कवियों का षड्ऋतु-वर्णन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि वह सयोग शृंगार की परम्परा से भिन्न है।

सेनापति का षड्ऋतु-वर्णन प्राय: विप्रलम्भ का ही उदाहरण है परन्तु ध्रुवदास ने स्पष्ट रूप से उसे सयोग शृंगार की पृष्ठभूमि मे चित्रित किया है।[१३२] यह वर्णन वसत ऋतु से प्रारभ होता है जिसका कारण संभवत. संयोगावस्था ही प्रतीत होती है क्योंकि साहित्य में संयोग शृगार के उद्दीपन रूप में वसंत ऋतु का विशेष स्थान है। ध्रुवदास ने सुख के आधार पर उपसंहार में छहों ऋतुओ का वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है।

बरिषा ग्रीषम नैन सुख, सरद वसंत विलास।
लपटन को सुख हिम सिसिर, प्रेम सुखद सब मास ॥१६०॥

बारहमासा का वर्णन गुजराती कृष्ण-काव्य में अधिक मिलता है। नरसी, प्रेमानंद तथा रत्नेश्वर की पूर्वोक्त रचनाएँ इसका प्रमाण है। इसका कारण यह है कि

गुजरात में बारहमास वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है। जैन काव्यों में इसके उदाहरण मिलते हैं जैसे १३वी शती की रचना 'नेमिनाथ चतुष्पदी'। १६वी शती की गणपति कृत 'माधवानल कामकदला' नामक प्रसिद्ध रचना में भी 'वारहमासा' प्राप्त होता है। व्रजभाषा में नददास इस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

द्वादश मास वर्णन में इन सभी कवियो ने स्वतत्र क्रम का अनुसरण किया है केवल प्रेमानद तथा नददास ने चैत से फागुन तक का सीधा क्रम ग्रहण किया है। नरसी ने 'कार्तिक' से, और रत्नेश्वर ने 'मार्गशिर' से वारह महीनो की गणना की है।

गुजरात के सभी कवियो ने इस प्रसग में राधा के विरह का वर्णन किया है और उसमें रत्नेश्वर ने स्पष्टतया कृष्ण के मथुरा जाने को कारणभूत माना है परन्तु नददास ने राधा मात्र का विरह वर्णित न करके समस्त व्रजगोपियो के विरह का वर्णन किया है और उसका कारण कृष्ण का द्वारावती गमन माना है।[७१]

संभवतः यही कारण है कि कुछ गुजराती कवियो ने 'वारहमास' के अन्त में कृष्ण के लौटने का भी सकेत कर दिया है जो नंददास ने नही किया है।[७२]

नंददास ने सारा वारहमासा चन्द्रदूत को दिये गये सदेश के रूप में प्रस्तुत किया है।

दिष्टि परि गयौ चंदा गैन।
लागी ताहि संदेसो दैन।

—नद०, पृ० ३०

प्रेमानद ने अपने 'मास' के अन्तर्गत केवल कार्तिक मास में चन्द्र के दूतत्व का प्रसग उठाया है

चादलिया तू ताहा जजे वसे जांहा मारा नाथ।
वेहेलो वलजे विट्ठळ ने मेडी ताहारी रे साथ।

चन्द्रदूत का वर्णन नरसी ने भी किया है परन्तु वह 'बारमास' से भिन्न दूसरे पद में मिलता है (न० कृ० का०, पृ० ५०७)

प्रेमानंद ने इस मास वर्णन में राधा की स्वप्नावस्था का भी चित्रण किया है जो उक्त अन्य कवियो में नही मिलता।

आज सहेजे नयन मळ्या सीणू शम्भू रे प्रभात ॥८३॥

. . . . .

जागी ने जोवा लागी रे चुवन देवानी आश ॥८६॥

—प्रेमानद कृत 'मास'

दानलीला

गुजराती में १५वीं शती में भालण के 'दशमस्कन्ध' में तथा १६वी शती मे नरसी की 'दानलीला' एव स्फुट पदो में, कीकुवसही के 'वालचरित' वासणदास के 'कृष्णवृन्दावनरास' और मीरा के कतिपय पदो में दान का प्रसग आया है। ब्रज-भाषा में सूरसागर की दो दानलीलाएँ तथा मीरा, हरिदास आदि के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य अनेक कवियो के स्फुट पद प्राप्त होते है। १७वी शती में ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला', माधवदास की 'दानमाधुरी' तथा हरिराय जी की 'दान-लीला' ये तीन स्वतन्त्र रचनएँ मिलती है। स्फुट पद तो अनेक कवियो के है। गुज-राती में इस शती मे केवल प्रेमानद की 'दाणलीला' उपलब्ध है।

उक्त दानलीलाओ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस लीला का कोई निश्चित रूप कवियों के सामने नही था, जिसके फलस्वरूप कृष्ण द्वारा दान माँगने के अति-रिक्त अन्य सभी बातो के वर्णन में भेद अवश्य मिलता है। अतएव सक्षेप में यहाँ सबकी रचनाओ की वस्तु प्रस्तुत की जाती है।

नरसी की दाणलीला में प्रातःकाल यशोदा कृष्ण को जगा कर, जलपान के अनन्तर, गोचारण के लिए भेजती है। अनेक शृगारो से युक्त कृष्ण बलभद्र के साथ खेलते, बन्दरो को पकडते तथा वही कलेऊ भी करते है। इतने में गाएँ इधर उधर हो जाती हैं और कृष्ण गोवर्धन पर चढ कर जब विभिन्न गायों के नाम ले ले कर पुकारते हैं तो सहसा उन्हे एक अनुपम स्त्री दिखाई देती है। वे दौडकर उसके पास जाते है और सशय में पड जाते है कि वह रभा है कि पद्मिनी। राधा अपना परिचय देती है। कृष्ण राधा से कनक कलश भर दही का दान माँगते है। राधा कृष्ण को दान का अनधिकारी सिद्ध करती है। फिर दो टका के गोरस के दान का महत्व ही कितना। कृष्ण हठ करते हैं राधा रूठ जाती है। वह स्वय को मनाने के लिए वेणु वादन का प्रस्ताव रखती है। कृष्ण मुरली बजाते है और राधा प्रसन्न हो जाती है।

नरसी की 'चातुरी छत्तीसी' की सारी परिस्थिति इसी दानलीला से सम्बद्ध

है यद्यपि उसमें अन्त मे दान का वर्णन न होकर सभोग शृगार का पूर्ण वर्णन है।

आज मे तमारी चातुरी जाणी जी।
मारगे वेठा छो थइने दाणी जी।

—न० वृ० का० पृ० ११८

एक स्थान पर नरसी ने दान के प्रकरण को होली से सम्बद्ध कर दिया है।[17] गोपियाँ कई बार कृष्ण को कस के पास ले जाने का भय दिखाती है।

कस कने तु ने लइने जासु

—वही, पृ० ५८०

भालण ने राधा कृष्ण के वर्तालाप को किंचित् विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। उनकी परिणीता राधा 'सहियर साथ' मथुरा दधि बेचने जाती है। कृष्ण के मार्ग में रोकर दान माँगने पर राधा यशोदा जी से शिकायत करने का भय दिखाती है। एक गोपी राधा से उसके प्रति कृष्ण के विशेष आकर्षण की बात कहती है तब राधा आगे आकर विवाद करती है और बीच में अपने पति की भोगविषयक असमर्थता तथा कृष्ण से भविष्य में परिणीत हो जाने की बात कहती है। अन्त में वह कृष्ण को अपने यहाँ याचक बन कर दान माँगने आने के लिए आमन्त्रित करती है फिर दोनो में समझौता हो जाता है। कुछ पदो में भालण ने दान की करबद्ध याचना कराई है। कृष्ण राधा के चरण भी स्पर्श करते है।

पाणिये पायु ग्रह्य।

—द० स्क०, पृ० १०३

प्रेमानद की रचना में राधा को मथुरा के मार्ग में कृष्ण के 'दाणी' बन बैठने की बात पहले ही ज्ञात हो जाती है और वह ललिता, चन्द्रावली, राई, विशाखा आदि सात सखियो के साथ कृष्ण पर विजय प्राप्त करने की लालसा से चलती है। घाट पर कृष्ण को देखकर वे लोग दूसरी ओर मुड जाती है। कृष्ण सबको पकड लाने के लिए गोपो को भेजते है। 'गोप सुदामो' आकर बताता है कि आज तो यूथ मे 'राधा राणी' भी है, वही कहना नही मानती। यह सुनते ही कृष्ण के नेत्र लाल हो जाते है 'राधा राणी' तो क्या वे इन्द्राणी को भी बिना दान दिये नही जाने देगे। गोप लोग कृष्ण की आज्ञा से लकुटियो द्वारा 'छाश 'दधी माखण' भरी मटकियाँ फोडना आरभ कर देते है। राधा इस स्थिति मे क्रोधान्वित किन्तु मिलनेच्छु होकर 'राई' को दूती बना कर कृष्ण के पास भेजती है। दोनो पक्षो में विवाद होता है।

कंस का भय, यशोदा का भय, नंद की 'आण' अनधिकार चेष्टा सभी प्रकार के तर्क-वितर्क के बाद भी समझौता नही होता। कृष्ण के सखा 'पिंडारिया' राधा की टोली को घेर लेते है। राधा कृष्ण का अहंकार नष्ट करने का संकल्प करती है। संवाद होते होते दिन बीत जाता है। कृष्ण 'छः बरसनो छोकरो' बताए गए है। अत मे राधा हार मान लेती है और परिणीता होने के नाते 'सास नणद जेठ' आदि को 'बाघण नागण जम' कहते हुए गृहस्थाश्रम की मर्यादा का उल्लेख करती है पर अत मे कृष्ण को पूर्ण समर्पण करती है। कृष्ण बशी बजाते है, अनेक रूप धारण करते है और गोपियों के साथ रात भर रमण करते है। गोपियाँ सवेरे कृष्ण के चरण छू कर विदा माँगती है।

> दीधु आलिगन हेत व्यापियुं रे लोल।
> कुंज माहे रही रति सुख आपियु रे लोल।
> जेटली हूती ब्रज सुन्दरी रे लोल।
> तेटला रूप धरिया श्री हरी रे लोल।

स्पष्ट है कि गुजराती के इन तीनों कवियों की दानलीलाएँ एक दूसरे से अनेक स्थलोंपर भिन्न है।

ब्रजभापा के कवियों में इस प्रसग को सबसे अधिक विस्तार सूर ने दिया है। सूरसागर मे उनकी दो दानलीलाएँ उपलब्ध है और पहली के अतर्गत भी वस्तुतः दो दान लीलाओं का वर्णन है। इस प्रकार यह प्रसग तीन बार वर्णित हुआ है (पृ० २९६-३४१)। पहली बार के वर्णन में राधा का कोई उल्लेख नही है।

कृष्ण के सारे सखा 'पेड़-पेड़ तर के लगे ठाठि ठगन को ठाट' छिप गए, ब्रज युवतियों के आने पर 'माखन दधि लियो छीनि कै' और 'चोली बन्द' भी तोड डाले कृष्ण ने अपना ईश्वरत्व प्रकट किया और 'जोवन दान लेउँगो तुमसे' कहा। गोपियाँ यशोदा के पास जाकर उलाहना देती है। 'मेरो हरि कहँ दसहि बरस को तुम यौवन मद उदमानी' कह कर वे गोपियो पर ही दोषारोपण करती है। सूर का प्रथम प्रसग 'दानचरित सुख देखि के सूरदास बलि जाइ' के साथ समाप्त होता है। दानलीला का दूसरा प्रसग कृष्ण, सुबल, सुदामा एव श्रीदामा की राधा आदि को कालिंदी तट पर घेरने की योजना से प्रारभ होता है। दूसरे दिन कृष्ण सखाओ के साथ पेडो मे छिप रहने का निश्चय करते है। जब राधा सखियो समेत आती है तो उनको घेर लेते है। वार्तालाप होता है, कृष्ण अपने ब्रह्मत्व को प्रकट करते है। बहुत विवाद के बाद गोपियाँ आत्मसमर्पण करती है और कृष्ण 'गुप्तहि जोबन

दान' लेते हैं। जाने के पहले सब गोपियाँ अपना सारा दधि माखन उनको खि
देती है पर मटकी भरी ही रहती है। इस पर गण-गंधर्व कह उठते हैं:

'धन्य व्रजललनानि करते ब्रह्म माखन खात'

तीसरे प्रसंग में इंदा, विंदा, राधिका, श्यामा, कामा आदि व्रजनागरी शृंग
करके दधि बेचने जाती हैं और सखियों से यह कहला कर 'यहि वन में इक ब
लूटि हम लई कन्हाई।' सूर इस प्रसंग को स्पष्टतया पूर्व प्रसंग से सम्बद्ध कर
हैं। सारी घटनाएँ वैसी ही हैं। अंत में गोपियों ने 'तनु जोवन धन अर्पन की
मन दै मन हरि को सुख दीन्हो' और स्वतः दधि माखन खिलाया।

राधावल्लभी ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला' में दानलीला की सारी घट
सखियों की इच्छा से घटित होती है। यमुना तट पर कृष्ण खड़े होते हैं राधा उ
से आती हैं। कृष्ण को दान के लिए जो कुछ कहना है, ललिता से कहते हैं। ललि
प्रवीण है। वह 'इहि ठां बिन कुंजेश्वरी नहिं काहू की आन।' कह कर कृष्ण
राधा के चरण छूने का आदेश देती है। कृष्ण उसके पैरों पर शीश रख देते हैं अ
राधा रतिदान देकर कृष्ण को प्रसन्न कर देती है।

गौड़ीय कवि माधवदास की 'दानमाधुरी' में वर्णित दानलीला बहुत कु
ध्रुवदास के ही समान है ललिता वहाँ भी मध्यस्थ है। राधा का प्रभुत्व वहाँ
घोषित है। कृष्ण सखियों को सौरभ सुगंध लाने के लिए भेज कर एकान्त
व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार 'दान मिस दम्पति-सुख' का वर्णन किया गया है।

हरिराय जी की दानलीला में वर्णित वस्तु का साम्य नरसी की दानली
से अधिक है। हरिराय जी ने कृष्ण के गोवर्धन पर चढ़ कर टेरने, कनक कर
छीनने तथा राधा को कुंज में ले जाकर मनाने का जो वर्णन किया है वह नर
की दानलीला में भी मिलता है।

इस प्रकार दानलीलाओं को वस्तु की दृष्टि से तीन वर्गों में रखा जा सक
है:

१. वे रचनाएँ जिनमें दान का प्रसंग केवल राधा-कृष्ण के बीच की घ
है। ब्रजभाषा के हरिराय तथा गुजराती के नरसी की रचनाएँ इसी वर्ग में हैं।

२. वे रचनाएँ जिनमें राधा-कृष्ण के अतिरिक्त अन्य गोप-गोपियों का
समावेश है। इस वर्ग में भालण के दान विषयक पद, प्रेमानंद की 'दानलीला', न

की 'चातुरी छत्तीसी' सूर की दूसरी और तीसरी दानलीला, माधवदास की 'दान माधुरी' तथा ध्रुवदास की 'दानविनोदलीला' आती है।

३ ऐसी रचनाएँ जिनमें राधा आदि गोपी विशेष का उल्लेख न करके समस्त गोपी समूह का वर्णन हो। सूर की पहली दानलीला तथा अन्य कवियों के कुछ स्फुट पद इसके अतर्गत आते हैं।

नरसी, प्रेमानद, सूर, माधवदास तथा ध्रुवदास ने दानलीला के अन्त में सभोग का वर्णन किया है। प्रेमानद तथा सूर ने सभी गोपियों के साथ कृष्ण का रमण दिखाया है। पक्ति में बिठा कर मडली के साथ कृष्ण को दधि माखन खिलाने का सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने वर्णन नही किया।

माधवदास तथा ध्रुवदास की रचनाओं में मध्यस्थ का काम 'ललिता' को दिया गया है परन्तु प्रेमानद ने 'राही' को मध्यस्थ बनाया है।

व्रजभाषा के कवियों ने दानलीला में राधा को स्वकीया किन्तु गुजराती के प्रेमानद, भालण आदि ने परकीया का रूप दिया है।

मानलीला—यह प्रसग १५वी शती में मयण के 'मयणछद', भालण के 'दशम स्कंध', १७वी शती में नरसी की 'चातुरीपोडशी', सूरदास की तीन मानलीलाओं तथा कुछ स्फुट पदों में प्राप्त होता है। १७वी शती में इस विषय पर गुजराती की एक भी रचना उपलब्ध नही है पर व्रजभाषा में ध्रुवदास की 'मानलीला' तथा माधवदास की 'मानमाधुरी', यह दो रचनाएँ मिलती है।

इन काव्यों में मानलीला के कई रूप मिलते है। प्रथम और महत्वपूर्ण रूप वह है जिसमें राधा कृष्ण के शरीर अथवा कौस्तुभ मणि में पड़ते हुए अपने ही प्रतिबिम्ब को अन्य स्त्री समझ कर भ्रमवश मान करती है और अन्त में दूती, ललिता अथवा स्वय कृष्ण द्वारा इस भ्रम का निवारण हो जाने पर मान त्याग देती है। मयण के अतिरिक्त दोनो भाषाओं के प्राय सभी कवियों ने इसी वस्तु को किसी न किसी रूप में आधार बनाया है।

नरसी की चातुरीपोडशी में कृष्ण द्वारा आलिंगित होते समय राधा उनके हृदय में अन्य स्त्री की उपस्थिति जानकर मान करती है, कृष्ण ललिता से कहते है। वह उसे मनाने महावन जाती है और सहज ही सफल हो जाती है फिर राधा शृगार करके कृष्ण से मिलने महावन जाती है। कृष्ण ललिता को कौस्तुभ मणि पुरस्कार म देते है तदनन्तर राधाकृष्ण महावन मे रमण करते है। नरसी की शृगारमाला

आदि में भी इस विषय के पद हैं। एक पद में मणि के हार में अपना प्रतिविम्ब देखकर राधा के भ्रान्त होने का स्पष्ट उल्लेख है।[१७५]

भालण ने मान का कारण कौस्तुभ में राधा का प्रतिविम्ब ही माना है।

कौस्तुभ मा निजरूप, देखी रीसावी प्यारी।
जाण्यु खोळामा बेठी छे मुज सरखी नारी।
—द० स्क०, पृ० १०६

कृष्ण दूती के कथन से मणि उतार देते हैं और राधा अपना भ्रम समझ कर मान त्याग देती है।[१७७] भालण ने दूती का कोई नाम नहीं दिया और मान के उपरांत रमण का भी वर्णन नहीं किया।

सूरदास, ध्रुवदास, माधवदास तथा हरिवंश ने मणि का उल्लेख न करके मान का कारण राधा द्वारा कृष्ण के शरीर में स्वप्रतिविम्ब दर्शन लिखा है।[१७८]

सूर के कृष्ण मानभंग के पश्चात् पीताम्बर ओढ लेते हैं जिससे पुन भ्रम न हो

यहि डर रहत पीतवर ओढे वहा कहौं चतुराई।
अब जनि कहूँ हिये में को है बहुरि परी कठिनाई।
—सू० सा०, पृ० ५२३

दूती के रूप मे ललिता का नाम सूर की दूसरी मानलीला के अन्त में मिलत है।[१७९] यह माधवदास की मानमाधुरी में भी प्राप्त होता है अन्यत्र कवियो ने प्राय 'चतुरदूतिका' 'दूती' अथवा 'सखी' का ही प्रयोग किया है। माधवदास के कृष भी मान दूर करने के बाद एक झीना वस्त्र ओढ लेते हैं।[१८०]

मानलीला का दूसरा रूप वह जिसमें मान का कारण कृष्ण का बहुनायक है। ऐसी दशा में राधा खंडिता होकर मान करती है। स्फुट रूप से ब्रजभाषा अनेक कवियो ने इस विषय के पद तथा छद रचे हैं।

सूरसागर में प्रथम मानलीला के पश्चात् राधा के खंडिता स्वरूप का अनेक प मे विस्तृत वर्णन है। कृष्ण के बहुनायकत्व के प्रसग में उन्हें ललिता, चन्द्राव शीला, वृन्दा आदि सखियों से अनुरक्त चित्रित किया गया है।[१८१] बडी मा लीला में राधा कृष्ण से मिलते ही बहुनायकत्व के पूर्वाभास के कारण रूठ जा है। उसके इस मान का कारण उसका रूप-यौवन-गर्व भी है जिसकी ओर सखी सकेत करती है।

नहि तेरी अति ही हठि नीको।
सूर स्वरूप गर्व जोबन के जानति हौ अपने सिर टीको।
—सू० सा०, पृ० ५०८

गुजराती मे मानलीला वर्णन करने वाले कवियों ने मान का यह कारण भी दिया है। मयण के कृष्ण भोगी भ्रमर है और अकारण अबला को छोडकर चले जाते है। राधा एक सखी को भेजती है, वह कृष्ण को लाती है और दोनो रमण करते है। मयण की 'माणिणी' का मान कृष्ण के प्रयास से नही वसन्त के आगमन से स्वतः समाप्त हो जाता है—

सखी ए वसंत प्रियारइ माननि मान घमुक्कीउ।
—भमणछद, पद २६

नरसी और भालण मे भी कृष्ण के बहुनायकत्व के कारण खडिता राधा के मान का वर्णन है।[१८२]

इस तुलनात्मक विवेचन के उपरात भी सूर की मानलीलाओं में कुछ ऐसी विशेषताएँ शेष रह जाती है जिनका उल्लेख आवश्यक है.—

१. बहुनायक कृष्ण की एक अनुरक्ता गोपी 'चन्द्रावली' का राधा के पास जाकर उससे सुरत-सुख की बात पूछना। नरसी ने यह काम ललिता से लिया है।[१८३]
२. पाँच वर्ष के बालक कृष्ण का सहसा तरुण होकर एकान्त अत पुर में राधा से रमण।[१८४]
३. कृष्ण का दूती रूप धारण करके स्वय राधा का 'दृढ मान' छुडाना।[१८५]

रास-लीला

कृष्ण-साहित्य की समस्त वर्ण्य वस्तु में रास सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय रहा है। प्राचीन ग्रथो में इसका वर्णन भास के बालचरित, तामिल शिलाप्पदिकरम् एव आडाल के तिरुपावै, ब्रह्म, विष्णु, हरिवश, पद्म, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण और जयदेव के गीतगोविन्द में विशेष रूप से प्राप्त होता है। बालचरित तथा हरिवश में रास की सज्ञा 'हल्लीषक' मिलती है।[१८६] तामिल साहित्य में इसे 'कुरवइ कुट्टु' कहा गया है।[१८७] शेष समस्त ग्रथो में रास को रास के ही रूप में ग्रहण किया गया है। अर्थ की दृष्टि से सभी का तात्पर्य मंडलीरूप स्त्री-सयुक्त नृत्य विशेष से

हैं।[८८] यद्यपि भास कालीय नाग के फनो पर नर्तित कृष्ण के नृत्य को भी हल्लीषक ही कहते है जहाँ कथित परिभाषा घटित नही होती।[८९] पुराणो में रासवर्णन का प्राचीनतम रूप हरिवंश, ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में प्राप्त होता है। भागवत तथा पद्मपुराण में अपेक्षाकृत वर्णन अधिक विस्तृत हो जाता है। पद्मपुराण में दण्डकारण्यवासी ऋषियो की कथा समाविष्ट हो जाती है। ब्रह्मवैवर्त मे रास का वर्णन उक्त पुराणो की तुलना मे 'बहुत अशो मे' भिन्न रूप में उपलब्ध होता है। गीतगोविन्द तक आते आते रास के निम्नलिखित कई प्रकार उपलब्ध होने लगते हैं।

१ गोपी कृष्ण रास
२ राधा कृष्ण गोपी रास
३ राधा-कृष्ण रास

ऋतु की दृष्टि से रास के दो भेद किये जा सकते हैं—

१ शारदी रास
२. वासती रास

रास के यह सभी भेदोपभेद गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनो के कृष्ण-काव्य मे प्राप्त हो जाते हैं। गुजराती में इनके अतिरिक्त स्थान भेद से वृन्दावन-रास की इस सारी परम्परा से भिन्न द्वारका-रास का भी वर्णन मिलता है। जैसे नयर्षि के फागु में जिसका परिचय उक्त भेदो के परिचय के बाद आगे दिया गया है। नरसी मेहता का स्वानुभूत प्रत्यक्ष रास वर्णन और मीरा का निर्गुणरास, रास का एक नितात भिन्न रूप प्रस्तुत करता है जो समस्त कृष्ण साहित्य में अद्वितीय है। इसी प्रकार ब्रजभाषा में राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास आदि के कमल-रास का वर्णन भी अन्यत्र नही मिलता। ब्रजभाषा के कतिपय कवियो ने ब्रह्मवैवर्त से प्राप्त राधा-कृष्ण विवाह के प्रसग का भी रास के अन्तर्गत ही वर्णन किया है किन्तु गुजराती कृष्ण-काव्य में यह इस रूप में वर्णित नही है।

साधारणतया दोनो भाषाओ में भागवत की रास पचाध्यायी (दशम, अ० २९-३३) की वस्तु को ही आदर्श रूप में ग्रहण किया गया है यद्यपि उसे शुद्ध रूप में कम कवियो ने प्रस्तुत किया है। प्राय उसमें ब्रह्मवैवर्त तथा गीतगोविन्द की परम्परा का मिश्रण कर दिया गया है। भागवत के रास-वर्णन की मूल वस्तु को निम्न- अशो में मुख्य रूप से विभाजित किया जा सकता है।

१. वेणुगीत
२ गोपी-कृष्ण संवाद
३. गोपी-गर्व, कृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपियों का कृष्ण लीलानुकरण तथा कृष्णान्वेषण
४ यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना, सभापर्व, महारास, वाद्य एवं संगीत तथा कृष्ण का अनेक रूप धारण
५ जल क्रीडा

रास के उपर्युक्त सभी प्रकारों, भेदों, विशिष्ट रूपों तथा भागवत रास के प्रमुख अंशों से सम्बन्धित सामग्री का तुलनात्मक निरूपण करने के पूर्व दोनों भाषाओं में रास विषयक साहित्य का निर्देश कर देना अत्यन्त आवश्यक है।

गुजराती में मुख्यतः रासक्रीडा पर लिखित काव्यों में १५वीं शती में नर्षि का 'फागु', १६वीं में नरसी की 'रास सहस्रपदी' वासणदास का 'कृष्णवृन्दावनरास' और १७वीं में देवीदास विरचित 'रासपंचाध्यायी नो सार' तथा वैकुंठदास कृत 'रासलीला' उल्लेखनीय है। इन रचनाओं के अतिरिक्त अनेक दशमस्कंधकारों तथा भागवत के अनुवादकों द्वारा रास का वर्णन किया गया है। इनमें १५वीं शती में भालण और हरिलीलाषोडशकलाकार भीम, १६वीं में कृष्णक्रीडाकाव्यकार केशवदास और १७वीं में प्रेमानंद, माधवदास, रत्नेश्वर लक्ष्मीदास आदि प्रमुख हैं। शिवदास के 'बालचरित' तथा परमानंद के 'हरिरस' में भी रास वर्णन प्राप्त होता है।

ब्रजभाषा में १५वीं शती का प्रश्न ही नहीं उठता, १६वीं में रास पर ही आधारित रचनाओं में सूरदास के बहुसंख्यक पद, नंददास की 'रासपंचाध्यायी' तथा 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' और १७वीं में ध्रुवदास की 'ब्यालीस लीला' की 'निनविलास' आदि अनेक रचनाएँ, माधवदास की वंशीवट एवं वृन्दावन विषयक कई माधुरियाँ गणनीय हैं। रहीम विरचित रासपंचाध्यायी का भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रास के प्रसंग पर अनेक कवियों द्वारा पदों की रचना हुई और सम्प्रदाय मुक्त कवियों ने भी इस विषय पर अनेक पद रचे। नंददास की सिद्धान्तपंचाध्यायी जैसी कोई रचना गुजराती में उपलब्ध नहीं होती जो रास के दार्शनिक महत्त्व पर प्रकाश डालने के निमित्त ही रची गई हो।

रास के विविध प्रकार [पात्रों की दृष्टि से]

गोपी-कृष्ण रास—कदाचित् रास का यह प्रकार परम्परा के रूप में सर्वाधिक प्राचीन है। बालचरित, हरिवंश, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण तथा भागवतपुराण का

रास वर्णन इसी परम्परा के अन्तर्गत आता है ।[११०] इन पुराणों में रास विषयक इतनी समानता है कि कतिपय वही श्लोक सभी में मिलते हैं । 'तावार्यमाणा' से प्रारभ होने वाला श्लोक तीनों पुराणों में प्राप्त होता है । रास की मूलवस्तु उक्त पहले दोनों ग्रंथों में ही उपलब्ध हो जाती है जिसका विकास शेष तीनों पुराणों मे क्रमशः होता गया है । इस परम्परा में राधा जैसी किसी गोपी विशेष का स्पष्ट उल्लेख न करके समस्त गोपी समूह के साथ कृष्ण के रासरमण का वर्णन किया जाता है । भास ने कतिपय गोपियों तथा बलराम का नाम अवश्य दिया है[१११] किन्तु राधा के अभाव में अतत उनका रास वर्णन इस परम्परा से बहुत पृथक नहीं है क्योंकि ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में भी 'सहरामेण' से बलराम की उपस्थिति का सकेत किया गया है । ब्रह्मपुराण में गोपियों के नाम लेने की बात भी है पर नाम नहीं दिये है ।[११२]

रास-वर्णन की यह परम्परा गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कृष्ण-काव्य में व्यक्त हुई है किन्तु बलराम की उपस्थिति का उल्लेख कहीं नहीं मिलता । ब्रजभाषा में केवल नददास की रासपचाध्यायी में ही उसके पूर्णतया भागवत पर आधारित होने के कारण इसका शुद्ध परिपालन हुआ है किन्तु गुजराती में अनेक कवियों द्वारा विशुद्ध गोपी-कृष्ण रास का वर्णन हुआ है जिनमें भीम, केशवदास, सत, प्रेमानद, माधवदास, शिवदास तथा रत्नेश्वर आदि के नाम अग्रगण्य हैं । नयर्षि ने भी यद्यपि गोपी-कृष्ण रास का ही वर्णन किया है तथापि अन्य कई कारणों से उनका 'फागु' इस परम्परा का काव्य सिद्ध नहीं होता । नरसी का समस्त रास वर्णन यद्यपि इस परम्परा मे नहीं आता तथापि अनेक पदों में उन्होंने गोपी-कृष्ण रास का वर्णन किया है ।[११३] इसी प्रकार ब्रजभाषा मे भी कुछ परम्परानुसारी कवियों ने जहाँ पर भागवत का आधार लिया है वहाँ गोपी कृष्ण रास का भी वर्णन मिल जाता है ।[११४] परन्तु सूर जैसे राधा-रास का वर्णन करने वाले कवियों के काव्य में पद ऐसे अपवाद स्वरूप ही प्रतीत होते है ।

राधा कृष्ण-गोपी रास—ब्रह्मवैवर्त पुराण के द्वारा भागवत की 'अनयाराधितो-नून' से व्यजित गोपीविशेष का राधा के रूप में स्पष्टीकरण तथा उसमें पाये जाने वाले राधामाधव के सखिया से युक्त विशद रास से ही सभवत इस राधा कृष्ण गोपी रास की परम्परा का प्रारभ होता है । ब्रह्मवैवर्त के बाद राधामाधव से सयुक्त इस रास परम्परा का विविध रूपों में विकास हुआ जिसका एक प्रमाण गीतगोविन्द है ।[११५] परन्तु जयदेव ने राधा को रास से सम्बद्ध करते हुए भी गोपी-

कृष्ण रास के वर्णन में उन्हें पूर्ण पात्रता प्रदान नहीं की। 'ललितलवगलता' वाले गीत में सखी राधा को ही 'नृत्यतियुवतिजनेनसम' का वर्णन सुनाती है अतएव राधा की पात्रता का प्रश्न ही नहीं उठता।

गुजराती और व्रज दोनो ही भाषाओ के कवियो ने इस परम्परा का अनुसरण किया है किन्तु इस अनुसरण के भी कई स्तर है। पहला स्तर वह है जिसमें रास का समस्त वर्णन लगभग भागवत के ही अनुसार किया है केवल गोपी विशेष के स्थान पर तथा एकाध अन्य स्थल पर राधा का उल्लेख कर दिया गया है। गुजराती के दशमस्कधकार लक्ष्मीदास की 'रासपचाध्यायी' जो भालण के दशम स्कध में प्रक्षिप्त है, इसी स्तर की रचना है उन्होने राधा का उल्लेख दो स्थलो पर किया है।[११६] 'हरिरस' के रचयिता परमानंद ने भी रास में राधा को ऐसा ही स्थान दिया है। यद्यपि उनका उल्लेख लक्ष्मीदास की अपेक्षा अधिक सागोपाग है। उसमें राधा की मूर्छा का भी वर्णन है जिसका आधार ब्रह्मवैवर्त पुराण है।[११७] प्रेमानद ने रास वर्णन तो भागवत के ही आधार पर किया है परन्तु केवल एक स्थल पर राधा का उल्लेख कर दिया है 'राधा भक्ति नो अवतार'.(श्रीम० भा०, पृ० २९५)। व्रजभाषा के कवियो द्वारा रास में राधा का पूर्ण स्वीकार हुआ है अत इस प्रकार की आशिक स्वीकृति का कोई उदाहरण उसमे प्राप्त नही होता।

रास-वर्णन का दूसरा स्तर उन कवियों के काव्य में व्यक्त हुआ है जिन्होंने राधाकृष्ण के युगल रूप को सम्पूर्ण रास में स्थान दिया है और विभिन प्रसगो में स्थल स्थल पर राधा के अस्तित्व का प्रमाण दिया है। इस कोटि में गुजराती और व्रजभाषा के बहुत से कवियो का रास-वर्णन आ जाता है। गुजराती में नरसी और वासणदास तथा व्रजभाषा में लगभग सभी साम्प्रदायिक कवियों ने इस प्रकार का रास-वर्णन किया है।[११८] वासणदास के रास वर्णन में अन्य अनेक विभेद होने के कारण उसे पूर्णतया इसी स्तर में स्वीकार नही किया जा सकता। इस विषय में विशेष परिचय 'विशिष्ट रास वर्णन' शीर्षक के अतर्गत दिया जायगा।

'राधा-कृष्ण-गोपीरास' वर्णन के तीसरे स्तर में कवियो ने राधा-कृष्ण सम्बन्धी कतिपय नवीन प्रसगो का समावेश किया है जैसे राधाकृष्ण विवाह, राधा की नथनी और हार का खो जाना। रास के अन्तर्गत विवाह का वर्णन व्रजभाषा में सूरदास, ध्रुवदास आदि के काव्य में मिलता है, गुजराती में नरसी के 'वसतना पदो' में इसका सकेत है परन्तु विस्तृत वर्णन नही है। व्रजभाषा में इसके विरुद्ध आभूषण खोने का प्रसग उपलब्ध नहीं होता। राधाकृष्ण विवाह का मूल स्रोत भी वास्तव

में ब्रह्मवैवर्त पुराण ही है किन्तु उसमें विवाह रास के पूर्व होता है।[१९९] सूर ने रास के अन्तर्गत ही विवाह की कल्पना की है। यह शरद निशि की लग्न तथा मुरली ध्वनि से गोपियों के न्योते जाने के प्रसग से स्पष्ट है जिसका ब्रह्मवैवर्त के विवाह-वर्णन से कोई सीधा सम्बन्ध नही है।[२००] ध्रुवदास ने 'मंडलसभासिंगार' मे पहले विवाह का वर्णन किया है फिर रास का।[२०१] वनविहारलीला में पुन विवाह का सर्वांगीण निरूपण मिलता है जिसमे गठजोरा, दूधाभातो के बाद 'रैनि सुहाग' का भी वर्णन है किन्तु रास से उसका कोई सम्बन्ध प्रतीत नही होता। राधावल्लभीय गौडीय, हरिदासी तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियो द्वारा राधा-कृष्ण का वर्णन 'दम्पति' अथवा 'दूलह दुलहिनी' के रूप मे विशेष रूप से प्राप्त होता है फलत रास प्रसग में विवाह वर्णन का उतना आग्रह नही मिलता। रास में अधिकतर राधा-कृष्ण दम्पति के रूप में ही चित्रित किये गये है जैसा द्वितीय स्तर के राधा-कृष्ण-गोपीरास वर्णन से स्पष्ट है।

गुजराती में नरसी मेहता ने कई स्थलो पर राधा कृष्ण के विवाह का चित्रण किया है किन्तु 'रास' से उसका निश्चित सम्बन्ध सिद्ध नही होता। एक स्थल पर रास के ही अन्तर्गत राधा के विवाहित रूप का सकेत मिलता है।[२०२] किन्तु शेष स्थलो पर विवाह वर्णन स्वतत्र रूप से किया गया है।[२०३] भालण, केशवदास, प्रेमानद आदि अन्य किसी गुजराती कवि ने राधाकृष्ण विवाह का वर्णन ही नहीं किया है अत रास के प्रसग से उसके सम्बन्धित होने का कोई प्रश्न नहीं उठता। भालण एक स्थान पर एक गोपी के मुख से, जो कदाचित् राधा ही है, कृष्ण को 'सदा के लिए अविवाहित' कहलाते है—

लोक विषे लपट थयो रे, तारो विवाह न मळे वेद रे।

—द० स्क०, पृ० १४७

रास क्रीडा के समय राधा के हार अथवा नथनी के खोये जाने का वर्णन गुजराती में तो अवश्य मिलता है[२०४] पर ब्रजभाषा के किसी कवि ने ऐसा वर्णन नही प्रस्तुत किया। सूर ने केवल राधा की माला के टूट कर गिरने का ही उल्लेख किया है—

दरकि कचुकी तरकि माला रही धरणी जाइ।

—सू० सा०, पृ० ४४६

राधा-कृष्ण रास—ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्णजन्म खड के ५७वें अध्याय के अन्तर्गत राधाकृष्ण के एकान्त रास का भी वर्णन मिलता है और इस राधामाधव-

रास की संज्ञा भी दी गई है।[१०५] कृष्ण राधा के साथ अन्तर्धान हो जाने के अनन्तर उन्ही के साथ रास-क्रीड़ा करते है। गजराती कृष्ण-काव्य में इसके अनेक उदाहरण मिलते है।[१०६] व्रजभाषा में सूरदास ने कृष्ण का राधा के साथ अन्तर्धान होना तो वर्णित किया है परन्तु इस प्रकार के रास का वर्णन उस प्रसंग में नही है (सू० सा०, पृ० ४४८) और किसी अन्य कवि ने भी नही किया, किन्तु अन्तर्धान होने के प्रसंग से भिन्न स्थलो पर राधामाधव रास विषयक पद, सूरदास, हरिवंश, गदाधर आदि कवियों ने रचे है यद्यपि उनमें उक्त गुजराती कवियो की भांति एकांत का निर्देश नही है।[१०७]

रास के विविध प्रकार [समय (ऋतु) की दृष्टि से]

शारदी रास—शरद काल की पूर्णिमा के अवसर पर रास-क्रीड़ा वर्णन करने की परम्परा का मौलिक रूप में गोपी-कृष्ण रास की परम्परा से अभिन्न सम्बन्ध रहा है। जिन पुराणो में इस रास का वर्णन मिलता है उन्ही में शरद ऋतु का भी उल्लेख मिलता है—

शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिम्प्रति।

—हरिवंश, विष्णु पर्व, अ० ७७

कृष्णस्तु विमलं व्योम शरच्चन्द्रस्य चन्द्रिकाम्।

—विष्णुपुराण ५: १३: १४

—ब्रह्मपुराण अ० ११८

शरदोत्फुल्ल मल्लिका।

—भागवत, १० : २९ : १

ब्रह्मवैवर्त में पूर्णिमा के स्थान पर त्रयोदशी का वर्णन है, ऋतु नही दी है—

शुभे शुक्ल त्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने।

—अ० २८

गुजराती और व्रजभाषा दोनो में कृष्ण काव्य में इस परम्परा के अनुकरण के अगणित प्रमाण है और यह प्रमाण पूर्वोल्लिखित रास के लगभग सभी प्रकारो में उपलब्ध हो जाते है। कवियो ने गोपी-कृष्ण रास, राधा-कृष्ण-गोपीरास तथा राधा-कृष्णरास सभी को शारदी रास के रूप में चित्रित किया है।[१०८] उन वर्णनों में जिस 'खटमासी' रात्रि का उल्लेख है उसका मूल कदाचित् ब्रह्मवैवर्त में वर्णित एक मास की रात्रि है।[१०९]

वासंती रास—इस प्रकार के रास में प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सामूहिक नृत्य

का वर्णन विशेष रूप से किया गया है यद्यपि पौराणिक परम्परा की छाया भी यत्र तत्र मिल जाती है। कृष्ण-काव्य में शारदी रास की तरह इस रास की भी परम्परा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है। 'बालचरित' का रास-वर्णन यद्यपि अधिक अंशों में वासती रास ही प्रतीत होता है किन्तु ऋतु सम्बन्धी कोई उल्लेख न होने से उसे उन दोनो परम्पराओं में से किसी में भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। ब्रह्मवैवर्त में इसका सूत्र अवश्य मिलता है —

कृत्वा क्रीड़ां तत्रैव वासंतीं काननं ययौ
रेमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे ॥
—कृ० खड, अ० ५३

और 'गीतगोविन्द' पर भी इसी की छाया है—

विहरति हरिरिह सरस वसंते
नृत्यति युवति जनेन समं सखि विरहि जनस्य दुरंते।
—प्रथम सर्ग

मैथिल कवि विद्यापति के पदों में भी वासती रास के वर्णन मिलते हैं।[११०] कदाचित् प्राकृत एव अपभ्रंश काव्यों में इस रास की परम्परा प्रचलित रही जिसके दर्शन १५वी शती के गुजराती कवि नर्यपि के 'फागु' काव्य में होते हैं।[१११] १६वी शती के केशवदास ने वासंती रास का अधिक स्पष्ट वर्णन किया है।[११२] ब्रजभाषा में भी इसके कतिपय उल्लेखनीय सकेत मिल जाते हैं।[११३] गुजराती में वासणदास ने सूर की तरह ही प्रारंभ में शरद ऋतु का निर्देश करके अन्त में 'ऐहवे माधव मास अंगि गाअे केसू ते फूल्यां बहू। कालिंदी सुसुतीर धीर राधा खेले ते होली सहू।' लिखकर एक स्थल पर वसंत का उल्लेख किया है।

नरसी, सूर तथा अन्य अनेक कवियों ने वसंत विषयक पदो में नृत्य का वर्णन किया है परन्तु वह होली से सम्बद्ध है।

रास के विविध प्रकार [स्थान की दृष्टि से]

वृन्दावन रास—नर्यपि को छोड़कर गुजराती और ब्रजभाषा के सभी कवियो ने रास-क्रीडा का क्षेत्र वृन्दावन का यमुनातट माना है जिसका उल्लेख सभी वर्णनो में प्राप्त होता है। सूर ने इस क्षेत्र की सीमाएँ भी दे दी हैं।[११४]

द्वारका रास—गुजराती के नर्यपि और नरसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होने द्वारका में रास का चित्रण किया है[११५]—

(क) राज करइ श्रीरग...यादवनायक्रु अे।
नाचइ गोपियवृन्द...
पुहता निजपुरी अे...

(ख) ...मुजने श्री द्वारका माहे रास्यो।
...शरदपुनमतणो दिवस तहा आवीयो,
रासमरयादनो वेण वाध्यो।
रुकमणी आदि सहु नारि टोळे मळी,
नरसहीअे तहा ताल साध्यो।

वस्तु की इस विचित्रता को दो प्रकार से समझा जा सकता है। एक तो कदाचित् इस प्रकार को परम्परा गुजरात में प्रचलित रही हो दूसरे यह कि कवियो ने वास्तविक परम्परा से भिन्न स्वकल्पना से ऐसा वर्णन किया हो। दूसरी सम्भावना अधिक यथार्थ प्रतीत होती है।

भागवत के रास की मूलवस्तु के आधार पर रास-वर्णन के विभिन्न अंशो का तुलनात्मक अध्ययन—इस वस्तु का विभाजन विवेचन के प्रारंभ में ही किया जा चुका है अनुवादको के अतिरिक्त दोनो भाषाओ में कई कवि ऐसे मिलते है जिन्होने भागवत की लगभग सम्पूर्ण वस्तु का अपने ढग से उपयोग किया है जैसे गुजराती में नरसी, केशवदास और प्रेमानंद तथा व्रजभाषा में सूर और नंददास। साथ ही बहुत से कवि ऐसे है जिन्होने अनेक महत्वपूर्ण अशो को अपने रास-वर्णन में स्थान नही दिया। कुछ ने परिवर्धन और कुछ ने सक्षेप भी किया है। भागवतेतर परम्परा के रास-वर्णन में भी भागवत के रास की छाया मिलती है। इस समस्त वस्तु स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए पूर्वोक्त प्रमुख अशो पर क्रमश विचार करने की आवश्यकता है।

१. वेणु-गीत—गीत के द्वारा गोपियो को आकर्षित करने की बात ब्रह्म तथा विष्णुपुराण आदि में भी प्राप्त होती है।[१११] किन्तु बालचरित तथा हरिवश में इसका उल्लेख नही मिलता। पौराणिक परम्परा के अनुसार भागवत ने 'जगौ कलं वामदृशां मनोहरं' लिखा और उसे 'अनंग वर्धन' भी कहा। आगे चल कर भागवतकार ने स्पष्ट कर दिया कि यह गीत केवल गीत न होकर वेणु-गीत है।[११०]

व्रजभाषा के लगभग सभी कवियो ने रासारंभ में इस वेणु-गीत का उल्लेख किया है किन्तु सूर ने—

'सूर नाम लै लै जन जन के मुरली बारबार बजाई'

लिखकर कदाचित् बालचरित तथा ब्रह्मपुराण का अनुसरण किया है। जयदेव तथा विद्यापति ने भी ऐसा वर्णन किया है।[११८] नंददास ने तो भागवत के 'योग माया-मुपाश्रित' को वेणु से सम्बद्ध करके उसे 'जोगमाया की मुरली' कह डाला। ब्रज-भाषा के अन्य अनेक कवियो ने वेणु गीत का उल्लेख अपने काव्य में किया है।[२११] गुजराती के कवियो में नरसिं तथा केशवदास ने वेणु-गीत का उल्लेख नही किया है किन्तु शेष कवियो ने वेणु-गीत का बराबर वर्णन किया है।[२२०]

कृष्ण की बाँसुरी को लेकर उपालभ के रूप में सूर आदि अनेक कविया ने स्वतत्र रूप से काव्य रचना की। ऐसी कुछ रचनाएँ नरसी, मीरा के गुजराती के पदो में भी प्राप्त होती है।

२ गोपी कृष्ण सवाद—वेणुनाद से आकृष्ट 'तावार्यमाणा पतिभिः ..मोहिता' गोपियो को कृष्ण घर लौट जाने का आदेश देते है, जिसका वे उत्तर देती है। इस गोपी-कृष्ण संवाद (भा० १० २९ १८-४१) का वर्णन ब्रजभाषा में सूरदास, नंददास आदि वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो में ही उपलब्ध होना है। इसी प्रकार गुजराती में नरसी, भालण, केशवदास तथा कतिपय अनुवादको में ही यह सवाद मिलता है। ब्रजभाषा में सूर और गुजराती में केशवदास ने इसका विशेष विस्तार से वर्णन किया है।[२२१]

३ गोपी-गर्व तथा कृष्ण का अंतर्धान होना—उन्तीसवें अध्याय में ही उक्त सवाद के उपरान्त रमण में गोपियो के गर्वित होने तथा उस गर्व के कारण कृष्ण के अतर्धान होने का प्रसग भागवत में आता है। यह प्रसग रास की अत्यन्त प्रमुख घटना है। भागवत में कृष्ण के अतर्धान होने की बात दो स्थलो पर मिलती है। एक वार कृष्ण गोपियो में सौभगमद होने पर अतर्धान होते है और दूसरी वार उस गोपी विशेष की स्कधारोहण की इच्छा पर जो पहली बार उनके साथ अतर्धान हुई थी।[२२२] ब्रह्मवैवर्त में भी दोनो अतर्धानो का वर्णन है।[२२३] यह आश्चर्य की बात है कि नददास जैसे भागवतानुकूल रासवर्णन करने वाले कवि ने पहले अंतर्धान को 'मजु कुज में तनक दुरे' के रूप में परिणत कर दिया और दूसरे का केवल 'किधौं चद सौ रूसि चन्द्रिका रहि गई पाछे' लिखकर सकेत भर कर दिया है। सूर ने दोनो का स्पष्ट वर्णन किया है।[२२४] गोपी-कृष्ण सवाद की तरह ही ब्रज के अन्य सम्प्रदायो के कवियो द्वारा अतर्धान के प्रसग का भी वर्णन नही हुआ है। गुजराती में इस प्रसग का वर्णन नरसिं, नरसी, प्रेमानंद, लक्ष्मीदास, वासणदास आदि अनेक कवियो द्वारा विविध प्रकार से रास के प्रसग में किया गया है। नरसी

ने रास के अन्तर्गत आँखमिचौनी के खेल के उपरांत कृष्ण के अंतर्धान होने का वर्णन किया है।[३२५]

अंतर्धान के दूसरे प्रसग में प्रेमानद ने अपनी कल्पना से नवीनता उत्पन्न कर दी है। कृष्ण उस गोपी विशेष से वृक्ष की डाल का सहारा लेने के लिए कह कर छल से वृक्ष के नीचे अंतर्धान हो जाते हैं।

विरह विह्वल गोपियो द्वारा कृष्णलीलानुकरण—भागवत मे कृष्ण के अंतर्धान हो जाने के पश्चात् गोपियो की विरहावस्था का विशद चित्रण है जिसमें वे कृष्ण की अनेक लीलाओं का अनुकरण करती हैं।[३२६] दोनो भाषाओं के भागवतानुयायी पूर्व निर्दिष्ट कवियो ने ही इसका भी वर्णन किया है, नर्यापि, भालण, वासणदास आदि ने नही। सूर ने स्पष्ट लिखा है—

करति हैं हरिचरित्र ब्रज नारि।
देखि अति ही विकल राधा इहै बुद्धि विचारि।
—सू० सा०, पृ० ४५२

सूर का वर्णन भागवत से कई प्रकार भिन्न है। एक तो यह कि भागवतकार ने इसका वर्णन गोपी विशेष से भेंट होने के पूर्व किया है दूसरे उसका उद्देश्य तन्मयता व्यक्त करना है परन्तु सूर ने राधा से गोपियो की भेंट हो चुकने पर राधा की विह्वलता निवारण के लिए इसका वर्णन किया है। नददास ने भागवत का ही अनुसरण किया है।[३२७] नरसी तथा सूर के उक्त वर्णन में आश्चर्यजनक साम्य है। परिस्थिति तथा उद्देश्य दोना ही समान है[३२८]—

'कृष्णचरित्र गोपी करे, बीलसे राधानार'।

पदाक दर्शन एव कृष्णान्वेषण—पूर्व प्रसग से यह प्रसग सम्बद्ध है अत इसकी भी स्थिति पूर्ववत् है। ब्रह्मवैवर्त में इसका वर्णन नही है। उदाहरण दोनो भाषाओं के कवियो के पाये जाते है।[३२९]

४ **यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना तथा सभाषण**—यमुना तट का वर्णन तो अन्य कवियो मे भी प्राप्त होता है पर प्रसग के क्रम तथा सवाद से युक्त वर्णन भागवतानुयायी कवियो में ही मिलता है।[३३०] भागवत के दशम स्कध के बत्तीसवें अध्याय में इसी प्रसग का वर्णन है। सूर ने केवल कृष्ण के प्रकट होने का वर्णन किया है। नरसी ने इसी घटना को महत्त्व नही दिया और न उनकी 'राससहस्रपदी' में इसका वर्णन ही मिलता है।

लिखकर कदाचित् वालचरित तथा ब्रह्मपुराण का अनुसरण किया है। जयदेव तथा विद्यापति ने भी ऐसा वर्णन किया है।[३१८] नंददास ने तो भागवत के 'योग माया-मुपाश्रितः' को वेणु से सम्बद्ध करके उसे 'जोगमाया की मुरली' कह डाला। ब्रज-भाषा के अन्य अनेक कवियो ने वेणु-गीत का उल्लेख अपने काव्य में किया है।[३१९] गुजराती के कवियो मे नरसि तथा केशवदास ने वेणु-गीत का उल्लेख नही किया हैं किन्तु शेष कवियो ने वेणु-गीत का बराबर वर्णन किया है।[३२०]

कृष्ण की बाँसुरी को लेकर उपालभ के रूप में सूर आदि अनेक कवियों ने स्वतत्र रूप से काव्य रचना की। ऐसी कुछ रचनाएँ नरसी, मीरा के गुजराती के पदो में भी प्राप्त होती हैं।

२. गोपी-कृष्ण संवाद—वेणुनाद से आकृष्ट 'तावार्यमाणाः पतिभिः...मोहिता' गोपियो को कृष्ण घर लौट जाने का आदेश देते हैं, जिसका वे उत्तर देती हैं। इस गोपी-कृष्ण संवाद (भा० .१० २९ : १८-४१) का वर्णन ब्रजभाषा में सूरदास, नंददास आदि वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में ही उपलब्ध होता हैं। इसी प्रकार गुजराती में नरसी, भालण, केशवदास तथा कतिपय अनुवादको में ही यह सवाद मिलता हैं। ब्रजभाषा में सूर और गुजराती में केशवदास ने इसका विशेष विस्तार से वर्णन किया है।[३२१]

३ गोपी-गर्व तथा कृष्ण का अंतर्धान होना—उन्नीसवें अध्याय में ही उक्त सवाद के उपरान्त रमण में गोपियो के गर्वित होने तथा उस गर्व के कारण कृष्ण के अतर्धान होने का प्रसंग भागवत में आता है। यह प्रसग रास की अत्यन्त प्रमुख घटना है। भागवत में कृष्ण के अतर्धान होने की बात दो स्थलों पर मिलती हैं। एक बार कृष्ण गोपियो में सौभगमद होने पर अतर्धान होते हैं और दूसरी बार उस गोपी विशेष की स्कधारोहण की इच्छा पर जो पहली बार उनके साथ अंतर्धान हुई थी।[३२२] ब्रह्मवैवर्त्त में भी दोनो अतर्धानो का वर्णन है।[३२३] यह आश्चर्य की बात है कि नंददास जैसे भागवतानुकूल रासवर्णन करने वाले कवि ने पहले अंतर्धान को 'मजु कुज में तनक दुरे' के रूप में परिणत कर दिया और दूसरे का केवल "किधौ चंद सौ रूसि चन्द्रिका रहि गई पाछे' लिखकर सकेत भर कर दिया है। सूर ने दोनो का स्पष्ट वर्णन किया है।[३२४] गोपी-कृष्ण सवाद की तरह ही ब्रज के अन्य सम्प्रदायो के कवियो द्वारा अंतर्धान के प्रसंग का भी वर्णन नही हुआ है। गुजराती में इस प्रसग का वर्णन नरसि, नरसी, प्रेमानंद, लक्ष्मीदास, वासणदास आदि अनेक कवियो द्वारा विविध प्रकार से रास के प्रसग में किया गया है। नरसी

ने रास के अन्तर्गत आँखमिचौनी के खेल के उपरांत कृष्ण के अतर्धान होने का वर्णन किया है।[१३५]

अतर्धान के दूसरे प्रसग में प्रेमानद ने अपनी कल्पना से नवीनता उत्पन्न कर दी है। कृष्ण उस गोपी विशेष से वृक्ष की डाल का सहारा लेने के लिए कह कर छल से वृक्ष के नीचे अतर्धान हो जाते हैं।

विरह विह्वल गोपियो द्वारा कृष्णलीलानुकरण—भागवत मे कृष्ण के अंतर्धान हो जाने के पश्चात् गोपियों की विरहावस्था का विशद चित्रण है जिसमें वे कृष्ण की अनेक लीलाओ का अनुकरण करती हैं।[१३६] दोनो भाषाओं के भागवतानुयायी पूर्व निर्दिष्ट कवियो ने ही इसका भी वर्णन किया है, नर्यपि, भालण, वासणदास आदि ने नही। सूर ने स्पष्ट लिखा है—

करति है हरिचरिन ब्रज नारि।
देखि अति ही विकल राधा इहै बुद्धि विचारि।
—सू० सा०, पृ० ४५२

सूर का वर्णन भागवत से कई प्रकार भिन्न है। एक तो यह कि भागवतकार ने इसका वर्णन गोपी विशेष से भेंट होने के पूर्व किया है दूसरे उसका उद्देश्य तन्मयता व्यक्त करना है परन्तु सूर ने राधा से गोपियो की भेंट हो चुकने पर राधा की विह्वलता निवारण के लिए इसका वर्णन किया है। नददास ने भागवत का ही अनुसरण किया है।[१३७] नरसी तथा सूर के उक्त वर्णन में आश्चर्यजनक साम्य है। परिस्थिति तथा उद्देश्य दोनों ही समान है[१३८]—

'कृष्णचरित्र गोपी करे, बीलसे राधानार'।

पदाक दर्शन एव कृष्णान्वेषण—पूर्व प्रसग से यह प्रसग सम्बद्ध है अत इसकी भी स्थिति पूर्ववत् है। ब्रह्मवैवर्त में इसका वर्णन नही है। उदाहरण दोनो भाषाओ के कवियो के पाये जाते हैं।[१३९]

४ यमुना तट पर कृष्ण का प्रकट होना तथा सभाषण—यमुना तट का वर्णन तो अन्य कवियो म भी प्राप्त होता है पर प्रसग के क्रम तथा सवाद से युक्त वर्णन भागवतानुयायी कवियो में ही मिलता है।[१४०] भागवत के दशम स्कंध के बत्तीसवें अध्याय में इसी प्रसग का वर्णन है। सूर ने केवल कृष्ण के प्रकट होने का वर्णन किया है। नरसी ने इसी घटना को महत्त्व नही दिया और न उनकी 'राससहस्रपदी' में इसका वर्णन ही मिलता है।

महारास—इसके वर्णन में प्राय कवियो ने भागवत के दशम स्कध के तैंतीसवें अध्याय से प्रेरणा ली है। इस विषय में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सूर ने इसी महारास का दो बार वर्णन किया है । भागवत में कृष्ण के अतर्धान होने से पहले उनका गोपियो के साथ केवल रमण करना 'बाहु प्रसार परिरम्भ ..रमयाचकार' वर्णित है। सूर ने यहाँ अपनी स्वतत्र उद्‌भावना से रास का सागोपाग वर्णन किया है। उनके इस रास वर्णन पर ब्रह्मवैवर्त का भी कुछ प्रभाव लक्षित होता है ।

अतर्धान होने से पहले के रमण को रास रूप में नरसी ने भी ग्रहण किया है जो 'वृन्दावन माहे रास रमता' वाले पद से प्रकट है किन्तु गुजराती के अन्य कवियो प्रेमानद, केशवदास आदि ने भागवत की परम्परा का ही पालन किया है । इस महारास के भी दो प्रमुख उपाग हैं—

१ वाद्य सगीत का आयोजन
२ कृष्ण का अनेक रूप धारण

वाद्य संगीत का आयोजन—ब्रजभाषा में हरिदास आदि अनेक कवियो ने अपनी गान विद्या की अभिज्ञता का परिचय रास के इस अश के वर्णन में दिया है।[३११] भागवत में सगीत शास्त्र के ज्ञान का प्रदर्शन नही है । रास में 'उरप-तिरप' का वर्णन अष्टछाप के कवियो ने भी अनेक बार किया है। गुजराती के कवियो के रास-वर्णन पर भी सगीत का प्रभाव यत्र तत्र परिलक्षित होता है।[३१२]

कृष्ण का अनेक रूप धारण—भागवत में इसका वर्णन स्पष्टतया मिलता है **कृत्वा तावन्तमात्मान यावतीर्गोपयोषित** (१० ३३ २०)। ब्रह्मवैवर्त में इस विषय को आवश्यकता ही नही है क्योकि वहाँ रास में गोपियो के साथ उतने ही गोपो की उपस्थित भी वर्णित है। कवियो ने गोपियो की १६००० सख्या का उल्लेख किया है जो भागवत में नही है। सूर कृष्ण के अनेक रूप धारण करने के साथ ही उन रूपो से प्रत्येक गोपी के साथ विवाह तथा रमण करने का भी उल्लेख करते है, जो ब्रजभाषा के अन्य कवियो में नही प्राप्त होता।[३१३] 'द्वै द्वै गोपिन बीच जु मोहन-लाल बने छवि' से स्पष्ट होता है कि नददास ने भागवत का पूर्ण आधार लिया है और गोपियो की सख्या नही दी। हरिवश, ध्रुवदास, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट तथा हरिदास आदि राधा प्रधान सम्प्रदायो के कवियो में कृष्ण के अनेक रूप धारण का वर्णन नही प्राप्त होता। इसका कारण 'दम्पति' अथवा युगल रूप का आग्रह तथा राधा की अन्य गोपियो की अपेक्षा श्रेष्ठता व्यजित करना प्रतीत होता है इसके प्रतिकूल भागवत में किसी गोपी विशेष को केन्द्ररूप में न लेकर सारी गोपियो की समानता प्रकट की गयी है।

गुजराती में भी रास-वर्णन के अतर्गत कृष्ण के अनेक रूपो का उल्लेख पाया जाता है।[२३४] प्रेमानद ने तो कृष्ण ही नही बल्कि चन्द्रमा के भी सोलह सहस्त्ररूप धारण करने का उल्लेख किया है।[२३५] वासणदास ने 'साथि सोल सहस्र नारि शामा' कह कर सख्या को परम्परा का तो पालन किया है परन्तु कृष्ण के अनेक रूपो का वर्णन नही किया। नर्यापि ने गोपियो की सख्या 'सहस्र अढार' दी है। इन सख्याओ का मूल कदाचित् कृष्ण की हजारो पत्नियाँ है जिनका उल्लेख विष्णु पुराण में मिल जाता है—

षोडश सहस्राण्येकोत्तरशतानि स्त्रीणामभवन्।

—४ : १५ : १९

देवताओं द्वारा रास दर्शन तथा चराचर में व्याप्त उसके अलौकिक रूप का उल्लेख नरसी हरिवश आदि ने किया है।[२३६]

५. जल-क्रीडा—भागवत में रास के अत मे यमुना में कृष्ण-गोपियो की जल-क्रीडा का वर्णन है।[२३७] इसका वर्णन दोनो भाषाओ में प्राप्त होता है। ब्रजभाषा के सूर, नददास, श्रीभट्ट आदि ने इस जल-क्रीडा का स्वतन्त्र रूप से विकास किया है।[२३८] माधवदास ने जल-क्रीडा का वर्णन रास से पहले सध्या समय ही कर दिया है और अन्त मे सेज-सुख का चित्रण किया है।[२३९] गुजराती में केवल नरसी और नर्यापि ने जलक्रीडा का वर्णन किया है।[२४०]

रास में संभोग वर्णन—भावना के आवेश में श्लीलता तथा अश्लीलता का ज्ञान नही रह जाता। इसी के परिणामस्वरूप रास के अतर्गत सभोग का भी वर्णन किया गया है जो ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनो भाषाओ के काव्य मे देखा जा सकता है।[२४१]

रास से सम्बद्ध अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ—ऊपर वर्णित बातो के अतिरिक्त भी रास-वर्णन में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें शेष रह जाती है जिनका उल्लेख करना विषय की दृष्टि से आवश्यक है। ये नरसी-मीरा तथा ध्रुवदास के रास-वर्णन में पायी जाती है।

नरसी के रास-वर्णन की प्रमुख ज्ञातव्य वस्तु यह है कि उन्होंने अनेक स्थलो पर अपनी पात्रता का उल्लेख 'दीवटिया' तथा ताल बजाने वाले के रूप मे किया है।[२४२] नरसी ने एक स्थल पर रास की आरती का भी वर्णन किया है।[२४३]

अपने को 'दीवटिया' कहकर नरसी ने रास की शारदी पूर्णिमा में भी दीपको की सत्ता स्वत स्वीकार की है। भागवत तथा इसी परम्परा के अन्य किसी भी पुराण में रास के समय ज्योत्सना के अतिरिक्त अन्य किसी कृत्रिम प्रकाश का वर्णन नही मिलता। ब्रह्मवैवर्त में दीपका का उल्लेख तो है 'दीप्त रत्न प्रदीपैश्च' (कृ० ख० २८ ११) किन्तु नरसी के मस्तिष्क में कदाचित् किसी तत्कालीन लौकिक रासमडली के दीवटिय की छाया रही होगी।

नरसी के इसी आत्मानुभूत रास से पूर्वोक्त राधा की नथनी खो जाने के प्रसग को सम्बद्ध किया जाता है जिसके फलस्वरूप उन्हे विभिन्न वर्णो में रास लीला के दर्शन हुए।[२४४] परन्तु विविध वर्णो में जिस वस्तु का चित्रण नरसी के काव्य में मिलता है उससे तथा रास से कोई सम्बन्ध सिद्ध नही होता।[२४५]

नरसी ने एक अन्य पद में रास में नारद के सम्मिलित होने का उल्लेख किया है—

रास ने रमाड्या रे वृन्दावन मारे, नारद जी तो नाचता हुता ताहा छम।[२४६]

ब्रह्मवैवर्त में श्रोता नारद होने के कारण श्लोको में यत्र तत्र "नारद" शब्द आ जाता है सभव है वही इस भ्रम का कारण बना हो।[२४७] नरसी ने 'गोविन्दगमन' के प्रसग में भी रास का उल्लेख किया है जो वस्तु की दृष्टि से सर्वथा नवीन है।[२४८]

मीरा के एक गुजराती पद में रास को निर्गुण भावधारा के रूप में ढाल कर प्रस्तुत किया गया है—

- मारा प्राण पातळिया वहेला आवो रे तम रे विनाहूं तो जनम जोगण छु।
  नाभि कमल थी सुरता रे चाली जइ नें तखत पर रास रचोला रे।
  सुखमना नाडी अेनी सेज बिछावे ते दी रंग भीना छे रास धारी।

ध्रुवदास ने रास के प्रसग में राधा द्वारा कमल पत्रो पर विशिष्ट गति से रास करने का जो चित्रण किया है वह अन्य किसी भी कवि ने नही किया। कृष्ण राधा से उनकी गति सीखने की इच्छा व्यक्त करते हैं। इसे सुनकर राधा अद्भुत कौतुक करती है। उसे देखते ही कृष्ण रीझ कर राधा के पैर चूम लेते हैं। ध्रुवदास ने नृत्यविलास में इसका वर्णन पुन किया है।[२४९] इसके अतिरिक्त दम्पति के परस्पर वस्त्र परिवर्तन करके रास करने का वर्णन भी ध्रुवदास ने किया है—

कबहुँ पिया पट पीय के पिय प्यारी के बास।
पहिरे दोउ आनद में निरतत रास बिलास ॥४७॥
—रहसिलता

मथुरा-लीला

अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा-गमन—गुजराती में १६वी शती में नरसी मेहता कृत 'गोविन्द गमन' नामक एक ही स्वतत्र रचना इस विषय पर उपलब्ध होती है और ब्रजभाषा में सूरदास के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने इस विषय को महत्व नही दिया। नरसी के पश्चात् गुजराती कवि प्रेमानद के दशम स्कध में तथा केशवदास वैष्णव की मथुरालीला में अक्रूर का प्रसग पर्याप्त विस्तार से वर्णित है।

सूरदास तथा प्रेमानद ने भागवत के ३८, ३९, ४०वें अध्यायो की कथा को परिवर्धित रूप में प्रस्तुत किया है परन्तु नरसी ने शुक-परीक्षित सवाद का बाह्यत अनुसरण करते हुए भी वस्तुत सर्वथा भिन्न कथा दी है। गोविन्द-गमन में राधा तथा उनकी सखियो की प्रधानता है। चन्द्रभागा और राधा, कृष्ण के मधुपुर जाने के के समाचार से विकल हो कर सखिया से परामर्श करती है और प्रात काल कृष्ण को जगाने जाती है परन्तु कृष्ण के स्थान पर अक्रूर जग जाते है और वे उन्ही को कुजभवन में पकड ले जाती है। कृष्ण अपने भक्त की यह दुर्दशा देखकर उसे अपना रूप देकर नदभवन पहुँचाकर स्वय गोपियो की कामना पूर्ण करते है। दूसरे दिन राधा नरसी को ही पत्रवाहक बना कर कृष्ण के पास भेजती है। कृष्ण जाने के पहले राधा, गोपी, गायो आदि से मिलने का उपक्रम करते है। इसके बाद वे रथ पर अक्रूर के साथ बैठकर चलते है। रास्ते में उन्हें सखियो सहित राधा फिर मिल जाती है। वह उनको रोकने के लिए रथ की कील निकाल लेती है और कृष्ण से कुज में चलने का आग्रह करती है। कृष्ण भी कहते है कि यदि हाथी लाओ तो चलें। राधा ने तत्काल सखियो के साथ 'नारी कुजर' की रचना की और कृष्ण को प्रेम-अकुश देकर कुज म ले गई। वहाँ अन्य क्रीडाओ के अतिरिक्त रास क्रीडा भी हुई। इसके पश्चात् कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते है। परीक्षित सुक सवाद के रूप में ही इसकी समाप्ति होती है।[५०]

यद्यपि गोविन्द-गमन की उपर्युक्त कथा का अधिकाश कल्पित प्रतीत होता है तथापि इसका मौलिक आधार ब्रह्मवैवर्त पुराण में प्राप्त हो जाता है। इस पुराण

में राधा सखियो समेत कृष्ण को रोकने का प्रयत्न करती है। गोपियाँ रथ तोड डालती है और अक्रूर को निर्वस्त्र तक कर देती है। कृष्ण राधा को समझाने के लिए रुक जाते है। ब्रह्मवैवर्त में राधा सम्बन्धी और भी बहुत सी वस्तु इस प्रसग में दी जाती है जो गोविन्द-गमन में नही प्राप्त होती। 'नारी कुजर' का कोई उल्लेख ब्रह्मवैवर्त में नही है।

कस का कृष्ण-बलराम को बुलाने के लिए प्रेरित होना—भागवत में यह प्रेरणा कस को नारद से तथा ब्रह्मवैवर्त में एक भयकर स्वप्न से मिलती है, सूर ने दोनो को एक सूत्र में बाँध दिया है। स्वय कृष्ण नारद को कस के पास जाने के लिए कहते है तब कस अक्रूर द्वारा उन्हें बुलाने का निश्चय करता है। वह भयभीत होकर एक दु स्वप्न देखता है। ब्रह्मवैवर्त मे वर्णित शकित राधा के स्वप्न देखने के प्रसग को किसी कवि ने नही उठाया केवल प्रेमानद ने किसी एक ब्रज-स्त्री के स्वप्न का उल्लेख किया है।[२५१]

अक्रूर को जल में कृष्ण दर्शन—भागवत के अनुसार जब अक्रूर मार्ग में यमुना स्नान करते है तो उन्हें जल में कृष्ण के दर्शन होते है। फिर कर देखने पर कृष्ण रथ में बैठे हुए वैसे ही दिखाई पडते है। अक्रूर कुछ उद्विग्न हो जाते है। भागवत में इस प्रकार कृष्ण के दर्शन का कोई कारण नही दिया गया किन्तु सूर ने अन्तर्द्वन्द्व में फँसे हुए भक्त के सदेह निवारणार्थ कृष्ण दर्शन कराया है जिससे अक्रूर उनकी प्रभुता को समझकर सन्तुष्ट हो जाँय।[२५२]

नरसी के गोविन्द-गमन में यह घटना नही है। प्रेमानन्द ने एक प्रकार प्रकार से सूर का ही अनुसरण किया है। प्रेमानन्द के कृष्ण अक्रूर के साथ स्नान न करने का कारण 'नथी नहावानी टेव' बताते है और सूर के कृष्ण कलेऊ में व्यस्त होने के कारण नही नहाते।[२५३]

मथुरा-दर्शन, रजक वध, दरजी और माली पर कृपा तथा कुब्जा-उद्धार—भागवत म वर्णित मथुरा प्रवेश और धनुर्भंग के बीच घटित होने वाली इन अनेक छोटी छोटी घटनाओं का वर्णन दशमस्कधकारो ने प्रसगानुकूल किया है। ब्रजभाषा में केवल सूरसागर में ही इनका वर्णन मिलता है परन्तु गुजराती के दशमस्कधकार भालण, केशवदास तथा प्रेमानन्द के अतिरिक्त फाग के 'कसोद्धरण', चतुर्भुज की 'भ्रमरगीता' तथा केशवदास की 'मथुरालीला' मे भी यह उपलब्ध है।

कस के जिस रजक का वध कृष्ण ने किया था सूर ने उसका सम्बन्ध तृणावर्त से स्थापित कर दिया। प्रेमानन्द ने अपने परियट (रजक) के वध के अनन्तर

दिव्य विमान से स्वर्ग भेज दिया।[२५४] दरजो का नाम प्रेमानन्द ने 'सुलक्षण' दिया है और उसे सायुज्य मुक्ति दिलायी है जबकि भागवत में कोई नाम नही दिया गय है और उसे सारूप्य मुक्ति मिली है।[२५५] माली का नाम भागवत में 'सुदामा' दिय है और सूर तथा प्रेमानद ने भी वही दिया है। भालण ने 'सुदामा' को अधिक दा पाने वाला व्यक्ति माना है।[२५६]

कुब्जा के प्रसग का चित्रण प्रेमानद ने विशेष रूप से किया है। भागवत की निवक्रा किन्तु सुन्दरी तरुणी कुब्जा को कवि ने कुरूप तथा वृद्धा वर्णित किया है, जिसे कृष्ण सुन्दर, तरुणी तथा सुडौल बना देते है। उस दासी की झोपडी को राजमहल में परिवर्तित कर देते है। प्रेमानद ने ये दोनो बातें ब्रह्मवैवर्त पुराण से ली है। कुब्जा के प्रसग में सूरसागर में भी कृष्ण द्वारा सम्पत्ति तथा रूप दान का सकेत मिलता है।[२५७]

धनुर्भंग तथा कुवलयापीड, चाणूर, मुष्टिक आदि के पश्चात् कस का वध—इन घटनाओ का भी वर्णन दशमस्कधकारो ने पूर्ववत् किया है जिसमें अनुवादात्मकता ही अधिक है। सूरदास ने धनुर्भंग के प्रसग मे कस द्वारा किसी एक असुर के भेजे जाने का वर्णन किया है जिसे कृष्ण मार डालते है। इसका उल्लेख भागवत आदि में कही नही है।[२५८]

कुवलयापीड से युद्ध करने में सूर नें कृष्ण बलराम दोनो का योग दिखाया है। प्रेमानद नें कुवलयापीड को अन्य असुरो की सी गति दिलायी है।[२५९] अन्य पुराणो में जितने मल्लो के नाम मिलते है, भागवत में उनमें 'शल' और 'कूट' के नाम और जुड गये है, जिनका वध कृष्ण और राम करते है। सूरसागर में इनका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता पर यह केशवदास आदि गुजराती कवियो की रचनाओ में प्राप्त होते है। प्रेमानद ने इनके युद्ध मे व्यतिक्रम कर दिया है और दोनो का वध बलराम से कराया है।[२६०]

कस-वध जैसी महत्वपूर्ण घटना को किसी कवि ने समुचित रूप में चित्रित नही किया। फूढ का 'मल्ल अखाडाना चन्द्रावला' नामक काव्य इस विषय का एक मात्र स्वतन्त्र प्रयास है।

उग्रसेन को राज्य दान, वसुदेव देवकी का कारा से मोक्ष, उपनयन सस्कार तथा सादीपनि से शिक्षा प्राप्ति—अधिकतर कवियों ने इन प्रसगो का निर्देश मात्र कर दिया है। सूरसागर में सादीपनि का प्रसग है ही नही। वसुदेव देवकी

की मुक्ति के पश्चात् कृष्ण नंद को विदा कर देते हैं और वे यशोदा को कृष्ण के गोकुल न लौटने की सूचना देते हैं। सूरदास ने इस अंश का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया है। नंद यशोदा संवाद के अनन्तर उससे भी अधिक विस्तार से गोपियों तथा व्रजवासियों की विरहावस्था का चित्रण किया है। यशोदा और राधा दोनों ही पथियों द्वारा देवकी और कृष्ण तक संदेश भेजती हैं।[१११] गुजराती में भालण तथा प्रेमानंद ने भी नंद, यशोदा देवकी तथा कृष्ण के भावनात्मक संघर्ष का चित्रण किया है परन्तु सूर की तुलना में यह अत्यंत संक्षिप्त है। जिस रूप में नंद, वसुदेव और कृष्ण देवकी का वाद-विवाद प्रेमानंद ने प्रस्तुत किया है वह व्रजभाषा में उपलब्ध नहीं होता।

अपने दशमस्कंध में प्रेमानंद ने कृष्ण के अध्ययन काल की ऐसी घटनाओं का समावेश किया है जो उन्हीं के अनुसार भागवतेतर स्रोतों से उन्हें प्राप्त हुई थी। गुरु-पत्नी को इंधन की चिंता में ग्रस्त देखकर कृष्ण, बलराम और सुदामा तीनों 'सरपण' लेने वन में जाते हैं जहाँ आंधी पानी आ जाता है। गुरु यह जानकर अपनी पत्नी पर क्रुद्ध होते हैं और सबको खोजने निकलते हैं और कृष्ण को पाकर उन्हें विष्णु समझते हुए क्षमा याचना करते हैं। कृष्ण जो काष्ठ लाते हैं उन्हें देखकर नगरवासी चकित हो जाते हैं। वे उनको अपने घर उठा ले जाते हैं पर काष्ठ कम नहीं होते।

गुरु-दक्षिणा के रूप में गुरु-पत्नी के आग्रह पर यमलोक से मृत गुरु-पुत्र वापस ला देने की कथा भागवत के दशम स्कंध के अध्याय ४५ में है, परन्तु प्रेमानंद ने जिस रूप में उसका वर्णन किया है उसमें भी कई नवीनताएँ हैं। भागवत में कृष्ण समुद्र-ग्रस्त गुरु पुत्र को लेने सीधे प्रभास क्षेत्र में समुद्र-तट पर जाते हैं परन्तु प्रेमानंद ने उसे क्षिप्रा ग्रस्त लिखा है। इसीलिए उनके कृष्ण पहले क्षिप्रा तट पर जाते हैं। इसके अतिरिक्त जब वे यमपुरी में पहुँचते हैं तो वहाँ के सभी पापी, पंचजन नामक राक्षस के वध से प्राप्त पांचजन्य शंख की ध्वनि सुनते ही चतुर्भुज रूप धारण करके यमराज के सर पर पैर रखते हुए वैकुंठ चले जाते हैं।[११२] यह अंश भी भागवत में प्राप्त नहीं होता।

भ्रमरगीत—व्रजभाषा में 'भ्रमरगीत' सम्बन्धी रचनाएँ गुजराती की अपेक्षा बहुत कम उपलब्ध होती हैं। १६वीं शती में सूरदास ने सूरसागर के अंतर्गत इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन किया है तथा नंददास ने 'भँवर-गीत' नामक एक स्वतंत्र रचना की। तुलसी की कृष्णगीतावली में तथा अष्टछाप के अन्य कवियों के स्फुट पदों में इस विषय के भी पद प्राप्त होते हैं। कृष्णदास का 'भ्रमरगीत' संदिग्ध

रचना है। १७वी शती में कोई स्वतन्त्र रचना नही मिलती केवल मुक्तको में उद्धव-गोपी सवाद यत्र तत्र वर्णित हुआ है।

गुजराती में १६वी शताब्दी में नरसी के कुछ पद (शृगारमाला और परिशिष्ट में) नाकर, चतुर्भुज तथा ब्रेहदेव, तीनो की भ्रमरगीताएँ और भीम वैष्णव की 'रसिक गीता' प्राप्त होती है। भालण के दशम् स्कध में भी प्रसगानुकूल इसका वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रेमानद की 'भ्रमर पचीशी' नानु मोटु दशमस्कध की भ्रमर-गीताएँ आदि भी है। नरहरि का 'उद्धव गोपी सवाद,' केशवदास की मथुरालीला और पूजासुत की 'हरिरस कथा' के अत के कुछ अश उल्लेखनीय है।

इस प्रसग का आधार यो तो भागवत के दशम स्कध के ४६, ४७ अध्याय है। किन्तु अनुवादको को छोडकर अन्य सभी ने इसमें कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य किये है। निम्न विषयो के परिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

१ उद्धव के व्रज-गमन का हेतु

२ नद यशोदा से भेंट

३. कृष्ण का सन्देश

४. भ्रमर के प्रति उपालभ

५. गोपी-उद्धव-सवाद का आधार

६ उद्धव की कृष्ण से भेंट तथा व्रज-दशा वर्णन

उद्धव के व्रज-गमन का हेतु—भागवत के कृष्ण उद्धव को अपना सन्देश देकर नद-यशोदा को प्रसन्न करने तथा गोपियो का विरह जन्य दुख दूर करने के लिए भेजते है। सूरदास के कृष्ण उद्धव को गोपियो को ज्ञान सिखाने के लिए नही परन्तु स्वय उनका ज्ञान-गर्व नष्ट करने के लिए व्रज भेजते है। इस प्रकार सारी कथा का केन्द्र ही बदल जाता है। गुजराती कवियो में अनेक ने भागवत का आशिक अनुसरण करते हुए गोपियो के दुख निवारणार्थ ही उद्धव का व्रज जाना वर्णित किया है।[३३]

भालण के कृष्ण केवल माता यशोदा के दुख को दूर करने के उद्देश्य से उद्धव को व्रज भेजते है परन्तु नाकर ने दोनो बातो का उल्लेख करके भागवत का पूर्णतया अनुसरण किया है।[३४]

एकमात्र गुजराती कवि भीम ने वही कारण दिया है जो सूरदास ने आरोपित किया है। दोनो का साम्य दर्शनीय है—

सूर—याहि और कछु नही उपाय।
मेरो प्रकट कह्यो नहिं वदि हैं, व्रजही दैउ पठाय।
गुप्त प्रीति युवतिन की वहि कै याको करो महत।
गोपिन को परबोधन कारन जैहैं सुनत तुरन्त।
अति अभिमान करैगो मन में योगिन की यह भांति।
सूरश्याम यह निहचै करिकै बैठत हैं मिलि पाँति।

—सू० सा०, पृ० ६४०

भीम—अेवु अभिमान ज्यारे ओधे मन आणियु।
हवे अेहने गोकुल मेहलु हरिअे अेम जाणियु।

—वृ० का० दो० भाग ७, पृ० ६९६

नंद यशोदा से भेंट—भागवत के दशम स्कध के ४६वें अध्याय में उद्धव तथा नद यशोदा के बीच होने वाले वार्तालाप का ही वर्णन है। सारी रात्रि वे नद की जिज्ञासा और यशोदा का दुख शान्त करने के लिए ज्ञानोपदेश देते रहें।

सूरदास ने इस प्रसग का वर्णन बहुत ही सक्षेप में किया है। उद्धव कृष्ण का जो सदेश यशोदा को देते है उसमें ज्ञान का किंचित् भी स्थान नही है। भागवत में उद्धव गोधूलि वेला में आते है और नद उनका स्वागत करते है किन्तु सूरदास ने झुड की झुड गोपियो का नदादि के साथ स्वागतार्थ जाना वर्णित किया है—

नन्द हर्षित चले आगे सखा हर्षत अग।
झुड झुडन नारि हर्षत चली उदधि तरग।

—सू० सा०, पृ० ६४६

भागवत के अनुसार गोपियो को उद्धव का रथ देखकर अक्रूर के पुनरागमन का भ्रम होता है, कृष्ण बलराम के आगमन का नही किन्तु सूरदास ने दोनो का ही वर्णन किया है—

१. कैधो बहुरि अक्रूर क्रूर है जियत जानि उठि धायो है।

—सू० सा०, पृ० ६४८

२. आवत बलराम श्याम सुनत दौरि चली बाम।
मुकुट झलक पीतावर मन मन अनुरागे।

—वही, पृ० ६४६

इस प्रकार सूर ने भागवत की वस्तु को नवीनता दे दी है।

गुजराती में प्रेमानद ने सवाद के प्रसग को भागवत के अनुसार ही नानु मोटु दशमस्कध की दोनो भ्रमरगीताओ में समुचित स्थान दिया है। उनकी 'भ्रमरपचीसो' में भी इसका समावेश है। उद्धव नद को भागवत जैसा ही ज्ञान का उपदेश देते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने इतना महत्त्व इस प्रसग को नही दिया।

कृष्ण का सदेश—भागवत के कृष्ण उद्धव को मौखिक रूप से अपना सदेश देकर गोपियो की वियोग-व्यथा दूर करने का आग्रह करते है परन्तु वह सदेश क्या था इसका उसमें उल्लेख नही है। सूर के कृष्ण नद यशोदा, राधा, श्रीदामा तथा एक मित्र विशेष को पृथक्-पृथक् लिखित सदेश देते हैं—

पाती लिखि ऊधो कर दीन्ही।

—सू० सा०, पृ० ६४३

कुब्जा भी राधा के लिए ऊधो को पाती लिख कर देती है।

तुलसी की 'कृष्णगीतावली' तथा नददास के 'भँवरगीत' मे पाती का प्रसग नही है। उद्धव को मौखिक सदेश ही दिया गया है। गुजराती के किसी कवि ने 'पाती' द्वारा सदेश देने का वर्णन नही किया। नरसी मेहता ने लौटते समय उद्धव को, कृष्ण के लिए राधा द्वारा पत्र दिये जाने का अवश्य उल्लेख किया है—

लाव लाव सखी अेर कागल लखीअे हरिने रे।
लखीतग चरणरजदास राधिका नारी के।

—न० कृ० का०, पृ० ४१५ १६

भ्रमर के प्रति उपालभ—भागवत में उद्धव-गोपी सवाद के समय कही से एक भौंरा आ जाता है जिसको गोपियाँ कृष्ण का दूत मानकर कृष्ण को उपालभ देने लगती है।[111] इसी के आधार पर सारा प्रसग 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। भ्रमर के आगमन को लेकर कवियो के दो वर्ग हो जाते है। प्रथम तो वे जिन्होने भ्रमर का प्रसग लिया है जिनमें सूरदास, नददास, व्रेहदेव, नागर और चतुर्भुज है। इनके पदो में अनेक पद ऐसे है जो वस्तुत उद्धव के प्रति कहे गये है।[111]

प्रेमानद ने मोटु दशमस्कध की भ्रमरगीता में भ्रमर को नितान्त नवीन रूप दे दिया है। भ्रमर गोपियो द्वारा कल्पित कृष्ण दूत नही है वरन् स्वय कृष्ण उस रूप को धारण करके गोपियो के बीच आते है। गोपियाँ उन्हें पहचान लेती है पर उद्धव इस रहस्य को अन्त तक नही जान पाते—

गोष्ठी साभलवा गोपी उद्धवनी, साभल परीक्षित भूप।
मथुरा थी श्रीकृष्ण पधार्या धरी भमरानु रूप।
मधुकर बोले मधुरी वाणी, ते गोपी ना गुणगाय।
उद्धव जी काइयें नव पीछे, गोपिअे ओलख्या हरिराय।
—श्रीम० भा०, पृ० ३२८

दूसरे वर्ग में भीम, नरहरि, भालण आदि गुजराती के कवि है जिन्होंने भ्रमर का उल्लेख ही नही किया। उनका सारा वर्णन उद्धव-गोपी-सवाद के रूप मे है और अपनी कृतियो का नामकरण भी उन्होंने उसी के अनुरूप किया है।

गोपी-उद्धव-सवाद—भागवत में जो सदेश उद्धव व्रजवासियो को देते है उसको सुनकर किसी में कोई प्रतिक्रिया नही होती। गोपियाँ अवश्य कृष्ण की स्मृति में विभोर हो जाती है किन्तु उसी से उनका विरह निवारण भी हो जाता है और वे उद्धव की पूजा करती है। उद्धव भी ज्ञान का सदेश देने के पूर्व और पश्चात् गोपियो की भक्ति की मुक्त हृदय से प्रशसा करते है।[२६७] इससे स्पष्ट विदित होता है कि ज्ञान तथा भक्ति, निर्गुण तथा सगुण और योग तथा उपासना में प्रतिद्वद्विता दिखाकर एक से दूसरे को श्रेष्ठ सिद्ध करना भागवतकार का उद्देश्य नही था।

गुजराती तथा व्रजभापा के अनेक कवियो ने गोपियो द्वारा उद्धव के सदेश की कटु आलोचना, परिहास तथा तिरस्कार कराया है। ज्ञान और योग द्वारा निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के निवृत्ति मार्ग को उपहासास्पद सिद्ध करके गोपियाँ भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है और उद्धव अन्त में पराजित होकर उसे स्वीकार कर लेते हैं। सूरदास तथा भीम ने भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन गोपियो का ही नही, कृष्ण का भी अभीप्सित सिद्ध करते है। नरसी के पदो में इसका कोई उल्लेख नही है।

व्रजभापा के अन्य कवियो ने प्राय सूर का ही अनुकरण किया है और गुजराती के कवियो भीम, प्रेमानद आदि ने भी वैसे ही विचार व्यक्त किये है। इस प्रकार यह सवाद अपने आप में भागवत से पर्याप्त भिन्न रूप में विकसित हुआ है। नददास, स्नेहदेव, नरहरि तथा प्रेमानद ने उद्धव द्वारा ज्ञान पक्ष को विशेष विस्तार के साथ प्रस्तुत कराया है। सवाद के ही अन्तर्गत कुछ कवियो ने कृष्ण की विविध लीलाओ तथा अवतारो का भी सदर्भ दिया है।[२६८]

कुब्जा के प्रति व्यग—भागवत की गोपियाँ कुब्जा के प्रति स्पष्ट रूप से व्यग कही भी नही करती। एक स्थल पर मधुप के माध्यम से सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव का प्रदर्शन मिलता है। मथुरा की स्त्रियो के प्रति भी जिज्ञासा मिश्रित इसी भाव

का प्रदर्शन किया गया है। इसके अतिरिक्त कई स्थलों पर लक्ष्मी के प्रति उपालंभ स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है।[२६६]

वस्तुत दोनो भाषाओं के कवियो ने कुब्जा को व्यग का आधार बना कर उसे वही स्थान दे दिया जो भागवतकार ने लक्ष्मी को दिया है। इस विषय मे सूर, नद-दास, नरसी, प्रेमानद, भालण आदि सबकी स्थिति एक सी है। सूर की गोपियो के पास कुब्जा ने पत्र भी भिजवाया है जिससे वे भ्रमर के प्रति 'कुबिजा तोहिं पठायो' कह कर और भी कटु व्यग करती है।[३००]

उद्धव का कृष्ण से मिलकर ब्रज-दशा वर्णन—भागवत में उद्धव के, गोपियो के भक्ति-भाव से, प्रभावित होने का विस्तार से वर्णन है, किन्तु कृष्ण से मिलकर उन्होंने क्या कहा इसना सवेतमान है—

> कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेक व्रजौकसाम्
> वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायना-यदात् ॥७०॥
>
> —द० स्क० ४७ अध्याय

सूरदास के उद्धव कृष्ण को अत्यत विस्तार से ब्रज का समाचार देते है तथा भक्ति की महत्ता, ज्ञान योग की पराजय तथा गोपियो की विरह दशा का भी विशद वर्णन करते है। नददास ने भी अपने भवरगीत के अन्त में इसी प्रकार का सक्षिप्त वर्णन किया है। गुजराती भ्रमरगीताओ की परिसमाप्ति उद्धव विदा के पश्चात् ही हो जाती है। भालण ने बहुत ही सक्षेप मे उपसहार के रूप में सदेश दिलाया है।

कुब्जा (सैरन्ध्री) रमण, अक्रूर गृह गमन, धृतराष्ट्र को सदेश प्रेषण—भागवत में यह तीनो प्रसग भ्रमरगीत के पश्चात् वर्णित है परन्तु सूरसागर में कुब्जा-कृष्ण समागम का वर्णन भ्रमरगीत के पूर्व ही प्राप्त हो जाता है। शेष दोनो यथाक्रम बाद में मिलते है। इस विषय में भालण प्रेमानद आदि दशमस्कधकारो ने भागवत के क्रम का अनुसरण करते हुए सूर की अपेक्षा अधिक विस्तार किया है परन्तु उसमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नही है। प्रेमानद ने अवश्य कुती और धृतराष्ट्र के अतिरिक्त अक्रूर के पाडवो से मिलने का वर्णन किया है जो भागवत मे नही है।[३०१]

जरासध विजय, कालयवन और मुचकुद वध, द्वारका प्रस्थान—इन प्रसगो के वर्णन की भी परिस्थिति पूर्ववत् हो है। सूरसागर में इनका वर्णन बहुत सक्षिप्त है, युद्ध का वर्णन नदी के रूपक मात्र तक सीमित है। कालयवन और मुचकुद वध की कथाओ का मात्र एक पक्ति में वर्णन है और जिस योग प्रभाव से भागवत के कृष्ण ने समस्त मथुरावासियों को नवनिर्मित द्वारकापुरी में पहुँचा दिया उसका

सकेत भी सूर ने नही किया है। पूर्वोक्त गुजराती के कवियो ने इन सब प्रसगो का सविस्तार वर्णन किया है। द्वारावती-प्रवेश के समय रथ की शोभा तथा चौगान के खेल का जो वर्णन सूर ने किया है वह न तो भागवत में है न गुजराती काव्यो में।[३१] भालण ने कालयवन की उत्पत्ति की कथा दी है जो ब्रह्म, विष्णु तथा हरिवंश पुराण में प्राप्त होती है।

द्वारका-लीला

रुक्मिणी-हरण—इस विषय को लेकर गुजराती में व्रजभाषा की अपेक्षा कही अधिक काव्य-रचना हुई। १५वीं शती में दोनो भाषाओ में रुक्मिणी सम्बन्धी किसी स्वतन्त्र काव्य का निर्माण हुआ हो ऐसा ज्ञात नहीं होता। किन्तु १६वीं शताब्दी में रुक्मिणी-विवाह सम्बन्धी नरसी का एक पद तथा अन्य रचनाएँ प्राप्त होती हैं। काशीसुत शेधजी तथा फूढ दोनो की 'रुक्मिणीहरण' नामक दो रचनाएँ मिलती हैं। भालण तथा केशवदास के दशमस्कधो में वर्णित रुक्मिणी विवाह भी उपेक्षणीय नही है और व्रजभाषा में नददास का 'रुक्मिणीमगल' और सूरदास के सूरसागर में 'श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह' तथा इसी विषय के उनके अन्य स्फुट पद प्राप्त हैं। १७वी शती के व्रजभाषा साहित्य में रुक्मिणी पर एक भी काव्य नही मिलता किन्तु गुजराती में अनेक है। देवीदास का 'रुक्मिणी-हरण' प्रेमानद के 'रुक्मिणी-हरण ना सलोको और 'रुक्मिणी-हरण कृष्णदास को रुक्मिणी-हरण हमची या हमचडी' तथा विष्णुदास का इसी नाम का काव्य उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त इस शती में प्रेमानद, लक्ष्मीदास आदि ने भी अपने दशमस्कधो के अन्तर्गत इस प्रसग का वर्णन किया है।

सूर और नददास ने मूलत भागवत में दशमस्कध उत्तरार्ध के ५२, ५३, ५४ अध्यायो में वर्णित कथा का ही अनुसरण किया है किन्तु गुजराती के कवियो ने अन्य पुराणो से भी सहायता ली है। शेध जी ने भागवत के अतिरिक्त हरिवश और विष्णुपुराण का आश्रय लिया है।[३२] प्रेमानद ने इनमें से प्रथम दो पुराणो के साथ ब्रह्मवैवर्त के श्रीकृष्ण खड का उल्लेख और किया है। विष्णुपुराण का आश्रय उन्होंने नही लिया है। रुक्मिणीहरण के रचयिता फूढ तथा इस विषय के उक्त अन्य सभी गुजराती कवियो पर भागवतेतर पुराणो की कथा का प्रभाव है। भालण ने भी अन्य पुराण का आधार स्वीकार किया है—

> 'कही कथा भागवतनी, काई अन्य पुराण'
>
> —दशम०, पृ० २८०

इस प्रभाव को स्पष्टतया परिलक्षित करने के लिए आवश्यक है कि रुक्मिणी हरण की कथा के विभिन्न अशो पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाय।

१. कुंडिनपुर—रुक्मिणी के पिता भीष्मक की राजधानी का नाम पुराणो में कुडिनपुर ही मिलता है। परन्तु सूर, नददास तथा भालण ने 'कुदनपुर' लिखा है और प्रेमानद ने 'कुतलपुर'।[२७४] एक स्थल पर प्रेमानद ने 'कुदनपुर' भी लिखा है तथा सूर ने भागवतोक्त 'कुडिनपुर' रूप को भी स्वीकृत किया है।

२ नारद का हस्तक्षेप—कुछ कवियो ने कृष्ण के प्रति रुक्मिणी के पूर्वराग का कारण नारद द्वारा उनका गुणगान माना है। भागवत मे इसका स्पष्ट उल्लेख नही है। सूर ने भी नारद को स्थान नही दिया पर नददास ने 'जब ते तुम्हरे गुनगन सुनिजन नारद गाए' लिखा है। गुजराती के शेध, देवीदास, कृष्णदास तथा प्रेमानद ने यह कार्य नारद को ही दिया है। प्रेमानद ने नारद को विवाह करवाने वाले पुरोहित का रूप दे दिया है। भीष्मक उनको श्रीफल के साथ कृष्ण के पास भेजते है। वे उन्हें श्रीफल देते हुए रुक्मिणी के प्रेम का वर्णन करते है।[२७५]

प्रेमानद ने नारद का कलहकारी स्वभाव भी दिखाया है। राह में आते हुए नारद रुक्म से मिलते है, उसको इस विवाह की सूचना देते है और द्रविड देश का राजा कहकर शिशुपाल का गुणगान करने लगते है। परिचय में अपने को शिशुपाल के लिए कुडिनपुर मे कन्या खोजने के लिए आया बताते है। रुक्म बहिन का विवाह शिशुपाल से करने की स्वीकृति दे देता है। फलत आगे सघर्ष होता है। इस प्रसग में नारद का यह रूप किसी पुराण में नही है।

३. कृष्ण के नाम रुक्मणी की पत्री तथा वाहक हरिभट ब्राह्मण—हरिभट नाम के अतिरिक्त कथा के इस अश का मूलाधार भागवत ही है। रुक्मिणी किसी 'आप्त द्विज' को बुलाकर 'गुह्य सदेश' भेजती है।[२७६] पत्री का तथा किसी चमत्कारिक ढग से ब्राह्मण के पहुँचने का उल्लेख वहाँ नही है। रुक्मिणी ने 'राक्षसेन विधिनोद्वह' तथा 'कुलदेवियात्रा' कह कर हरण की सारी विधि कृष्ण को बतला दी है। हरिवश पुराण में कृष्ण ने बलराम से पूछ कर हरण किया।[२७७] विष्णुपुराण में यह प्रसग अत्यत सक्षिप्त है। ब्रह्मवैवर्त में द्विज पत्रिका उग्रसेन को देता है।[२७८] ब्राह्मण का नाम हरिभट किसी पुराण में प्राप्त नही होता।

हरण विधि का स्पष्ट उल्लेख न करते हुए भी सूरदास और नददास ने पाती का स्पष्ट वर्णन किया है। सूर ने 'द्विज पतिया दै कहियो स्यामहिं' के साथ मौखिक सदेश के रूप में 'बाजे शख जानि हौं साची आयो यादवराय' लिखकर कृष्ण के

बुलाने का सकेत मात्र दे दिया है। नददास ने केवल 'उचित होइ सो करिये' कहा है रुक्मिणी मगल में कृष्ण आँखो में आँसू आ जाने के कारण द्विज से ही पत्रिका पढवाते हैं। हरिभट नाम दोनो में से कोई नही देता।

गुजराती के प्रेमानद और देवीदास की कृतियो में हरिभट का स्पष्ट उल्लेख है शेष में नही। प्रेमानद ने ब्राह्मण के बुलाने के स्थान पर स्वय रुक्मिणी का उसके घर जाना वर्णित किया है। ब्राह्मण के चमत्कारिक ढग से पहुँचने का दोनो ने भिन्न भिन्न रूप में वर्णन किया है। शेषजी ने कृष्ण के नद और सुनद नामक दो गणो का, देवीदास ने थक कर सोये हुए ब्राह्मण को कृष्ण कृपा का तथा प्रेम नद ने चार योजन चल कर वृक्ष की छाया में सोये हुए भूखे ब्राह्मण को कृष्ण की कर्षिणी शक्ति का आश्रय दिलाया है। प्रेमानद ने हरण तिथि 'वैशाख सुदी हरिपर्वणि गुरुवार कृपा अब तणो' का भी उल्लेख किया है। रुक्मिणी की पत्री पाने के पश्चात् शेषजी के कृष्ण उग्रसेन को उसकी सूचना देते हैं—

> आनद आणी उठो आने उग्रसेन वने जाय।
> बेह् पाणय जोडी शीस नामी पत्र मेहल् पाय ॥२७॥

४ देवी का प्रत्यक्ष प्रकट होना—इस प्रसग में सूर ने 'गौरी सुनि मुसकायी' तथा नददास ने 'ह्वै प्रसन्न अबिका कहति सुनु रुक्मिनि सुदरि' लिखकर देवी की प्रसन्नता का वर्णन किया है। भागवत में ऐसा कुछ नही है।

गुजराती में शेष जी ने 'मुद्रिका सहीत कर गह्यो सखी ये जाणे वैष्णवोमाय', 'देवीदास ने नमस्कार करता प्रसन्न थया आशीष अवे दीध' लिखा है किन्तु प्रमानद ने देवी द्वारा रुक्मिणी को आलिगित करने तथा फिर उनकी सखी बन जाने का भी वर्णन किया है—

> हुतो सहेली रूपे थाऊ।
> अबा रुक्मिणी रस्ता मा रमे। जन जुवे तेने मनगमे।

५ विवाह वर्णन—भागवत में 'पुरमानीय विधिवद्रुपयेमे कुरूद्वह (१०।५५।५३) अर्थात् द्वारका में विवाह के विधिवत् सम्पन्न होने का सकेत भर है। नददास ने भी इसी प्रकार 'विधिवत् कियो विवाह तिहू पुर मगल गाये' लिखा किन्तु सूरदास ने विवाह का पूर्ण वर्णन किया है। ब्रह्मा द्वारा, इन्द्र की उपस्थिति में, विवाह सम्पन्न होता है।

सूरसागर में स्वय कृष्ण ही सत्यभामा के हृदय में पारिजात की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। वे 'भक्त भय हरन असुर अतकारी' कृष्ण नरकासुर के बदीगृह से कन्याओ के उद्धार के लिए ऐसा करते हैं।

गुजराती कवियो ने पारिजात के लिए सत्यभामा के रूठने के सम्बन्ध में इससे भिन्न कथा दी है। नारद एक पारिजात का वृक्ष द्वारका में लाते हैं कृष्ण उसे रुक्मिणी को देते हैं। सत्यभामा सखी से इस बात को सुनते ही ईर्ष्यालु होकर कोपभवन में चली जाती है। कृष्ण उसे मनाने के लिए स्वर्ग से पारिजात लाकर देते हैं। मीरा तथा भालण ने यही कथा दी है जो व्रजभाषा में नहीं मिलती।

अन्य विरोधियों का वध—द्वारकावासी कृष्ण बाणासुर, पौंड्रक, शिशुपाल, शाल्व और दन्तवक्र आदि का वध करते हैं। ये भागवत की कथाएँ सूरसागर में बहुत सक्षेप में प्राप्त होती हैं। गुजराती में भी दशमस्कधकारो ने कोई विशेषता न दिखाते हुए इनका साधारण रूप में ही समावेश किया है। भागवत के 'पौंड्रक' को सूर ने 'पुडरीक' और भालण ने 'प्रौढक' बना दिया है।[२८]

बलराम का व्रजगमन तथा यमुनाकर्षण—भागवत दशम के ६५ वें अध्याय में वर्णित इस कथा के प्रसग में सूर ने व्रजबालाओ के उद्गारो का विस्तार से वर्णन किया है जो गुजराती के दशमस्कधकारो ने नही किया।

अन्य प्रसग—भागवत में वर्णित नृग-उद्धार, नारद-सशय, देवकी-पुत्र प्राप्ति आदि कुछ और प्रसग भी दोनो भाषाओ की उपर्युक्त कृतियो में उपलब्ध होते हैं जिनमें कोई उल्लेखनीय बात नही है।

कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन—कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर कृष्ण तथा व्रजवासियों के पुनर्मिलन का भागवत के ८२वें अध्याय में वर्णन है और गुजराती दशमस्कधकारो न उसी के अनुसार इसे भी चित्रित किया है परन्तु सूरदास ने उसका स्वतत्र वर्णन करके पर्याप्त नवीनता का समावेश कर दिया है।

पहले द्वारका जाते हुए पथिक के प्रति व्रजबालाओ तथा यशोदा के सदेश का वर्णन है फिर राधा की विरहावस्था विषयक पद हैं (पृ० ७५०-५४) उसके बाद कृष्ण रुक्मिणी का वार्तालाप है। कृष्ण रुक्मिणी से व्रजवासियो के स्नेह की प्रशसा करके अपना दुख प्रकट करते हैं फिर सभा में यादवो से परामर्श करके कुरुक्षेत्र पर्व स्नान के लिए जा॰ पहुँचते हैं। वहाँ से वे एक दूत व्रज से नदादि को लेने के लिए भेजते हैं जो व्रज आकर नद यशोदा से सदेश कहता है। राधा

इसे सुनते ही रोने लगती है। एक सखी उसे समझाती है। तत्पश्चात् उत्साहपूर्वक सभी ब्रज वासी अपने अपने वाहनों पर कुरुक्षेत्र पहुँचते हैं। जब रुक्मिणी कृष्ण से पूछती है कि राधा कौन है तो कृष्ण राधा का परिचय देते हैं। रुक्मिणी राधा को अपने मन्दिर ले जाती है कृष्ण भी वहाँ पहुँचते है फिर राधा माधव का मिलन होता है। इसके बाद कृष्ण ब्रजवासियों से मिलते हैं (पृ० ७५७ तक)।

भागवत मे न रुक्मिणी-कृष्ण का सवाद है न पथिक द्वारा संदेश भेजने की बात। कृष्ण कोई दूत भी नही भेजते, नदादि स्वयं कृष्ण का कुरुक्षेत्र मे आना सुनकर वहाँ पहुँच जाते हैं। कृष्ण पहले नद यशोदा से मिलते हैं फिर गोपियो से।

सूर ने राधाकृष्ण के मिलन को ही प्रधानता दी है ब्रजवासियो तथा राधा-कृष्ण के पुनर्मिलन का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्ण जन्म खड के १२६-२७ अध्यायों मे मिलता है परन्तु उसमें अकेले कृष्ण ब्रज जाते हैं और सबको गोलोक ले जाते हैं। ब्रह्मवैवर्तकार ने कुरुक्षेत्र में राधाकृष्ण मिलन नही कराया अतएव सूर द्वारा वर्णित प्रसंग या तो स्वकल्पित है या उस पर कुछ कुछ ब्रह्मवैवर्त की छाया मानी जा सकती है। गुजराती के किसी भी दशमस्कधकार ने ऐसा वर्णन नही किया। प्रेमानंद का दशमस्कध तो अपूर्ण ही है।

कृष्ण कथा के अतिरिक्त कृष्ण सम्बन्धी वस्तुओं यमुना, मुरली, ब्रज आदि पर भी स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना हुई है।

सिद्धान्त विषयक काव्य—कृष्ण-लीलाओं पर आधारित काव्यों के अतिरिक्त भक्ति तथा सिद्धान्त विषयक काव्य भी रचे गये। इस विषय में गुजराती में केवल नरसी के 'भक्तिज्ञाननापदो' उपलब्ध होते हैं।

ब्रजभापा में वल्लभ-सम्प्रदाय में नंददास की 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' सूर आदि अष्टछाप के कवियो के पद, शोभाचद का 'भक्ति विधान'; राधावल्लीय-सम्प्रदाय में हितहरिवंश, हरिराम व्यास आदि के सिद्धान्त विषयक पद और ध्रुवदास कृत 'भजनसत', भजन शिक्षा, 'वैदकलीला', 'भजनकुडली', 'स्यालहुलास', 'जीवदिसा'; निम्बार्क सम्प्रदाय में हरिव्यास तथा परशुराम देव की रचनाएँ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के स्वामी हरिदास तथा विहारिन देव के सिद्धान्त के पद पीताचर देव की सिद्धान्त की साखी, रसिक देव की "भक्तसिद्धान्तमणि" उल्लेखनीय है।

पादटिप्पणियाँ

१ क सूरदास डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा पृ० २६२ प्रथम संस्करण

ख गोकुले मथुरायां च द्वारावत्यां तत क्रमात् ।
कृष्ण लीला त्रिधा प्रोक्ता तत्तदभेदरनकथा ॥

—श्रीकृष्ण लीला संग्रह श्रीधर वारि

२ गुजराती—भीम हरि० षो० पृ० १२८ नरसी न० कृ० का० पृ० ४३६ लक्ष्मीदास दशमस्कंध कडवां ७ प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २४०

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० १२६ १३० नन्ददास नंद० पृ० २०९

३ भालण—दशमस्कंध पृ० १७ १९

४ गुजराती—भालण दशमस्कंध पृ० १५ केशवदास श्रीकृष्ण ली० का० पृ० १६, प्रेमानंद श्रीम० भा० पृ० २४२

ब्रजभाषा—नंददास नंद० पृ० २१३

५ भा० १० ६ २

६ क ब्र० वै० अ० १०

ख हरिवंश अ० ६२

७ सा खेचर्यैकदोपस्य भा० १० ६ ४

गुजराती—भीम हरि० षो० पृ० १४३, १४२ नरसी न० कृ० का० पृ० ४३४, ५३३ भालण द० स्कं० पृ० २१ केशवदास कृ० लीला० का० पृ० २८ प्रेमानंद श्रीम० भा० पृ० २४४ २४७

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० ११४ २, नंददास नंद० पृ० २२१ गदाधरभट्ट श्री० ग० बा० पृ० २१

८ प्रेमानंद श्रीम० भा० पृ० २४५

९ सू० सा० पृ० ११५

१० पद्म पु० २०२ ८२ ८१ ब्रह्म० पु० १८४ २२ २८ विष्णु० पु० ० १ ०

११ का० सभा० हु० प्र० न० ३११

१२ का० सभा० हु० प्र० नं ३२५

१३ न० कृ० का० पृ० ४२५

१४ न० कृ० का० पृ० ४६०

१५ भीम हरि० षो० पृ० १२८ भालण दशमस्कंध पृ० २८ केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ३३ ३४

१६ गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ४११, प्रेमानंद श्रीम० भा० पृ २४८, शिवदास का० सभा० हु० प्र० न० ५१ घ कडवा ०

ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १३६

नंददास : नंद०, पृ० २२५, २२६; परमानंद : पृ० १२४, वर्ग १

१७. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १३८; नंददास, नंद०, पृ० २२६,

गुजराती—केशवदास : श्रीकृ० क्री० का०, पृ० ३४, भालण : दशमस्कंध, पृ० ३१; प्रेमानंद

श्रीम० भा०, पृ० २४९

१८. गुजराती—भालण : दशमस्कंध, पृ० ३१; प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २८

ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १३८

१९. प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २९०

२०. नंददास : नंद०, पृ० २२८

२१. सूरदास : सू० सा०, पृ० १८४

२२. नन्ददास : नंद०, पृ० २२८

२३. केशवदास : श्रीकृ० क्री० का०, पृ० ३६; प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २५०

२४. प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २५०

२५. सूरदास : सू० सा० पृ० १६५

२६. सूरदास : सू० सा० पृ० १६६

२७. नंददास : नंद०, पृ० २३३. २३४

२८. नरसो : न० कृ० का०, पृ० २६८; भीम : हरि० चो०, पृ० १४२

२९. भालण : दशमस्कंध, पृ० ३०

३०. केशवदास : श्रीकृ० क्री० का०, पृ० ४०

३१. केशवदास : वही० पृ० ४६

३२. सूरदास : सू० सा०, पृ० १६४, १६५, पद २३—२५

३३. सूरदास : सू० सा०, पृ० १६४, पद २१

३४. केशवदास : श्रीकृ० क्री० का०, पृ० ४०, ४१; परमानंद : हरिरस, फा० सभा० हु० प्र०, पृ० ३२५

३५. ब्रह्मवैवर्त : कृ० खं० १४·२६, १४:४०; भागवत : दशमस्कंध, १० २३

३६. प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २५७

३७. ब्रह्मवैवर्त : कृ० खं० १४ २३. २४, प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५६, २५९

३८. प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५६, ०५८

३९. सूरदास : सू० सा०, पृ० १७६, १७६-७७

४०. सूरदास : सू० सा०, पृ० १८१, १८२

४१. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० १८०

गुजराती—प्रेमानन्द : श्रीम० भा०, पृ० २५४; भीम : हरि० चो०, पृ० १५०; भालण : दश० स्कं०, पृ० ४०

४२. भागवत : १० : १० : २७

४३. सूरदास : सू० सा०, पृ० १८१, १८३. १८५

४४ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १०४, नंददास नंद०, पृ० २३०, तुलसीदास कृ० गी०, पद, १७,

गुजराती—केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० २०, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २५६

४५ भा० १० ८ १

४६ प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २५१

४७ प्रेमानंद वही

४८ भागवत १० ८ १२, ब्रह्मवैवर्त कृ० ख० १३ ८१, ८२, ८३, ८५

४९ प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २५१

५० प्रेमानंद वही

५१ ब्रह्मवैवर्त कृ० ख० १३ ९६ प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २५२

५२ प्रेमानंद वही

५३ सूरदास : सू० सा०, पृ० १३६, १४०

५४ सूरदास सू० सा० पृ० १४०

५५ भागवत १० ७ ४, १० ११ : १६

५६ सूरदास सू० सा०, पृ० १४१, वल्लभरसिक श्रीव० र० वा०, पृ० ७

५७ सूरदास सू० सा०, पृ० १४२

५८ नंददास नंद०, पृ० ३८६, वल्लभरसिक श्रीव० र० वा०, पृ० ७

५९ भागवत १० ८ २१ २६

६० व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० १३७ १४३ ४६, नंददास नंद०, पृ० २३०,
गुजराती—मालण : दश० स्क०, पृ० ३०, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० २८, ३६,
प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २५२

६१ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४२ पृ० १४३, १४४ नंददास नंद०, पृ० २३०,
गुजराती—मालण पृ० ३५, केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ३८

६२ नरसी न० कृ० का०, पृ० ४६०, मालण दश० स्कं०, पृ० ३६, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३९, प्रेमानंद : श्रीम० भा०, पृ० २५२

६३ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४४ १४८, नंददास नंद०, पृ० २३१
गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० २६६, मालण श्र० कृ० द० स्क०, पृ० ३०, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २५२

६४ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० १४७
गुजराती—नरसी : न० कृ० पृ० ४५८, ४५९, केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ४०

६५ सूरदास सू० सा०, पृ० १३१, मालण द० स्क० पृ० ३१

६६ भागवत १० ८ ३१, मालण द० स्क० पृ० ३८ प्रेमानन्द श्रीम० भा०, पृ० २५३

६७ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० १४६,
गुजराती—नरसी न० कृ० पृ० ५०२ ५०३, मालण द० स्क०, पृ० ३८, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २५५

६८ सूरदास सू० सा० पृ० १५३
६९ मालण द० स्क० पृ० १५३
७० नरसी न० कृ० का० पृ० ४६१ ४६६ ४६७
७१ हिम्स ऑफ द आलवार्स—जे० एस० एम हूपर
७२ वही
७३ ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा० पृ० १५५ ५६
गुजराती—नरसी : न० क० का० पृ० ४५८ ४६२
७४ सूरदास सू० सा० पृ० १५७ १३३ १३७
७५ नरसी न० कृ० का० पृ० ४६२ ४६५ मालण दश० स्क० पृ० ३७
७६ सूरदास सू० सा० पृ० १६२ १८८
७७. सूरदास वही० पृ० १६३
७८ ब्रजभाषा—सूरदास वही० पृ० १६०
गुजराती—मालण दश० स्क० पृ० ३० केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ३९
७९ ब्रह्मवैवर्त अ० १४ श्लोक २ ४ बालचरित' तृतीय अक
८० भागवत १० ८ २९ ३०, १० १० ६
८१ सूरदास (अ) सू० सा० पृ० १६६ १६७ (आ) वही० पृ० १६०, १७० (इ) वही० पृ० १६८ (ई) वही० पृ० १६९ (उ) वही० पृ० १७२ (ऊ) वही० पृ० १७३, (ए) वही० पृ० १७६
८२. ब्रजभाषा—नन्ददास नद० पृ० २३१ २३३ तुलसीदास कृ० गी० पद ६ ४
गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ४६१ ५८१ ८२ मालण द० स्क० पृ० ३७
केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ५४ प्रेमानद श्रीम० भा० पृ० २५३ २५४
८३ ब्रजभाषा—तुलसीदास कृ० गी० पद १२
गुजराती—मालण द० स्क० पृ० ५०
८४ सूरदास सू० सा० पृ० १८८
८५ नरसी न० कृ० का० पृ० ५८२ ८३
८६ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ १२८ नन्ददास नंद० पृ० २४५
गुजराती—मालण द० स्क० पृ० ५४ केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ५४,
प्रेमानन्द न० कृ० का० पृ० २५६ २६०
८७ कृष्ण प्रोब्लेम्स द दि न्यू सैटलमैंट हरिवंशपुराण अध्याय ६५ ६६
८८ देखिए उद्धरण ८६ सूरदास तथा प्रेमानन्द
८९ प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २६०
९० नरसी न० कृ० का० पृ० ४३४
९१ सूरदास सू० सा० पृ० १९०
९२ गुजराती—प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २६१ २६२ मालण द० स्क० पृ० ५५
ब्रजभाषा—नन्ददास नंद पृ० २४०

९३ भागवत १० १२ १४

९४ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० १९२ नन्ददास नंद० पृ० २५० २५१
गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ४३४ मालण द० स्कं० पृ० ५२ प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २६२ २६३

९५ सूरदास सू० सा० पृ० १९२ १९३ १९७ १९९ २०२

९६ सूरदास वही० पृ० २९९

९७ मालण द० स्क० पृ० ५=

९८ प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २६४

९९ नरसी न० कृ० का० पृ० ४३४ ५८० ८१

१०० कृष्ण प्राबलेम ८ क ६ भागवत १० १५ ३१ ३२ ब्रह्मवैवर्त ४ २२ २६ ३०

१०१ मालण द० स्क० पृ० ६८

१०२ गुजराती—केशवदास श्रीकृ० ली० का० पृ० ७०
व्रजभाषा—सूरदास स० सा० पृ० २१२ नन्ददास नंद पृ० ३७२

१०३ सूरदास स० सा० पृ० २१५ २१६

१०४ सरदास वही० पृ० २१७ २१८

१०५ प्रेमानद श्रीम० भा० पृ० २६६ २७०

१०६ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० २२०
गुजराती—प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २७० ७१ नरसी न० कृ० का० पृ० ४६३ ४६४

१०७ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० २२७
गुजराती—प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २७२

१०८ सूरदास सू० स० पृ० २२४ २२५

१०९ भागवत १० १८ ३० ब्रह्मवैवर्त कृ० ख० ४ १४ १५ १६

११० सूरदास सू० सा० पृ० २३३

१११ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० २३४
गुजराती—प्रेमानन्द श्रीम० भा० पृ० २७

११२ नरसी न कृ० का० पृ० ४३४

११३ कीकुवसही बालचरित्र का० सभा० हु० प्र० न० २१५

११४ भागवत १० १७ २५ १० १६ १२ ब्रह्मवैवर्त कृ० ख० ४ १९ १७९

११५ सूरदास सू० सा० पृ० २३१ नददास नद पृ० २८० ८५

११६ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० २३२
गुजराती—प्रेमानद श्रीम० भा० पृ० २७४ नरसी न० कृ० का० पृ० ४३४

११७ प्रेमानद श्रीम० भा० २७५ २७६

११८ सूरदास सू० सा० पृ० २६६ २६८ २६० २६९, २७२ २७७
भागवत १० २४ २५, १०१ २५ २ १० २७ १ २

११९. प्रेमानंद : श्रीम० मा०, पृ० २८२-२८४

१२०. प्रेमानंद : वही, पृ० २८४

१२१. भागवत : १० : २५ : १९; ब्रह्मवैवर्त : ४ . २१ : ६४

ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० २७५, नंददास : नंद०, पृ० ३१०

गुजराती—नरसी : न० कु० का०, पृ० ४६३, भालण : दश० स्कं०, पृ० ८६, केशवदास : श्रीकृ० का०, पृ० ९१, प्रेमानंद : श्रीम० मा०, पृ० २८४

१२२. नरसी : न० कृ० का०, पृ० ३६५

१२३. नंददास : नंद०, पृ० ३१९ सूरदास : सू० सा०, पृ० २६६

१२४. भागवत : १० : ३७ : १

१२५. सूरदास : सू० सा०, पृ० ५२८, ५३४, ५४३, ५४४, ५४५

१२६. प्रेमानंद : श्रीम० मा०, पृ० २९८, २९९, ३००

१२७. सूरदास : सू० सा०, पृ० २३४

१२८. गुजराती—भालण : दशम० स्क०, पृ० ५६, ५९, ६०, प्रेमानंद : श्रीम० मा०, पृ० २७५; प्रेमानंद . श्रीम० मा०, पृ० २६८

ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० २३७

१२९. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० २५२

गुजराती—भालण : दश० स्कं० पृ० ८०

१३०. भागवत : १० : २२ : ९

ब्रह्मवैवर्त : ४ : २७ : १३

सूरदास : सू० सा०, पृ० २५४

१३१. भालण : दश० स्क०, पृ० ७६; फागु : फा० हु० प्र० नं० ३६१, प्रेमानद : श्रीम० मा० पृ० २७८

१३२. फागु : फा० हु० प्र०, न० ३६१

१३३. सूरदास : सू० स ०, पृ० २६५

१३४. प्रेमानंद : श्रीम० सा०, पृ० २२१

१३५. ब्रह्मवैवर्त पुराण ४ : ६ : २२४, २२५, २२८, वही, ४ : ३ : १०४

१३६ उज्ज्वलनीलमणि : राधाप्रकरण श्लो० ४५

१३७. सूरदास : सू० सा०, पृ० ३४२, नंददास नंद०, पृ० ३३०, माधवदास : माधुरी वाणी पृ० ९४, हरिराम व्यास : व्यासवाणी, उत्त० पृ० ४४३ ४५३

१३८ ब्रह्मवैवर्त पुराण : ४ : २ : ६१ :

१३९ सूरदास : सू० सा०, पृ० २०४, २७७, २०८, २०९

१४०. सूरदास : वही, पृ० २०९

१४१. नरसी : न० कृ० का०, पृ० २७०, ३१७, ४१७, ५०४, ५८२

१४२. ध्रुवदास ब्रजलीला, पृ० १०, १२, १४, १८, ४२

१४३ ध्रुवदास वही पृ० १५२ १६० १६९ १७०

१४४ सूरदास सू० सा० पृ० ५१८

१४५ नन्ददास नंद० पृ० ४२०

१४६ नरसी न० कृ० का० पृ० २२९ २३८ २४३

१४७ ब्रह्मवैवर्त पुराण ४ ६९ ४७ ५४

१४८ नंददास श्याम सगाई पृ० ११७ ११८ १२१

१४९ सूरदास सू० सा० पृ० २४५ ४६ २४८

१५० केशवदास श्रीकृ० ला० का० पृ० १०६ १०८

१५१ जयदेव गीतगोविन्द चतुर्थ सर्ग

१५२ सूरदास सू० सा० पृ० २४२ २४३ २४१

१५३ सूरदास वही पृ० ३७२ ३७४

१५४ सूरदास वही पृ० ३५९ हितहरिवंश हितचौरासी पद संख्या १२

१५५ सूरदास सू० सा० पृ० ४०३ ४०४ ४०१ सूरदास वही पृ० २५७ २५ २६० २६१

१५६ नंददास नंद पृ० ४०५ हरिराम व्यासवाणी उत्त० पृ० ५०९ ५१०

१५७ मीरां मी० प० पृ० ४६ ६० नरसी न० कृ० का० पृ० ३५२ २७१ ३३६

१५८ गाथा सप्तशती १ ८९

गौडवहो श्लो० २२

ब्रह्मवैवर्त पुराण : कृ० ख० १५ १४६ ५८ ७१ २८ ७५

गीतगोविन्द द्वादश सर्ग

१५९ ध्रुवदास हितसिंगार लीला पद ११ हरिदास नि० मा० पृ० २१६

१६० श्रीभट्ट नि० मा० पृ० १८ माधवदास वंशीवट माधुरी पृ० ३४

१६१ सूरदास सू० सा० पृ० ५६७ ५७०

१६२ गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ५० २२१

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० ५४८

१६३ गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ४५२

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० ५३४

१६४ ब्रजभाषा सूरदास वही पृ० ५२४ २५

गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ४५४

१६५ सूरदास सू० सा० पृ० ५२५ ५२८ २६

१६६ ब्रजभाषा—सूरदास वही पृ० ५२६

गुजराती—नरसी न० कृ० का० पृ० ४४२

१६७ गुजराती—नरसी वही पृ० १४१ ५३७ ११८ वासणदास चुआवरा ६

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा० पृ० ५४८ नंददास नंद पृ० १५७

१६८ हरिराम व्यास पृ० ११ ध्रुवदास वृन्दावन सत छंद ११ १४

१६९. माधवदास : माधुरीवाणी, पृ० ६३, ६४, ६०

१७०. केशवदास वैष्णव : मथुरालीला, पृ० २३

१७१. नंददास : नंद, पृ० १६, १९

१७२. ध्रुवदास : रसहीरावली, छंद ७६

१७३. गुजराती—नरसी : न० कृ० का०, पृ० ५२४; प्रेमानंद : 'मास' पद' १२; रत्नेश्वर : बृ० का० दो०, भाग ६, पृ० ८०२—३

ब्रजभाषा—नंददास . नंद, पृ० २८

१७४. नरसी . न० कृ० का०, पृ० ५२५; प्रेमानंद : प्रेमानंद कृत 'मास,' पद ६५; रत्नेश्वर : बृ० का० दो०, भाग ६, पृ० ८०७

१७५. नरसी : न० कृ० का०, पृ० १५५, १५६

१७६. नरसी : न० कृ० का०, पृ० १४०, १४२, २६१,

१७७. भालण दशमस्कंध, पृ० १०६

१७८. सूरदास : सू० सा०, पृ० ४६३, ४६४; ध्रुवदास : मानलीला, २, ३; माधवदास : मान माधुरी, छंद, ३१; हरिवंश · हि० चौ० पद, ७

१७९. सूरदास · सू० सा०, पृ० ४६४, ४६६, ४८४, ४९१, ५१५; ध्रुवदास : मानलीला, छ

१८०. माधवदास . मान माधुरी, छंद ३३, ३४

१८१. सूरदास : सू० सा०, पृ० ४७२, ४७३, ४७५, ४९९

१८२. नरसी : न० कृ० का०, पृ० २९०; भालण : द० स्कं०, पृ० १०९

१८३. ब्रजभाषा—सूरदास : सू० सा०, पृ० ४९५

गुजराती—नरसी : न० कृ० का०, पृ० १४६

१८४ सूरदास : सू० सा०, पद ६८ ७३

१८५. सूरदास · वही, पद ६० ६९, पृ० ५१८ ५२०

१८६ 'भास, प स्टडी' : प० डी० पुसालकर, बालचरित अंक तृतीय

.. हरिवंश : ' ··· हरिवंशे विष्णुपर्वणि हल्लीषक्रीडने सप्तसप्तमोध्यायः'

१८७. इन्डियन कल्चर, ग्रन्थ ४, पृ० २६८ ६९

१८८. हेमचन्द्र अभिधानः मण्डलेन तु यन्नृत्यं स्त्रीणां हल्लीषस्तुतत्

श्रीधर' ···· स्त्रीषु सौ गायनी मंडलीरूपेण भ्रमनी नृत्य विनोदो रासो नाम'

—इन्डियन कल्चर, ग्रन्थ ४, पृ० २६९

१८९. भास: बालचरित, अंक ३

१९०. बालचरित, अंक ३

हरिवंश: विष्णु पर्व, अ० १० श्लो० १८

ब्रह्मपुराण: अ० ११८, श्लो० ३५

विष्णुपुराण: पंचमांश, अ० १३ श्लो० १७

१९१. भागवत: दश० स्कं०, अ० ३३ श्लो०

बालचरित: अ० ३

२१५ क. नर्मर्द फागु० काव्य, २, ४१, ६१

ख नरसी न० कृ० का०, पृ० ७६

२१६ ब्रह्मपुराण अ० ११८, विष्णुपुराण पंचमांश, अ० १३

२१७ भागवत स्क० १०, अ० २८, श्लो० १८, वही, स्क० १०, अ० २६, श्लो० ४०

२१८ जयदेव : गीतगोविन्द, ५ ११ २ नाम समेत , विद्यापति पदावली १

२१९ सूरदास सू० सा०, पृ० ४३०, ४५७, नंददास नंद० ग्र०, पृ० १६०, हितहरिवंश हि० चौ०, पद ३६, गदाधर भट्ट श्रीगदा० वा० पृ० ३५ श्रीभट्ट : नि० मा०, पृ० ६, मीरां मी० पदावली, पृ० ५८

२२० नरसी न० कृ०, पृ० १६३, १६५, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ९३, ९४, भालण दश० स्क०, पृ० ११६, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २८८

२२१ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ४३३ ४३५, नंददास नंद० ग्र०, पृ० १६३
गुजराती—नरसी न०, पृ० २१४ पद १००, १०१, भालण दश० स्क०, पृ० ११६, ११७
केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ९४ ९५

२२२ भागवत १० २९ ४८ १० ३० ३८

२२३ ब्रह्मवैवर्त कृ० ख० २९ १२ ५२ ४

२२४ सूरदास सू० सा०, पृ० ४४८

२२५ नर्मद फा० सभा० हु० ग्र०, नं० ५२, नरसी न० कृ० का पृ० १६५, वासणदास श्री बृ० रा० छंद १०८, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २९०, २९१

२२६ भागवत १० ३० १४, २३

२२७ नंददास नंद०, पृ० १६६

२२८ नरसी न० कृ० का०, पृ० १९९, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ६७, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २९०

२२९ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ४४९, नंददास नंद० ग्र०, पृ १६६
गुजराती—केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० ९८, नरसी न० कृ० पृ० १०८, प्रेमानंद श्रीम० भा० पृ० २९१

२३० नंददास नंद० ग्र०, पृ० १७१

२३१ हरिदास नि० मा०, पृ० २९५ २९६, हरिराम व्यास वही, पृ० ४४, ५१, ५२, सूरदास सू० सा०, पृ० ४४६

२३२ नरसी न० कृ० का०, पृ० १९८

२३३ सूरदास सू० सा०, पृ० ४५६ ४५७, ४३७

२३४ भीम हरि० पो०, पृ० १५४ नरसी न० कृ० का० पृ० १८४, केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०१

२३५ प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० २९४

२३६ नरसी न० कृ० का०, पृ० १८१, हितहरिवंश हि० चौ० पद, ७१

२३७ भागवत कृ० ख० २८ ८७

२३८ सूरदास सू० सा०, पृ० ४५४, ४५५, नंददास नंद०, पृ० १८०, श्रीभट्ट नि० मा०, पृ० १८, ध्रुवदास भ० स० सि० पद १६१

२३९ माधवदास मा० वा०, पृ० २५, ४०

२४० नर्सर्षि फागु, पद ६०, नरसी न० कृ० का०, पृ० १६४

२४१. गुजराती—वासणदास श्रीकृ० रास, पद ११०, प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० ३६४, नरसी न० कृ० का०, पृ० २०५
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ४४५, ४४६ ४५६, नंददास नंद, पृ० १७०, माधव दास मा० वा०, पृ० ४५

२४२. नरसी न० कृ० का०, पृ० १८३, २०२, २१५, ४६८, ४१८, ४२७

२४३. नरसी वही, पृ० ४२७

२४४. एस० सी० ना० एल० पृ० १, पृ० २०७ तारापोरवाला

२४५ न० कृ० का०, पृ० २१८ १६, २६१, ६०५

२४६ वही, पृ० ५३७

२४७ ब्रह्मवैवर्त अ० २८ श्लो० १०४

२४८ न० कृ० का०, पृ० ७२

२४९ ध्रुवदास भ० स० सि०, पद १०८, १८२, १८४, नृत्य विलास, पद १८, १६, २२, १

२५० नरसी न० कृ० का०, पृ० ६२, ६३, ६५, ६९, ७२, ८१, ८३, ८४

२५१ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ५०३, ५०४, ५०६
 गुजराती—प्रेमानंद श्रीम० भा०, पृ० ३०२

२५२ सूरदास सू० सा०, पृ० ५८७

२५३ प्रेमानन्द श्रीम० भा०, दश० स्क०, पृ० ३०५

२५४ ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ५६०
 गुजराती—प्रेमानंद श्रीम० भा०, दश० स्क०, पृ० ३०८

२५५ भागवत १० ४१ ४२

२५६ भागवत १० ४१ ४२
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० २६२
 गुजराती—प्रेमानंद श्रीम० भा० द० स्क०, पृ० ३०८, भालण द० स्क० १५६

२५७ ब्रह्मवैवर्त पुराण कृ० ख०, ०३, ७६, ३०, ३१
 गुजराती—प्रेमानंद श्रीम० भा० द० स्क०, पृ० ३०८, ३०९
 ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६०२

२५८ सूरदास सू० सा०, पृ० ५९२

२५९ ब्रजभाषा—सूरदास वही, पृ० ५६३ ६४
 गुजराती—प्रेमानंद श्रीम० भा० द० स्क० पृ० ३१२

२६० भागवत १० ४८ २८, २७

केशवदास श्रीकृ० लीला०, पृ० १३७, प्रेमानन्द श्रीम० मा०, द० स्क०, पृ० ३१३

२६१ सूरदास सू० सा०, पृ० ६१२, ६१४

२६० प्रेमानन्द श्रीम० मा० द० स्क०, पृ० ३१६, ३२०

२६३ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६३९ ६४०

गजराती—ब्रह्मदेव वृ० का० दो० भाग १ प्रति नवीन, पृ० ६६२

२६४ मालण दश० स्क०, पृ० २१० २११, नाकर बड़ौदा, हु० प्र०, न ६००

२६५ भागवत १० ४७ ११

२६६ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६५०, नन्ददास नद०, पृ० १३४

गुजराती—प्रेमानन्द वृ० का० दो०, भाग ३, पृ० १७६, ब्रह्मदेव वृ० का० दो०, भाग १, पृ० ६६६

२६७ भागवत १० ४७, ३६, २५, ५९, ५८

२६८ व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६५५, ६५६, ६६६

गुजराती—ब्रह्मदेव ब्र० का० प्र० पृ० ६७१, प्रेमानन्द वृ० का० दो० तृतीय, पृ० १७७

भीम वृ० का० सप्तम पृ० ६९८

२६९ भागवत १० ४७ १२, ४२, ४३, १५, २०

२७० गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० २८८, ४१५, मालण श्रीम० मा० द० स्क०, पृ० २१५

प्रेमानन्द भ्रमर पच्चीशी, पद १५

व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६६९, नन्दास न द० पृ० १३७

२७१ प्रेमानन्द श्रीकृ० ली० का० द० स्क० पृ० ३३४

२७२ सूरदास सू० सा०, पृ० ७२७ ७२८

२७३ रोध रुक्मिणी हरण, पद, १२, १४, प्रेमानन्द रुक्मिणी हरण

२७४ भागवत १० ५३ ७

हरिवंश भाषा ६० १

गुजराती—प्रेमानन्द रुक्मिणी हरण, पृ० ३४६, मालण द० स्क०, पृ० २५८

व्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ७२७, ७३०, ७३१, नन्ददास रुक्मिणी मंगल, नद०, पृ० १४८

२७५ प्रेमानन्द रुक्मिणी हरण, २ ६, १३ १८

२७६ भागवत १० ५२ २६, ४४

२७७ हरिवंश भाषा ५९ ४३

२७८ ब्रह्मवैवर्त पुराण १०५ ६५, ६०

२७९ मालण द० स्क०, पृ० २७९, रोधजी रुक्मिणी हरण

२८० केशवदास श्रीकृ० ली० का०, पृ० १६०

२८१ प्रेमानन्द वृ० का० दो० भाग १, पृ० २४५, २४६, २४७, २५५, २५७

२८२ भालण द० स्क०, पृ० २८४ २८५

२८३ सूरदास सू० सा०, पृ० ७३७

२८४ भागवत १० ६६ १६

ब्रजभाषा—सूरदास सू० सा०, पृ० ६४१

गुजराती—भालण द० स्१०, पृ० ३५६

३

सिद्धान्त पक्ष

आलोच्य काल का प्राय समस्त व्रजभाषा-काव्य विभिन्न भक्ति-सम्प्रदायो की छाया में पल्लवित हुआ किन्तु गुजराती-काव्य का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ। उस पर स्पष्टतया किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रभुत्व प्रतीत नही होता। सम्प्रदाय और उसके अनुयायी कवियो में अगागि भाव रहता है, सर्वथा अभेद नहीं। अतएव सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओ में तथा कवियो द्वारा व्यक्त सिद्धान्तो में समानता के साथ कही कही असमानता भी प्राप्त होती है। काव्य सम्प्रदाय के सिद्धान्तो से अनुप्राणित अवश्य रहा है, परन्तु सर्वत्र सर्वथा अनुयायी नही, जो आचार्य और कवि के व्यक्तित्व की भिन्नता का परिणाम है। बहुत से कवि ऐसे है जिन्होने मान्यताओ के आग्रह को दृढता के साथ ग्रहण किया है और अनेक ऐसे भी है जो या तो सिद्धान्त पक्ष से उदासीन है या अशत स्वतन्त्र। उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में काव्य में व्यक्त सिद्धान्तो को प्रधानता दी गयी है और साम्प्रदायिक दार्शनिक मान्यताओ को काव्य गत सैद्धान्तिक विचारो की व्याख्या अथवा विश्लेपण में सहायक माना गया है।

व्रजभाषा की अपेक्षा गुजराती में दार्शनिक एव सैद्धान्तिक पक्ष की ओर बहुत कम कवियो का ध्यान आकर्षित हुआ है। एक मात्र नरसी ने इस विषय में विशेष पद-रचना की है। अन्य कवियो ने प्राय प्रसगवश सिद्धान्तो का निर्देश यत्र तत्र कर दिया है। व्रज भाषा में वल्लभीय, राधावल्लभीय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के अनेक कवि इस विषय में सचेत रहे है। गौडीय सम्प्रदाय के कवियो में अवश्य विशेष सामग्री प्राप्त नही होती। सिद्धान्त सम्बन्धी काव्य ग्रन्थो का परिचय वस्तु विश्लेपण के प्रसग में दिया जा चुका है।

सिद्धान्त पक्ष के समस्त विस्तार को निम्नलिखित विषयो में विभाजित कर लेने से विवेचन में सुगमता रहेगी—

१.	ब्रह्म	२	जीव
३	जगत	४	माया
५	मोक्ष	६	भक्ति

ब्रह्म

कृष्ण का ब्रह्मरूप म ग्रहण गीता, गोपालपूर्वतापनीय, उपनिषद्, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तादि पुराणा में सवत्र किया गया है। गीता में कृष्ण तथा ब्रह्म में नितात अभेद है। कृष्ण ने जो भी ज्ञान अर्जुन को दिया वह सब ब्रह्म रूप में स्थित होकर दिया है। अर्जुन भी कृष्ण को परब्रह्म कह कर सम्बोधित करत हैं—

पर ब्रह्म पर धाम पवित्र परम भवान्।

—गीता, अ० १०, श्लो० १२

गोपालपूर्वतापनीय उपनिषद् का भी प्रतिपाद्य कृष्ण का ब्रह्मत्व ही है—

तयोरैक्य पर ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।

—कल्याण, उप० अक०, पृ० ५५१

भागवत ने कृष्ण को स्वय भगवान् के रूप में 'एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वय' (१ ३ २८) लिखकर स्वीकार किया और भगवान्, परमात्मा तथा ब्रह्म को एक ही अर्थ का बोधक बताते हुए उससे पूर्व ही लिख दिया है—

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।

—१ २ ११

इस प्रकार भगवान् कृष्ण ही ब्रह्म स्वीकृत हुए। ब्रह्मवैवर्तकार ने भी भागवत की इस मान्यता को ज्यो का त्यो ग्रहण करते हुए कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माना—

१ एते चाशा कलाश्चान्ये सत्येव कतिधा मुने।

—कृष्ण जन्म खड, अ० ९, श्लो० १२

२ भज सत्य पर ब्रह्म राधेश त्रिगुणात्परम्।

—वही, अ० १३३, श्लो० ७२

निम्बार्क, चैतन्य तथा वल्लभ द्वारा दार्शनिकतया कृष्ण के इस ब्रह्मत्व का पूर्ण समथन हुआ और साम्प्रदायिक ग्रथो में इस विषय का पर्याप्त विस्तार किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि आलोच्य काल में दोनो भाषाओ के प्राय समस्त कवियो ने कृष्ण को परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। व्रजभाषा के कवियो ने सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओ के अनुसार कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण किया है और गुजराती कवियो ने भागवतादि उपर्युक्त मूल ग्रथो के अनुसार। केवल कुछ

अपवादों को छोड़कर स्थिति प्राय: ऐसी ही है । जिन कवियों ने स्पष्ट रूप से कृष्ण को ब्रह्म घोषित किया है उनके काव्य से कतिपय उद्धरण,प्रमाण स्वरूप नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

(ब्रजभाषा)

सूर—ब्रह्म धार्‌यो कृष्ण अवतार ।

—सू० सा०, पृ० २१०

नंददास—कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परगातम स्वामी ।

—नंददास, पृ० १८६

रसखान—ब्रह्म जो गायो पुरानन वेदन.............

.........बैठो पलोटत राधिका पायन ।

हरिव्यास—परमातम परब्रह्म करि विस्तारन जगजाल ।

जनपालन जय जय सदा रासबिहारी लाल ।

—निम्बार्क माधुरी, पृ० ६३

(गुजराती)

नरसी—ते ब्रह्म द्वार आवी ने ऊभा रह्या गोपिका मुख जोवाने ढूके ।

—न० कृ० का० स० भक्तिज्ञानना पदो, पद १९

प्रेमानंद—हु पूर्ण ब्रह्म भगवंत ।

—श्री० भा०, पृ० २४०

कृष्ण ब्रह्म है, इस मान्यता के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या का प्रश्न उठता है । इस विषय में ब्रजभाषा में वल्लभ तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों के तथा गुजराती में नरसी के काव्य से विशेष सामग्री उपलब्ध होती है ।

वल्लभ-सम्प्रदायी सूर, परमानंद तथा नंददास आदि कवियों द्वारा जो ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण हुआ है वह बहुत कुछ शुद्धाद्वैत के सिद्धान्तों के अनुकूल है । वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के सच्चिदानंद, पूर्ण पुरुषोत्तम अक्षर, सर्वशक्तिमान, स्वतंत्र व्यापक, अनन्त, षड्गुणोपेत, विरुद्धधर्माश्रयी तथा अविकृतपरिणामी माना है ।[1] प्रथम और अन्त के कुछ विशेषण शुद्धाद्वैतवाद के अंतर्गत मान्य ब्रह्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं को व्यक्त करते हैं । नरसी मेहता के काव्य में भी ब्रह्म की यह विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं । वस्तुतः ब्रह्म के विषय में शुद्धाद्वैत और नरसी मेहता के दार्शनिक मत की समानता दर्शनीय है ।

विरुद्ध धर्माश्रयता—वल्लभाचार्य ने 'तत्वदीप निबध' के शास्त्रार्थ प्रकरण म वेदान्त ग्रथो के आधार पर ब्रह्म को 'विरुद्ध सर्वधर्माणामाश्रयम्' माना है। इसी के अनुकूल सूरदास, परमानद दास आदि ने कृष्ण के निर्गुन सगुण दोनो स्वरूपो का एक साथ आलेखन किया है—

सूर—वेद उपनिषद यश कहै निर्गुनहि बतावै।
सोइ सगुन होय नन्द की दावरी बधावै॥

—सू० सा०, पृ० २

परमानन्ददास आदि अन्य अष्टछापी कवियो ने भी कृष्ण की इस विरुद्धधर्माश्रयता को स्वीकार किया है।

नरसी मेहता भी कृष्ण को सगुण तथा निर्गुण दोनों ही मानते हैं—

सगुण स्वरूप निर्गण अेनु

—पद ४९

सूर तथा नरसी की सगुण निर्गुण विषयक विचारधाराओ में अन्तर इतना है कि सूर ने 'सुर सगुन लीलापद गावै' लिख कर अपनी रुचि सगुण की ओर अधिक व्यक्त की है और नरसी ने 'जो निराकारमा जेहनु मन गमे भिन्न ससारनी भ्राति भाग' पद ३९ लिखकर निर्गुण की ओर।

अविकृतपरिणामवाद—शुद्धाद्वैत मे स्वीकृत ब्रह्म सम्बन्धी अविकृतपरिणामवाद के सिद्धान्त को सूर ने 'जल और बुद्बुद्' के तथा नददास ने 'कनक कुडल' के न्याय से व्यक्त किया है। नरसी ने भी ब्रह्म की अनेक नाम रूप औपाधिक परिणति को व्यक्त करने के लिए कनक कुडल का उदाहरण अपने कई पदो में दिया है—

सूर—ज्यो पानी में होत बुदबुदा पुनि ता माहि समाही।
त्यो ही सब जग कुटुम्ब तुमहि ते पुनि तुम माहि विलाही।

—सू० सा०, पृ० ५९५

नददास—एकहि वस्तु अनेक है जगमगात जगधाम।
ज्यो कचन ते किकनी कनन कुडल नाम।

—नददास, पृ० ९८

नरसी—वेद तो अेम वदे, श्रुति स्मृति शाख दे,
कनक कुडल विषे भेद नोये।

घाट घडिया पछी नाम रूप जूजवा,
अत तो हेमनु हेम होयें।

किंतु संभवतः नरसी का यह सिद्धान्त शुद्धाद्वैत मत के ग्रंथों से न लिया जाकर वेद स्मृति आदि उन प्राचीनतर ग्रथों पर आधारित हैं जिनका आधार स्वयं वल्लभाचार्य ने ग्रहण किया। यहाँ यह बात नरसी के उद्धरण से प्रकट है।

ब्रह्म का आनन्द एवं रस स्वरूप—यद्यपि नददास ने भी कृष्ण को सच्चिदानद कहा है और नरसी ने भी, यथा—

नददास—सघन सच्चिदानंद नंदनदन हरिवर जस।
—नंददास, पृ० १८४

नरसी—सच्चिदानंद आनन्द क्रीडा करे सोनाना पारणा माहि झूले।
—पद ३९

तथापि अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण के आनन्द स्वरूप को ही अधिक महत्ता दी है जो शुद्धाद्वैत की मान्यताओ के अनुकूल है। वल्लभाचार्य ने कृष्ण को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' तथा 'पुष्टि पुरुषोतम' दोनों का अवतार माना है।[1] दूसरे रूप को पहले से अधिक श्रेष्ठ माना गया है, फलतः अष्टछाप के कवियों में भी ऐसी ही धारणा प्राप्त होती है—

परमानंददास—आनंद की निधि नंदकुमार।
—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ४११

नददास— नित्य आत्मानंद अखंड स्वरूप
—नंददास, पृ० १९१

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने तो कृष्ण के आनन्दमय अथवा रसिक स्वरूप को ही सर्वत्र ग्रहण किया है। कृष्ण का यह रसिक रूप छान्दोग्य के 'रसो वै सः' (३ : १४ : २) पर आधारित है। शुद्धाद्वैत में भी इसे स्वीकार किया गया है परन्तु तात्विक दृष्टि से राधाकृष्ण के युगल स्वरूप को ग्रहण नही किया गया। पुष्टिमार्ग की उपासना पद्धति में भले ही युगल रूप को मान्यता हुई, वह भी विट्ठलनाथ जी के द्वारा, परन्तु वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो में राधा का कोई स्थान नही है और न उन्ही ग्रंथों में है जिनको उन्होंने 'प्रमाण चतुष्टय' की कोटि में रक्खा। द्वैताद्वैत तथा अचिन्त्यभेदाभेदवादी निम्बार्क और गौडीय सम्प्रदाय में द्वैत तथा 'भेद' को 'अद्वैत' और 'अभेद' के साथ दार्शनिक दृष्टि से स्वीकृति मिली। अतएव राधाकृष्ण का युगल स्वरूप

तत्वत स्वीकार किया गया जिससे 'द्वैताद्वैत' और 'भेदाभेद' चरितार्थ हो सके। राधा-वल्लभीय तथा हरिदासी सम्प्रदाय में राधाकृष्ण के युगल रूप को ही स्वीकार किया गया है। यह दोनो सम्प्रदाय निम्बार्क सम्प्रदाय से अत्यधिक साम्य रखते है। दार्शनिकतया हरिदासी सम्प्रदाय निम्बार्क के द्वैताद्वैत को ही मानता है। हितहरिवश ने अवश्य कुछ अन्तर करके सिद्धाद्वैत का प्रतिपादन किया। केवल कृष्ण को ब्रह्म मानकर इन दार्शनिक सिद्धान्तो की अभिव्यक्ति असम्भव थी। शुद्धाद्वैत की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वहाँ कृष्ण के स्थान पर राधाकृष्ण को नित्य मानना अद्वैत की शुद्धता का विरोधी सिद्ध होता है। अष्टछाप के कवियो द्वारा राधाकृष्ण के युगल रूप सम्बन्धी जो पद लिखे गए है उनपर अन्य सम्प्रदायो का निश्चय ही प्रभाव है, जो कवियो की उदारता तथा कवि और सम्प्रदाय विशष के बीच के अन्तर को व्यक्त करता है।

दार्शनिकतया राधाकृष्ण के युगल रूप को सर्वप्रथम निम्बार्क द्वारा स्वीकृत किया गया जिनका सम्प्रदाय कृष्णभक्ति के इतर सम्प्रदायो की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। पुराणो में ब्रह्मवैवर्त ने राधाकृष्ण को सयुक्त रूप से उपास्य माना।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी कवि हरिव्यासदेव ने कृष्ण को आनन्द स्वरूप माना है और राधा को आह्लादिनी शक्ति। यह दोनो सर्वत्र अभिन्न रहते है—

१—प्रिया शक्ति आल्हादिनी प्रिय आनन्द स्वरूप।
—नि० मा०, पृ० ६३

२—सदा सर्वदा जुगुल इक एक जुगुल तन धाम।
आनन्द अरु अह्लाद मिलि विलसत है द्वै नाम।
—वही, पृ० ६५

शाक्त मत की तरह कुछ सम्प्रदायो के कवियो ने आह्लादिनी शक्ति राधा को ब्रह्म कृष्ण की अपेक्षा अधिक महत्ता प्रदान की और उन्हें 'स्वामिनी' नाम से विभूषित किया।

सूरदास ने जहाँ राधाकृष्ण के युगल रूप का वर्णन किया है वहाँ राधा को आह्लादिनी शक्ति न कह कर आदि प्रकृति कहा है जो ब्रह्म कृष्ण के आदि पुरुष रूप की पूरक है—

प्रकृति पुरुष एकै करि जानो बातनि भेद करायो।
द्वै तनु जीव एक हम तुम दोऊ सुख कारन उपजायो।
—सू० सा०, पृ० ३३३

यह संभवतः ब्रह्मवैवर्त के अनुसार है क्योंकि उसमें ही राधा को मूलप्रकृति की उपाधि दी गयी है—

> ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि साम्प्रतम्
> त्वं च शक्तिस्समूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी।
>
> —खंड ४, अ० ६, श्लो० २१२

इस प्रकार रसस्वरूप ब्रह्म कृष्ण की रसमयी लीलाओं का अभिन्न अंग होने के कारण राधा को इतनी महत्ता प्राप्त हुई। दार्शनिक दृष्टि से राधा का यह महत्व ब्रजभाषा काव्य में ही उपलब्ध होता है। गुजराती में युगल रूप में राधाकृष्ण का वर्णन अवश्य मिलता है परन्तु राधा को सर्वत्र भक्ति का प्रतीक माना गया है। न वह ब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है और न आदि प्रकृति।

ब्रजभाषा के कवियों ने कृष्ण के रसिक रूप को विशेष प्रस्फुटित किया है और उनकी रस लीलाओं तथा वृन्दावन की नित्यता पर सर्वत्र बल दिया है दूसरे शब्दों में ब्रह्म को विशेषतया रस स्वरूप और नित्य माना—

> नंददास—नमो नमो आनन्द घन सुंदर नंदकुमार।
> रसमय रस कारण रसिक जग जाके आधार।
>
> —नंददास, पृ० ३९

> हरिव्यास—नित्य विहरत जहाँ नित्य कैसोर दोउ
> नित्य सहचरिन संग नित्य नवरंग।
> नित्य रस रास उल्लास आनन्द उर
> नित्य प्रतिभास परभास अंग अंग।
>
> —नि० मा०, पृ० ६०

> ध्रुवदास—नित्त विहार विवाह नित दुलहिन दूलह लाल।
> नित्त सखी सुख नित्त ही लेत रहत सब काल ॥१६१॥
>
> —मंडल सभा सिंगार।

> माधवदास—कृष्ण रूप चैतन्य की सदा सनातन केलि।
> गिरि वन पुलिन निकुंज गृह द्रुम द्रोणी वनवेलि ॥१॥
>
> —वृंदावन माधुरी, श्री माधुरीवाणी, पृ० ६०

गुजराती कृष्ण-काव्य में नरसी मेहता ने परब्रह्म के इस नित्य आनन्दमय रस रूप को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की है—

क—अखिल शिव आद्य आनदमय कृष्णजी सुन्दरी राधिका भक्ति तेनी ।

—पद ४९

ख—श्याम शोभा घणी, बुद्धि ना शके कली, अनन्त ओच्छव मा पथ भूली ।
जड ने चैतन रस करी जाणजो. पकडी प्रेमे सजीवन मूली ।

—पद ३९

नरसी ने ऐसे रसिक ब्रह्म को पूर्ण पुरुपोत्तम कहा है जो शुद्धाद्वैत की परिभाषा के बिल्कुल समीप है'—

ते पूर्ण पुरुपोत्तम प्रेमदाशु रमे भाविशु भामनी अक लीधो ।
जे रस व्रज तणी नार विल्से सदा सखीरूपे ते नरसैंयो पीधो ।

—पद ४९

फिर इस पुरुषोत्तम को क्षर-अक्षर से ऊपर बताया है—

पूर्णानन्द पोते पुरुषोत्तम परम गत छे अनी रे ।
अे पद क्षर अक्षर नी ऊपर तमे जो जो चित्तमा चेती रे ।

—पद ५७

एक अन्य स्थल पर उन्होंने ब्रह्म को अगणित कहा है

अगणित ब्रह्मनु गणित लेवु करे, दुष्ट भावे करी माल झाले ।

—पद ३९

ब्रह्म के अक्षर तथा अगणित स्वरूप का निरूपण वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद के अन्तर्गत किया है।'

अवतार—कृष्ण ने ब्रह्म होकर भी भक्तो का उद्धार करने के निमित्त देह धारण की, अतएव वे अवतारी और अवतार दोनो ही रूपो में ग्रहण किये गये है। 'सभवामि युगे युगे' लिखकर गीताकार ने तथा चौबीस अवतारा में परिगणित करके भागवतकार ने भी इसका प्रतिपादन किया है। वल्लभ सम्प्रदाय में ब्रह्म के गुणावतार, लीलावतार, मर्यादावतार, आदि अनेक प्रकार से अवतरित होने तथा अवतार के बाद भी मायिक जगत से निर्लिप्त रहने का प्रतिपादन किया गया है।' कृष्ण को अवतारी समझने के साथ साथ उनके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी अलौकिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। कृष्ण की प्रिया राधा को ब्रजभाषा के कवियो द्वारा आह्लादिनी शक्ति या प्रकृति तथा गुजराती कवियों द्वारा भक्ति का प्रतीक मानने का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। उसी प्रकार कवियो ने अन्य कृष्ण सम्बन्धी वस्तुओ का दार्शनिक अभिप्राय एव प्रतीकार्थ ग्रहण किया है।

नरसी मेहता ने लिखा है—

अमर आहीर अरधांग गोगांगना, वृक्ष वेली सर्व ऋषिराणी।
भक्ति ते राधिका, मुक्ति जशोमती, व्रज वैकुंठ ते वेद वाणी।
निगम वसुदेव जी, गाय गोपी ऋचा, देवकी ब्रह्म विवाद कहावै।
ब्रह्मा कर लाकडी, वेणु महादेव जी पंचवदन करी गान गावै।
इन्द्र अर्जुन, अहंकार दुर्योधन, देवता सर्व अवतार लीधो।
धर्म ते राय युधिष्ठिर जाणजो, दासनोदास नरसैंने कीधो।

इसी प्रकार गुजराती कवि प्रेमानन्द स्पष्ट लिखते हैं—

गोपी छे वेदनी ऋचा, श्री कृष्ण वेद स्वरूप।
वृन्दावन वैकुठ जाणवु, रखे भेद अभागे भूप।
खटराग ते खटशास्त्र छे, वेणु शब्द ते ओंकार।
चन्द्रावली ते ब्रह्मविद्या, राधा भक्ति नो अवतार।

—श्री०, पृ० २९५

ब्रजभाषा के किसी भी कवि ने इतने विस्तार से ऐसा तुलनात्मक प्रतीक-विधान तो नही प्रस्तुत किया है, परन्तु वेणु तथा गोपी आदि कतिपय प्रधान तत्वों की प्रतीकात्मकता की ओर उन्होंने स्पष्ट इंगित किया है। नददास ने वेणु को ओंकार अथवा महादेव नही माना परन्तु शब्द-ब्रह्म के रूप में अवश्य स्वीकार किया है—

शब्द ब्रह्म मैं वेनु बजाइ सबै जन मोहै।

—नंददास, पृ० १८५

गोपियो को वेद की ऋचाओं का प्रतीक गुजराती कवियो की तरह ही ब्रजभाषा में सूर तथा ध्रुवदास ने भी माना है, कारण यह है कि सबने इस विषय में वृहदवामन पुराण की कथा का अनुसरण किया है—

सूर— वेद ऋचा होइ गोपिका हरि सो कियो विहार।

—सू० सा०, पृ० ४६२

ध्रुवदास—और तियनि में गिनहु जनि ए श्रुति कन्या आहि।

—वृहद्वामन पुराण की भाषा

सूरदास तथा नंददास ने कृष्ण को अवतारी तथा अवतार दोनो ही रूपों में चित्रित किया है परन्तु अवतारों के इतने भेद प्रदर्शित नही किये हैं—

सूर— ब्रह्म अगोचर मन बानी ते अगम अनत प्रभाव।
भक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला संसार।

—सू० सा०, पृ० ४८

नददास—पटगुन जो अवतार धरन नारायन जोई।
सबको आश्रय अवधिभूत नंदनदन सोई।

—नद०, पृ० १८३

राधाकृष्ण वृन्दावन और रास आदि प्रेम लीलाओं को नित्य मानने वाले अन्य सम्प्रदायो के कवियो ने कृष्ण के अवतार धारण करने का स्वभावत वर्णन किया है। यदि कही प्राप्त होता है तो अपवाद रूप में सूर सारावली मे दोनो का समावेश है—

अश कला अवतार बहुत विधि रामकृष्ण अवतारी।
सदा विहार करत ब्रजमडल नदमदन सुखकारी।।३६०।।

साथ ही राम और कृष्ण के अवतार चतुर्व्यूहात्मक माने गये हैं।

गुजराती कवियो में से प्राय सभी ने पौराणिक आधार पर कृष्ण का अवतरित होना वर्णित किया है। ब्रह्म तो माना ही है—

नरसी—धन्य रे धन्य महापुण्य जशोदातणु पुत्रभावे परिब्रह्म राजे।
नदनो नद आनद थइ अवतार्यो,शेष बलिभद्र सगे विराजे।

भालण—आठमो जे अवतार लीधो ते माधु ने उद्धारवा।

—दश, पृ० ९

प्रेमानद—पूर्वे लीधा मे अवतार।
असुर हणी उतार्यो भू भार।

—श्री० भा०, पृ० २४०

विराट रूप—ब्रह्म शब्द के धात्वर्थ मे ही उसके वृहत् एव विराट होने की धारणा निहित है। ब्रह्म के इस विराट रूप का वर्णन ऋग्वेद के पुरुष सूक्त, अनेक उपनिषदो तथा गीतादि ग्रथो में किया गया है। कृष्ण को ब्रह्म स्वीकार करने वाले कवियो ने कृष्ण के विराट रूप का वर्णन किया है जो दोनो भाषाओ के काव्य में प्राप्त होता है। सूरदास ने सूरसागर के अतर्गत द्वितीय स्कध मे इसका आलेखन किया है और साथ ही विराट आरती की भी योजना की है—

१ नैनिनि निरखि श्याम स्वरूप।
रह्यो घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप।

चरण सप्त पताल जाके शीश है आकाश ।
सूर चन्द्र नक्षत्र पावक सर्व तासु प्रकाश ।
—सू० सा०, पृ० ४७

२ हरि जू की आरती बनी ।
मही सराव सप्त सागर घृत बाती शैल घनी ।
रवि शीश ज्योति जगत परिपूरण हरत तिमिर रजनी ।
उडत फूल उडगन नभ अन्तर अजन घटा घनी ।
—सू० सा०, पृ० ४७

अविनश्वर दीपक की धारणा एव स्थान पर नरसी मे भी मिलती है—

बत्ति विण तेल विण सूत्त विण जो वळी ।
अचल झलके सदा अनळ दीवो ।
—पद ३९

सूरसारावली में सृष्टिव्यापी विराट होली का वर्णन है जो समस्त कृष्ण-काव्य में अद्वितीय है ।

कृष्ण के मृत्तिका-भक्षण तथा जमुहाई लेने के समय भागवत के अनुसार सूरदास तथा अन्य अनेक कवियो ने समस्त सृष्टि को उनके मुख के अतर्गत प्रदर्शित किया है जो ब्रह्म कृष्ण के विराट रूप का ही प्रतिपादक है । इसका निर्देश वर्ण्य वस्तु के प्रसग में किया जा चुका है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के तत्ववेत्ता के काव्य का विषय ही यह है तथा राधावल्लभी सम्प्रदाय के व्यास ने भी इसका चित्रण एक स्थल पर किया है—

तत्ववेत्ता—कोटि कोटि मेखला कृष्ण वसुदेव कुमारा ।
—नि० मा०, पृ० १३२

व्यास—श्याम सुघन को नाही अत ।
जाके कोटि रमा सी दासी पद सेवत रतिवत ।
शिव विरचि मघवा कुबेर जाके सेमनि के तत ।
—व्यासवाणी पूर्वार्ध, पृ० ३५

गुजराती कवि नरसी तथा प्रेमानद ने कृष्ण के विराट रूप का जो वर्णन किया है वह भी उपर्युक्त कवियो के वर्णन के समान ही है—

नरसी १—रवि शशि कोटि नख चन्द्रिका मा बसे दृष्टि
पहोचे नहि खोज खोले ।

अर्क उद्योत ज्यम तिमिर भासे नही नेति नेति
वहि निगम डोले ।
कोटि ब्रह्माड ना ईश धरणीधरा, कोटि
ब्रह्माड एक रोम जेनु ।

—पद ४९

२—तारी केम करी पूजा करु श्रीकृष्ण करुणानिधि
सकल आनन्द कत्यो न जाए ।
स्यावर जगम विश्वव्यापी रह्यो
केशवा कडीये केम समाए ।

—पद ६६

प्रेमानद—रमे नारायण नट रूपे रे रमे नारायण नट रूपे रे ।
कोटि ब्रह्माड धरे परमेश्वर अेक लोक रोम कूपे रे ।
चोसठ सहस कर पद लोचन श्रवण चोसठ हजारो ।
मस्तक वत्तीस सहस्र नासिका सोळ सहस्रे निशा भरयारो ।

—श्री० भा०, पृ० २२८

यह वर्णन पुरुष सूक्त के 'सहस्रशीर्षा पुरुष' के नितात समीप है । चौसठ हजार की सख्या रास के प्रसग के अनुकूल है ।

अन्य उपाधियाँ—कुछ कवियो ने ब्रह्म कृष्ण की अनेकानेक उपाधियों का मुक्त हृदय से वर्णन किया है जिनमें तात्विक दृष्टि के साथ भावात्मकता का भी पर्याप्त योग है । सूरदास ने कृष्ण को परमहस, सर्वेश, जगदीश, अच्युत, अविगत, अविनाशी आदि उपाधियो से विभूषित किया है—

परमहस तुम सबके ईस, वचन तुम्हारे श्रुति जगदीश ।
तुम अच्युत अविगत अविनासी, परमानन्द सदासुखरासी ।

—सू० सा०, दशमस्कध, उत्तरार्ध

नददास आदि कवियो ने भी इस प्रकार से कृष्ण का वर्णन किया है (अष्टछाप व पृ० ४०९) । इस प्रवृत्ति की सीमा हरिव्यासदेव जैसे कवियो में मिलती है जो उपाधियो की शृखला की शृखला रखते चले जाते है—

निरवधि नित्य अखडल जोरी गोरी स्यामल सहज उदार ।
आदि अनादि एकरस अद्भुत मुक्ति परे पर सुख दातार ।
अनत, अनीह, अनावृत, अव्यय अखिल अड अधीश अपार ।

—नि० मा०, पृ० ५८

गुजराती कवि नरसी मेहता में भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति पाई जाती है—

अकल अविनाशी अे नवज जाअे कलयो अरध ऊरधनो महि महाले।
नरसैया चो स्वामी सकल व्यापी रह्यो प्रेम ना संत मा संत झाले।

—पद ३९.

इसके अतिरिक्त नरसी ने ब्रह्म की अन्य विशेषताओं का भी अंकन किया है। श्वेताश्वेतर उपनिषद के 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' (३:१९) का अनुसरण निम्नलिखित पंक्ति में मिलता है—

नेत्र विण निरखतो, रूप विण परखतो, वण जिह्वाअे रस सरस पीवो।

—पद ३९

इसी प्रकार छान्दोग्य के 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (३:५:१) की छाया इन पंक्तियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है—

अखिल ब्रह्मांड मा अेक तुं श्री हरी जूजवे रूपे अनंत भासे।
देह मा देव तुं तेज मा तत्व तुं शून्य मा शब्द थइ वेद वासे।
पवन तुं पाणिं तुं, भूमि तुं भूधरा वृक्ष थई फूली रह्यो आकाशे।

—पद ४०

इन विशेषताओं का वर्णन प्रच्छन्न रूप में अन्य कवियों में भी मिल जाता है किन्तु इस विषय में नरसी उपनिषदों के जितने समीप है उतना ब्रजभाषा का कोई भी कवि दिखाई नहीं देता।

जीव

सभी अद्वैतवादी दर्शन अन्ततः जीव और ब्रह्म के तात्विक अभेद को स्वीकार करते हैं। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' तथा 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' आदि कथनों से यही प्रतिपादित किया गया है। 'अविकृत परिणामवाद' के सिद्धान्त में जीव जगत के ऐक्य के साथ जीव ब्रह्म का ऐक्य भी स्वीकृत है। मुंडक और वृहदारण्यक आदि उपनिषदों में ब्रह्म को अग्नि और जीवों को स्फुलिंगों का रूपक दिया गया है—

१. यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिंगा.
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः,
तथा क्षराद् विविधाः सौम्य भावाः
चैवापि यन्ति।

—मुंडक, २:१:१

२ यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्त्वमवास्मादात्मनः
सर्व्वे प्राणा .....

—बृहदारण्यक, २ : १ : २०

शंकराचार्य ने भी इस औपानिषदिक रूपक को स्वीकार किया है—

परस्यैव तावद् आत्मनो ह्यंशो जीवः अग्निरिव विस्फुलिंगाः

शुद्धाद्वैत के प्रतिपादक वल्लभाचार्य ने इस रूपक को अपनी सैद्धान्तिक व्याख्या में विशेष स्थान दिया है। अपने तत्वदीप निबंध के शास्त्रार्थ प्रकरण में उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में इसे व्यक्त किया है—

विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।
आनन्दांश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः ॥३२॥

पुष्टि मार्ग के अनुयायी कवि नंददास ने इसी का अनुसरण करते हुए एक स्तुति के अन्तर्गत लिखा है—

तुमतैं हम सब उपजत ऐसे।
अगिनि ते विस्फुलिंग गन जैसे।

—नंददास, पृ० २०८

सूरदास ने 'करत इन्द्रियनि चेतन जोई, मम स्वरूप जानो तुम सोई' तथा 'रहयो घट घट व्यापि सोई ज्योति रूप अनूप' आदि लिखकर जीव के ब्रह्म होने का सिद्धान्त तो स्वीकार किया है किन्तु उन्होंने अग्नि और स्फुलिंग का उदाहरण संभवत: कहीं नहीं दिया है। उनके कुछ पदों में प्रतिबिम्बवाद की अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरणार्थ—

चेतन घट घट है या भाई, ज्यों घट घट रवि प्रभा समाई।
घट उपज्यो बहुरो नशि जाई, रवि नित रहे एक ही भाई।

—सू० सा०, पृ० ५३

अन्य सम्प्रदायों के कवियों ने भी जीव विषयक इसी प्रकार के सिद्धान्त को स्वीकार किया है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति कुछ कवियों में ही उपलब्ध होती है जैसे निम्बार्क सम्प्रदाय के परशुरामदेव ने निम्नोक्त दोहे में स्पष्टतया जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की है—

सब जीवन में हरि बसैं हरि ही में सब जीव
सर्व जीव को जीव हरि परसराम सो सीव ॥७३॥

—नि० मा०, पृ० ७९

गुजराती कवि नरसी मेहता ने भी जीव और ब्रह्म के भेद को असत्य और अभेद को सत्य स्वीकार किया हैं। नरसी का 'ते ज हु, ते ज हु', पद ३९ तथा 'ते ज तु ते ज तु' (पद ४२), वास्तव में 'सोहमस्मि' तथा 'तत्वमसि' का रूपान्तर मात्र हैं—

जीव ईश्वर अने ब्रह्मना भेद मा सत्य वस्तु नाहि सद्य जडशे।

—पद ४६

उन्होंने शिव स्वरूप ब्रह्म से ही जीव की उत्पत्ति मानी हैं साथ ही ब्रह्म की रस लेने की इच्छा को जीव सृष्टि का कारण माना हैं।

विविध रचना करी अनेक रस लेवा ने
शिव थकी जीव थयो अे ज आश।

—पद ४८

तैत्तरीय उपनिषद् के 'एकोऽह बहुस्याम्' के अनुसार वल्लभाचार्य ने भी ब्रह्म की इच्छा से ही जीवों की उत्पत्ति मानी हैं—

तदिच्छा मात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूताश चेतना
सृष्ट्यादौ निर्गता सर्वे निराकारास्तदिच्छया ॥३१॥

—त० दी० निबन्ध

किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो ने इस तथ्य को पूर्ण रूप से व्यक्त नही किया हैं। उनका ध्यान जीव के अविद्याग्रस्त स्वरूप के चित्रण तथा भगवद् कृपा द्वारा उसके उद्धार के ऊपर विशेष केन्द्रित हुआ।

जीव की ब्रह्म से विमुखता—ब्रजभाषा तथा गुजराती दोनो के कवियो ने इसे स्वीकार किया हैं कि ईश्वर से विमुख होकर ही जीव अनकानेक कष्टो और क्लेशो का भागी बनता हैं तथा उसका कल्याण इसी में हैं कि वह निरन्तर परब्रह्म परमात्मा के स्मरण तथा उपासन में रत रहे। सूरदास कमल लोचन कृष्ण की प्रीति से हीन तथा विषय विलिप्त जीव का जन्म निरर्थक मानते हैं—

आछो गात अकारथ गार्‌यो।
करी न प्रीति कमल लोचन सों जन्म जुवा ज्यां हार्‌यो।
निसि दिन विषय बिलासनि बिलसत फूटि गईं तव चार्‌यो।

—सू० सा०, पृ० ९

नन्ददास भी जीव को काल,कर्म तथा माया के आधीन एव पाप-पुण्य आदि में लिप्त कहते हैं—

काल करम माया अधीन ते जीउ बखानें ।
विधि निषेध अरु पाप पुन्य तिनमें सब सानें ।

—नंददास, पृ० १८४

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास स्पष्टतः मानते हैं कि जीवन ने ईश्वर का अमृत स्वरूप स्मरण ध्यान छोड़कर विषय रूपी विष को अपना लिया है—

जीव दिसा कछु इक सुनि भाई ।
हरि जस अमृत तजि विष पाई ॥१॥
कृष्ण भक्ति सौं कबहू न राच्यौ ।
महामूढ बड सुख ते वाच्यौ ॥२॥

—जीवदिसा

नरसी मेहता का भी यही मत है कि जीव ईश्वर से विमुख होने के कारण ही विपथगामी हो रहा है—

हरि तणु हेत तने काम गयु बीसरी, पशु रे फेडी नें नर रूप कीधुं ।

—पद २७

सूरदास तथा नरसी की जीव विषयक मूल स्थापनाएँ प्रायः समान हैं किन्तु ब्रह्म से जीव की विमुखता के कारण में कुछ साम्य भी है और वैषम्य भी । सूरदास ने एक नहीं अनेक स्थानों पर बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि जीव अपने ही भ्रम तथा अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा है । बार बार इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए उन्होंने 'मरकट' तथा 'सुआ' के उदाहरण दिये हैं—

अपुनवौ आपुन ही विसर्‌यौ ।
जैसे स्वान काच मंदिर में भ्रमि भ्रमि भूसि मर्‌यौ ।
मर्कट मूठि छाडि नहि दीनी घर घर द्वार फिर्‌यो ।
सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौनें जकर्‌यो ।

—सू० सा०, पृ० ४६

कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ इस बन्धन का कारण माया को माना गया है—

१. करौं यतन न भजौं तुमको कछुक मन उपजाइ ।
सूर हरि की प्रबल माया देत मोहि लुभाई ।

—सू० सा०, पृ० ८

२. माधव जू मन माया वश कीन्हो ।

—वही

जहाँ तक वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत का सम्बन्ध है अणुभाष्य में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि जीव मे अज्ञान आदि का आविर्भाव तथा गुणों का अभाव 'ईश्वरेच्छया' होता है। उसका कारण न जीव का अज्ञान है और न उसकी इच्छा—

तस्माद् ईश्वरेच्छया जीवस्य भगवद्धर्म तिरोभावः।
येन जीवभावः अतएव काममयः।

—अध्याय ३, पाद २, सूत्र ५

इस प्रकार सूरदास के 'अपुनपौ आपुन ही बिसर्यो' आदि उपर्युक्त कथन शुद्धाद्वैतवाद से सैद्धान्तिक भिन्नता उत्पन्न करते हैं। इन कथनों का साम्य वल्लभाचार्य के मत में तो नहीं मिलता, परन्तु नरसी मेहता के कुछ पद ऐसे अवश्य हैं जिनमें ब्रह्म से विमुख होने का दायित्व जीव को ही दिया गया है—

प्रौड पापे करी बुद्धि पाछी फरी परहरी थड शुं डाले वळग्यो।
ईश ने ईर्षा छे नहीं जीव पर आपणे अवगुणे रह्यो छे अलग्यो।

—पद २०

आगे कुछ पदों में नरसी ने यह भी निरूपित किया है कि जीवन के इस बन्धन का कारण कर्तृत्वाभिमान है जैसा कि गीता में मिलता है—

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥३:२७॥

इसी प्रकार नरसी ने भी लिखा है—

१. हु करु हु करुं अे ज अज्ञानता शकट नो भार जेम श्वान ताणे।

—पद २९

२. अनेक जुग वीत्या रे पथ चलता रे तोये अंतर रह्यो रे लगार।
प्रभु जी छे पासे रे, हरी न थी वेगळा रे आडडो रे पड्यो छे अहंकार।

यह मत सूरदास के मत से स्पष्टतया भिन्नता रखता है यद्यपि जीव की अज्ञानता इसमें भी है और उसमें भी। यह भिन्नता शुक, मर्कट तथा श्वान-शकट के न्याय से पूर्णतया प्रकट हो जाती है। जिस अज्ञान के कारण शुक अथवा मर्कट बद्ध रहता है उससे वह अज्ञान जिससे श्वान यह अनुभव करता है कि शकट उसी के बल से चल रहा है, अभिन्न नहीं है। एक स्थिति भय और राग से आच्छादित बुद्धि की निष्क्रियता से उत्पन्न होती है तथा दूसरी अहं की अतिशयता से युक्त बुद्धि की विकृति से। अविवेक तथा भ्रम दोनों ही स्थितियों मे रहता है। पहली दशा में मुक्ति की इच्छा निरन्तर रहती है

केवल उपाय ज्ञात नहीं होता दूसरी दशा में मुक्ति की इच्छा का अस्तित्व ही रहता। अहकार प्रतिपल उसका निषेध करता रहता है।

इसका परिणाम यह होता है कि सूर जब जीव के उद्‌बोधन के लिए कुछ है तो भ्रम निवारण करने अथवा समझने पर विशेष बल देते हैं और नरसी बार जीव को यही चेतावनी देते रहते हैं कि अहंकार उत्पन्न करने वाली समस्त व नाशवान् है। उदाहरणार्थ सूर लिखते हैं—

१. जब लौं सत स्वरूप नहिं सूझत।
२. सूरदास समुझे की यह गति मन ही मन मुसुकायो।

—सू. सा., पृ०

और नरसी अहकारी जीव की उपमा लम्बी गरदन वाले ऊँट से अथवा सम्पन्न हाथी से देते हैं—

> लाबी शी डोल ने काकोल चावतो ऊँट जाणी घणो भार लादे।
> आज अमृत जगे, हरखे हलवो भगे, वैकुठनाथ ने नव आराधे।
> पीठ अवाड़ी ने अकुश मार सही रेणु उडाडतो धरणी हुठो।
> थाज चुवा चदन आभ्रण अग धरी वेगे जाय छे तुं वेले बेठो।
>
> —पद

यही कारण है कि सूर सदैव जीव के हृदय को स्पर्श करके भक्ति की प्रेरणा दे पर नरसी कभी-कभी शकराचार्य के 'कोऽहं कस्त्वं को आयात.' आदि की तरह नि लिखित पक्तियाँ लिखकर उसकी बुद्धि को भी उद्‌बुद्ध करने का प्रयास करते हैं—

> नरसी—अेक तु अेक तुं अेम सौ को स्तवे कोण हु ते नहि को विचारे।
> कोण छुं क्या थकी आवीयो जग विषे जइश क्या छूटशे देह त्यारे।
>
> —पद

यह विभेद यद्यपि दोनों की रचनाओ में बहुत दूर तक प्राप्त होता है तथापि इसे आ न्तिक नहीं कहा जा सकता। सूरदास के ऐसे भी अनेक पद हैं जिनमें जीव को अह त्याग देने का उपदेश दिया गया है। उसके विचार को जगाकर कर्तृत्वाभिमान निरर्थक सिद्ध किया गया है—

१. अहंकार किये लागत पाप।
सूर स्याम भजि मिटे संताप।

२ करी गोपाल की सब होई ।
जो अपनो पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोई ।
साधन मंत्र तंत्र उद्यम बल सुख यह सब डारहु धोई ।
जो कछु लिखि राखी नंदनंदन मेटि सकै नहि कोई ।

—सू० सा०, पृ० २६

जीव के अहंकार का निषेध करते-करते नरसी भी ऐसे ही परिणाम पर पहुँचते हैं जहाँ जीव के कर्तृत्व का पूर्णतया निषेध हो जाता है—

जेहना भाग्य मा जे समे जे लख्युं तेहने ते समे ते ज पहोंचे ।

—पद २९

जीव के भव-बन्धन से निस्तार पानेके उपाय के विषय में सभी कृष्ण-भक्त कवि एक मत हैं । सभी ने कृष्ण भक्ति को जीव में उत्पन्न होने वाले मोह, अविवेक अज्ञान, अहंकार आदि का उपचार माना है । साधन अथवा भक्ति के स्वरूप पर आगे पृथक् रूप से विचार किया जायगा ।

जगत

जगत् का मिथ्यात्व शंकराचार्य के उद्घोष 'जगन्मिथ्या' के पश्चात् विकसित होने वाले विभिन्न दार्शनिक मतवादों के लिए एक अत्यन्त महत्व पूर्ण विषय बना रामानुज ने उसे अचित् के रूप में ग्रहण करके ब्रह्म की उपाधि मात्र माना । अन्य आचार्यों ने भी अपना-अपना मत व्यक्त किया किन्तु वल्लभाचार्य से पूर्व जगत् की सत्यता की पूर्ण प्रतिष्ठा किसी ने भी नहीं की । शुद्धाद्वैत में जगत् को शुद्ध ब्रह्म का अविकृत परिणाम माना गया, जिसकी ओर ब्रह्म के प्रसंग में पहले संकेत भी किया जा चुका है । यही नहीं जगत् और संसार में स्पष्टतया सत्यासत्य का भेद स्थापित किया गया है । जगत् को विद्या माया से तथा संसार को अविद्या माया से उत्पन्न माना गया है ।

फलत वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में जगत् और संसार के सम्बन्ध में इस प्रकार भेद परिलक्षित किया जाता है किन्तु अन्य सम्प्रदायों के कवियों में इस भेद का कहीं भी दर्शन नहीं होता । साधारणतया सभी ने जगत् और संसार को एक ही समझा है और उसकी निस्सारता, नाशवत्ता तथा मायामयता का अनेकानेक बार वर्णन किया है । राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास सिद्धान्त के रस फुटकर पदों में लिखते हैं—

एक पकरे सब जग छूट्यो ।
माया रचित प्रपंच कुटुम्ब की मोह जाल सब छूट्यो ।

—व्यास वाणी, उत्तरार्ध पृ० ५३१

हरिदास ने भी लिखा है—

> हरि को ऐसो ही सब खेल ।
> मृग तृष्णा जग व्यापि रह्यो है कहूँ बिजौरो न बेल ।
> धनमद जोवनमद राजमद ज्यो पछिन में डेल ।
> कह हरिदास यहै जिय जानो तीरथ को सो मेल ।

—नि० मा०, पृ० २०४

इसी प्रकार के विचार अन्य अनेक कवियो ने व्यक्त किये है। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो में सूरदास नददास आदि कवियो ने ससार के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह सब ऐसे ही विचारो से परिपूर्ण है—

> सूर—मिथ्या यह ससार और मिथ्या यह माया ।
> मिथ्या है यह देह कहो क्यो हरि बिसरामा ।

—सू० सा०, दशम् स्कध

> नददास—बहे जात ससार धार जिय फदे फदन ।

—नद०, पृ० १८४

इस प्रकार जगत् के सम्बन्ध में लोक प्रचलित जो मिथ्यात्व की धारणा थी वही ससार के प्रति इन उद्धरणो में है। अनेक स्थलो पर जगत् को उपर्युक्त कविया ने शुद्धाद्वैत मत के अनुकूल सत्य एव वास्तविक रूप में चित्रित किया है—

> सूर—ज्यो पानी ते होते बुदबुदा पुनि ता माहि समाही ।
> त्यों ही सब जग कुटुम्ब तुमहि ते पुनि तुम माहि बिलाही ।

—अष्टछाप और वल्लभ स०, पृ० ४४१

> नददास—१. ब्रह्म निरीह ज्योति अविकार ।
> सत्ता मात्र जगत आधार ।

—नद०, पृ० २११

> २ जै जै जै श्रीकृष्ण रूप गुण काज पियारा ।
> परमधाम जगधाम परम अभिराम उदारा ।

—नद०, पृ० १८३

गुजराती कवि नरसी मेहता ने जगत् के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये है, उनसे ज्ञात होता है कि वे सभवत जगत् को इसी प्रकार सत्य एव नित्य मानते थे जैसे वल्लभाचार्य के अनुयायी कवियो ने माना है, यद्यपि निम्नलिखित पक्तियाँ इसका विरोध उपस्थित करती है—

जागी ने जोऊ तो जगत दीसे नही,
ऊघ मा अटपटा भोग भासे।

—पद ४२

यहा 'जगत दीसे नही' और 'ऊघ मा अटपटा भोग भासे' यह दोनो अश जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध करते हैं परन्तु इसी पद में आगे 'पच महाभूत विषे ऊन्या' कह कर और कनक कुडल का उदाहरण देकर सिद्ध कर दिया गया है कि कवि वस्तुत अविकृत परिणामवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करता है और जगत् को ब्रह्म की तरह नित्य एव सत्य मानता है। इस भूमिका में 'जगत दीसे नही' का तात्पर्य यह होता है कि वह तत्वत ब्रह्म से भिन्न नही दिखायी देता है।

परन्तु जगत् तथा ससार का भेद कदाचित् उन्होने नही किया क्योकि जगत् का प्रयोग उन्होने उस ससार के पर्याय के रूप में भी किया है जिसे स्पष्टतया मायामोहमय तथा मिथ्या माना है—

१ खाड्या ससारना थोथा ठाला।

—पद २१

२ सूख ससारि मिथ्या करी मानजो।

—पद २९

३ हु ने महारु जक्त तेमां बूडो।

—पद ४७

अतिम पक्ति में जगत् को 'मेरा तेरा' की माया में डूबा हुआ कहा गया है जो वल्लभ के मतानुसार ससार की परिभाषा है। यहाँ अगर 'ससार तेमा बूडो' होता तो वह परिभाषा घटित होती।

प्रेमानन्द ने कृष्ण जन्म के समय वसुदेव से जो कृष्ण की स्तुति करायी है उसमें भी पचमहाभूत का आधार उन्ही को माना है—

पचमहाभूत तारे आधारे, नथीं तुज विना जोता विचारे।

—श्री०, पृ० २४०

किन्तु यह कथन भागवत से प्रभावित है अतएव कवि की स्वतन्त्र धारणा का पूर्ण परिचायक नही माना जा सकता। ऐसे कथनो में दार्शनिक विचार को व्यक्त करने की वह शक्ति नहीं होती जिसके आधार पर उसे कवि का ही विचार मान लिया जाय।

गुजराती के अन्य कवियो में जगत् के सम्बन्ध में कोई महत्वपूर्ण विचार प्राप्त नही होते।

माया

जगत् और ससार के भेद के साथ ही वल्लभाचार्य ने माया के भी दो भेद किये—एक विद्या तथा दूसरा अविद्या। विद्यामाया वह जो ब्रह्म की वशवर्तिनी एव शक्ति है तथा जिसके द्वारा ब्रह्म समस्त जगत् का निर्माण करता है और अविद्या-माया वह जो जीव को काम क्रोध लोभ मोह आदि के द्वारा वशीभूत करके उसे पथ-भ्रष्ट करती रहती है—

१. विद्याविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते।
ते जीवस्यैव नान्यस्य दु खित्व चाप्यनीशता। ३४

—त० दी० निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण

वल्लभ सम्प्रदाय के सूरदास, नददास ने भी माया को दोनों ही रूपों में चित्रित किया है। निम्नलिखित उद्धरण माया के उस स्वरूप को व्यक्त करते है जिसे विद्या माया कहा गया है—

सूरदास—बहुरि जब हरि की इच्छा होय।
देखें माया के दिसि जोय।
माया सब तबही उपजावें।
ब्रह्मा सो पुनि सृष्टि उपावें।

—सू० सा० पृ० ७६७

नददास—सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व प्रभाव प्रतिपाल प्रलयकारक आयुस बस।

—नंद०, पृ० १८३

गुजराती कवियों में नरसी मेहता ने भी एक पक्ति द्वारा माया के उक्त रूपो का सकेत किया है—

मोहन जीनी माया पासे अवर मायाजम फासडीया।

यह 'मोहन जीनी माया' पद स्पष्टतः सकेत करता है कि नरसी माया के एक ऐसे स्वरूप पर भी विश्वास करते है जो कृष्ण के वशीभूत है। इसके अतिरिक्त नरसी के काव्य में अन्यत्र कही इसकी व्याख्या प्राप्त नही होती अतएव यह ज्ञात नही होता कि वस्तुत इस माया के द्वारा नरसी का क्या अभिप्राय था। अविकृत परिणामवाद और जगत् सम्बन्धी उनके विचारो से अनुमानत. इसका कार्य सृष्टि का सृजन प्रलयादि हो सकता

है। 'अवर माया' अर्थात् दूसरी अथवा निम्नकोटि की माया जीव के कालपाश में बद्ध करने वाली कही गयी है।

प्रेमानन्द ने अपने दशमस्कंध में कृष्ण की गोवत्स हरण तथा रास आदि लीलाओ में माया को जो स्थान दिया है वह उस शक्ति विशेष के रूप में है जिसके द्वारा कृष्ण अनेक अलौकिक घटनाएँ घटित करते थे। सूरदास ने भी कृष्ण की बाल लीलाओ में उनकी इस शक्ति का परिचय दिया है।

यही नही त्रिगुणात्मिका प्रकृति वाली इस माया का वर्णन सूर ने पृथक रूप से उस गाय का रूपक देकर किया है जिसके सम्हालने की सामर्थ्य केवल गोपाल कृष्ण में ही है—

माधव जू नेकु हटकौ गाइ।

• • •

ढीठ निठुर न डरति काहू त्रिगुण ह्वै समुहाइ।
नारदादि शुकादि मुनिजन थके करत उपाइ।
ताहि कहु कैसे कृपानिधि सकत सूर चराइ।

—सू० सा०, पृ० ८

माया का जो दूसरा स्वरूप है जिसे अविद्या कहा गया है उसका भक्त कवियो ने विशेष रूप से चित्रण किया है। भक्ति ने कल्याण पथ में बाधक होने का प्रधान कारण उसे ही कहा गया है अत प्राय एक स्वर से सभी ने उसकी निन्दा की है। कभी स्वप्न से, कभी नर्तकी से, कभी मृगमरीचिका से कभी तमिस्रा रात्रि से उसकी तुलना की गयी है। उसका बाह्य स्वरूप आकर्षक तथा आन्तरिक रूप असत्य प्रतिपादित किया गया है उसकी सबसे बडी शक्ति यही है कि वह जीव को बलात् अपने पाश में जकड लेती है जिससे निस्तार पाना अत्यंत कठिन हो जाता है। केवल कृष्णाश्रय ही एक मात्र उपाय है। सूरदास के निम्नलिखित पद में इसी माया का वर्णन प्राप्त होता है—

विनती सुनो दीन की चित्त दै कैसे तव गुण गावै।
माया नटिनि लकुट कर लीन्हे कोटिक नाच नचावै।
दर दर लोभ लागि लै डोलति नाना स्वाग करावै।
तुमसो कपट करावति प्रभु जू मेरी बुद्धि भ्रमावै।
मन अभिलाप तरगनि करि करि मिथ्या निशा जमावै।
सोवत सपने मे ज्यो सम्पत्ति त्यो दिखाय बौरावै।

महा मोहनी मोह आतमा मन करि अपहि लगावै ।
ज्यों दूती परवधू भोरि कै लै परपुरुष दिखावै ।

—सू० सा० पृ० ६

सूर ने इस माया को भी कृष्ण की वशवर्तिनी तथा जगत को वश में माना है—

तुम्हारी माया महाबली जिन जग वश कीनो ।
कछु कुलधर्म न जानइ वाके रूप सकल जग राच्यो ।

—सू० सा०, पृ० ७

हरिव्यास देव, हरीराम व्यास, तथा हरिदास आदि अन्य सम्प्रदाय के कवियों ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—

हरिव्यास—माया त्रिगुन प्रपच पवन की अच न आवै तास ।

—नि० मा०, पृ० ६५

——१ माया रचित प्रपच कुटुम्बी मोह जाल सब छूट्यो ।

२ जीवत मरै न माया छूटै काल कर्म मुँह कूटै ।
पुत्र कलत्र सजन सुख देता पितर भूत सब लूटै ।
कबहु रक राजा कबहु हैं विर्ष विकार न छूटै ।
साधु न सूझै गुन नहि बूझै हरि जस रस नहि घूटै ।
व्यास आस घर घाले जग कौ दुख सागर नहि फूटै ।

श्री व्यास वाणी, पृ० ५३१

...दास—तुमरी माया बाजी पसारी विचित्र मोहै मुनि मुनि करके भूलै कोउ ।

—नि० ा०, पृ म० २०२

बिहारीदास—माया मोह प्रगह पर्‌यो मन कहैं जात सुधि फेरी ।

—वही, पृ० २४४

गुजराती कवियों में नरसी मेहता द्वारा वर्णित 'अवरमाया' का उल्लेख पीछे किया जा चुका है । उन्होंने अन्यत्र कई स्थलों पर माया को, जीव को बद्ध करने वाली विचित्र शक्ति के रूप में चित्रित किया है—

१ माया नी जाल मा मोह पामी रह्यो ।

—पद ३७

२ अवतरी पाश बंधायो मायातणे लपटी लालची लीधो फेरी ।
दिवसे चोदश भम्यो, रात निद्राविषे, स्वप्न मा सामरे मोहटी माया ।

—पद ४४

माया के आकर्षक रूप को देखकर प्रसन्न होने वाले जीव को उद्बोधन देते हुए नरसी मेहता उसकी तुलना स्वप्न से करते हैं—

कारमी माया जोई का रे हरखो ।
स्वप्न नी वार्ता में शुं रे राची रह्यो ।

—पद ३७

माया को त्याग कर ज्ञानी होने का उपदेश भी नरसी ने दिया जिससे ज्ञात होता है वे माया को अज्ञान का पर्याप्त अथवा आवरण समझते थे—

माटे तमो माया तजी थाओ ने ज्ञानी ।

—पद ६४

अन्य गुजराती कवियोने माया के विषय में इस प्रकार स्पष्ट रूप से तो कुछ नही लिखा हैं परन्तु अन्य आधारो को देखते हुए उनका मत माया के इस द्वितीय रूप को ही स्वीकार करता प्रतीत होता हैं ।

मोक्ष

• जीव की जन्म मृत्यु जरा व्याधि से छूटकर अखड आनन्द प्राप्त करने की दशा को मोक्ष कहा गया हैं । इस स्थिति विशेष की सत्ता को प्राय सभी प्रमुख कवियो ने स्वीकार किया हैं । साम्प्रदायिक दर्शनो ने मोक्ष की स्थिति के अनेकानेक विभेद किये परन्तु सामान्यत व्रजभाषा तथा गुजराती दोनो भाषाओ के कवियों ने चार प्रकार की मुक्ति का निर्देश किया हैं—

सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य ।

सूर—सेवत सगुण स्यांम सुन्दर को मुक्ति लही हम चारी ।

—सू० सा० वें० प्रे०, पृ० ५४४

हरिराम व्यास—लोक वेद कर्म धर्म छाडि मुकुति चारि ।

व्यासवाणी, पृ० २९१

नरसी—१ चतुरधा मुक्ति छैं ।

—पद २२

२ चतुरधा मुक्ति तेओ न मागे ।

—पद २४

मोक्ष अथवा मुक्ति के सम्बन्ध में कवियों के दो वर्ग हैं जिनके विचार एक दूसरे से विरुद्ध हैं। एक वर्ग के मत से मोक्ष की स्थिति भक्ति से श्रेष्ठ नहीं है अतएव उस वर्ग के कवियों ने अपने काव्य में विभिन्न स्थलों पर अनेक प्रकार से मुक्ति की उपेक्षा एवं तिरस्कार किया है। उदाहरणार्थ गुजराती कवि नरसी की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

१ चतुरधा मुक्ति छे जूजवी जुक्तिनी ताहरा ते तेहने नव राचे ।
वेहु करजोडी ने नरसैंयो वीनवे जन्मोजनम तारी भक्ति जांचे ।

—पद २२

२ धन वृंदावन धन अे लीला धन अे व्रज ना वासी रे ।
अष्टमहासिद्धि आगणिया ऊभी, मुक्ति छे प्रेम नी दासी रे ।

—पद १

३ हरिना जन तो मुक्ति न मागे
मागे जन्मो जन्म अवतार ।

—पद १

परन्तु इस प्रकार मोक्ष की उपेक्षा करते हुए भी नरसी ने अपने आराध्य कृष्ण को मोक्ष का दाता माना है तथा यशोदा को मुक्ति का प्रतीक भी घोषित किया है—

१ नरसैंया चा स्वामी नर मोक्षदाता सदा
श्रीकृष्ण जी समो देवनोय ।

—पद ४८

२ मुक्ति जशोमती ।

—पद ३५

ब्रजभाषा के भी कई कवियों ने मोक्ष की भक्ति के समक्ष उपेक्षा की है—

ध्रुवदास—१ धर्म मोक्ष कोउ पूँछत नाही सिद्धं कौन विचारी ।

—जीवदिसा ३३

२ रसिक गनत नहि मुकुति कौ और लोक केहि माहि ।

—भजनसत

हरिराम व्यास—नाके वल गर्व भरे रसिक व्यास से न डरे
लोक वेद कर्म धर्म छौडि मुकुति चारि ।

—व्यासवाणी पृ०, २४९

सूरदास ने भी कहीं कही चार पदार्थों—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को कृष्ण के भजन की तुलना में हीन कहा है—

जो सुख होत गोपालहिं गाये ।
दिये लेत नहिं चार पदारथ चरण कमल चित लाये ।

—सू० सा०, पृ० ४३

सूरसागर के तृतीय स्कध में एक स्थल पर भक्ति के प्रकार-विशेष को जिसे सुधाभक्ति कहा गया है, मोक्ष का इच्छुक बताया गया है साथ ही मुक्ति से अलिप्त भी—

सुधाभक्ति मोक्ष को चाहै
मुक्तिहु को नाही अवगाहै ।

—सू० सा०, पृ० ५२

यहाँ मुक्ति और मोक्ष में अतर किया गया प्रतीत होता है । मोक्ष मुक्ति से श्रेष्ठ माना गया है ।

सूरदास वस्तुतः दूसरे वर्ग के कवियों में आते हैं जिन्होने मोक्ष प्राप्ति की बराबर कामना की । उनके अनेक पदों में जन्म मरण के चक्र से अथवा भव व्याधि से विस्तार पाने की प्रार्थना की गयी है—

१. निधरक रहौं सूर के स्वामी जन्म न जाऊँ फेरि ।

—सू० सा०, पृ० ८

२. तुम मोसे अपराधी माधव कितेक मुक्ति पठाये हो ।

—वही, पृ० ३

३. सूरदास भगवंत भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ।

—वही, पृ० ५

गुजराती के कवियों ने भी भागवत का तथा उसमें वर्णित कृष्ण कथा के श्रवण मनन का ध्येय मुक्ति ही माना है ।

प्रेमानन्द—अेथी श्री भागवत, गंगा प्रकट्यां जेमा काम मोक्ष ने अर्थ ॥७॥

भालण—लीला ते श्रीकृष्ण जी प्रेमे बोली अेह,
भाव कमावे साभले गर्भवास नावे तेह ।

—दशम०, पृ० ४३७

जिसे सुनकर परीक्षित मुक्त हो गए ऐसी भागवत का चरम लक्ष्य मोक्ष ही है यह धारणा इन्ही कवियो में नही वरन् एक स्थल पर नरसी मेहता में भी प्राप्त होती है—

प्रेम नी वात परीक्षित प्रीछ्यो नही शुक जीओ समजी रस सताड्यो।
ज्ञान वैराग्य करि ग्रथ पूरो कर्यो मुक्ति नो मार्ग सूधो देखाड्यो।

—पद ७४

यही वे अपन पदों में स्पष्टतया मुक्त होने तथा पुन जन्म न ग्रहण करने की याचना करते है जो उनके पूर्वोक्त मुक्ति की उपेक्षा व्यक्त करने वाले पदो के ठीक विरुद्ध पडता है—

१. रे भणे नरसैयो अटलुं मागुं पुनरपि नहि अवतार रे।

—पद २

२. भणे नरसैयो तमे प्रभु भजोलो आवागमन नो फेरो टले।

—पद १२

३. भणे नरसैयो जेने कृष्ण रस चाखियो, पुनरपि मात ने गर्भ नावे।

—पद ६६

कृष्ण भक्त कवियो ने सायुज्य तथा सारूप्य की अपेक्षा सामीप्य तथा सालोक्य मुक्ति की लालसा विशेष रूप से प्रकट की है। सूरदास ने अपने अनेक पदो में एक चिरन्तन आनन्दमय अतीन्द्रिय लोक मे चलने की कामना व्यक्त की है। उदाहरणार्थ निम्न पक्तियो से प्रारम्भ होने वाले पद लिये जा सकते है—

१. भृगी री भज चरण कमल पद जह नहि निशिको त्रास।

—सू० सा०, पृ० ३६

२ चकई री चलि चरण सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।

—वही०, पृ० ३५

गुजराती कवि भालण को भी ऐसी ही मुक्ति अभीष्ट है। अपने दशमस्कध की समाप्ति करते हुए वे लिखते है—

वैकुठ पद तो तेह पाये, हरिचरणे थयो वास।
बेहु कर जोडी ने कहे भालण हरि नो दास।

उक्त उद्धरणों में चरण शब्द से आराध्य की समीपता की भी व्यंजना होती है अतः सालोक्य और सामीप्य दोनों प्रकार की मुक्तियाँ एक साथ ही इन कवियों को अभिप्रेत जान पड़ती हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों का दृढ विश्वास है कि श्रीकृष्ण अपने प्रिय भक्तों पर जब अनुग्रह करते हैं तो उन्हें अपने समीप गोलोक में ही स्थान देते हैं जहाँ से उन भक्तों को रास दर्शन का सुख निरंतर प्राप्त होता रहता है—

१. जिनके यह अनन्य उपास।
तिनको प्रिया लाल नित हित करि राखैं अपने पास।
माया निगुण प्रपंच पवन की अंच न आवै तास।
श्री हरिप्रिया निपट अनुवर्तित है निरखैं सुख रास।
—नि० मा०, पृ० ६५०

२. यह अनुक्रम करि जे अनुसरही, शनै शनै जगते निरवरही।
परमधाम परिकर मधि वसही, श्री हरिप्रिया हिनू सग लसही।
—वही, पृ० ६७०

गुजराती कवि नरसी मेहता ने रासवर्णन के प्रसग में अपने गोलोक में होने का वर्णन किया है जो इसी प्रकार की धारणा को व्यक्त करता है। वल्लभाचार्य ने 'शनै शनै जगते निरवरही' वाली मुक्ति को 'क्रम मुक्ति' का नाम दिया है और गोलोक में स्थान पाने वाली मुक्ति को प्रवेशात्मक मुक्ति माना है,। 'क्रम मुक्ति' के विरुद्ध उन्होंने 'सद्य.मुक्ति' को स्वीकार किया जो जीव को भगवत्कृपा से तत्काल विना प्रारब्ध कर्म भोगे ही प्राप्त होती है, और प्रवेशात्मक मुक्ति के साथ लयात्मक मुक्ति का निरूपण किया जो केवल ज्ञानियों को ही प्राप्त होती है और जिसमें जीव ब्रह्म में पूर्णतया विलीन हो जाता है। अष्टछाप के कवियों को प्रवेशात्मक मुक्ति ही अभीष्ट रही उसी को अनेक रूपों से व्यक्त किया है। कुछ कवियों ने कृष्ण के लीलाधाम ब्रज में जड़ रूप से प्रवेश पाने तक की कामना की है। सूर का 'करहु मोहि ब्रज रेणु' रसखान का 'पाहन हौं तो वही गिरि को....' तथा व्यास का 'ब्रज के लता पता मोहि कीजै' ये सब इसी भाव को प्रकट करते हैं।

भक्ति

साधना एवं उपासना के अन्य मार्गों की अपेक्षा भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता तथा महत्ता का प्रतिपादन वैष्णव चिंताधारा का मूल स्वर रहा है.। गीता, भागवत, नारद भक्ति सूत्र, नारद पंचरात्र तथा शांडिल्य भक्ति सूत्र आदि ग्रंथों द्वारा भक्ति को कर्म तथा योग से भी श्रेष्ठतर स्थान दिया गया है जिसके परिणाम

समस्त वैष्णव काव्य भक्ति की व्यापक आधार भूमि पर विकसित हुआ। गुजराती, व्रजभाषा कृष्ण-काव्य भी इसी सत्य का समर्थन करता है। प्राय सभी प्रधान कवियो ने भक्ति के महत्व को स्वीकार ही नही किया अपितु स्पष्ट और सशक्त शब्दो में उसका व्याख्यान एव गुणगान भी किया है। व्रजभाषा के कवि अधिकतर किसी न किसी भक्ति सम्प्रदाय मे दीक्षित मिलते हैं अतएव उनके लिए स्वाभाविक है कि वे भक्ति के यशगान में काव्य रचे परन्तु गुजराती के कवियो ने भी, जिनका सम्बन्ध किसी भक्ति सम्प्रदाय से स्पष्टतया परिलक्षित नही होता, भागवत आदि के आधार पर भक्ति की प्रशसा में तथा उसके महत्व को व्यक्त करते हुए पर्याप्त परिमाण में काव्य रचना की है जिसकी ओर वस्तु विश्लेषण के प्रसग में निर्देश किया जा चुका है।

भक्ति की महिमा—नरसी मेहता ने भक्ति को ऐसा श्रेष्ठ पदार्थ माना है जो केवल भूतल पर ही उपलब्ध नही होती वरन् ब्रह्म लोक में भी उसकी प्राप्ति नही होती—

भूतल भक्ति पदारथ मोटुं, ब्रह्मलोक मा नाही रे।

—पद १

उनके मत में भक्ति के अभाव में सब कुछ निस्सार है अतएव भक्त को सब प्रपच तज कर केवल भक्ति न भूलना ही अभीष्ट है—

परपच परिहरो सार हृदिअे धरो उचरो हरि मुखें अचल वाणी।
नरसैंया हरितणी भक्ति भूलीश मा भक्ति बिना वीजुं धूल धाणी।

—पद २०

भक्ति के बिना जो प्राणी जीवित रहते है वे मानव कहलाने के भी अधिकारी नही है—

भक्ति बिना जे जन जीवे ते केम कहीये मानव देह रे।

—पद ५५

इसी बात को नरसी फिर भिन्न प्रकार से कहते है कि वह जीव जीव नहीं है जिसने हरि की भक्ति नही की। वह अपराधी है, शववत् पृथ्वी का भार है तथा जीवित ही नरक भोगी है—

जे कृष्ण हरिनी भक्ति न साधी ते अपराधी जीव वधा रे।
भूतल भार भरे शव सरखा जीवतडा नर नरक वस्या रे।

—पद ६३

नरसी के अनुसार भक्ति में इतनी सामर्थ्य है कि वह भगवान को भी अपने वश में कर लेती है तथा भगवान् को भक्ति के ही कारण देह तक धारण करनी पड़ती है—

भक्ति कारण जो ने भूधरे देह धरी ।

....

नरसैंयां चा स्वामि सवल वश भक्ति ने अवर उपाय नही देह त्यागे ।

—पद ३७

प्रेमानन्द ने भी भजन विना मनुष्य जन्म को निरर्थक स्वीकार किया है—

मनुष्य देह देवने दुर्लभ, को पुण्ये प्राप्ति थाय ।
जे थी परमपद ने पाये प्राणी ते, भजन विना अेले जाय ॥ ९ ॥

—श्रीमद्० भा० २३३

मथुरा लीला के रचयिता केशवदास वैष्णव भक्ति रस को साक्षात् भगवान का स्वरूप समझते हैं—

योग शृंगार अध्यात्म ज्ञान । केवल भक्ति रस भगवा ।

भक्ति के महत्व को व्यक्त करने के लिए गुजराती कवियों ने उसका तादात्म्य राधा से कर दिया । उनके अनुसार राधा ही भक्ति का स्वरूप है जिससे प्रकारान्तर से यह प्रतिपादित होता है कि कृष्ण के लिए जिस प्रकार राधा अभिन्न एवं प्रिय है उसी प्रकार भक्ति भी । भक्ति के महत्व का प्रतिपादन करने वाले उक्त तीनों कवियों ने भक्ति को राधा रूप में मूर्त घोषित किया है—

नरसी—भक्ति ते राधिका

—पद २५

प्रेमानन्द—गोपी ऋचा राधा भक्ति

श्रीभा० पृ० २३४

केशवदास—भक्ति स्वरूप ते राधिका साक्षात् अे अवतार ।

—मथुरालीला, कडवा ८

व्रजभाषा के कवियों ने राधा को भक्ति तो नही कहा परन्तु उसकी महत्ता को अपने काव्य में बराबर व्यक्त किया है । किसी भी वस्तु की श्रेष्ठता का निरूपण दो रूपों में होता है । एक तो उसके महत्व एवं शक्ति का वर्णन करके और उसमें निरत प्राणियों की प्रशसा करके, दूसरे अन्य वस्तुओ की निस्सारता दिखाकर तथा उससे विरत प्राणियो की निन्दा करके । गुजराती कवियों ने दूसरे प्रकार से भक्ति

की महत्ता कम प्रदर्शित की है। केवल नरसी में ही वैसे कथन मिलते हैं परन्तु व्रजभाषा के कवियों ने दोनों ही प्रकार से भक्ति की महिमा का गायन किया है।

सूरदास मानते हैं कि जीव के अन्य धर्म क्षणिक हैं, मात्र भक्ति ही ऐसी है जो युग युग तक यशस्विनी बनी रहती है तथा भक्ति से ही भगवत की प्राप्ति होती है—

१ हरि की भक्ति बिरद है युग युग आन धर्म दिन चारि।

—सू० सा०, पृ० ४४

२ भक्ति बिन भगवत दुर्लभ कहत निगम पुकारि।

—सू० सा०, पृ० ३७

साथ ही वे भक्तिहीनों को शूकर कूकर की तरह विषयी ठहराते हैं—

१ भजन बिनु कूकर सूकर जैसो।

—सू० सा०, पृ० ४५

उनकी दृष्टि में अभक्त प्रेत तथा नारकी हैं—

१ भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत।

—सू० सा०, पृ० ४५

२ बिनु हरि भक्ति नरक में परै।

—सू० सा०, पृ० ५५

हितहरिवंश मनुष्य शरीर की सार्थकता भक्ति से ही मानते हैं—

मानुष कौ तन पाई भजौ रघुनाथ कों।

—श्री हित० स्फुट वाणी जी, पृ० १

उनके मत से कृष्ण की भक्ति के आगे ग्रहों की गति अर्थात् भाग्य रेखा का भी कोई महत्व नहीं है—

जो पै कृष्ण चरण मन अर्पित तो करिहै कहा नव ग्रह रंक।

—वही, पृ० १

हितहरिवंश के शिष्य दामोदरदास ने अपनी वाणी में अन्य सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ स्वीकार किया है—

साधन सकल कहे अविरुद्ध। वेद पुरान सु आगम शुद्ध।
बुद्धि विवेक जे जानहीं दास। समुझौं सबनि सुभक्ति उजास।

—श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ४९

ध्रुवदास के मत से महासुख स्वरूपा कृष्ण भक्ति से वंचित जीव की दशा महामूढ जैसी है—

कृष्ण भक्ति सौं कबहूँ न राच्यौ ।
महामूढ बड सुख ते वाच्यौ।

—जीवदसा

हरिराम व्यास ने भक्ति को भवसागर से पार जाने का एकमात्र उपाय कहा है तथा भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओ को असत्य माना है—

१ भव तरिबे को एक उपाउ ।

—व्यास वाणी पृ० ९६

२ साची भक्ति और सब झूठी ।

—वही, पृ० ९७

व्यास जी का दृढ विश्वास था कि यदि भक्ति की व्यापक लोकप्रियता न होती तो धर्म विद्या आदि सभी कुछ नष्ट हो जाता—

जो पै सबहि न भक्ति सुहाती ।
तौ विद्या विधि वरन धर्म की जाति रसातल जाती ।

—वही, पृ० १२७

गौडीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट अपने एक पद में भक्ति को कलिकाल तारिनी, मगल विधायिनी जैसे अनेकानेक विशेषणो से विभूषित करते हैं—

अघसहारिनि अधम उधारिनि, कलिकाल तारिनी मधुमथन गुनकथा ।
मगल विधायिनी प्रेम रस दायिनी, भक्ति अनपायनी होइ जिय सर्वथा ।|

—वाणी ग० भट्ट, पृ० १३ १४

निम्बार्क मतानुवर्ती श्रीभट्ट जीव के जन्म जन्मान्तर के दुखो का मूल कारण उसका गोविंद से विमुख होना अर्थात् भक्तिहीन होना स्वीकार करते हैं तथा भक्ति से अभयपद प्राप्त होना एव यम त्रास से मुक्ति पाना सभव समझते है—

जे नर विमुख भये गोविंद सो जनम अनेक महादुख पायो ।|
श्रीभट के प्रभु दियो अभय पद जम डरप्यो जब दास कहायो ।

—नि० मा० पृ० ११ ।

इसी प्रकार स्वामी हरिदास भी भयानक ससार-समुद्र का सतरण करने हेतु जीव के लिए श्रीकृष्ण के चरणो का आश्रय ही समर्थ आधार मानते हैं—

कहि श्री हरिदास तेई जीव पार भये जे गहि रहे चरन आनद नदसि ।

—नि० मा०, पृ० २०३

इस प्रकार सभी कवियो ने अपने अपने ढग से भक्ति के माहात्म्य का निरूपण किया है। मुक्ति की अपेक्षा बहुतो ने भक्ति को ही श्रेष्ठ माना है जिसका परिचय मोक्ष के प्रसग में दिया गया है। उससे स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि गुजराती तथा व्रज दोनो के ही कवियो ने भक्ति के आगे मुक्ति का तिरस्कार करने की भावना व्यक्त की है जो भक्ति की महिमा का चरम विन्दु है। बहुत से कवियो ने भक्ति की प्रशसा श्रेष्ठतम साधन के रूप में की है पर कुछ ऐसे भी है जिन्होने उसे भगवत का स्वरूप बता कर साध्य की कोटि में स्थापित करने का प्रयास किया है।

भक्ति के प्रकार—भागवत के सप्तम स्कध में नवधा अथवा नवलक्षणा भक्ति का निरूपण किया गया है—

> **श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।**
> **अर्चन वदन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्।**
>
> —अ० ५ श्लो० २३

इन नव लक्षणो में से प्रथम तीन का—नाम से, दूसरे तीन का—रूप से तथा अन्तिम तीन का—भाव से सम्बन्ध है। वल्लभाचार्य ने इन सभी लक्षणो को साधन का प्रकार माना है जिसके द्वारा दशवी प्रेम रूपा भक्ति उत्पन्न होती है[1]। श्री हरिभक्तिरसामृत-सिन्धु के रचयिता रूप गोस्वामी ने भी भक्ति के 'वैधी' तथा 'रागानुगा' दो भद स्वीकार किये है[2]। भक्ति के प्राचीन सिद्धान्त ग्रथो में जो लक्षण मिलते है उन सभी में प्रम अथवा अनुरक्ति के शुद्ध तथा परम रूप पर बल दिया गया है। यथा—

१ सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा ॥ २ ॥
—नारद भक्तिसूत्र

२ माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक स्नहो भक्तिरिति।
—नारद पचरात्र

३ सा परानुरक्तिरीश्वरे ॥ २ ॥
—शाडिल्य भक्ति सूत्र

इस प्रकार भक्ति के एक ऐसे रूप की स्थिति बराबर मानी गयी जो नवधा भक्ति के से इतर थी और श्रेष्ठतर भी।

गुजराती और व्रजभाषा के प्राय सभी प्रमुख भक्त कवियो ने भक्ति के इसी प्रकार को मान्यता दी है। विभिन्न कवियो ने इसे विभिन्न नामो से भूषित किया है।

नरसी मेहता ने नवधा के अनुकरण पर इस रागानुगा भक्ति को 'दशधा' नाम दिया है। साथ ही उन्होंने अपने आराध्य की प्राप्ति के लिए नवधा भक्ति को अशक्त भी बताया है। उनका आराध्य जो सत्य है—अनंत है, दृष्टि में नहीं आता है और वाणी से परे है, केवल दशधा के ही माध्यम से प्रकट होता है—

दृष्टे न आवे निगम जगावे वाणी रहित विचारो रे।
साथ अनंत ज जेहने कहीओ ते नवधा थी न्यारो रे।
नवधा मां तो नही नरखेडो दशधा मा देखाशे रे।
अचवो रस छे जेहेनी पासे, ते प्रेमी जन नें पाशे रे।

—पद ५७

अष्टछापी कवि परमानन्ददास ने भी एक पद में नवधा से दशधा भक्ति को श्रेष्ठतर प्रतिपादित किया है—

. ताते दसधा भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चली।
श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि कीर्तन करि शुकदेव।
सुमिरन करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी पदसेव।
प्रथु अरचन, सुफल्क सुत बंदन दासभाव हनुमंत।
सखाभाव अर्जुन बस कीन्हे श्री हरि श्री भगवत।
वलि आत्मसमर्पण करि हरि राखै अपने पास।
अखिल प्रेम भयो गोपिन को वलि परमानददास।

सूरसागरसारावली में इसे प्रेम लक्षणा कहा गया है—

श्रवण कीर्तन स्मरण पाद रत अरचन बंदन दास।
सख्य और आत्मनिवेदन प्रेम लक्षणा जास ॥ ११६ ॥

सूरसागर में इसी रागानुगा भक्ति को 'सुधाभक्ति' तथा 'प्रेमभक्ति' की सज्ञा दी गयी है। सुधाभक्ति का स्थान तामसी, राजसी तथा सात्विकी भक्ति के ऊपर माना गया है और इस प्रकार भक्ति के प्रकारों का एक नवीन वर्गीकरण प्राप्त होता है—

भक्ति एक पुनि बहु विधि होई, ज्यों जल रंग मिलि रंग सुहोई।
माता भक्ति चारि परकार, सत रज तम गुण सुधा सार।
भक्ति सात्विकी चाहति मुक्त, रजोगुणी धन कुटुंब अनुरक्त।
तमोगुणी चाहे या भाई, मम वैरी क्यों ही मर जाई।

सुधा भक्ति मोक्ष को चाहे, मुक्ति हू को नाही अवगाहे ।
—सू० सा० तृतीय स्कध, पृ० ५२

यह वर्गीकरण भी नवधा की तरह भागवत पर आधारित है परन्तु भागवत में उसे निर्गुण भक्ति कहा गया है जिसे सूर ने सुधा भक्ति कहा है—

लक्षण भक्ति योगस्य निर्गुणस्यह् युदाहृतम् ।
अहैतुक्य व्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे ।।१२
—भागवत, तृतीय स्कध, अध्याय २९

प्रेमभक्ति नाम सूर ने और नददास दोनो दिया है साथ ही गुजराती कवि नरसी और भालण ने भी इसका प्रयोग किया है—

सूर—१ प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई, नाथ कृपा करि दीजै सोई ।
—सू० सा० पृ० ७५८

२ प्रेमभक्ति बिनु कृपा न होइ। सर्वशास्त्र में देखे जोइ ।
—सू० सा०

नददास—जो यह लीला गावै चित दैसुनै सुनावै ।
प्रेमाभक्ति सो पावै अरु सबके जिय भावै ।
—नद० पृ० १८२

नरसी—प्रेमभक्ति मा भग पडावै अज्ञान आगल लावे रे ।
—पद ५४

भालण—१ प्रेमभक्ति ते कही न जाये ।
जीहवा अेक मुह माय जी ।
२. सनकादिक जाणे नहिं प्रेमभक्ति निरधार जी ।
—दशम स्कध, पृ० २२७

सूरदास द्वारा दी हुई पूर्व परिभाषा से यदि इस प्रेमभक्ति की तुलना की जाय तो मुक्ति की प्राप्ति का लक्ष्य रखने के कारण यह सात्विकी भक्ति ठहरती है परन्तु नददास का मन्तव्य कदाचित् इससे भिन है । उनकी प्रेमभक्ति का अर्थ विशुद्ध रागानुगा भक्ति से ही है । नददास ने सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार भक्ति का एक रूप 'पुष्टि भक्ति' भी माना है जो उनके एक पद से प्रकट होता है—

धर्मादिक द्वारे प्रतिहार, पुष्टि भक्ति कौ अंगीकार।

—नंद. पृ० ३४२

किन्तु यहाँ उनका मन्तव्य पूर्णतया स्पष्ट नही हो पाया है। 'प्रेमभक्ति' तथा 'पुष्टि भक्ति' को उन्होंने पर्याप्त माना अथवा वे इन दोनों में कोई भेद समझते थे, यह उनके काव्य से स्पष्ट नही होता।

'प्रेमभक्ति' का संकेत सूर और नंददास में ही नही मिलता गौडीय सम्प्रदाय के कवि माधवदास ने भी मानमाधुरी की फलश्रुति में इसका उल्लेख किया है—

मानमाधुरी जो सुने, होय सुबुद्धि प्रकास।
प्रेमभक्ति पावै विमल, अरु वृन्दावन वास ॥४०॥

—श्री मानमाधुरी, पृ० ८३

अगले दोहे में कवि ने इसी अर्थ में 'रागमार्ग' का व्यवहार किया है जिससे ज्ञात होता है कि माधवदास की प्रेमभक्ति वस्तुत. रागात्मिका भक्ति का ही दूसरा नाम है—

मानमाधुरी जो पढ़ै सुनै सरस चितलाय।
राग मार्ग मार्ग में चित रहै राधाकृष्ण सहाय ॥४१॥

—वही

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भी प्रेम की श्रेष्ठता का निरूपण अनेक प्रकार से किया है। वे भजन के समस्त रूपों से प्रेम भजन को श्रेष्ठ कहते हैं—

औरौ भजन आहि बहुतेरे।
ते सब प्रेम भजन के चेरे ॥१५१॥

—नेह मंजरी

एक दूसरे स्थल पर वे नरसी तथा परमानन्ददास की तरह ही नवधा भक्ति की तुलना में प्रेम को ही उच्च स्थान देते हैं—

महा माधुरी प्रेम निज आवै जिहि उर माहि।
नवधा हूँ तिहि रुचति नहि नेम सबै मिटि जाहि ॥१५॥

—भजन कुडलिया

'सिद्धान्त विचार' नामक रचना में इसी विचार को गद्य में ध्रुवदास ने स्पष्ट किया है—

'पहले स्थूल प्रेम ममुझे तब आगे चलै जैसे भागवत की बानी।
पहिले नवधा भक्ति करै तब प्रेमलछिना आवै।"

यहाँ स्पष्टतया 'प्रेम लक्षणा' शब्द का प्रयोग किया गया है । [illegible] को प्रयुक्त किया है जिसका उल्लेख हो चुका है । ध्रुवदास के सहसम्प्रदायी कवि हरिराम व्यास ने पूर्वोक्त सूर आदि की तरह प्रेमभक्ति का ही व्यवहार किया है:—

घर घर प्रेमभक्ति की महिमा व्यास सबै पहिचानी ।
—व्यास वाणी, पृ० २८

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि हरिव्यास ने भक्ति के इस विशिष्ट प्रकार को 'पराभक्ति' कहा है और राधा को 'पराभक्ति प्रदायिनी' की उपाधि दी है—

१. जयति जय राधा रसिकमनि मुकुट मनहरनी निये ।
परा‌भक्ति प्रदायिनी करि कृपा करुना निधि प्रिये ।
—नि० मा०, पृ० ३५

२. कर्म अरु ज्ञान करि के सदा दुर्लभ सुल्लभा परा भक्तिहि प्रकासी ।
—वही, पृ० ५९

उन्होंने इस पराभक्ति के परम पथ को 'नेम प्रेम' दोनों से श्रेष्ठतर माना है—

रहि गयो मारग उरै नेम अरु प्रेम को पर चल्यो परा को परम पर पथ ।
—वही, पृ० ६०

इस पराभक्ति की उपलब्धि के लिए हरिव्यास देव द्वादश लक्षण तथा दस पैंडो का विधान किया है । द्वादश लक्षणो में तो सामान्य नैतिक वातो का ही समावेश किया गया है परन्तु दस पैंडी मे भक्ति के विकास का अनुक्रम निर्धारित करने का प्रयास किया गया है, जो बहुत कुछ अस्पष्ट है । दस पैंडी वाला अश नीचे उद्धृत किया जाता है—

ये द्वादश लक्षण अवगाहैं । ते जन परा परम पद चाहैं ।
जाके दश पैंड़ी अति दृढ हैं । बिन अधिकार कौन तह चढिहैं ।
पहले रसिक जनन को सेवै । दूजी दया हृदय घरि लेवै ।
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है । चौथी कथा अमृत है सुनि है ।
पचमि पद पकज अनुरागै । पष्टी रूप अधिकता पागै ।
सप्तमि प्रेम हिये विरधावै । अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै ।
नौमी दृढता निश्चय गहिवै । दशमी रस की सरिता वहिवै ।
या अनुक्रम करि जै अनुसरही । शनै शनै जग ते निरवरही ।
—नि० मा० पृ० ६७

इसी सम्प्रदाय के कवि रूपरसिक का झुकाव वैधी भक्ति की ओर है जो उनके द्वारा वर्णित उन्चास बातों से प्रकट है—

ये उन्चास बात छिटकावैं।
सो हरिव्यासी जन मन भावैं।

—नि० मा०, पृ० १२०

परिभाषा की दृष्टि से पराभक्ति तथा रागानुगा भक्ति में मौलिक अंतर है। भक्ति के मूलतः दो भेद माने गये हैं परा तथा गौणी। परा भक्ति सिद्ध दशा की मानी गयी है और गौणी भक्ति साधन दशा की। रागानुगा गौणी भक्ति का ही उपभेद है। इस प्रकार शब्द के आधार पर कहा जा सकता है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में साध्य दशा की भक्ति मान्य है तथा अन्य सम्प्रदायो में साधन दशा की। परन्तु वस्तुतः ऐसा कोई भेद परिलक्षित नही होता। नरसी से लेकर हरिव्यास देव तक उक्त सभी कवियों का अभिप्राय भक्ति के एक ऐसे स्वरूप से है जो वैधी के विरुद्ध समस्त बन्धनो से मुक्त विशुद्ध प्रेम का द्योतक है। उसीके लिए सबने अपनी अपनी रुचि एवं परम्परा के अनुसार नामों का प्रयोग किया है। भेद वस्तुगत न होकर नामगत ही प्रतीत होता है। नरसी के अतिरिक्त अन्य गुजराती कवियो का झुकाव वैधी भक्ति की ओर अधिक लगता है यद्यपि उनके काव्य में भक्ति के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा गया है।

भक्ति के मुख्य भाव—भक्ति का मूल आधार भाव तत्व माना गया है। भावों की कोई सीमा नही निर्धारित की जा सकती अतएव भक्त और भजनीय के बीच के सम्बन्धों को भी सीमित नही किया जा सकता। फिर भी जिस प्रकार संसार में मानव प्रेम के चार मुख्य रूप, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य मिलते हैं उसी प्रकार भक्ति में भी इन्ही को मुख्य भावो के रूप में स्वीकार किया गया है। दास्य सख्य का समावेश नवधा भक्ति में 'दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं' कह कर सातवें तथा आठवें प्रकार के रूप में प्राप्त होता है। नारदभक्तिसूत्र में दी हुई एकादश आसक्तियों में उन चारों भावो को सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, दास्यासक्ति तथा कान्तासक्ति के रूप में ग्रहण किया है। शेष सात आसक्तियाँ इन मूल भावासक्तियों की सहगामिनी ही हैं विरोधिनी नही। श्री हरिभक्तिरसामृतसिन्धु में रागानुगा भक्ति के कामरूपा तथा सम्बन्धरूपा को भेद करके और पुनः सम्बन्धरूपा के अन्यान्य उपभेद करके उक्त सभी मुख्य भावों को भक्ति के अंतर्गत स्थापित किया गया है।

इन चारो भावों में अंतर्भाव का एक क्रम निर्धारित किया जाता है जिसके अनुसार प्रत्येक भाव में उसके पूर्ववर्ती भाव या भावों का अन्तर्भाव हो जाता है जैसे सख्य

में दास्य का, वात्सल्य में दास्य, सख्य दोनों का और माधुर्य म दास्य, सख्य, वात्सल्य तीनों का ।

किसी कवि के सम्बन्ध में आराध्य के प्रति उसके मुख्य भाव का निर्णय आत्म-निवेदनात्मक पदों के आधार पर सरलता से हो जाता किन्तु बहुत से ऐसे कवि है जिन्हो ने इस प्रकार की पद रचना न करके वर्णनात्मक काव्य रचे हैं । उनके मुख्य भाव का निर्णय काव्य के उन भावनात्मक स्थलो के आधार पर किया जा सकता है जिनमें कवि की वृत्ति अधिक केन्द्रित मिलती हो । गुजराती के अनेक कवियो के विषय में इस प्रकार की कठिनाई उपस्थित होती हैं । नरसी मेहता ने भक्ति विषयक बहुत से पद लिखे हैं अतएव उनके द्वारा स्वीकृत मुख्य भाव सरलता से ज्ञात हो जाता है । उन्होंने माधुर्य भाव को सर्वोपरि स्थान दिया है किन्तु उसके साथ दास्य भाव का भी सम्मिश्रण हैं । वे कृष्ण को स्वामी मान कर जन्म जन्म उनकी दासी बनने की कामना करते है । यथा—

जनम जनमनी हरी दासी थाशु, नरसैंया चा स्वामी नी लीला गाशु ।
—पद ५६

उनका आदर्श गोपी-भाव है जिसका आस्वादन वे सखी रूप में करते हैं—

१. प्रेम ने जोग तो व्रजतणी गोपीका अवर विरला कोई भक्त भोगी ।
—पद २४

२. जे रस व्रजतणी नार विलसे सदा सखी रूपे तें नरसैंये पीधो ।
—पद ४९

इसे सखी-भाव की संज्ञा भी दी जा सकती है । नरसी ने सेवक-भाव अथवा दास्य भाव को माधुर्य से पृथक स्वतंत्र रूप से भी स्वीकार किया है जिस से उनके मत के सम्बन्ध में सदेह नही रह जाता । उनका कहना है कि पुरुष अर्थात् कृष्ण की प्राप्ति मुक्ति पर्यन्त सत्य रूप में सेवक भाव रखने से होती है—

मुक्ति पर्यन्त तो प्राप्ति छे पुरुष ने, सत्य जो सेवक भाव राखे ।
—पद २३

पदान्त में छाप के साथ नरसी ने कृष्ण के लिए 'स्वामी' शब्द का बहुधा प्रयोग किया है जो सम्भवतः इसी भाव का द्योतक है । यों इस शब्द का प्रयोग पति के अर्थ में भी होता है । नरसी का दासत्व उनके माधुर्य भाव का सहायक ही था जैसा कहा जा चुका है क्योंकि रास आदि अनेक लीलाओं में यहाँ तक कि सभोग की स्थिति में भी

नरसी अपने को लीलादर्शक तथा सेवक अथवा दूत के रूप में प्रस्तुत बताते हैं। जहाँ दास्य भाव को ही प्रधान माना गया है वहाँ शृंगारिक लीलाओं का वर्णन वर्जित भी समझा गया है, पर नरसी में ऐसा नहीं है। ब्रजभाषा के कवियों में भी लगभग ऐसी ही स्थिति मिलती है।

सखी-भाव की प्रधानता के साथ दास्य भाव का संयोग निम्बार्क राधावल्लभीय तथा गौडीय सभी सम्प्रदायों के काव्य में प्राप्त होता है। इन सम्प्रदायों के कवियों ने राधा-कृष्ण के युगल रूप तथा उनकी कुंज-लीलाओं का ही वर्णन किया है जिन्हें देखने का अधिकार केवल राधा की सखियों अथवा सहचरियों को ही है। अतः भक्त इन लीलाओं का दर्शन मात्र सखी-भाव से कर सकता है। सखी-भाव का विकास इन कवियों ने इस प्रकार किया है कि वात्सल्य को छोड़कर शेष सभी भावों, दास्य, सख्य तथा माधुर्य का समावेश उसमें हो जाता है किन्तु अन्ततः प्रधानता माधुर्य को ही प्रदान की गयी है।

राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भजनाष्टक में श्रेष्ठता का एक क्रम निर्धारित किया है जिसमें मधुररस को सर्वोपरि स्थान दिया है और शान्तरस को निम्नतर—

ज्ञान सांत रस ते अधिक अद्भुत पदई दास।
सखा भाव ताते अधिक जिनमें प्रीति प्रकास ॥१॥
अद्भुत बाल चरित्र को जो जसुदा सुख लेत।
ताते अधिक किसोर रस ब्रज बनितन कौ हेत ॥२॥
सर्वोपरि है मधुर रस जुगल किसोर विलास।
ललितादिक सेवत तिनहि मिटत न कबहुं हुलास ॥३॥

मधुर रस के आस्वादन के लिए ध्रुवदास के मत से सखियों की शरण ग्रहण करना अनिवार्य है—

सखियन सरन भाव धरि आवै।
सो या रस के स्वादहि पावै ॥७॥

—रतिमंजरी

सखी-भाव और सेवा-भाव का संयोग निंबार्क सम्प्रदाय के कवि श्रीभट्ट की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है—

टारौं निजकर भंवर लै चारो नैननि नेह।
सोवत जुगलकिसोर जहं सेऊं चरन सुदेह ॥

—नि० मा०, पृ० १३

श्रीभट्ट के काव्य में इसी सेवा भाव ने उन्हें कृष्ण के चाकर तथा दास बनने की भावना दी—

१—चरनकमल की सेवा दीजे चेरो करि राखो घर जायो।
श्रीभट्ट के प्रभु दियो अभय पद जम डरप्यो जब दास कहायो ॥

—नि० मा०, पृ० ११

२—जनम जनम जिनके सदा हम चाकर निशि भोर।
त्रिभुवन पाषण सुधाकर ठाकुर जुगल किशोर।

—नि० मा०, पृ० १२

इसी प्रकार हरिव्यास देव भी अपनी मनोकामना पूर्ति के लिए राधाकृष्ण के महल व सेवा-टहल करने की इच्छा रखते हैं—

सुख दुख अवधि स्यामा स्याम।
नित्य धाम निवास अद्भुत अहर्निशा अभिराम।
महलनी निज टहल में तत्पर सदा सब जाम।
'श्री हरिप्रिया' अग अग सेवा पुजवही मनकाम ॥८२॥

—नि० मा०, पृ० ६८

अष्टछाप के कवियो ने सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार कृष्ण के बाल रूप की आराधना करते हुए वात्सल्य रस को पर्याप्त महत्व दिया है विशेषत सूर तथा परमानन्द दास ने। परन्तु वात्सल्य रस का काव्य लिखना और वात्सल्य भाव से भक्ति करना दो भिन्न वस्तुएँ हैं। जहाँ तक भक्ति के भाव का सम्बन्ध है अष्टछाप के कवियों ने सख्य तथा दास्य को सर्वाधिक महत्व दिया है। उनके लिए प्रयुक्त अष्टसखा शब्द उनके सख्य भाव पर विशेष बल देता है। माधुर्य रस के पद भी सूरदास आदि कवियों ने पर्याप्त सख्या में लिखे हैं परन्तु वात्सल्य भाव की तरह माधुर्य भाव की भक्ति भी इन कवियो में प्राप्त नही होती। कृष्ण को पुत्र अथवा पति मानने के स्थान पर कवियों ने सखा तथा स्वामी ही माना है।' यह अवश्य है कि आसक्तियों के सिद्धान्त से कभी यशोदा में कभी राधा में अपने भाव की स्थापना करके वात्सल्य अथवा माधुर्य भाव की अनुभूति इन कवियो ने प्राप्त की है। माधुर्य और वात्सल्य एक प्रकार से इस सम्प्रदाय में मान्य गोपी-भाव में ही समाविष्ट हो जाते हैं। गोपियो के तीन भेद किये गये हैं, गोपी, गोपागना और ब्रजागना। उन्हें क्रमश अनन्यपूर्वा, अन्यपूर्वा तथा सामान्या कहा गया है। पहली दो प्रकार की गोपियों में माधुर्य भाव तथा तीसरे प्रकार की गोपियो में वात्सल्य भाव की स्थापना की गयी है। सख्य तथा दास्य

कवियों के अपने भाव हे और माधुर्य तथा वात्सल्य इन गोपियों के आश्रित भाव। यों कृष्ण के प्रति सख्य भाव में भी आदर्श रूप में सुवल, सुदामा, उद्धव आदि को ग्रहण किया जा सकता है परन्तु अष्ट सखाओं में यह भावना रूढ हो गयी थी।

वात्सल्य भाव का काव्य व्रजभाषा के अन्य सम्प्रदाय के कवियो में उपलब्ध नहीं होता। गुजराती के भालण तथा प्रेमानन्द मे अवश्य इसकी उपलब्धि होती है। उक्त गुजराती कवियो ने वात्सल्य भाव के स्थलों को पर्याप्त तन्मयता से लिखा है जिससे पता लगता है कि उनकी वृत्ति इस ओर अधिक उन्मुख थी। यो माधुर्य रस का काव्य गुजराती कवियो ने भी वहुत रचा है किन्तु माधुर्य भाव केवल नरसी में प्राप्त होता है।

जहाँ तक दास्य भाव का सम्बन्ध है उसका सबसे अधिक प्रस्फुटित रूप सूर में मिलता है। अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी इस प्रकार के पद पर्याप्त संख्या में लिखे हैं। सूर के दास्य भाव में दैन्य का अश इतना अधिक है कि उनका स्थान अन्य कवियों से स्वत. पृथक हो जाता है। गुजराती कवि नरसी प्रेमानन्द तथा भालण आदि में दास्य भाव तो प्राप्त हो जाता है परन्तु उसमें दैन्य का इतना पुट नही मिलता। केशवदास कायस्थ ने भी अपनी कृति 'श्रीकृष्ण क्रीड़ा काव्य' की समाप्ति दैन्य-युक्त दास्य भाव की अभिव्यक्ति के साथ की है—

हरि सेवक ना सेवक होय, तेना दास दास जे कोय।
तेहना दास तणो हुं दास, अहनिशे वाछू अेह ज आश।
कृष्ण भक्ति जेति वारें करे, जाणी दीन सदा संभरे।

—पृ० ३१०

भक्ति और कर्मकांड—भक्ति में प्रेम भाव को ही सब कुछ मानने वाले भक्त कवियों ने कर्मकाड की उपेक्षा ही नही की अपितु निन्दा और तिरस्कार भी किया है। गुजराती कवि नरसी ने अपने काव्य में अत्यन्त सशक्त स्वर में कर्मकाड का विरोध किया है—

१—कर्म धर्मनी वात छे जेटली ते मुज ने नव भावे रे।

—पद ५

२—जो ने रीजाय ते कर्मकाड।

—पद ४५

यही नही नरसी पूजा स्नान, दान, जटा धारण, भस्म लेपन, जप, तप, तीर्थ, वेद, व्याकरण दर्शन के अध्ययन तथा वर्ण व्यवस्था आदि को पेट भरने का प्रपच मा

समझते हैं। उनके मत से तत्व-दर्शन तथा आत्माराम परब्रह्म के साक्षात्कार के अभाव में यह सभी निस्सार हैं—

शु थयु स्नान सेवा ने पूजा थकी, शु थयु घेर रहि दान दीधे।
शु थयु धरि जटा भस्म लेपन करे, शु थयु बाळलोचन कीधे।
शु थयु तप ने तिर्थ कीधा थकी, शु थयु माळ ग्रही नाम लीधे।
शु थयु तिलक ने तुलसी धार्या थकी, शु थयु गंगजल पान कीधे।
शु थयु वेद व्याकरण वाणी वदे, शु थयु रागने रग जाणे।
शु थयु खट दर्शन सेवा थकी, शु थयु वरणना भेद आणे।
अे छे परपच सहु पेट भरवा तणा, आतमाराम परिब्रह्म जोयो।
भणे नरसैंयो के तत्व दर्शन विना, रत्न चिंता मणि जन्म खोयो।

—पद ४३

सूरदास ने भी लगभग इतनी ही तीव्रता से कर्मकाड के उक्त स्वरूपों की निस्सारता प्रदर्शित की है यद्यपि उन्हें पेट भरने का साधन कहने का विद्रोहात्मक स्वर वे नही अपना सके—

जो लौं मनकामना न छूटे।
तौ कहा योग यज्ञ व्रत कीन्हे बिनु कन तुस को कूटे।
कहा सनान किये तीरथ के अग भसम जट जूटे।
कहा पुराणन पढ जु अठारह ऊर्ध्व धूम के घूटे।
जग सोनाकी सकल बडाई इहि ते कछू न खूटे।
करनी और कहै कछु औरै मन दसहू दिसि लूटे।
काम क्रोध मद लोभ शत्रु हैं जो इतनो सुनि छूटे।
सूरदास तबही तम नासै ज्ञान अग्नि झर फूटे।

—सू० सा०, पृ० ४५

सूरदास की यह 'ज्ञान अग्नि झर' ज्ञानमार्गीय अर्थ न देकर तत्व-दर्शन तथा उससे उपलब्ध आत्मप्रकाश का ही बोध कराती हैं। सूरसागर में ऐसे भी कथन एक आध स्थल पर मिल जाते हैं जिनमें भक्ति के लिए यम-नियमादि अष्टाग योग की स्पष्ट आवश्यकता बतायी गयी है—

१—भक्ति पथ को जो अनुसरै, सो अष्टाग योग को करै।
यम नियमासन प्राणायाम, करि अभ्यास होइ निष्काम।
प्रत्याहार धारणा ध्यान, करै जु छाडि वासना आन।

स्न स्न करिके करे समाधि, सूर स्थान भवि मिटै उपाधि।

—सू० सा०, पृ० ४६

२—जोग न मुक्ति ध्यान नहि पूजा वृद्ध भये अकुलान।

—वही

ऐसे स्थल सूर की मौलिक प्रौढ़ भक्ति भावना के विरोधी लगते हैं अन्यत्र इनके प्रक्षिप्त होने अथवा प्रारम्भिक अवस्था के द्योतक होने की सम्भावना लगती है। कृष्ण-भक्ति के आगे साधनों की निस्सारता एक अन्य गुजराती कवि नरहरि ने भी प्रदर्शित की है—

सकल साघन माई तीर्थ तहाँ कीधला।
सकल दान दीधो गने दीपला।
जेणे लीधला चरण रुदें हरी तणा ॥८॥

—आनंददास

केशवदास कायस्थ ने तीर्थाटन, दान ,स्नान आदि का तिरस्कार तो नहीं किया परन्तु उन्हें कृष्ण कीर्तन तथा कृष्ण भजन की तुलना में नगण्य अवश्य स्वीकार किया है—

काशी महि कोटि गौ परागे रे दान।
तुला न आवे कोटिये कीर्तन कृष्ण समान्य।
अयुत कल्प लगे प्रयाग मा वास त्रिवेणी स्नान।
तेथी साचू जाणजो अधिक भजन भगवान।

—श्री कृष्णलीलाकाव्य, पृ० ३११

इसी प्रकार व्रजभाषा के भी अनेक कवियों ने कर्मकांड का विरोध किया है। हरिवंशी कवि हरिराम व्यास कृष्ण की भक्ति के बिना सभी कुछ व्यर्थ मानते हैं। उनके मत से योग यज्ञ आदि कर्म धर्म सब ऊपरी वस्तुएँ ही हैं इनका प्रवेश अभ्यंतर तक नहीं है—

साचौई गोपाल गोपाल रढ़िबौ।
रूपशील गुन कौन काम को हरि की भक्ति बिनु पढ़िबौ।
जोग जज्ञ जप तप संजम व्रत कलई को सो मढ़िबौ।
जैसे अन्न बिना तुष कूटत, यार में तोल न चढ़िबौ।
असेंहि कर्म धर्म सब हरि बिनु, बिनु मेंरादर चढ़िबौ।

—व्यास वाणी, पृ० १०७

इसी प्रकार का भाव निम्बार्क मतानुयायी श्रीभट्ट भी व्यक्त करते हैं—

> मन वच राधा लाल जपे जिन ।
> अनायास सहजहिं या जग में सकल सुकृत फल लाभ लह्यो तिन ।
> जप तप तीरथ नेम पुण्य व्रत सुभ साधन आराधन ही बिन ।
> जय 'श्रीभट' अति उत्कट जाकी महिमा अपरम्पार अगम गिन ।
> —नि० मा०, पृ० १२

भक्ति-पथ में सत्संग और नाम-कीर्तन की विशेष महत्ता—यों तो भक्त कवियों ने भक्ति से सम्बंधित सभी वस्तुओं के महत्व को स्वीकार किया है परन्तु सत्सग तथा नाम-कीर्तन को विशेष महत्ता दी गयी है। सत्सग—भक्ति की उत्पत्ति एव विकास के लिए अनुकूल वातावरण उपस्थित करने वाला अद्वितीय साधन माना गया और बहुधा संतसग और साधु सग को उसके पर्याय रूप में ग्रहण किया गया है। नाम-कीर्तन अथवा नाम-स्मरण को भक्ति के अन्य साधनो मे इसलिए सर्वाधिक महत्व दिया गया क्योंकि भक्त को भगवान का परिचय नाम के ही आधार पर प्राप्त हो पाता है। वही दोनों का मध्यस्थ है। नाम के अभाव में नामी का परिज्ञान ... गी। भक्ति के प्राय. सभी मान्य ग्रथों में इन दोनो साधनों का माहात्म्य ... था है किन्तु गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के भक्त कवियों ने उसक ... वर्णन किया है। नरसी मेहता के मत से कृष्ण नाम में सभी स... उसका कोई विरला सत ही पा सकता है। सब कुछ छोड कर ... श्रेयस्कर है—

> १—सकल साधन नु श्री हरी नाम छे पार

> २—अवर वेपार तु मेहेल्य मिथ्याकरी कृष्ण

कृष्ण कीर्तन के बिना प्राणी अशुद्ध है क्योंकि सारे

> कृष्ण कीर्तन विना नर सदा सूतकी ...
> सकल तीरथ श्रीकृष्ण कीर्तन कथा हरितणा

इसीलिए उनका आश्रय एकमात्र हरिनाम ही रहा।
से लीन रहे—

मारे तो आशरे अेक हरिनाम नो छेक आव्यो हवे क्यांरे जइअे।
भणे नरसैंयो अे नाम ने आशरे नाम ने मूर्तिमां लीन रहीअे।

—पद ३६

भगवन्नाम का स्मरण जगत् में नाम अमर कर देता है—

हरि हरि कृष्णने तु भज नामें, जग मा तारुं नाम रहे।

—पद १२

नाम की तरह संत भी नाव के ही सदृश हैं। साधु-संगति पापों का नाश कर देती है आदि भाव व्यक्त करके नरसी ने सत्संग को भी वैसा ही महत्व दिया है—

भक्त ने भेंटता किल्विष नव रहे ज्ञान दीपक थकी तिमिर नासे।
धन्य धन्य भाग्य जे साधु संगत करे कृष्ण कीर्तन थकी कृष्ण भासे।
अेक क्षण वार जे संत संगत करे धन्य घडी जन्तु नी तेज जाणो।
भणे नरसैंयो भवसागर बूडता हरिजन नाव निश्चे प्रमाणो।

साधु-संत अथवा भगवद् भक्त के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग गुजराती कवियों ने बराबर किया। आनन्ददास के रचयिता नरहरि भी हरिजनों की संगति तथा हरि रस पान का महत्व प्रदर्शित करते हैं—

१—हरखी हरखी हरिजन पूजीयें।
संत संगत तत्व ज्ञान ते बूझीयें, गूझीयें नही रे संसार मा ॥७॥

२—अहरनिसि वली वली कृष्ण कृष्ण भणो
मांहे थकारे मोटा रीपु हणो, वसेक भाख्या रे साधु तणो ॥१७॥

३—आपणो जनम सुफल येम कीजीयें।
साधु समागम हरी रस पीजीयें।
नां कीजीये संगत पल तणी ॥२१॥

केशवदास की कृति 'श्रीकृष्ण क्रीड़ा काव्य' के अंत में भी कृष्ण नाम के श्रवण गायन आदि की तथा साधु समागम की महिमा का बखान किया गया है—

कृष्ण नी भक्ति ने कृष्ण नें गाय अहनिशे कृष्ण नी वात वहेवाय।
कृष्ण गुण श्रवणे सूण्या पछी संत ने रंग भर्ये हृदय ने का न रिझाय।
कृष्ण ना भक्त शूं स्नेह करवी सदा साधु समागम में सुख थाय।

—पृ० ३१०:११.

प्रेमानन्द ने भी नरसी की तरह कृष्ण-नाम को ससार-सागर से सतरण के लिए नौका सदृश माना है—

अभग नौका श्रीकृष्ण नाम नी भवसागर ने तरवा।

—श्री० भा०, पृ० २३४

ब्रजभाषा के भी ऐसे अनेक कवि है जिन्होने नाम की महत्ता का वर्णन किया है और सतसग पर भी विशेष बल दिया है।

सूरदास कलियुग में नाम को ही एक मात्र आधार समझते है। वे नाम और साधु सगति को भव बधन से मुक्ति का प्रधान साधन मानते है—

१—है हरि नाम को आधार।
और इहि कलिकाल माही रह्यो विधि व्यवहार।
सूर हरि को सुयश गावत जाहि मिटि भवभार।

—सू० सा०, पृ० ४४

२—जा दिन सत पाहुने आवत
....
सगति रहै साधु की अनुदिन भव दुख हरी नसावत।

—सू० सा०, पृ० ४५

हितहरिवश ने भी एक स्थल पर सतसग की महिमा स्वीकार की है—

तनहि राख सतसग में मनहि प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिवश हित कृष्ण कल्पतरु सेव।

—श्रीहित स्फुट वाणी जी, पृ० ३३

हरिराम व्यास नाम और सतसग दोनो को ही विशेष महत्व देते है—

१—कलियुग श्याम नाम अधार।

—व्यास वाणी, पृ० १७२

२—कलियुग मन दीजै हरि नामै।

—वही, पृ० १७३

३—करौ भैया साधुनि ही सो सग।
पति गति जाय असाधु सग ते काम करत चित भग।
हरि ते हरिदासनि की सेवा परम भक्ति को अग।

—वही, पृ० ९४

४—साधु सरसीरुह को सो फूल।
जिनकी सगति भक्ति देति, हरि हरत सकल भ्रममूल।

—वही, पृ० ९५

निम्बार्क मतानुयायी परशुराम देव तथा रूपरसिक ने भी नाम और सत्सग को पर्याप्त महत्व दिया है—

परशुराम देव. १—ज्यो दर्पन पावक पडे परसत ही रवि धूप।
परसुराम हरि नाम ते प्रगटे हरि निज रूप।

—नि० मा०, पृ० ७८

२—सत सगति बिनु जो भजन सो न लहै सुखसीर।
परसा मिलै न सिधु सो नदी विहीना नीर।

—वही, पृ० ७७

रूपरसिक. १—नाम महात्म्य ऐसो सोई, याते अधिक और नहि कोई।
नामहि सो नित बाधौ नातौ, जगत मोह सो डोरा ड़ातौ।

—नि० मा०, पृ० १२१

२—पहले श्रद्धा लक्षण जानो, ता पीछे सतसग बखानो।
सतसग न करि हरि को भजो, आनदेव को आश्रय तजो।

—नि० मा०, पृ० १२०

गौडीय कवि गदाधर भट्ट नाम को नामी से भी अधिक महत्व देते है—

है हरि ते हरिनाम वडेरो, ताको मूढ करत कत झेरो।

—वाणी, पृ० १४

कलियुग को कराल व्याल का रूपक देकर वे नाम को महामन्त्र के सदृश शक्तिवान सिद्ध करते है और निरतर भगवन्नाम स्मरण पर विश्वास रखते है क्योकि उसके द्वारा सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते है—

हरि हरि हरि हरि रट रसना मम।
हेमहरन द्विजद्रोह मान मद अरु पर गुरु दारागम।
नाम प्रताप प्रवल पावक के होत जात सलभा सम।
इहि कलिकाल कराल व्याल विष, ज्वाल विपय भोमे हम।
विनु इहि मत्र गदाधर के क्यो मिटि है मोह महातम।

—वही, पृ० १५

इस प्रकार सत्सग और नाम के विशेष महत्व को दोनों भाषाओ के भक्त कवियो ने व्यापक रूप से स्वीकार किया है।

भक्ति और वैराग्य—ज्ञानमार्गी सतो की तरह ही दोनो भाषाओं के भक्त कवियों ने ससार के प्रति विरक्ति का भाव प्रदर्शित किया। भक्ति के पथ में एक प्रकार निवृत्ति तथा प्रवृत्ति दोनो का समन्वय हो गया। प्रवृत्ति का अभाव भक्ति का लक्ष्य न होकर ससार विषयक प्रवृत्ति के स्थान पर भगवद् विषयक प्रवृत्ति का स्थापन उसका लक्ष्य रहा। इस पुनर्सस्थापन के लिए ससार से निवृत्ति की अनिवार्य आवश्यकता हुई। भक्त कवियो द्वारा लिखित सभी विरागपूर्ण पदो की मूल आधार-भूमि प्राय यही है। माधुर्य भाव की भक्ति को अपनाने वाले हित हरिवश, नरसी मेहता आदि कवियो में यह स्थिति एक विरोधाभास उत्पन्न कर देती है। विरक्ति का अनुरक्ति से विरोध है और ऐसे कवियो मे एक ओर अनुरक्ति इस सीमा तक पहुँच जाती है कि उनके काव्य मे पग पग पर स्थूल विलासात्मक शृगारिक चित्रण उपलब्ध होते है और दूसरी ओर विरक्ति की तीव्रता में वे सासारिक विषय वासना तथा स्नेह सम्बन्धो की उतनी ही तीव्रता से निंदा करते भी पाये जाते है। यह एक समस्या है जिस पर अन्यत्र विचार करना उचित होगा। यहाँ भक्त कवियो की विरक्ति पूर्ण काव्य रचने की प्रवृत्ति का निर्देश मात्र अभीष्ट है। डॉ० दीनदयाल गुप्त के अनुसार इस प्रकार के पद भक्ति के एक प्रकार विशेष 'शान्ता भक्ति' के अन्तर्गत आते है।[1]

गुजराती कवि नरसी मेहता के काव्य में विरक्ति की भावना और तत्सम्बन्धी विचार अनेक स्थलो पर प्राप्त होते है। एक स्थल पर वे 'तात मात सुत भ्रात' के स्वार्थपूर्ण सम्बन्धो को दुख के समय व्यर्थ बताकर कृष्ण का आश्रय ग्रहण करने की सम्मति देते है—

> शा सुखे सूतो सभार श्रीनाथ नें, हाथ ते हरि विना को न स्हाये।
> तात ने मात सुत भ्रात टोले मळ्यो, दोहलो वेला ते सौ दूर जाये।
> —पद ४४

दूसरे स्थल पर वे विषय तृष्णा तथा मन के मोह को त्याग देने की सीख देते है—

> विषय तृष्णा परो मोह मन ना धरो, हु ने महारु जक्त ते मा बूडो।
> —पद ४७

भक्ति के निमित्त वे थोथे ससार और असत्य देह तथा उसके द्वारा होने वाले कामो को भी त्याज्य बताते है—

> भक्ति भूतल विषे नव करी ताहरी खाड्या ससारना थोथा ठाला।
> देह छे जूठडी करम छे जूठडा·· ·· ···· ·········· ·· ··
> —पद २१

नरसी विरक्ति पर यहाँ तक बल देते हैं कि वे संसार का माया मोह छोड कर ज्ञानी हो जाने का उपदेश दे डालते हैं—

माटे तमो माय तजी थाओ ने ज्ञानी ।

—पद ६४

नरहरि स्पष्ट शब्दो में विवेक तथा विराग अपनाने को कहते हैं—

विवेक विचार वैराग ने मन धरो, मोह माया मद मत्सर परहरो ।
अहनिस उचरो हरी हरी ॥१०॥

—आनन्दरास

भालण ने अपने दशम स्कन्ध की समाप्ति पर ससार के प्रति ऐसी ही भावना व्यक्त की है—

ससार ना सुख भोगवे, पुत्र कलत्र कहेवाय ।
अते तारे चरणे पामे, जे सुने कृष्ण कथाय ।

—पृ० ४३७

व्रजभाषा में प्राय हर सम्प्रदाय के कवियो ने ससार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने वाले विचार व्यक्त किये हैं जो उपर्युक्त विचारो से बहुत कुछ साम्य रखते हैं क्योकि दोनो की आधार भूमि एक है ।

सूर ने बहुसख्यक पदो में सासारिक सबधो की निस्सारता प्रदर्शित की है । उनके ऐसे सभी पद आत्मनिवेदनात्मक हैं—

१ हरि हौं महा पतित द्रोही अभिमानी ।
परमारथ सो पीठि विषयरस भावभगति नहिं जानी ।
निशि दिन दुखित मनोरथ करि, करि पौवत हू तृष्णा न बुझानी ।

—सू० सा०, पृ० १८

२ इन्द्री स्वाद विवस निसिवासर आप अपुनपौ हार्‍यो ।

—वही, पृ० १९

सासारिक विषयरस का प्रपच छोडने का आग्रह हित हरिवश में भी मिलता है क्योकि वे मनुष्य जीवन का लक्ष्य विषयासक्ति न मानकर कृष्णासक्ति मानते थे—

१. सरहि तौ सव परपच तजि कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि ।

—श्री हित स्फुटवाणीजो, पृ० ९

२ मानुष को तन पाय भजौ बृजनाथ को ।
दर्वी लेवे मूढ जरावत हाथ को ।
जय श्री हित हरिवश प्रपच विषय रस मोह के ।
हरि हा बिन कचन क्यो चलै पचीसा लोह के ।
—श्री हित स्फुटवाणी जी, पृ० ११-१२

स्वामी हरिदास ने अपने अनुभव के आधार पर माया मद, गुन मद तथा यौवन मद सभी को मिथ्या बताया है और ससार की क्षण भगुरता का दिग्दर्शन कराया है तथा आजीवन हरि भजन का उपदेश दिया है—

१ जगत प्रीति करि देखी नाही गटी को कोऊ ।
२ जौलो जीवै तौलौं हरि भजि रे मन और बात सब बादि ।
दिवस चारि के हलाभला में तू कहा लेइगो लादि ।
माया मद, गुन मद, जोबनमद भूल्यो नगर विदादि ।
कहि 'श्री हरिदास' लोभ चरपट भयो काहे की लगै फिरादि ।
—नि० मा०, पृ० २०४

निम्बार्क-मतानुयायी हरिव्यास देव चाहते हैं कि मनुष्य ससार के भ्रमो को छोडकर 'श्री हरि प्रिया' का भजन अनन्यभाव से करे—

भर्म तजौ श्री हरिप्रिया भजौ सजौ अनन्यव्रत एक ।
यही यही निश्चय यही सही गही उर टेक ।
यही है, यही है, भूलि भर्मों न कोउ, भूलि भर्मे ते भव भटकि मरिहैं ।
लाडिली लाल के नित्य सुखसार बिन कौन विधि वार ते पार परिहैं ।

सासारिक सम्बन्धो से जो मोह उत्पन हो जाता है उसे बेडी समझते हुए गौडीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट श्री कृष्ण से उसके काट देनें की प्रार्थना करते हैं और काम लोभ आदि उन सभी विकारो को, जो विषयासक्ति उत्पन्न करते हैं, अहेरी की सज्ञा देते हैं जो भक्त की मति रूपी मृगी को घेरे हुए है—

कबै हरि कृपा करि हो सुरति मेरी ।
और न कोई काटन को मोह बेरी ।
काम लोभ आदि जे निर्दय अहेरी ।
मिलि के मन मति मृगी चहूघा घेरी ।
—ग० वाणी पृ०७

इस प्रकार के सभी कथनों का उद्देश्य वस्तुतः निंदा करके अथवा निस्सारता प्रदर्शित करके ससार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करना ही है और वह भी कृष्ण के प्रति वास्तविक अनुराग एवं भक्ति उत्पन्न करने के निमित्त।

भक्ति मार्ग में गुरु का स्थान—भारतीय परम्परा के अनुसार साधना के समस्त रूपो एवं मार्गों में गुरु की अनिवार्य आवश्यकता मानी गयी है। भक्ति में भी गुरु को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गुजराती और ब्रजभाषा दोनों में कवियों ने गुरु की महिमा को अपने काव्य में पूर्ण रूप से स्वीकार किया है। नरसी मेहता गुरु को हरिनाम के व्यापार में दलाल का स्थान देते है। और भवसागर से सरलतापूर्वक पार होने के लिए नाव की तरह अनिवार्य समझते है—

वेपार तो कीधो रे हरि नामनो रे, कीधो गुरु रूपी दलाल।
भवसागर मा रे नावे हु चढ्यो रे सहज मा आव्या सागर पार।

—पद,५३

अन्य गुजराती कवियों ने गुरु को परम्परागत रूप में स्वीकार अवश्य किया है परन्तु काव्य में भक्ति की दृष्टि से गुरु के विषय में कुछ भी नही लिखा।

ब्रजभाषा में अष्टछाप के कवियो ने गुरु के महत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार किया। उनके द्वारा वल्लभाचार्य तथा विट्ठलनाथ के विषय में गुरु भाव से लिखे प्रशसा के अनेक पद उपलब्ध होते है। सूरदास, जिन्होंने प्रकट रूप से गुरु के सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है, वे भी गुरु की महिमा मुक्त हृदय से स्वीकार करते है—

गुरु बिनु ऐसी कौन करौ।
माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै।
भवसागर ते बूडत राखै दीपक हाथ धरै।
सूरस्याम गुरु ऐसो समरथ छिन में लै उधरै।

—सू० सा०, पृ० ७१

हितहरिवश मनुष्य के कल्याण के लिए जहाँ प्रपंच-त्याग और कृष्णनाम स्मरण को आवश्यक समझते है वहाँ गुरुचरणो का आश्रय ग्रहण करना भी अनिवार्य समझते है—

जय श्री हित हरिवश विचारि के मनुज देह गुरु चरण गहि।

—श्री हित स्फुट वाणी जी, पृ० ९

निम्बार्क-मत के परशुराम देव ने अपने परशुराम सागर में गुरु के सम्बन्ध में अनेक दोहे लिखे हैं। उनके 'अनुराग भक्त' के लिए गुरु के शब्दो पर ही विश्वास करना अभीष्ट है। ससार की बातो की उसे उपेक्षा करनी चाहिए क्योंकि गुरु ही भवसागर से पार कर सकता है—

> श्री गुरु समझ सनेह करि बारम्बार सम्हार।
> परशुराम भवसिन्धु को नाव उतारै पार ॥३॥
> श्री गुरु कहे सो मानिय सत्य शब्द बलि जाव।
> और झूठ सब जगत कै सुमिरि साच हरि नाव ॥७॥
>
> —नि० मा० पृ० ७४-७५

वल्लभ तथा गौडीय सम्प्रदाय के भक्तो ने गुरु में ही कृष्ण की भावना करके हरि गुरु की एकता को चरितार्थ किया। वल्लभाचार्य और चैतन्य के अनुयायियो ने प्रकट रूप से इस धारणा को व्यक्त किया। चौरासी वैष्णवन की वार्ता में गुरु-यश वर्णन के में सूरदास का कथन 'कछु न्यारो देखू तो न्यारो कहूँ' तथा माधवदास आदि का 'कृष्ण सम्बन्ध रूप चैतन्य' कहना इसका प्रमाण है।

भक्ति की सार्वजनीनता—भक्ति का विकास प्रारभ से ही सार्वजनीनता की भावना को लेकर हुआ जो भागवतादि ग्रथो से प्रकट है। कवि नरसी ने इस सम्बन्ध में अपनी स्पष्ट धारणा व्यक्त की है

> नात न जाणो ने जात न जाणो, न जाणो काई विवेक विचार।
> कर जोडी ने कहे नरसैंयो, वैष्णव तणो मने छे आधार।
>
> —पद ४

भक्ति में 'नात जात' के भेद को अस्वीकार करने के साथ ही उन्होंने स्त्री पुरुष के भेद को भी नहीं माना है—

> पुरुष रूप पुरुषोत्तम पामे धन ते नर ने नारी रे।
>
> —पद ६३

ब्रजभाषा में सूर ने इतनी ही स्पष्टता से इस सत्य को व्यक्त किया है—

> १ कह्यो शुक श्री भागवत विचार।
> जाति पाति कोउ पूछत नाही श्रीपति के दरबार।
>
> —सू० सा०, पृ० २३
>
> २ बैठत सभा सबै हरि जू की कौन बडो को छोट।
>
> —वही

३ हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई।
ऊच नीच हरि गिनत न दोई।

—सू० सा०, पृ० २४

अष्टछाप के कवियो से इतर अन्य कवियो ने भी इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं। हितहरिवंश भी विप्र-शूद्र का भेद तथा कुल की श्रेष्ठता-हीनता को भक्ति के प्रेमोन्माद के आगे निरर्थक मानते हैं—

जहा श्री हरिवंश प्रेम उन्माद।
कुल बिन कहाँ कौन सौ चाक।
सहज प्रेम रस साचे पाक।
रक ईश समुझत नाही।
विप्र शूद्र न कौन कुल कास।
सुनहु रसिक, हरिवंश विलास।

—श्री हित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ५२

हरिराम व्यास के अनुसार भक्ति और जाति में बैर है—

व्यास जाति तजि भक्ति कर, कहत भागवत टेरि।
जातिहिं भक्तिहिं ना बने, ज्यो केरा ढिग बेरि।

—व्यास वाणी, पृ० १८६

वे निश्चित रूप से जाति और जनेऊ से व्यक्त होने वाली ऊँच-नीच तथा जाति-भेद की भावना को भक्ति मार्ग में स्थान नही देते थे—

भक्ति में कहा जनेऊ जाति,

—व्यास वाणी, पृ० १९

गोपियो का आदर्श मानना तथा अन्य मान्य भक्तो के साथ गणिका का भी स्मरण करना जो कवियो ने बराबर किया है, इनसे प्रकारान्तर से स्त्रियों को भक्ति मार्ग में समानाधिकार स्वीकृत होता है।

भक्तों की प्रशंसा तथा उनके लक्षण—भक्त के लिए नरसी मेहता ने सामान्यत वैष्णव शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार वैष्णव का जीवन धन्य है क्योकि वह अपना ही नही, अपने परिवार तथा पडोसी सभी का उद्धार करता है। वह मालादि बाह्य लक्षणो से युक्त होता ही है। साथ ही आन्तरिक श्रेष्ठता भी उसमें अनिवार्य रूप से होती है जिसके कारण उसकी सगति सदैव कल्याणकारी होती है। ऐसी ही अनेक बातें वैष्णव जन के विषय में नरसी ने अपने पदो में कही है—

धन्य जीवीत वैष्णव केरु जे जन हरि गुण गाये रे,
सकल सभामा पहेली पूजा, नर नारी ते वैकुंठ जाये रे।
हा रे वैष्णव जनना कीयां रे लक्षण, छापा तीलक तुलसीनी माल रे।
हा रे वैष्णव जनना भेख देखी ने, जम किंकर त्रासे तत्काल रे।
हा रे जन्म मरण नो फेरो छूटे ते जनम जोव थी राखे अग रे।
हा रे ते नर छूट्या ससार माहे, जेने होय वैष्णव नो सग रे।
हा रे माता पिता कुल तारे वैष्णव, तारे पाडोशी परिवार रे।
हा रे भणे नरसैयो अेटलु मागु, पुनरपि नहि अवतार रे।

—पद २

भक्त को यहाँ तक महत्व दिया गया है कि भगवान को भी उसके अधीन कह दिया गया—

भक्त आधीन छे श्याम सुन्दर सदा....

—पद २०

इसीलिए नरसी का मत था कि निवास वही करना चाहिए जहाँ वैष्णव बसते हों—

वास नहि ज्या वैष्णव केरो त्या नव वसीये वासडीया।

भक्तो के सुयश का वर्णन ब्रजभाषा के कवियो ने भी किया है। सूर सागर के प्रथम स्कध में सूर के इस सम्बन्ध के अनेक पद मिलते है। लक्षण न देकर सूर ने भक्त के महत्व को ही प्रकट किया है। वे भक्त को इसलिए श्रेष्ठ मानते हैं कि वह भगवान से सम्बन्धित है। भगवान से भक्त अधिक है ऐसी धारणा उनमें नही मिलती—

१. हरि के जन सब ते अधिकारी।

—सू० सा०, पृ० ५

२. हरि जू के जन की अति ठकुराई।
महाराज ऋषिवर सुरनर मुनि देखत रहे लजाई।

—सू० सा०, पृ० ६

भक्त-प्रशसा में राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास के भी अनेक पद मिलते है जिनमें परम्परागत रूप में मान्य अजामिल, ध्रुव आदि भक्तो के उल्लेख के साथ भक्तो के श्रेष्ठ गुणों का अनुकथन है। व्यास के अनुसार भक्त कभी दुखी नही होते और उनको कभी माया व्याप्त नही होती।

१. सुनियत कबहु न भक्त दुखारो।

—व्यास वाणी, पृ० १०१

२. माया भक्त न लगतँ जाई।

—वही, १०५

भक्ति प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को भक्त का पथ पहले ग्रहण करना चाहिए और उसकी जूठन भी खाना चाहिए जो ऐसा नही करते वे नारकी जीव हैं क्योंकि भक्त के पीछे भगवान तथा गंगा चलती हैं। वस्तुतः साधु भक्त की चरण रज के द्वारा ही करोड़ों पतितों का उद्धार हो जाता है—

जूठन जो न भक्त की खात।
तिनके मुख सूकर कूकर के भक्षि अभक्षि पोषत गात।

....

हरि भक्तनि पाछैं आछैं डोलत हरि गंगा अकुलात।
साधु चरनरज माझ व्यास से कोटिनि पतित समात।

—वही, पृ० १०३-१०४

भक्ति रस—शास्त्रीय रूप में भक्ति के लिए 'रस' शब्द का प्रयोग कदाचित ही किसी कवि ने किया हो परन्तु भावात्मक दृष्टि से 'भक्ति रस' शब्द का प्रयोग दोनों भाषाओं के कवियों द्वारा अनेक वार किया गया है। गुजराती में नरसी तथा केशवदास ने इसका प्रयोग किया है—

नरसी—भूतल भक्ति पदारथ मोटुं

....

अे रस नो स्वाद शंकर जाने के जाणे शुक जोगी रे।
कोई अेक जाणे व्रज नी गोपी भणे नरसैयो भोगी रे।

—पद १

केशवदास—योग शृंगार अध्यात्मक ज्ञान।
केवल भक्ति रस भगवान।

—मयुरालीला

नरसी ने 'भक्ति रस' के ही नही उसी भाव के अन्य शब्द 'प्रेम रस' तथा 'लीला रस' का भी व्यवहार किया है

१. प्रेम रस पाने तुं मोरना पीछधर तत्व नुं टुंपण तुच्छ लागे।

....

जन्मो जन्म लीला रस गावता.........

—पद २४

ब्रजभाषा में हरिराम व्यास ने भक्ति रस की उत्पत्ति के लि

भाव बिना न भक्ति रस उपजै यह सब सन्त बतावत।

—व्यास वाणी, पृ० १५९

हितहरिवंश सहज प्रेम रस को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं—

१. सहज प्रेम रस साचे पाक।

—श्री हित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ५२

२. जे हरिवंश प्रेम रस झिले।
क्यो सोहैं लोगनि में मिले।

—वही, पृ० ५३

पादटिप्पणियाँ

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३९८ ९९

२. अष्टछाप, पृ० ४०१

३ अष्टछाप, पृ० ४०१ ४०२

४ वही,

५ वही, पृ० ४०३ ४०४

६ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५२१

साधनादि प्रकारेण नवधा भक्तिमार्गत. ।
प्रेम पूर्त्या स्फुरद्धर्मा स्पन्दमाना प्रकीर्तिता ॥१०॥

—नलभेद

७. वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनैविध ।

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु, पृ० २५
पूर्व विभाग, लहरी २, श्लोक २

८. डॉ० दीनदयालु गुप्त के निजी परमानंददास पद सग्रह से, पद न० २१४

९ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ६४६

४

भाव पक्ष

काव्य में अभिव्यक्त सभी भाव वास्तव में कवि द्वारा ही अनुभूत होते हैं परन्तु अभिव्यक्तीकरण में किसी बाह्य माध्यम को स्वीकार करने, न करने के कारण सामान्यत अभिव्यक्ति के दो रूप हो जाते हैं। एक दशा में कवि अपने द्वारा अनुभूत भावो को वैयक्तिकता के आग्रह के साथ उत्तम पुरुष में ही अभिव्यक्त करता है और दूसरी दशा में अपने से इतर कल्पित अथवा यथार्थ वस्तुओ तथा व्यक्तियो के माध्यम से। शास्त्रीय शब्दावली में पहली दशा में आश्रय का स्थान वह स्वय ही ले लेता है और कभी कभी अपने को ही आलम्बन भी बना लेता है, दूसरी दशा में आलम्बन और आश्रय दोनो उससे पृथक रहते हैं। पहली अवस्था में उसकी अभिव्यक्ति अन्तर्मुखी होती है, दूसरी अवस्था में वहिर्मुखी। अभिव्यक्ति के इसी द्विधा स्वरूप के आधार पर पहले प्रकार का काव्य आत्मविषयात्मक (Subjective Poetry) कहलाता है और दूसरे प्रकार का काव्य बाह्यविषयात्मक (Objective Poetry)।

आत्मविषयात्मक भावाभिव्यक्ति

उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार आत्मविषयात्मक काव्य की कोटि में कृष्ण कवियो द्वारा लिखित वे ही पद, वे ही अश आते हैं जिनमें उन्होने—

(क) आत्मनिवेदन, दैन्य, दास्य, सख्यादि भावो की अभिव्यक्ति की है।

(ख) विविध कृष्ण लीलाओ में स्वय को दर्शक या पात्र के रूप में भाग लेते हुए चित्रित किया है अथवा अपने ही किसी अनुभव को कृष्णलीला से सम्बद्ध कर दिया है।

आत्मनिष्ठ काव्य में कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी दोहरे ढग से होती है। कुछ बातो को तो वह अपनी मह कर व्यक्त करता है और कुछ को अपनी भावना में रग कर। आत्मीयता के विस्तार की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती। अतएव आत्म-भावाभिव्यक्ति का अत्यन्त व्यापक अर्थ ग्रहण करते हुए एक मत ऐसा भी है जो समस्त कृष्ण-काव्य को आत्मविषयात्मक काव्य की कोटि में रखता है। लेकिन सीमित अर्थ लेने पर पूर्वोक्त अश ही वास्तव में इस कोटि में आते हैं। यहाँ इसे सीमित अर्थ में ही ग्रहण किया गया है।

आत्मविषयात्मक कथनो को काव्य की मार्मिकता प्रदान करने में विशेष कठिनाई होती है क्योकि भावो के साधारणीकृत होने में 'अह' की सीमाएँ बाधा बन कर आ खडी होती है। यदि अनुभूति इतनी गहरी, इतनी तीव्र न हुई कि उन्हें पार कर जाय तो इस प्रकार का सारा काव्य व्यक्ति का सकुचित प्रभावहीन परिचय मात्र बनकर रह जाता है। किन्तु सूर, नरसी, मीरा आदि जिन भक्त कवियो ने इस प्रकार के पदो का सृजन किया है उनकी स्थिति इससे भिन्न है। उनके लिए भक्ति का आवेग ही अह की सारी सीमाओ का पर्यवसान करता हुआ हृदय को निर्मल बना कर आराध्य के चरणो में अर्पित करने का एक मात्र उपाय था। प्राय कही भी उनका आत्मनिवेदन अह की सकुचित अभिव्यक्ति नही बना। उनके वैयक्तिक अनुभव से सयुक्त कथन भी किसी न किसी रूप में इतने भाव सवलित है कि कोई भी उन्हें परिचय मात्र नही कह सकता। कृष्ण-भक्त कवियो द्वारा लिखे गये आत्मविषयात्मक पद श्रेष्टतम काव्य की कोटि तक पहुँच जाते है।

सूरसागर के प्रथम स्कध मे सकलित सूरदास के अनेक पद उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते है। ब्रजभाषा में सूर के अतिरिक्त अन्य कई अष्टछापी कवियो न आत्मनिवेदन के पद रचे है, अन्य सम्प्रदायो के हरिराम व्यास, गदाधर भट्ट, श्री भट्ट तथा हरिदास आदि के पदा में ऐसे उद्गार मिलते है किन्तु सूर का भाव-जगत इतना विस्तृत है कि वे अकेले ही सबका प्रतिनिधित्व करते है। साथ ही उनकी जैसी मार्मिकता एव विविधता भी अन्यत्र दुर्लभ है। गुजराती में मुख्यत नरसी मेहता के काव्य में दैन्य और आत्मनिवेदन के भाव मिलते है। अन्य कवियो में इन भावो की स्थिति का आभास तो मिलता है परन्तु इनसे प्ररित काव्य नाम मात्र को ही उपलब्ध होता है। मीरा की स्थिति इस विषय में सूर और नरसी से भी अधिक महत्वपूर्ण है। कारण यह कि उनका लगभग समस्त काव्य आत्मविषयात्मक है। मीरा ने प्राय सब कुछ लीलागान के रूप में न लिखकर आत्मानुभूत सवेदन के रूप में लिखा है। वैयक्तिकता का स्वर उनके पदो में, मणियो में सूत्र की तरह व्याप्त है।

जिस प्रकार आराध्य एव आराधक के बीच सम्बन्धो के कई रूप है उसी प्रकार उनके अनेक स्तर भी होते है। दास्य, दैन्य आदि भावो के एक स्तर पर एक प्रकार के उद्गार तथा दूसरे स्तर पर दूसरे प्रकार के उद्गार मिलते है जिनका आधार स्नेह और तन्मयता का अतिरेक है। आराध्य की ओर जिसके प्रेम में जितनी उत्कटता होगी वह कवि उतने ही उच्च स्तर से, उतनी ही मार्मिकता से आपूर्ण उद्गार व्यक्त करेगा। इन उद्गारो के और भी सूक्ष्मतर भेद होते है जो कवि की वैयक्तिक सवेदनशीलता, अभिव्यजनाशक्ति तथा स्वभाव विशेष पर आधारित रहते है।

आत्मनिवेदन—आत्मनिवेदन की भावना सूर, मीरा और नरसी तीनो में प्राप्त होती हैं किन्तु तीनो की अपनी अपनी विशेषता स्पष्ट रूप से पृथक झलकती है, तीनो का आत्मनिवेदन न्यूनाधिक अशो में दैन्य से सयुक्त और दास्य की ओर उन्मुख है। फिर भी किसी में दास्य भाव अप्रधान है किसी में प्रधान। किसी में प्रेम की कातरता है, किसी मे दैन्य की विह्वलता और किसी में प्रगल्भता, हठ, खीझ तथा उसके बाद भी अडिग विश्वास।

यह आत्मनिवेदन की वृत्ति वस्तुत विशुद्ध प्रेम से उत्पन्न होती हैं और उसी से पुष्ट भी होती हैं। प्रेम के मूल में जो भाव होगा वही आत्मनिवेदनात्मक काव्य में प्रतिबिम्बित होगा।

नरसी तथा सूर दोनो ने प्रधानत अपने को दास या सेवक और कृष्ण को अपना स्वामी स्वीकार किया हैं। नाथ, प्रभु, स्वामी आदि शब्दो से आराध्य को सबोधित अथवा विशेषित करना तथा चरण शरण प्राप्ति की कामना करना इसी का द्योतक हैं। नरसी ने कृष्ण का दास होकर ही अपने जीवन को कृतार्थ नही माना वरन् भावातिरेक में उन्होने कृष्ण के दास की चरणरज तक को मस्तक पर धारण करने की इच्छा प्रकट कर डाली और उसी में अपना कल्याण माना—

तारां दासना चरणनी रेण मस्तक धरु जेथकी कोटि कल्याण पामु।

—पद० ३२

कृष्ण के प्रति उनका निवेदन हैं कि तुम्हारे दास के दास की सगति के बिना मेरा मन भ्रष्ट हो रहा हैं। जो तुम्हारे दास नही हैं वे दुष्ट हैं उनके साथ से मेरी मति भी सदोष हुई जा रही हैं और तुम्हारा कीर्तन, नामश्रवण आदि कुछ भी नही हो पाता—

तारा दासना दासनी नित्य सगत विना भ्रष्ट थाय भूधरा मन मारु।
दुष्टनी सगते, दुष्ट मति ऊपजे, श्रवण कीर्तन नव थाय तारु।

—पद० २२

एक स्थल पर वे 'दासनोदास नरसैंने कीधो' कहकर स्वय को कृष्ण का दासानुदास मान लेते हैं। जिस प्रकार एक सेवक अपने स्वामी की कृपा के अभाव में स्थिरचित्त नही रह सकता उसी प्रकार उनका मन भी कृष्ण कृपा के बिना विकल रहता हैं—

पूरु ना पडे नाथ जी तमारी कृपा विना अेक आणु त्यारे अनेक खूटे,
नरसैंयाना स्वामी तमारी कृपा विना रक मनावु त्यारे राय रूठे।

—पद ५०

ठीक ऐसी मनस्थिति सूर की भी है। वे भी कृष्ण को अपना पति अर्थात् स्वामी कहते हुए उनसे कृपा याचना करते हैं—

मेरे तो तुमही पति तुम गति तुम समान को पावै।
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु को मो दुख बिसरावै।
—सू० सा०, पृ० ६

वस्तुत कृष्ण का स्वामित्व लाभ करके ही सूरदास का दासत्व सार्थक सिद्ध होता है। वे भले बुरे जैसे भी है कृष्ण के ही है। उन्हें छोडकर किसी और के द्वार पर नही जा सकते। वे कृष्ण के खरीदे हुए गुलाम है और जब कोई ऐसा कहता है तो उसे सुन कर उनका हृदय तृप्त हो जाता है। कृष्ण रुष्ट भी हो जांय तो भी वे द्वार छोडने वाले नही। वस्तुत भाव की दृष्टि से उनका दासत्व ही इतना समृद्ध है कि उन्हें नरसी की तरह अपने को कृष्ण का दासानुदास कहकर अपनी अधिकाधिक लघुता व्यक्त करने की आवश्यकता ही नही पडती।

आगे चलकर दासत्व का यह भाव नरसी और सूर में भिन्न-भिन्न दिशाएँ ग्रहण कर लेता है। नरसी में माधुर्य के सयोग से दास होने की कामना दासी होने की कामना में परिणत हो जाती है और वे सखी रूप से प्रिय के सान्निध्य-सुख का रसास्वादन करने लगते है। जो स्वामी है वही प्रियतम बन जाता है और जो सेवाभाव है वही प्रणयनिवेदन का रूप धारण कर लेता है। स्वामी और सेवक के बीच की स्वाभाविक मर्यादा तथा व्यावहारिक व्यवधान दूर हो जाता है। कुछ अशो में दास्य और माधुर्य का यह भाव-साकर्य दोनो की शुद्धता को सीमित कर देता है। नरसी 'हरीदासी' होने की अपनी तीव्र मनोकामना को निम्न शब्दो में व्यक्त करते हैं—

जपतप तीरथ देहडी न दमीजे, जो महारा वहालाशु रग भेर रमीजे।
जनम-जनम हरीदासी थाशु नरसैंया ना स्वामीनी लीला गाशु।
—पद ५६

नरसी का यह दासी रूप सखी रूप से अभिन्न है क्योकि वे स्वय सखी बन कर कृष्ण की गोपियो के साथ की गयी शृगारक्रीडाओ का रसास्वादन करने की साक्षी देते है—

ते पूर्ण पुरुषोत्तम प्रेमदाशु रमे, भावेशु भामनी अक लीधो।
जे रस व्रजतणी नार विलसे सदा, सखी रूपे ते नरसैंये पीधो।
—पद ४९

सूर में ऐसे भाव-सांकर्य की स्थिति कहीं भी नहीं मिलती। यद्यपि उन्होंने कृष्ण की शृगारिक लीलाओ का वर्णन नरसी की अपेक्षा कम नही किया है तथापि उनमें दास्य

और माधुर्य भाव का पार्थक्य बना रहा। कारण यह है कि उन्होंने, जहाँ तक वैयक्तिक भावाभिव्यक्ति का प्रश्न है, दास्य और माधुर्य को सर्वदा पृथक् रक्खा है। एक दास को स्वामी के शृंगारिक अथवा दाम्पत्य जीवन में प्रवेश पाने का कोई अधिकार नही होता, वह उसकी मर्यादा के विरुद्ध है अतएव कृष्ण की शृंगारिक क्रीडाओं का वर्णन सूर ने सखियो के माध्यम से किया है। स्वयं सखी बनने अथवा सखी-भाव अपनाने का प्रमाण उनके काव्य में नही मिलता। उन्होंने नरसी की तरह भक्ति में अपने पुरुषत्व का पर्यवसान नही किया। उनका दास्यभाव अगर उन्मुख हो सका तो सखा-भाव की ही ओर हो सका, सखी-भाव की ओर नही। 'खजन नैन प्रेम रस माते' जैसे उनके पदो के पीछे आसक्ति का सिद्धान्त है। सखी-भाव उनका कारण नही है।

सूर का सेवक सेव्य भाव दूसरी दिशा में विकसित हुआ। उसका सयोग दैन्य से हुआ और दैन्य एवं विनय का जितना गंभीर, विविध एवं विस्तृत रूप सूर में उपलब्ध होता है उतना कृष्ण-काव्य के अन्य किसी कवि मे नही मिलता। नरसी में भी नहीं। भावातिरेक में विनय का भाव लुप्त हो जाता है और उसका स्थान प्रगल्भता, ओज तथा हठ ग्रहण कर लेते हैं। दास्यभाव के अन्तर्गत इस प्रकार की भाव-परिणति भी सारे कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है। सूर के इस प्रकार के आत्मनिवेदन में भावना का स्तर क्रमशः उच्च से उच्चतर होता हुआ भाव-विकास की चरमसीमा को स्पर्श कर लेता है।

जैसा संकेत किया गया है, सूर का आत्मनिवेदन विनय से प्रारम्भ होता है किन्तु वह विनय भी साधारण कोटि के विनय भाव से भिन्न है। अपने पापो के प्रति अतिशय जागरूक होने के कारण सूर को विनती करते भी लाज लगती है। अपने को वे सब पतितो का सरताज समझते हैं और उन्हे विश्वास है कि कृष्ण जैसे उद्धारकर्ता के लिए भी उनका उद्धार सरल कार्य नही है—

> विनती करत मरत हौं लाज।
> नख सिख लौ मेरी यह देही है पाप की जहाज।
> .. ..
> पाछे भयो न आगे ह्वै है सब पतितन सरताज।
> नरकौ भज्यो नाम सुनि मेरो पीठि दई यमराज।
> अबलौं नान्हे रून्हे तार्यो ते सब वृथा अकाज।
> साचे विरद सूर के तारत लोकन लोक अवाज।

—सू० सा०, पृ० ७

सब पतितो के 'सरताज' अथवा 'नायक' होने का भाव उनके हृदय में गर्व का संचार करके उन्हे अत्यन्त प्रगल्भ बना देता है। यह प्रगल्भता लाक्षणिक है और इसमें अत्यधिक दीन एव पापी होने की ध्वनि छिपी हुई है। वस्तुत. उसी की मार्मिक व्यजना के लिये कवि की भावना ने अभिव्यक्ति का यह रूप ग्रहण किया है। इसके पहले अनेक पदों में उन्होंने असमर्थता, दोषमयता निरीहता तथा शरण-याचना के भाव व्यक्त किये है। जब भावुक हृदय उनसे परितुष्ट न हो सका तो भावना ने यह रूप ग्रहण किया और सूर कह उठे—

हरि हौं सब पतितन पतितेश।

—वही, पृ० १७

अथवा

हरि हौं सब पतितन को नायक।

—वही, पृ० १८

पर इस प्रकार के लाक्षणिक गर्व से भी कृष्ण को जब वे उन्मुख होता हुआ नहीं देखते तो उन्हें आराध्य के मनोभाव पर शंका होती है और वे स्पष्ट पूछने लगते हैं।

मोसों बात सकुच तजि कहिये।
कत ब्रीड़त, कोउ और बतावहु वाही के ह्वै रहिये।
कैधौं प्रभु पावन तुम नाही के कछु मोमें भोलो।
तौ हौं अपनी फेरि सुधारौ वचन एक जो बोलो।

—वही, पृ० १६

सूर द्वार पर बड़ी देर प्रतीक्षा करते है पर जब इस आरोप का भी कोई उत्तर नही पाते तो कृष्ण के पतितपावन नाम की निस्सारता उन्हें प्रतिभासित होने लगती है—

पतितपावन हरि विरद तुम्हारो कौने नाम धर्यो।

—वही

और अन्त में वे हठ पूर्वक अपने उद्धार किये जाने के अधिकार के लिये लड़ने को तैयार हो जाते है—

आजु हौं एक एक करि टरिहौं।
कै हम ही कै तुम हीं माधव अपुन भरोसे लरिहौं।
हौं तौ पतित सात पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नचन चाहत हौं तुम्हे विरद बिनु करिहौं।

—वही

ऐसा हठ, ऐसा आग्रह, ऐसी प्रगल्भता उसी में हो सकती है जिसे एक तो अपने आराध्य पर चरम विश्वास हो दूसरे अपनी भक्ति पर अनन्य आस्था। सूर में दोनों ही वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं इसीलिए उनकी वाणी में इस प्रकार का भाव-सौन्दर्य आ सका।

सूर को कृष्ण की कृपा प्राप्त करने की इतनी उत्कट अभिलाषा क्यों है इसका रहस्य भी उनके एक पद से ज्ञात हो जाता है। वास्तव में सूर को कृष्ण का विरह असह्य है। उनके हृदय की जलन बिना करुणा के जल से सिंचे शान्त नहीं होना चाहती इसीलिए वे हर प्रकार से अपने 'गोपाल' की कृपा प्राप्त करना चाहते हैं—

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।
बिनु गोपाल बिथा या तनु की कैसे जात कटी।
.
सूर जलधि सिंचे करुणानिधि निज जन जरनि मिटी।
—वही, पृ० ९

इस प्रकार सूर के काव्य में अपने आराध्य के प्रति एक ऐसी तीव्र विश्वास भावना, तथा अपनी भक्ति के प्रति एक ऐसी प्रगाढ आस्था मिलती है जो अन्य कृष्ण भक्त कवियों में दुर्लभ है।

नरसी और सूर की आत्म भावाभिव्यक्ति से भिन्न मीरा की भाव धारा में एक विचित्र प्रकार की स्त्री सुलभ सुकुमारता एवं व्यापक आत्मीयता मिलती है जो समस्त कृष्ण-काव्य का शृंगार है।

पुरुष होकर स्त्री भाव की उपलब्धि के प्रयास में जो अस्वाभाविकता नरसी के काव्य में दिखाई देती है वह मीरा के पदों में सर्वथा अप्राप्य है। नरसी की 'प्रणय घेलछा' की अपेक्षा कृष्ण के प्रति मीरा का मधुर प्रणय-भाव पूर्णतया स्वाभाविक प्रतीत होता है। इस दिशा में मीरा नरसी से कहीं आगे प्रतीत होती है। नरसी गोपी अथवा सखी भाव की ही प्राप्ति कर पाते हैं परन्तु मीरा कृष्ण का चिंतन विह्वल प्रणयिनी बनकर करती है और उन्हें प्रियतम एवं पति के रूप में स्वीकार करती है। साथ ही उनकी भावना में नरसी की ऐन्द्रिकतामूलक विलास-वृत्ति के स्थान पर सुकुमार स्निग्ध प्रेम-वृत्ति के दर्शन होते हैं। मीरा की सुप्रसिद्ध पंक्तियों से यह भाव स्पष्टतया प्रकट होता है—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई।
. .. .

अंसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेल फैल गयी आणद फल होई ॥१५॥
—मीराबाई की पदावली, पृ० ६

'गिरधर' के प्रति मीरा का यह वैयक्तिक प्रेम-भाव उन्हें आत्म-समर्पण की उस स्थिति तक पहुँचा देता है जहाँ वे अपने सारे जीवन व्यापार को प्रिय के ही आश्रित छोडकर अनन्त सुख का अनुभव करती है—

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी उण् बिनि पल न रहाऊँ ।
जहाँ बैठावे तितही बैठू, बेचे तो बिक जाऊँ ।
—वही, पृ० ७

इन पक्तियो में वह प्रेमातिरेक झलकता है जिसके आवेग मे व्यक्ति का सारा अह एक तिनके की तरह बह जाता है । अपने प्रिय का असीम प्रेम ही मीरा को ऐसी 'दरद दिवाणी' बना डालता जिसका दर्द ससार में कोई नही जान सकता । जितनी तीव्रता मीरा की पूर्वरागजन्य प्रेम की अनुभूति में है उससे भी अधिक तीव्रता उनकी विरह की अनुभूति में लक्षित होती है । विरह की नागिन ने उनकी सारी काया को विषाक्त कर दिया है और रह रह की वेदना की लहरे उठती है—

रमैया बिन नींद न आवै ।
कहा करु कित जाऊ मोरी सजनी वेदन कूण बुझावै ।
विरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै ।
—वही, पृ० २९

वियोग की यह चरम विह्वलता एक ओर तो उनको सूर की तरह प्रगल्भ बना देती है और वे उपालभ में कृष्ण के लिये 'निरमोहिया' अथवा 'घूतारा जोगी' जैसे शब्दों तक का प्रयोग कर डालती है दूसरी ओर उनमें निरीहता एव असहायता का भाव उत्पन्न होता है जिसके कारण वे नरसी की तरह कृष्ण की दासी बनने की कामना करने लगती है ।

डारि गयो मन मोहन पासी ।
आवा की डाल कोयल इक बोलै मेरो मरण अरु जग केरी हासी ।
विरह की मारी मैं बन बन डोलू, प्रान तजू करवत ल्यू कासी ।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ।
—वही, पृ० २६

मीरा के पदो में अधिकतर इसी प्रकार के वैयक्तिक प्रणय एव विरह की अनुभूति व्यक्त हुई है और इस प्रकार उनके काव्य में आत्मभावाभिव्यक्ति की मात्रा सबसे अधिक मिलती है। इसीलिए सूर तथा नरसी की तुलना में मीरा में लीलागान की प्रवृत्ति का प्राय अभाव मिलता है। यत्रतत्र व्रज की कुछ लीलाओ के वर्णनो के अपवादो को छोडकर मीरा के समस्त पद आत्मनिष्ठ काव्य की ही कोटि में आते है और उनमें भी मधुर भाव की ही प्रधानता है।

मीरा ने कृष्ण को प्रणयी के ही रूप तक सीमित न रखकर पतितोद्धारक एव भक्तवत्सल भगवान के रूप में भी स्मरण किया है और यहा वे सूर, नरसी आदि भक्त कवियो के साथ समान धरातल पर स्थित दिखायी देती है—

> हरि तुम हरो जन की पीर।
> ....
> बूडतो गजराज राख्यो कियो बाहर नीर।
> दासी मीरा लाल गिरधर चरण कवल पै सीर।
>
> —वही, पृ० २५

परन्तु इस प्रकार के पद मीरा ने अधिक नही रचे। उनकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति कृष्ण के प्रति अपने प्रेम निवेदन के रूप में ही हुई है।

कृष्ण लीलाओं से आत्म सम्बन्ध—अनेक कृष्ण भक्त कवियो के काव्य में अपने को कृष्ण लीलाओ से सम्बद्ध कर देने की एक विचित्र प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह भी कवि के व्यक्तित्व का ही एक रूप है, अथवा इसे उसकी आत्माभिव्यक्ति का प्रकार विशेष कहा जा सकता है। भाव की तीव्रता में कवि की आन्तिरक इच्छा कल्पना द्वारा वास्तव का रूप धारण करके उसकी वाणी के माध्यम से प्रत्यक्ष होकर उसे एक अलौकिक सतोष प्रदान करती है कदाचित् इसी कारण भाव प्रवणकवियो ने इस प्रकार के वर्णन किये है। उनको यथार्थ रूप में ग्रहण करना वस्तुत उन्ही की भावना के साथ अन्याय करना है। नरसी मेहता में यह प्रवृत्ति सर्वोत्कृष्ट एव सर्वाधिक रूप में व्यक्त हुई है। विपत्तियो और विरोधो से घिरे हुए जीवन में उन्हें जब कभी अप्रत्याशित सहायता प्राप्त हुई तो उन्होने उसे भावातिरेक में भगवत्प्रेरित ही नही वरन् स्वय भगवद्दत्त भी माना है। हुडी, झारी तथा हार आदि के प्रसग सभवत इसी मनोवृत्ति को व्यक्त करते है। नरसी की यही मनोवृत्ति तीव्रतर होकर उनकी उन कई रचनाओ में प्रकट हुई है जहाँ वे को स्वय कृष्ण लीलाओ में भाग लेते हुए चित्रित करते है। गोपेश्वर महादेव की कृपा से उन्हें रास

दर्शन होना है और शिव गोलोक में कृष्ण से अपने भूतलवासी दीन भक्त को मिलाते हैं। कृष्ण उनके मस्तक पर अपना वरद कर कमल रख कर उन्हें कृतार्थ कर देते है—

हाथ झाल्यो मारो पारवती पते, मुक्ति दर्शन मुने सघली देखाडी।
....
भक्त हमारो भूतल लोक थी आवीयो करो तेने कृपा दीन जाणी।
....
तेज वेला श्री हरी मुजने करुणाकरी हस्तकमल मारे शीश चाप्यो।
—न० कृ० का०, पृ० ७५-७६

इतना ही नही कृष्ण शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में जब वेणुनाद करते हैं तो गोपियो के बीच नरसी का पुरुषत्व लीन हो जाता हैं। वे सखी रूप से गीत गाने लगते हैं और मानिनी को मनाने के लिए दूती वन जाते हैं। कृष्ण उनपर पुन प्रसन्न होते हैं और उन्हें अपना पीतपट प्रदान कर देते हैं। नरसी यह सब वर्णन करते हुए यह भी कहते हैं कि यह सब उनका अनुभव है, यह वह रस है जिसका उन्होंने आस्वादन किया है।[२]

सुरतसग्राम में इसी प्रकार नरसी ने अपने को राधा की दूती के रूप में प्रस्तुत किया है। राधा उन्हें देखकर सहसा दूतत्व का कार्य सौंप देती है और तत्काल उन्हें कृष्ण के पास जाना पडता है।[३] फिर यह प्रासगिक उल्लेख मात्र नहीं है। इसका कथा विस्तार १२ वें पद से लेकर २२ वे पद तक फैला हुआ है।

चातुरी छत्रीसी में भी नरसी उपस्थित मिलते है, कर्ता के रूप में न सही भोक्ता के रूप में ही सही।[४]

इस प्रकार की कल्पनाएँ नरसी की आत्माभिव्यक्ति का एक विशिष्ट प्रकार ही मानी जा सकती है अन्यथा कथा की दृष्टि से इनकी अस्वाभाविकता स्पष्ट ही है। भावातिरेक अस्वाभाविक वस्तु को भी गरिमामय बना देता है, कदाचित् यह इसका उदाहरण है।

सूरदास में भी यह प्रवृत्ति उपलब्ध होती है किन्तु इतने विकसित रूप में नही। उन्होंने अन्य लीलाओ का दर्शन तो राधा अथवा गोपियो की वृत्ति को आत्मसात् कर के किया परन्तु कृष्ण-जन्म के अवसर पर अपने को प्रत्यक्ष प्रस्तुत करने का लोभ वे भी सवरण न कर सके। उनके ढाढी के पद वस्तुत इसी मनोवृत्ति के परिचायक है।[५]

नरसी तथा सूर के उद्धृत अशो को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर दोनो कवियो के स्वभाव का अन्तर प्रकट हो जाता है। नरसी की वृत्ति रास और विलास के प्रसगों में

विशेष रमी अत उन्होने वैसे अवसरो पर अपनी अवतारणा की है और सूर ने, जिनकी वृत्ति कृष्ण के वालरूप में विशेष लिप्त रहती थी, कृष्ण जन्म के अवसर पर उनकी बाल क्रीडाओ के दर्शन के लोभ से ढाढी के रूप में अपनी भावनाओ को मूर्त किया। आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति होने के कारण ही इन कल्पनाजन्य प्रसगा में कवि हृदय के सहज सत्य इतने सजीव होकर उभर सके हैं ।

मीरा के कतिपय पदो में यही भावातिरेक वास्तव का रूप लिए बिना अपने मूल रूप में ही व्यक्त हुआ है । इसीलिए मीरा जो स्वप्न देखती है उसे स्वप्न ही कहती है परन्तु उस स्वप्न पर उन्हें किसी भी सत्य से अधिक आस्था है—

माई म्हाने सुपने में परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आविया जी सुपना विस्वा वीस।
मीरा को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग।
सुपने में म्हाने परण गया जी, होगया अचल सोहाग।

—मीरा की पदावली, पृ० १२, पद २७

स्वप्न नही यह उनके जीवन का चरम सत्य था—भाव सत्य, जिसके आधार पर उन्होने 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई' नितान्त निर्भीकता से कह डाला और आजन्म उसी भाव का निर्वाह किया। उनका सारा काव्य इसी से ओतप्रोत है। यहाँ भी मीरा की जो अत्यन्त आन्तरिक भावना थी वही इस प्रकार व्यक्त हो सकी। यद्यपि कृष्ण-काव्य की सर्जना अनेक कवियो के द्वारा हुई परन्तु भाव की इतनी उच्च भूमि तक कदाचित् यही कवि पहुँच सके। अन्य कवियो में से किसी ने कृष्ण की लीलास्थली के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करके सतोष पाया, किसी ने अभक्तो की निंदा और भक्तो की प्रशसा करके तथा किसी ने कृष्ण के स्वरूप विशेष अथवा भाव विशेष पर अपनी वैयक्तिक आसक्ति प्रकट करके। व्यक्तिगत रुचि कुरुचि व्यक्त करने से उच्चतर धरातल व्यक्ति के हृदय के निर्वैयक्तिक आनन्द में लीन हो जाने में है। इस उच्चतर स्थिति को व्यक्त करने वाले कवियो के कथन भी वैयक्तिकता से आवृत रहते है परन्तु तत्वत वे सामान्य कवियो की वैसी ही वाता से बहुत भिन्न होते हैं। सूर, मीरा तथा नरसी की भावभूमि तक अन्य कवियो की गति नही दिखायी देती।

वाह्यविषयात्मक भावाभिव्यक्ति

किसी भी कवि की वास्तविक महत्ता भावानुभूति की गहराई एव व्यापकता से आँकी जाती है और उसके काव्य की सफलता भावो के सूक्ष्म, सशक्त तथा सवेदनीय निरूपण में निहित रहती है। कवि का हृदय किस वस्तु से प्रेरणा पाकर कब, कहाँ,

कितना भावुक हो उठे इसके लिए कोई विधान नही बनाया जा सकता। यह तो कवि विशेष की सवेदनशीलता, मनोवृत्ति और स्वभाव के आश्रित रहता है। फिर भी कुछ स्थितियाँ, कुछ स्थल ऐसे अवश्य होते हैं जहाँ भावुक कवियो का हृदय विशेष रूप से रम जाता है। ऐसे स्थलो को 'भावमय स्थल' कहा जा सकता है। बाह्यविषयात्मक काव्य में ऐसे स्थलो का विशेष महत्त्व होता है।

कृष्ण-काव्य में भावमय स्थल—कृष्ण-काव्य भावो की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध काव्य है। जीवन का एक विस्तृत खड उसकी आधार भूमि रहा है। शैशव, कैशोर्य और तारुण्य की अगणित सूक्ष्म एव गहन अनुभूतियो का विशाल सचय उसमें अत्यन्त सहज रूप मे उपलब्ध हो जाता है। वात्सल्य और शृगार की जिन सीमाओ का स्पर्श कृष्ण-भक्त कवियो ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसी दशा में थोडे से भावमय स्थलो को चुन कर अलग निकालना सरल नहीं है। परन्तु तुलनात्मक विवेचन की सुविधा के लिए जो भावमय स्थल प्रधान हैं उन्हें पृथक् करना आवश्यक है। गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के काव्यो को दृष्टि में रखते हुए निम्नलिखित भावमय स्थल प्रधान रूप में चुने जा सकते हैं—

१ कृष्ण की बाल लीलाएँ	६ पनघटलीला
२. नद, वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्‌गार	७ सयोगावस्था की विविध मनोदशाएँ
३ रासलीला	८ कृष्ण का मथुरागमन
४. दानलीला	९ भ्रमरगीत
५. मानलीला	१० पुनर्मिलन

आगे इनमें से क्रमश प्रत्येक स्थल की भावानुभूति तथा भावनिरूपण की दृष्टि से तुलनात्मक काव्य-समीक्षा की गयी है।

१ **कृष्ण की बाल लीलाएँ**—कृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित भावो का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। कारण यह है कि कृष्ण का व्यक्तित्व नद यशोदा के पारिवारिक जीवन तक ही सीमित न रहकर एक व्यापक सामाजिक रूप धारण कर लेता है। कृष्ण समस्त ब्रजमडल की भावनाओ के केन्द्र बन जाते है। ब्रज के सब ग्वालबाल, गायें और गोपियाँ कृष्ण से सम्बद्ध हैं। नद महर के घर होने वाली कृष्ण विषयक प्रत्येक बात, प्रत्येक घटना सारे ब्रज में व्याप्त हो जाती है और परस्पर भाव-सम्बन्धों और भाव-प्रतिक्रियाओ को गहनतर बनाती चलती है। कृष्ण के अपने बाल स्वभाव और बाल चेष्टाओ के अतिरिक्त, यदि बलराम और ग्वालबालो के साथ उनकी क्रीड़ाओ में भावो का एक रूप मिलता है तो गोपियो के साथ दूसरा और नद

यशोदा के साथ तीसरा। भावो की इस विविधता की समाप्ति यही नही हो जाती। कृष्ण को लेकर यशोदा और गोपियो के बीच एक नये ही प्रकार का भाव-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिससे कभी वे कृष्ण का पक्ष लेकर यशोदा से लडने आती है और कभी खीझ कर उलाहना देने। इस सारे भाव-विस्तार का केन्द्र एकमात्र कृष्ण की बाल लीलाएँ ही है जिनके आश्रय से मानवीय भावो के विविध रूपो की अनुभूति एव अभिव्यक्ति कवियो ने की है।

मानवीय भावो केसाथ कृष्ण के लोकोत्तर रूप का मिश्रण—कवियो द्वारा कृष्ण की बाललीलाओ के चित्रण में एक विशेषता और परिलक्षित होती है और वह है सामान्य मानवीय भावो के साथ लोकोत्तर एव अलौकिक रूप का सम्मिश्रण रस की दृष्टि से देखने पर इस प्रकार के वर्णन रसास्वादन में बाधक सिद्ध होते है परन्तु इसके साथ ही लौकिकता को सम्बद्ध कर देने से एक एसी रहस्यमयता उत्पन्न हो जाती है जो आश्चर्य, विस्मय तथा कुतूहल की सृष्टि करके आलबन के प्रति एक विचित्र आकर्षण जगा देती है जिससे उक्त दोष आवृत हो जाता है। इसीलिए कृष्ण भक्त के हृदय में एसे वर्णनो से जो अनुभूति जागृत होती है वह रस सचार में बाधक न होकर एक प्रकार से सहायक ही होती है। माहात्म्यज्ञान के साथ उसे कृष्ण की लीलाएँ और भी अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगती है। यह सत्य 'नारदभक्तिसूत्र' के रच यिता को ज्ञात था—

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवाद ॥२२॥

गुजराती और ब्रज दोनो के कवियो ने कृष्ण की बाललीलाओ के वर्णन में मानवीय भावो के चित्रण के साथ रहस्यात्मकता का पग पग पर मिश्रण किया है। यही नही इस प्रकार की रहस्यानुभूति उनके वर्णन का एक प्रधान अग रही है जिसकी ओर इगित करना व कभी नही भूलते।

अनेक असुरो के वध की अलौकिक घटनाएँ इस भाव के साथ एक सामजस्य उत्पन्न कर देती है क्योकि उनकी पृष्ठभूमि में इस प्रकार के वर्णन और भी कम अस्वाभाविक प्रतीत होते जाते है। प्रत्येक असुर को पराजित करने के साथ ब्रजवासियो का विश्वास कृष्ण की अलौकिक शक्ति पर दृढतर होता चलता है। जिस वातावरण और जिन परिस्थितियो में ब्रजवासियो का चित्रण किया गया है उसका लक्ष्य कृष्ण के लोकोत्तर रूप की स्थापना ही रही है। समस्त कृष्ण-काव्य का प्रधान उद्देश्य भी मानवीय अनुभूतियो का स्पर्श करते हुए उन्हें लोकोत्तर चेतना की उपासना में केन्द्रित कर देना ही रहा है। कृष्ण के अलौकिक चरित उनकी अपार शक्ति के स्वय

परिचायक हैं अतएव उनके लौकिक चरित के चित्रण में अलौकिकता की व्यजना का अपेक्षाकृत विशेष ध्यान रक्खा गया है। कृष्ण के लिए सर्वत्र प्रभु, स्वामी, पुरुषोत्तम, 'परिब्रह्म' आदि ऐसे विशेषणो का प्रयोग किया गया है जो उनके माहात्म्य के द्योतक हैं।

मृत्तिका-भक्षण तथा यमालार्जुन-मोक्ष के प्रसग में कृष्ण के विराट रूप का भागवत के अनुसार जो वर्णन दोनो भाषाओ के कवियो ने किया है उसका निर्देश वस्तु विश्लेषण के साथ किया जा चुका है। यहाँ वे प्रसग उल्लेखनीय हैं जहाँ माखनचोरी, दधिमथन आदि सामान्य मानवीय चेष्टाओ के साथ कवियों ने अपनी इच्छा द्वारा अलौकिकता का मिश्रण किया है। दधिमथन के वर्णन में सूर लिखते है—

जब मोहन कर गही मथानी।
परसत कर दधि माट नेति चित उदधि सैल वसुधा भय मानी।
कबहुक अहुठ परग करि वसुधा कबहु देहरी उलँघि न जानी।
कबहुक सुरमुनि ध्यान न पावत कबहु खिलावत नद की रानी।
कबहुक अमर खीर नहि भावत कबहु मेखला उदर समानी।
कबहुक आर करत माखन को कबहुक भेष दिखाइ बिनानी।
कबहुक अखिल उदर नहि तर्पित कबहुक दल माखन रुचि मानी।
सूरदास प्रभु की यह लीला परत न (निग) महि शेष बखानी।
—सू० सा०, पृ० १४९

नरसी मेहता ने दधिमथन के प्रसग में इसी प्रकार अलौकिकता का आरोप किया है। दोनो का सादृश्य दर्शनीय है—

महीडु मथवा ने उठी जशोदा राणी।
विसामो खवडाववा उठ्या सारगपाणी।
रत्नागर जाणे रे मुजमा रत्न नें थी।
ठालीमाली चालो घेलो शुं करशे मथी।
मेरु जाण रे हु तो चौदश गाठ्यो।
हावे नव रवैयो करशो जाउ रे नाठो।
—न० कृ० का०, पृ० ५०२

परमानददास भी इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हैं।

सिव विरचि मुनि देवता जाको अत न पावैं।
सो परमानन्द ग्वालि को हँसि भलो मनावैं।

रसखान के प्रसिद्ध छंद 'ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै' में कृष्ण के लौकिक तथा अलौकिक चरित के विचित्र संयोग की ही ओर संकेत है। गुजराती कवियों में नरसी, भालण, तथा प्रेमानंद आदि ने बार बार इस प्रकार का वर्णन किया है—

नरसी— जे मुख निगमअगम करी गाये, ते मुख जशोदाजे पान करी पाये।
योगीया ध्यान धरे नहि पावे, ते अहिरडा घेर मलवे आवे।
—न० कृ० का०, पृ० ५०१

भालण— ब्रह्मादिक जेने घाये, तेवो सुन्दर श्यामजी।
वृद्धपणें हु पुत्र ज पाम्यो, भालणप्रभु श्रीराम।
दशमस्कंध, पृ० ३५

प्रेमानन्द— ब्रह्मा ने स्वप्ने नव आवे, त गोविंद ने गोपी नचावे।
—श्रीम० भा०, पृ० २६०

रसखान से प्रेमानन्द की उक्ति का कितना साम्य है यह स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त प्रेमानन्द ने हिंडोला झुलाने के सामान्य प्रसंग में भी आध्यात्मिकता और अलौकिकता का आरोप किया है। हिंडोला को संसार का प्रतीक बना दिया है—

संसार हिंडोलो बाध्योरे ब्रह्मे,
काई कर्मे हींचे कोटी जीवडा रे।
शंकर ब्रह्मा जागी रे झूल्या,
भूल्या भ्रमे मोहोटा मुनि रे।
आवागमन हींडोलेरे हींचे,
न प्रीछे प्राणी माया मल्या रे।
जगत झुलाव्यु सोपी कर्मने,
ते ब्रह्म ने झूलावे व्रज सुन्दरी रे।
—श्रीम० भा०, पृ० २४८

प्रेमानन्द अन्यत्र लिखते हैं—

पालक ब्रही परब्रह्म माता कने अन्न मांगे रे।
पेट देखाडी ने रोय, नीचा थई पाये लागे रे।
—वही, पृ० २५२

कृष्ण की बाललीलाओं के प्रसंग में इस प्रकार के कथन इसलिए भी विशेष रूप से मिलते हैं कि वस्तुतः सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, पूर्णकाम ब्रह्म का अंश, अशक्त, क्षुधातुर बालक के सदृश आचरण करना सबसे अधिक विरोधपूर्ण प्रतीत होता है। वैसे कृष्ण की मानवीय शृंगार लीलाओं के प्रसंग में भी इस प्रकार का मिश्रण मिलता है परन्तु बाललीलाओं में अधिक उपलब्ध होता है।

कृष्ण-जन्म—कृष्ण को परब्रह्म स्वीकार कर लेने पर उनका जन्म अथवा प्राकट्य साधारण घटना न रह कर एक महान् भूतपूर्व आनन्दोल्लास का पर्व बन जाता है। कृष्ण काव्य में इस अपार असीम आनन्द को शब्दों में बांधने का अद्भुत प्रयास किया गया है। अन्य कवियों की अपेक्षा अष्टछाप के कवियों ने इस विषय को विशेष भावुकता एवं कौशल से चित्रित किया है क्योंकि कृष्ण का बाल रूप ही उनकी उपासना का प्रमुख केन्द्र था। सूर के लीलागान की प्रेरणा पहले पहल इसी स्थल पर मूर्तिमती हो उठी थी।

आनन्द की पहली लहर यशोदा के हृदय में आती है जब जागने पर वह अचानक 'नवनिधि' को अपने अंक में पाती है। उस समय की उसकी दशा के वर्णन में सूर द्वारा अनुभावों की योजना दर्शनीय है—

> जागी महरि पुत्र मुख देखत पुलक अंग उर में न समाई।
> गद्गद कंठ बोल नहिं आवे हर्षवत ह्वै नंद बुलाई।
>
> —सू० सा०, पृ० १२७

उल्लास के अतिरेक में उसे किसी के सामने व्यक्त करके सह-अनुभव की भावना मानव मनोविज्ञान का सुपरिचित सत्य है। नंद से अधिक यशोदा का और कौन हो सकता था जिसे वह अपने हृदय से फूटते हुए आनन्द स्रोत को दिखाती। लज्जा हर्षातिरेक में वह जाती है और वह स्वयं नंद से दौड आने के लिए व्यग्रता से कह उठती है।

आनन्द की दूसरी लहर नंद के हृदय को सराबोर कर जाती है—

> दौरि नंद गये सुतमुख देख्यो सो शोभा सुख बरनि न जाई।
>
> —वही

नंद अपनी वृद्धावस्था और पद को भूल कर ग्वालों के साथ नाच उठते हैं—

> नाचत महर मुदित मन कीनो ग्वाल बजावत तारी।
>
> —वही

अक्षत, चदन, दूब, वदनवार, आदि से पर्व खिल उठता है। बधाई दही और हल्दी छिड़क कर दी जाती है।

आनन्द की तीसरी लहर ब्रजवासियों के हृदय में उमडती है। काव्य की दृष्टि से यह स्थल अत्यन्त मनोरम है। ब्रजवासी प्रसन्नता में एक दूसरे से पुकार पुकार कर कहने लगते हैं—

> आजु बन कोऊ जिनि जाइ।
> सबै गाइ और बछरा समेत सब आनहु चित्र बनाइ।
> ढोटा है रे भयो महरि के कहत सुनाइ सुनाइ।
> सबहि घोष में भयो कोलाहल आनन्द उर न समाइ।
> कत हो गहर करत रे भैया बेगी चलै उठि धाइ।
> अपने अपने मन को चीत्यो नैनानि देखो आइ।
> एक फिरत दधि दूब बँधावन एक रहत गहि पाइ।
> एक परस्पर करत बधाई एक उठत हँसि गाइ।
> तरुण किशोर वृद्ध अरु बालक वैठ चौगुने चाइ।
> सूरदास सब प्रेम मगन भये गनत न राजाराइ।
>
> —वही

व्यक्ति के मनोभावों के चित्रण में सूर की गहरी पैठ है ही साथ साथ समूह की भावनाओं को अंकित करने में भी उनकी क्षमता अपरिसीम है।

आनन्द की चौथी लहर का वर्णन सूर ने गोपियों के भावातिरेक को अंकित करके अपने प्रसिद्ध पद 'ब्रजभयो महरि के पूत जब यह बात सुनी' में किया है। जन्म के अवसर पर होने वाले लोकाचारों और उनके पीछे उमडने वाले भाव-समुद्र दोनों को सूर ने अत्यन्त सूक्ष्मता से अभिव्यक्ति प्रदान की है। इतना ही नहीं ढाढी के रूप में स्वय को प्रस्तुत करने का लोभ वे सवरण न कर सके और इस प्रकार अपने व्यक्तित्व को वर्ण्यवस्तु के साथ उन्होंने घुला मिला दिया। इसे आनन्द की पाँचवी लहर कह सकते हैं—

> नंद जू मेरे मन आनद भयो हौ गोवर्धन ते आयो।
> तुमरे पुत्र भयो मैं सुनिकै अति आतुर उठि धायो।
>
> जब तुम मदन मोहन करि टेरो इहि सुनिकै घर,जाऊं।
> हौ तो तेरो घरको ढाढी सूरदास मेरो नाऊं।
>
> —सू० सा०, पृ० १३१

कृष्ण जन्म पर वधाई के पद परमानंददास, नंददास आदि अन्य अनेक व्रजभाषा के कवियों ने रचे परन्तु सूर की अनुभूति तीव्रतम लगती है।

गुजराती में नरसी मेहता ने आनन्द की इन लहरों में से कुछ का उल्लेखनीय स्पर्श किया है। सूर द्वारा परिलक्षित यशोदा और नंद की हर्षाप्लावित मनोदशा की मनोवैज्ञानिक तह तक वे भी पहुँच गये —

प्रथम नयणे निरखु कुंवर ने, पछे जगाडु नंदराय रे।
जागो प्यारा सबल सारुं, जाग्यु भाग्य तमारुं वरणाय रे।
जग्या नंद जी आनंद पाम्या, जोया जगदाधार रे।
कोटि रवि शशी प्रगट्या, कोटी कोटी दीवडानी हार रे।
—न० कृ० का०, पृ० ४३५

आपस में कृष्ण के दर्शन को उत्सुक गोपियों के मनोभाव को भी उन्होंने शब्द बद्ध कर लिया है—

चालो सखी आपण जइअे, नंदकुवर ने जोवा रे।
कंचन थाल भरी मुकताफलनी, मंगल गान करेवा रे।
—वही, पृ० ४३७

यशोदा और नंद के मनोभाव को प्रेमानद ने भी परखा परन्तु इसके आगे वे सूर के से भावातिरेक में अपने को लीन नही कर सके।[१] उनका वर्णन कथा की वर्णन की सामान्य भावुकता भर पा सका है। कोई विशेष अनुभूति कवि को इस स्थल पर हुई हो, ऐसा नही लगता। किसी भी गुजराती कवि ने सूर की तरह ढाढी बनकर अपने व्यक्तित्व को जन्म समय के हर्षोल्लास में तल्लीन नही किया।

बाल स्वाभाव—शिशु सुलभ चेष्टाओं एव क्रीडाओ के स्वाभाविक अकन की ओर अनेक कवि प्रवृत्त हुए। कुछ आधार भागवत ही में मिल गया किन्तु कवियो ने अपनी कल्पना और भावना से उसका कई गुना अधिक विस्तार कर लिया। शिशु स्वभाव की सरलता, भोलापन, चचलता, हठ तथा सहज प्रसन्नता सभी कुछ इतनी कुशलता से अकित किया गया है कि उसे देख कर आश्चर्य होता है। कृष्ण-काव्य की लोकप्रियता का सबसे बडा कारण यही है कि कवियो ने लोक सामान्य मानव स्वभाव के विविध रूपों को अत्यन्त सूक्ष्मता से आत्मसात् और मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। सूर इस क्षेत्र के सरताज है किन्तु व्रजभाषा में परमानन्ददास और गुजराती में भालण ने पर्याप्त भावमयता से कृष्ण के बाल स्वभाव का अंकन किया है। प्रेमानन्द और केशवदास ने भी प्रबन्धात्मकता के बीच किंचित् अवकाश निकाल कर बालभाव के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त किया है।

छाया देख कर कृष्ण के मुग्ध होने का वर्णन भालण ने भी किया है परन्तु उसमें उतनी पूर्णता एवं सजीवता नहीं है जितनी सूर के वर्णन में मिलती है।[६]

प्रेमानद ने कृष्ण के भोलेपन का जो चित्रण किया है वह भालण से अधिक सजीव है परन्तु सूर के समकक्ष फिर भी नहीं पहुँचता। प्रेमानद के कृष्ण यह भी नहीं जानते कि दूध में शक्कर पड़ती है या नमक (मीठु)—

> अवलु चाले अविनाश, नथी साभल्यु दीठु रे।
> छासमा मागे खाड, दूधमा मीठु रे ॥१४॥
>
> —श्रीम० भा०, पृ० २५२

उन्होंने कृष्ण की चचलता, हठ और शरारत का वर्णन भोलेपन की अपेक्षा अधिक सजीव किया है। नहलाने धुलाने का काम पूरा भी नहीं हो पाया कि कृष्ण भाग जाते हैं, एक आँख में काजल लग पाया एक वैसी ही छूट गयी। वे यशोदा के पेट में लात मारते हैं और नद की दाढ़ी मूँछ नोच डालते हैं। नद के मुँह का चबाया पान निकलवा कर छोड़ते हैं। अन्न पकने में देर होते देख कर कच्चा ही परसवाने पर अड़ जाते हैं। बछड़ो की पूँछ मरोड़ कर उन्हें दुड़ा देते हैं और अपने हाथ कीचड़ में सान लेते हैं। बदरों को बुलाकर खिला देते हैं और कहीं लघुशका कर जाते हैं कहीं किसी बालक को ठोकर मार कर गिरा देते हैं। माखन चुराने में तो और भी उद्दडता दिखाते हैं।[१]

सूर के कृष्ण में चचलता और बाल सुलभ हठ का पूर्ण समावेश हुआ है। जहाँ यशोदा कृष्ण को नहलाने के लिए कहती है वे लोट जाते हैं। बहुत मनाने पर भी नहीं मानते —

> जसुमति जबहि कह्यौ अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री।
> तेल उबटनो लै आगे दधि कहि लालहि चोटत पोटत री।
>
> —सू० सा०, पृ० १५५

घर खिलौने का वर्णन दोनों भाषाओं के कई कवियों ने किया है पर सूर ने कृष्ण की जिस भोली चतुरता का परिचय दिया है वह अन्यत्र नहीं मिलता। वस्तुतः सूर के बाल कृष्ण का व्यक्तित्व अनूठा है। वे इतने भोले हैं कि चन्द्रमा को पास ही समझते हैं और इतने चतुर भी कि जलपात्र के चन्द्रमा से बहलते नहीं।[२]

सूर ने कृष्ण के बाल सुलभ सारल्य को जब समवयस्क बालकों के बीच रखकर उनके सीखने सिखाने, हारने जीतने और चिढ़ाने के स्वभाव के साथ जिस मनोवैज्ञानिक एवं कलात्मक रूप से चित्रित किया है वह अद्वितीय है।

सूर के कृष्ण इतने भोले हैं कि मणिखचित आगन में अपने प्रतिबिम्ब को दूसरा बालक समझ कर पकड़ने दौड़ते हैं और उसे 'रवनी' लेकर खिलाते हैं।[1]

यशोदा यह कह कर कि दूध पीने से चोटी बढेगी, कृष्ण को दूध पिलाती है। कृष्ण एक ओर दूध पीते जाते हैं दूसरी ओर बालो को टटोलते जाते हैं कि चोटी बढी या नही—

कजरी को पय पियहु लाल तेरी चोटी बढै।

पुनि पीवत ही कच टकटोवैं झूठें जननि रढै।

—वही, पृ० १५३

और कुछ समय बीत जाने पर भी जब चोटी बढती नही दिखायी देती तो खीझ कर पूछ उठते हैं—

यशोदा कबहिं बढैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जु कहति बल की बेनी ज्यो ह्वै है लांबी मोटी।

—वही

सोचने पर उनकी समझ में यह आता है कि चोटी इसलिए नही बढ रही क्योकि यशोदा 'काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी। भालण, नरसी और प्रमानद ने इस प्रसग को उठाया तो है परन्तु सूर की तरह उन्होंने कृष्ण के भावों को सूक्ष्म रूप से प्रस्फुटित नही किया—

भालण— क्षणु अक बेसो मोहन जी ओलु तारी चोटी रे।
केवडेल घाली गुथु ज्यम त्यम थाये मोटी रे।
. . . .
मारा सम छे हो मन मोहन माखण रोटी खाओ रे।
ऊपर दूध कूर शीरावो ज्यम त्यम मोटा थाओ रे।

—दशम स्कध, पृ० ५०

नरसी— बढया दूध साकर सगाथे अेक अेक घूटडे पीजे रे।
वेण वागे वहाला जी तमारी, बलभद्र पे मोटी थाय रे।

—न० कृ० का०, पृ० ४६२

प्रमानद— जो कृष्ण गु थावे चोटली, घणु माखण आपु रोटली।

—श्रीम० भा०, पृ० १६०

छाया देख कर कृष्ण के मुग्ध होने का वर्णन भालण ने भी किया है परन्तु उसमें उतनी पूर्णता एव सजीवता नही है जितनी सूर के वर्णन में मिलती है।[६]

प्रेमानद ने कृष्ण के भोलेपन का जो चित्रण किया है वह भालण से अधिक सजीव है परन्तु सूर के समकक्ष फिर भी नही पहुँचता। प्रेमानद के कृष्ण यह भी नही जानते कि दूध में शकर पडती है या नमक (मीठु)—

अवलु चाले अविनाश, नथी साभल्यु दीठु रे।
छासमा मागे खाड, दूधमा मीठु रे॥१४॥

—श्रीम० भा०, पृ० २५२

उन्होने कृष्ण की चचलता, हठ और शरारत का वर्णन भोलेपन की अपेक्षा अधिक सजीव किया है। नहलाने धुलाने का काम पूरा भी नही हो पाया कि कृष्ण भाग जाते है, एक आँख में काजल लग पाया एक वैसी ही छूट गयी। वे यशोदा के पेट में लात मारते है और नद की दाढी मूँछ नोच डालते है। नद के मुँह का चवाया पान निकलवा कर छोडते है। अन्न पकने में देर होते देख कर कच्चा ही परसवाने पर अड जाते है। बछडो की पूँछ मरोड कर उन्हें पुदका देते है और अपने हाथ कीचड में सान लेते है। बदरो को बुलाकर खिला देते है और कही लघुशका कर जाते है कही किसी बालक को ठोकर मार कर गिरा देते है। माखन चुराने में तो और भी उद्दडता दिखाते है।[१]

सूर के कृष्ण में चचलता और बाल सुलभ हठ का पूर्ण समावेश हुआ है। जहाँ यशोदा कृष्ण को नहलाने के लिए कहती है वे लोट जाते है। बहुत मनाने पर भी नही मानते —

यसुमति जबहि कह्यो अन्हवावन रोइ गये हरि लोटत री।
लेत उबटनो लै आगे दधि कहि लालहि चोटत पोटत री।

—सू० सा०, पृ० १५५

चद खिलौने का वर्णन दोनो भाषाओ के कई कवियो ने किया है पर सूर ने कृष्ण की जिस भोली चतुरता का परिचय दिया है वह अन्यत्र नही मिलता। वस्तुत सूर के बाल कृष्ण का व्यक्तित्व अनूठा है। वे इतने भोले है कि चन्द्रमा को पास ही समझते है और इतने चतुर भी कि जलपात्र के चन्द्रमा से बहलते नही।[१]

सूर ने कृष्ण के बाल सुलभ सारल्य को अन्य समवयस्क बालको के बीच रखकर उनके खीझने खिझाने, हारने जीतने और चिढाने के स्वभाव के साथ जिस मनोवैज्ञानिक एव कलात्मक रूप से चित्रित किया है वह अद्वितीय है।

खेलते खेलते बलराम और ग्वाल बाल मिलकर कृष्ण को खिझाते हैं। कृष्ण रं
हुए माता के पास जाकर बलदाऊ की शिकायत कर देते हैं। सूरदास ने इस स्थल
भाव की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक बनाकर पूर्ण सफलता से अंकित किया है।"

सखाओ की बातें तो कृष्ण को याद नही रहती पर सबसे अधिक चोट उनके हृ
पर बलराम की बात से लगती है इसीलिए वे उन्ही की शिकायत करते हैं और स
सखाओ को बिगाडने का आरोप भी उन्ही पर लगाते हैं। यही नही उस खीझ
माता पर उतारते हुए उसे ही पक्षपाती कह डालते हैं। उनके हृदय को वास्तवि
शान्ति तब मिलती है जब माता उन्हें अपना पुत्र मान लेती है और बलराम को
कह देती है—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसो कहत मोल को लीन्हो तोहिं जसुमति कब जायो।
कहा कहौं यहि रिसि के मारे हौं खलन नहि जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु।
गोरे नद यशोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर।
तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिसि समेत लखि यशुमति सुनि सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
सूर श्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत।

—सू० सा०, पृ० १५१

कुछ ही पक्तियो में कृष्ण, बलराम, सखा और यशोदा, सबके हृदयो के भावो को अकृत्रिम सश्लिष्टता और सजीवता के साथ मूर्तिमान कर दिया गया है। बालस्वभाव का ऐसा मनोग्राही वर्णन समस्त कृष्ण-काव्य में अलभ्य है।

बालस्वभाव में सूर की ही नही परमानददास की भी काफी गहरी पैठ है। एक बेर बेचने वाली की आवाज सुनते ही कृष्ण अपनी नन्ही सी अजलि में आँगन में सूखते हुए धान भर कर उतावली से उसे बेरो के बदले देने ठुमक ठुमक चल पडते हैं। एक ही चित्र बाल स्वभाव की सूक्ष्म अनुभूति का प्रमाण है। एक बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति तीव्रतम होती है। वह बडो के व्यवहार की नक्ल करता है जो उसके शिशु रूप के साथ और भी मनोरम लगने लगता है—

कोउ मैया बेर बेचन आई।
सुनत ही टेर नद रावरि में लई भीतर बुलाई।

सूकत धान परे आँगन में कर अजुलि बनाई ।
ठुमुक ही ठुमुक चलत अपने रँग गोपी जन बलि जाई ।
लीए उठाय रिझाय करि मुख चुम्बत न अघाई ।
परमानद स्वामी आनन्दे बहुत बेरि जय पाई ।

—डॉ दी गुप्त के निजी पद सग्रह से, पद स० २७

वालक की अनुकरण-वृत्ति का इससे भी अधिक मनोरम चित्र सूर ने अकित किया हैं। नद और कृष्ण एक साथ भोजन करने बैठे। जो कुछ नद खाते हैं वही कृष्ण भी खाना चाहते हैं पर खाना आता नही। नद की देखा देखी मिर्च खा लेने पर कृष्ण के आँसू भर आते है और वे रोते हुए बाहर उठ भागते हैं। तब रोहिणी माता मीठा कौर देकर चुपा लेती हैं।[१२]

यही नही वडे ग्वाला की देखादेखी कृष्ण अपने नन्हे हाथो से काली सफेद गायो को नाम ले ले कर बुलाने की चेष्टा भी करते हैं—

बाँह उँचाइ काजरी धौरी,
गैयन टेरि बुलावत ।

—सू० सा०, पृ० १५४

इस प्रकार के वर्णन नितान्त मौलिक है। कवि की अनुभूति लोक जीवन में डूब कर प्रतिदिन घटित होने वाली सामान्य से सामान्य वस्तु को चुन लाती है और कृष्ण से उसे सम्बद्ध करके एक ओर तो कृष्ण के प्रति अपने घनीभूत आकर्षण को व्यक्त करती है दूसरी ओर काव्य में लोक हृदय को रसमग्न करने की अद्भुत क्षमता उत्पन्न कर देती हैं। यह विशेषता न्यूनाधिक गुजराती और व्रजभाषा दोना के कृष्ण-काव्य में उपलब्ध होती हैं। एक अन्य उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी।

बालक को 'हौआ' या 'हाऊ' कहने से डर लगता है। माताएँ इस प्रकार बालको को डरा कर उनको अनुचित काम करने से वर्जित करती हैं। यह लोक जीवन में प्राप्त होने वाला सामान्य सत्य है। अनेक कवियो ने कृष्ण के साथ इसे सम्बद्ध करके वाल-स्वभाव के चित्रण में स्वाभाविकता एव सजीवता उत्पन्न की है।

केशवदास ने लिखा है कि जब कोई एक बालक 'हाऊ आ रहा है' कह कर कृष्ण को डरा देता है तो वे माता की गोद में मारे भय के छिप जाना चाहते हैं।

अेक कहे 'हरि! हाऊ आवे' धूजतो माता तणा स्तन धावें।

—श्रीकृष्ण लीला काव्य, पृ० ३९

प्रेमानद मे, हाथ से दीपक छू लेने वाले, भोले कृष्ण 'हाऊ' का नाम सुन कर रोने से चुप हो जाते हैं—

> प्रगट करे अज्ञान हाथ दीप ग्रहे रे।
> ओर वरडवा आव्यो हाउ, रोतो टप रहे रे।
>
> —श्रीम० भा०, पृ० २५२

सूर ने दोनो प्रकार की मनस्थितिया का वर्णन किया हैं। एक ओर यशोदा 'हाऊ' का नाम लेकर कृष्ण को वन में दूर जाने से वर्जित करती है दूसरी ओर बलराम कृष्ण को तमाशा दिखाने का बहाना करके वन में ले जाते हैं और वहाँ 'हाऊ काट खायगा' यह कर उन्हें डरा देते हैं—

> १ दूरि खेलन जनि जाहु लला वन मेरे हाऊ आयो है।
>
> —सू० सा०, पृ० १६०
>
> २ मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
> कहन लगे वन बडो तमासो सब मौडा मिलि आऊ।
> मोहू को चुचुकारि गये लै जहाँ सघन वन झाऊ।
> भागि चले कहि गयो वहाँ ते काटि खाइ है हाऊ।
>
> —वही, पृ०, २०१

दोनो भाषाओ में बाल कृष्ण के स्वभाव एव मनोभावो को काव्य में कितनी कुशलता और भावमयता के साथ चित्रित किया गया है यह उपर्युक्त थोडे से उदाहरणा से ही स्पष्ट हो जाता है।

वय-विकास—नद यशोदा आदि की पूर्ण आसक्ति के केन्द्र-बिन्दु होने के कारण कृष्ण की लीलाओ की तरह उनके वय-विकास को व्यक्त करने वाली प्रत्येक स्थिति भाव कीदृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना के रूप में चित्रित मिलती है। हर चेष्टा हृदय को हिलोर देती है, हर सस्कार एक उत्सव, एव पर्व समझ कर आमोद प्रमोद से आपूरित कर दिया जाता है। जरा सी प्रतिकूल परिस्थिति महान चिन्ता का कारण बन जाती है और निवारित हो जाने पर तत्काल द्विगुणित आनन्दोल्लास के रूप में परिणत हो उठती है। इसतरह की भावाभिव्यक्ति कवियो की अनुभूति की गभीरता और अभिव्यक्ति की कुशलता दोनो को व्यक्त करती है। वस्तु विश्लेषण से विदित हो जाता है कि भालण आदि गुजराती कवियो ने भी कृष्ण के बाल जीवन तथा वय विकास को अपने काव्य में व्यक्त किया है। अष्टछाप के कवियो विशेषत सूर में इस सम्बन्ध में विशेष सूक्ष्म दृष्टि परिलक्षित होती है जिसका बहुत कुछ श्रे

पुष्टिमार्गीय उपासना के स्वरूप को दिया जा सकता है क्योंकि उसकी सारी रूपरेखा कृष्ण की दिनचर्या और वय-विकास पर आधारित है।

कृष्ण का उलट जाना, घुटनो चलना, देहली पार कर जाना, यशोदा द्वारा चलना सीखना, डगमगाकर चलना फिर दौड़ने लगना, दूध के दाँत निकलना, तुतला कर बोलना, गायो को बुलाना, 'बाबा' 'भैया' कहने लगना, आदि उनके वय-विकास के साथ घटित होने वाली अनेकानेक बातो को कवियो ने अत्यन्त स्वाभाविक एव भावपूर्ण ढग से व्यक्त किया है और इस प्रकार कृष्ण के बाल-जीवन के चित्रण को सर्वांगीणता एव सम्पूर्णता प्रदान करने की प्रवृत्ति प्रकट की है।

कृष्ण अभी बहुत छोटे है। यशोदा बहुत दुलार प्यार से यत्न पूर्वक जब लोरी गाकर सुलाती है तो सोते है। जब शिशु कुछ महीनो का हो जाता है तो सोते-सोते उनके होठ फड़कने लगते है या उसे हँसी आने लगती है। सूर और भालण दोनो की दृष्टि वय-विकास के इस प्रथम सोपान के सौन्दर्य पर टिक जाती है—

सूर—यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै।
मेरे लाल की आउ निदरिया काहे न आन सुवावै।
तू काहे न वेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत है कबहुँ अधर फरकावै।
सोवति जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै।
इहि अतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नदभामिनि पावै।
—सू० सा०, पृ० १३३

भालण—सूतो सूतो अति हरो, हु हरखे हालर गाऊ रे।
निद्रा करो मारा नानडिया, हु बलिहारी जाऊ रे।
—दशमस्कध, पृ० ३४

'मेरे लाल की आउ निदरिया' और 'मारा नानडिया' कहने में मातृहृदय की जो कोमल स्निग्धता व्यक्त होती है वह लक्षित करने योग्य है। सूर के उक्त पद में शिशु को सुलाती हुई माता की मनस्थिति, भावो एव अनुभावो का जो शृखलाबद्ध चित्रण है वह उनकी काव्य-शक्ति की प्रौढता को व्यक्त करता है। शिशु के हँसने से उत्पन्न होने वाली प्रसन्नता कितनी व्यापक भावभूमि के साथ व्यक्त की गयी है। भालण ने भी उस प्रसन्नता को भली भाँति पहचाना है।

विकास की अगली स्थिति का प्रत्यक्षीकरण सूर की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि ही कर सकी। शिशु कुछ विकसित होने पर अपनी चेष्टा से उलट जाने में सक्षम होने लगता है। पहली बार जब उसकी यह क्षमता व्यक्त होती है तो माता पिता का हर्षमग्न होना स्वाभाविक है। एक तो सूर का यह चित्रण पूर्णतया मौलिक है दूसरे वे उसके साथ उत्पन्न होने वाले भावों को चित्रित करने में भी पूर्ण सफल हुए हैं।

यशोदा कृष्ण को पालने में 'पौढ़ा' कर दही मथने चली गयी। नंद आये और उन्होंने ज्योंही कृष्ण को उलटा देखा, हर्षित हो उठे। लगे यशोदा को बुलाने। यशोदा ने कृष्ण को उलट देखा तो वह भी झूम उठी। चूम चाट कर बलायें लेने लगी। सारे व्रज में यह समाचार फैल गया और घर-घर से व्रजनारियाँ कृष्ण को देखने आने लगीं। घर-घर आनंद बधाई होने लगी। कृष्ण साढ़े तीन महीने के हो गये—

> हरषे नंद टेरत महरि।
> आइ सुत मुख देखि आतुर डारिदै दधि ढहरि।
> मथति दधि यशुमति मथानी ध्वनि रही घर गहरि।
> श्रवण सुनति न महरि बातें जहाँ तहाँ गयी चहरि।
> यह सुनति तब मातु धाई गिरे जाने झहरि।
> हँसत नंद मुख देखि धीरज तब कर्‍यौ ज्यों ठहरि।
> श्याम उलटे परे देखे बढ़ी शोभा लहरि।
> सूर प्रभु कर सेज टेकत कबहुँ टेकत ढहरि।
>
> —सू० सा०, पृ० १३७

दूध के दाँत निकलने, देहरी में देह अटकाने आदि का वर्णन भी सूर ने इसी प्रकार अद्वितीय रूप में किया है। बालचरित वर्णन में सूर की भावाभिव्यक्ति की संश्लिष्ट सरलता को गुजराती कवियों में एकमात्र भालण ने ही स्पर्श कर पाया है। उदाहरण रूप में कृष्ण को यशोदा द्वारा चलना सिखाने का वर्णन लिया जा सकता है। भालण ने इसके वर्णन में सूर की तरह ही यशोदा के मुग्ध हृदय की भी अभिव्यक्ति की है और उससे उत्पन्न होने वाले गोपीमात्र के सुख को भी व्यक्त कर दिया है—

> पावलो पारे हरि गोपाल, जशोमती हुलरावे बाल।
> पग ऊपर पग धरती सही, डगमग त्यां पग माडे श्रीपति।
> साहडु दइ हरिने दृढपणे, क्षण क्षण प्रत्ये जाये भामणे।
> मुख चुंबे अति स्नेह करी, ओम रमाडे जननी हरि।
>
> —दशमस्कंध, पृ० २९-३०

वली वली पग ऊपर हरि चढे गोपी सहु आये दुखडे ।
भालण प्रभुनी क्रीडा घरनी, बालक रूपे विश्वनो धणी ।

—दशमस्कध, पृ० २९-३०

सूरदास ने जो वर्णन किया है उसका भालण के उपर्युक्त वर्णन से अद्भुत सादृश्य है—

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ कर पाणि गहावत डगमगाइ धरणी धरै पैया ।
कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति उर आनँदभरि लेत बलैया ।
कबहुँक बल कौ टेरि बुलावति इहि आँगन खेलो दुहु भैया ।
कबहुँक कुल देवता मनावति चिरजीवै मेरो बाल कन्हैया ।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नँदरैया ।

—सू० सा०, पृ० १४५

सूर की सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन की स्वाभाविकता देने वाले अन्य अश भी नही छूटे। नद भी कृष्ण को चलना सिखाते है। कृष्ण पहले दो दो पग चलते है फिर डगमगाकर रह जाते हैं, फिर चलने लगते है। इन बातो के चित्रण से उनका वर्णन भालण की अपेक्षा अधिक विस्तृत एव सूक्ष्म हो गया है जो उनकी अनुभूति की गभीरता का परिचायक है।

जिस प्रकार यशोदा कृष्ण को चलना सिखाती है उसी प्रकार भालण ने बोलना सिखाने का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है—

तोतलु बोलवु शिखवे मात। वारणे जाउ मारा जात।
अटपटी बोली ते बोले अधूरी। यत्न करी करे यशोदा पूरी।

—द० स्क०, पृ० ३०

सूर ने भी कृष्ण की तोतली बोली पर यशोदा की मुग्धता चित्रित की है, ऐसी मुग्धता जिसमें अधूरी बोली को पूरा करने का प्रश्न ही नही उठता—

अल्प दसन तोतरावत बोलत छवि चित हू न जात विचारी ।

—सू० सा०, पृ० १४१

बालछवि—कवियों ने बाल कृष्ण में अलौकिक शक्ति के साथ अलौकिक एवं अपरिसीम सौन्दर्य की भी भावना की है अतएव कृष्ण की बालक्रीडाओं के साथ ही साथ उनकी मनोहारिणी और प्रतिक्षण नवीन आकर्षण उत्पन्न करने वाली छवि का

भी पग पग पर अकन किया है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होने की वृत्ति प्राय. समस्त कृष्ण कवियो में पायी जाती है। कुछ में तो वह इतनी आवेगमयी एव प्रगाढ़ है कि कृष्ण के किसी भी चरित, किसी भी लीला का वर्णन बिना उनकी अनिन्द्य छवि के वर्णन के सभव ही नहीं हो सका है। कवि की दृष्टि रह रह कर बाह्य व्यापारों से हट कर कृष्ण के मुख और शरीर-शृगार पर जा टिकती है। कथावस्तु की गति रूपावर्षण के आगे शिथिल पड जाती है। कवि रूप-वर्णन करके कभी तो स्वय ही मुग्ध हो लेता है, कभी वह गोपियो के माध्यम से उन्हें रूपासक्त चित्रित करके सुखानुभूति प्राप्त करता है। कवियों द्वारा रचे गये कृष्ण के ये रूप-चित्र दो प्रकार के होते है, स्थिर और गतिशील। स्थिर रूप-चित्रो में शरीर के किसी अग अथवा किसी मुद्रा का, जीवन की गतिशीलता से, एक प्रकार से पृथक् करके वर्णन किया जाता है और गतिशील रूप चित्रो में जीवन की गतिशीलता के साथ। फलत पहले प्रकार के रूप-चित्रो में उपमा, उत्प्रेक्षादि के द्वारा सीधे ढग से रूपालेखन और उसके प्रभाव को व्यक्त कर दिया जाता है। दूसरे प्रकार के चित्रो में गतिशीलता के साथ विविधता और अनेकरूपता भी आ जाती है जिसके कारण उनका आलेखन *सश्लिष्ट एव सगुफित रूप से ही हो पाता है। सूरसागर बाल-छवि के विविध* प्रकार के वर्णनो से आपूरित है। ब्रज तथा गुजराती के अन्य अनेक काव्यो में कृष्ण की बाल-छवि का सुन्दर वर्णन मिलता है।

हाथ में मक्खन लिये आगन में घुटनो चलते कृष्ण की रूप-माधुरी का पान करके भालण और सूर ने प्राय समान रूप चित्रो की सृष्टि की है। वही लट की लटकन, वही वेश।[1]

रूप-चित्रण में भी दोनो कवियो ने समान शैली का अनुसरण किया है। सादृश्यमूलक अलकारों के आश्रय से वस्तुगत सौन्दर्य को व्यक्त किया गया है। साथ ही उसके दर्शन से दर्शक में होने वाली विस्मृति, आह्लाद एवं आत्मतल्लीनता की ओर भी इगित कर दिया गया है। जिन वस्तुओ में रूपात्मकता भी है जैसे मुख, दाँत आदि उनके सौन्दर्य के साथ अरूपात्मक वस्तुओं—जैसे तोतली वाणी और किलकन आदि—का भी सौन्दर्याकन मिलता है। यह रूप-चित्र स्थिर है और अभिव्यक्ति ऋजु।

गतिशील रूप चित्रण उस स्थल पर मिलता है जहाँ कवियो ने बाल-कृष्ण के नृत्य आदि का वर्णन किया है। भालण, नरसी और सूर की तरह अनेक कवियो ने इस प्रकार के रूप-चित्र प्रस्तुत किये है। नर्तित कृष्ण के रूपाकन में उक्त कवियो की कुशलता दर्शनीय है।[2]

इन रूप-चित्रों में भालण और केशवदास का ध्यान नर्तित कृष्ण की आंगिक चेष्टाओं पर विशेषतया केन्द्रित हुआ है और नरसी का वेगु-वाद्य आदि की सम्मिलित ध्वनि तथा अलंकरण पर। सूर ने इन विशेषताओं के साथ बालक की अनुकरण वृत्ति तथा यशोदा की मुग्ध, शिक्षण में लीन मनोदशा का समावेश करके चित्र को और भी सजीवता एवं गतिशीलता प्रदान कर दी है। रूप-वर्णन में उनकी दृष्टि अपेक्षाकृत सूक्ष्मतर है अतएव वे कृष्ण की नन्ही नन्ही एडियों में नाचने के कारण आई हुई अत्यधिक अरुणता को स्पष्ट देख लेते हैं। भालण और नरसी का ध्यान इस ओर नहीं गया।

माखनचोरी—भाव की दृष्टि से देखा जाय तो माखनचोरी शैशव से लेकर किशोरावस्था तक की समस्त कृष्णलीलाओं में प्रमुख रही है। कवियों को कृष्ण के इस रूप ने विशेष आकर्षित किया है और परिणामस्वरूप उनकी उर्वर कल्पना ने अनेकानेक नवीन परिस्थितियों एवं भावस्थितियों की उद्भावना कर डाली। मूलतः भागवत पर आधारित होकर भी यह प्रसंग बहुत सी मौलिक एवं नवीन अनुभूतियों से समृद्ध हो गया। माखनचोर कृष्ण के चोरी करने के बहाने, चतुरता, भोली मुखमुद्रा, यशोदा के प्रति गोपियों के उपालंभ, उत्तर-प्रत्युत्तर, चोरी के निमित्त दंडित किये जाने पर गोपियों में सहानुभूति का उद्रेक और दंडित करने वाली माता की खीझ एवं पश्चात्ताप इत्यादि के आलेखन और तत्सम्बन्धी भावों के सूक्ष्म एवं स्वाभाविक चित्रण के द्वारा गुजराती तथा व्रज दोनों के कवियों ने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है।

माखनचोरी की इतनी सरसता का कारण यह है कि कवियों द्वारा वह सामान्य चोरी से नितान्त भिन्न प्रेम और आकर्षण के भावों से संयुक्त कर दी गयी है। साधारण चोरी में चोर के प्रति न तो आकर्षण होता है, न स्वयं अपनी वस्तु के चुरा लिये जाने की लालसा होती है और न चोर को दंडित होते देख कर दया और प्रेम ही उमड़ता है। पर माखनचोर कृष्ण के प्रति गोपियों के हृदय में यह सभी भावनाएं उत्पन्न होती है। सूर ने तारुण्यावस्था की चेष्टाओं का भी समावेश इस किशोरलीला में ही करके सरसता को और भी परिवर्धित कर दिया है। उपालंभों में भी उन्होंने अनेकानेक मनस्थितियों का आलेखन किया है। एक ही बात के भाव-भेद से अनेक रूप प्रदर्शित किये हैं।

कृष्ण की चोरी करने की वृत्ति से खीझने वाली गोपियों के हृदय में उनके प्रति गहरी रीझ भी छिपी हुई है, इसको सूर और प्रेमानंद दोनों ने परिलक्षित किया है—

सूर—ग्वालिनि उरहन के मिस आइ।
नदनदन तनु मनु हरि लीनो बिनु देखे क्षण रह्यो न जाइ।
—सू० सा०, पृ० १७२

प्रेमानंद—गोपी आवी यशोदा पासे, करवा हरिनी राव जी।
वचन बोले बढ्या सरखा हरि साथे हृदे भाव जी।
—प्रेम० भा०, पृ० २५३

उपालभो में गोपियो द्वारा जिन भावनाओ की अभिव्यक्ति की गयी है वह भी बहुत समानान्तर है। जो कुछ कहती है और जैसे कहती है, दोनों में ही पर्याप्त समानता है यद्यपि ब्रजभाषा के कवियो ने उपालभ के अन्तर्गत आने वाली भावनाओं में अधिक तीव्रता ही नहीं प्रदर्शित की है वरन् भावभूमि को भी और अधिक विस्तृत कर दिया है। वस्तुतः उपालभ की कई स्थितियाँ है। पहले तो गोपियाँ कृष्ण के विविध प्रकार से माखन चुराने की शिकायत करती है और उनकी आदत को बिगाड़ने का दोष यशोदा पर आरोपित करती है। इस स्थल पर गोपियों की भावना इस सीमा तक पहुँच जाती है कि वे ब्रज ग्राम को छोड देने की बात भी कह डालती है। सूर और प्रेमानद दोनो,के उपालभ भाव की इस सीमा को स्पर्श कर लेते है—

सूर—अपनो गाँउ लेहु नँदरानी।
बड़े बाप की बेटी ताते पूतहिं भले पढावति बानी।
सखा भीर लै पैठत घर में आपु खाइ तौ सहिए।
मै जब चली सामुहे पकरन तबके गुण कह कहिए।
—सू० सा,० पृ० १७४

प्रेमानद—गोकुल केम रहीअे, मांगो गोरस नो वेपार कहोजी क्या जइअे।
....
अकलो होय तो आदर दीजे अमने हरि वहालो छे हाडजी।
सह परिवारे आवे सामलियो लावे गोप मर्कटनी धाड।
—प्रेम, भा०, पृ० २५३

भालण और नरसी के उपालभ, भाव की दृष्टि से, इस सीमा तक नही पहुँचते।

उपालभ की दूसरी स्थिति वह है जहाँ गोपियों की शिकायत सुनकर यशोदा कृष्ण को दड देती है। कृष्ण को रस्सी में बँधा, और यशोदा को हाथ में छडी लिये देखकर गोपियाँ दूसरे प्रकार से उलाहने देने लगती है। वे यशोदा को क्रूर और निर्दय तक कह डालती है क्योकि एकलौते बेटे को वृद्धावस्था में पाने वाली कौन ऐसी

माँ होगी जो उसे खाने-पीने की बात पर मारे-डाँटे । यह भी तब जब कि घर में दूध, दही और मक्खन की खान हो । इस प्रकार की उपालंभ-भावना भालण और सूर मे तीव्रतम रूप में मिलती है । यशोदा द्वारा जो उत्तर दिलाये गये है उनमें भी पर्याप्त भाव-साम्य है ।[15]

इसके बाद जब एक गोपी कृष्ण के खाये हुए मक्खन को अपने घर से लाकर पूरा कर देने को कहती है तो यशोदा की सहनशक्ति अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाती है । उक्त दोनो कवियो ने इस भावस्थिति का भी चित्रण किया है । यशोदा के हृदय की मार्मिक दशा को दोनो कवियो न अपने अपने ढग से परखा और व्यक्त किया है —

भालण—(क) जशोदा छोडो कहान ने, हु आपु गोरस गोळी रे ।
अेवडी रीसे घटे नहि तमने, हु जाणु छु भोळी रे ।

—दशमस्कध, पृ० ४०

(ख) मारो कुवर वणसेरे तमारु आवे ने जाय ।
ढोल्यानु दुख नथी लागतु अे ओलभा नव खमाय ।

—वही

सूर—(क) कहो तौ माखन ल्याऊँ घर ते ।
जा कारण तू छोरति नाही लकुट न डारति कर ते ।

—सू० सा०, पृ० १७९

(ख) कहन लगी अब बढि बढि बात ।
ढोटा मेरो तुमहिं बँधायो तनकहिं माखन खात ।
अब मोहि माखन देत मँगाय मेरे घर कछु नाही ।

—वही

विषयगत वात्सल्य के पूर्ण विस्तार को देखते हुए सूर का बाल चित्रण अद्वितीय लगता है । कृष्ण का जो रूप उन्होंने माखनचोरी के प्रसग में व्यक्त किया है वह एक ओर तो नितान्त भोला है और उसमें शिशुता की झलक मिलती है, दूसरी ओर उसमें तारुण्य की चतुरता और रसग्राहिता भी प्रदर्शित की गयी है । किशोरावस्था के दोनो छोर सूर ने छूने की चेष्टा की है यद्यपि कही-कही असगति भी आ गयी है उसके परिहार के लिए उन्हें अलौकिकता का आश्रय लेना पडा है । कृष्ण सहसा आयु में बढकर गोपिया के प्रमभाव को तृप्त करते है और फिर चमत्कार से पाँच वर्ष के बन जाते है । कृष्ण के दोना रूप सूर ने अत्यन्त आकर्षक ढग से व्यक्त किये है—

मैया मैं नाही दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिली मेरे मुख लपटायो।
देखि तुही सीके पर भाजन ऊंचे घर लटकायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।
मुख दधि पोंछि कहत नँदनंदन दोना पीठि दुरायो।

—सू० सा०, पृ० १७६

इस पद में भोले कृष्ण चतुर बनने के प्रयास में और भी भोले लगते हैं। परन्तु एक ग्वालिनी को आलिंगनादि के द्वारा तृप्त करने के बाद चतुर कृष्ण जब भोले बनने का प्रयास करते है तो और भी चतुर ज्ञात होते हैं—

झूठहि मोहि लगावति ग्वारि।
खेलत मैं मोहि बोलि लियो हैं दोउ भुज भरि दीनी अँकवारि।
मेरे कर अपने कुच धारति आपुहि चोली फारि।
माखन आपुहि मोहि खवायो मैं कब दीन्हों ढारि।
कहा जानै मेरो वारो भोरो झुकी महरि दै दै मुख गारि।
सूर श्याम ग्वालिनि मन मोह्यो चितै रही इकटकहि निहारि।

—सू० सा०, पृ० १७२

यशोदा द्वारा कृष्ण को माखनचोरी न करने की सीख देने में माता की जिन भावनाओं का अंकन ब्रजभाषा में सूर और तुलसी ने किया है, वह गुजराती के काव्य में प्राप्त नही होता—

सूर—कन्हैया तू नहिं मोहि डेरात।
पटरस धरे छाँडि कत पर घर, चोरी करि करि खात।
बकति वकति तोसो पचि हारी नेकहुँ लाज न आई।
ब्रज परगन सरदार महर तू ताकी करत नन्हाई।
पूत सपूत भयो कुल मेरो अब मैं जानी बात।
सूरस्याम अबलौं तोहि बकस्यो तेरी जानी घात।

—सू० सा०, पृ० १७५

तुलसी ने इस स्थिति में सूर से अधिक सूक्ष्म भावग्रहणशीलता का परिचय दिया है जो निम्नोद्धृत पंक्तियो से स्पष्ट है—

छांडो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई।
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई।
उबटौं, न्हाहु, गुहौ चोटिया, बलि, देखि भलो वर करहि बड़ाई।
—कृष्णगीतावली, पद १३

यशोदा के इन शब्दों के पीछे कवि के मानव मनोविज्ञान की सूक्ष्म परख व्यक्त होती है।

गोचारण—कृष्ण के गोचारी रूप के प्रति भी कवियों ने अत्यधिक आसक्ति का परिचय दिया है। वास्तव में राजसी वेश की अपेक्षा कृष्ण का सरल वन्य वेश ही कवियों को अधिक आकर्षक लगा। भागवत के 'बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्' के अनुरूप कृष्ण को मोर के पंखों का मुकुट धारण किये हुए नटवर वेश में निरूपित करके सूर, मीरा, भालण और नरसी आदि अनेक कवियों ने उनके इस रूप के प्रति अपनी विशेष आसक्ति व्यक्त की है।[११]

गोचारण के प्रसंग में ग्वालबालो के बीच, छाक जीमते हुए, गायों को बुलाते, खेलते और सायंकाल धूल भरे ब्रज को लौटते कृष्ण के विविध मनोभावों एवं रूप-चित्रणों का सरस आलेखन ब्रजभाषा काव्य में उपलब्ध होता है। गुजराती में प्रेमानद ने पहले पहल गोचारण के लिए वन जाते हुए कृष्ण के प्रति नंद-यशोदा की ममतामयी चिंता और उसी से मिलीजुली प्रसन्नता का अत्यन्त मोहक अंकन किया है। नंद उन्हें पगड़ी पहनाते हैं और यशोदा काजल लगाती हैं। सज जाने पर कृष्ण दर्पण में अपनी शोभा देखना नहीं भूलते। एक सिरे पर सीके में भोजन बाधकर, लाल लाठी कंधे पर रखकर जब वे वन को चलने लगते हैं तो यशोदा बिना चुम्बन लिये जाने नहीं देती, नंद की आँखों में आँसू आ जाते हैं।[१०]

भालण ने कृष्ण के वनचारी रूप के प्रति आसक्त गोपियों की मनोदशा का अतुलनीय भावुकता से वर्णन किया है। एक गोपी को स्त्री होने का ही दुख है क्योंकि इस कारण वह दिन भर कृष्ण के साथ वन में रह नहीं सकती। इसलिए वह सोचती है कि किसी विद्या से यदि वे दिन में पुरुष बन जाती और रात में नारी बनी रहती तो कितना अच्छा होता—.

क. जो विद्या अेवी आवडे रे, थाउं दिवसे नर ने राते नार।
पगले पगले परवरुं रे, पधारे ज्यां प्राणाधार।
—दशमस्कंध, पृ० ५८

ख. नारीदेह का सरजिया नही तो रहता जी सग ।

—वही, पृ० ६८

कृष्ण से उसका मन 'साकर दूध' की तरह मिल गया है । वह कभी नद-यशोदा के भाग्य को सराहती है जिनके ऐसा पुत्र है और कभी वन में थके हुए कृष्ण का पसीना सुखाने के लिए वायु करने की कामना करती है—

'ह्वै वनमाल हिये लगियें अरु ह्वै मुरली अधरा रस पीजें'

जैसी लालसा रखने वाली मतिराम की गोपी की तरह वह भी कृष्ण की बाँसुरी बन कर उनके साथ रहने और अधरामृत पाने की अभिलाषा करती है—

धन्य ते नद जशोमती, जेने अेवो रे तन ।
ब्रह्मा हर रे जाणे नहि, अे बेहु माहे रे पुन्य ।
आपण सरज्या अभागिया, पूरी प्रीत न थाय ।
स्वेद वले छे रे श्याम ने, जइने कीजे रे वाय ।
दो नव सरज्या रे वासळी, रहेता प्रभुजी ने पाण ।
अधर अमृत रस चाखता जे रस वेद पुराण ।

—दशमस्कध, पृ० ६९

सूरदास ने एक नवीन प्रसग का समावेश करके छाक देने के लिए कृष्ण को खोजने में लीन यशोदा द्वारा भेजी हुई ग्वालिन की आतुरता का जो अकन किया है वह भी कम सराहनीय नही है—

छाक लिये शिर श्याम बुलावनि ।
ढूढति फिरति ग्वारि नीके करि कहूँ भेद नहिं पावति ।
टेर सुनति काहू की श्रवणनि, तही तुरत उडि धावति ।
पावति नही श्याम बलरामहिं व्याकुल ह्वै पछितावति ।
वृदावन फिरि फिरि देखति है बोलि उठे तह ग्वाल ।
सूर श्याम बलराम इहाँ है, छाक लेहु तिन लाल ।

—सू० सा०, पृ० १९५

इसके अतिरिक्त कृष्ण के द्वार पर जाकर उन्हें गोचारण के लिए ग्वाल-बाल जो कुछ कहकर बुलाते हैं और जिस आतुरता से कृष्ण बिना मुँह धोये खाते से उठ भागते हैं उन सबका चित्रण जितनी कुशलता से सूर ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है—

द्वारे टेरत हैं सब ग्वाल कन्हैया आवहु वार भई।
आवहु वगि बिलम जनि लावहु गैयाँ दूरि गईं।
इह सुनतहि दोऊ उठि धाये कछु अँचयो कछु नाही।
कितिक दूरि सुरभी तुम छाँडी वनतो पहुँची आँही।
ग्वाल कह्यो कछु पहुँची ह्वै हैं कछु मिलिहैं मगमाँही।
सूर स्याम बल मोहन भैया भैयन पूछत जाँही।
—सू० सा०, पृ० १९४

इस प्रकार के पारस्परिक सवादो से युक्त लोक-सामान्य जीवन के सहज, सरस और पूर्णतया मौलिक प्रसगो की उद्भावना तथा उनका भावपूर्ण अकनसूर की ऐसी विशेषता है जो गुजराती कवियो में तो नही ही मिलती, साथ ही ब्रजभाषा के कवियो में भी दुष्प्राप्य है। सूरसागर में ऐसे एक नही अनेक प्रसग उपलब्ध होते जिनका परिचय देना भी यहाँ सभव नही है।

२. नद, वसुदेव, यशोदा और देवकी के उद्गार—कृष्ण काव्य में पुत्र-प्रेम का चरम उत्कर्ष नद, वसुदेव, यशोदा और देवकी की मनोभावनाओ में मिलता है। नद और यशोदा की वात्सल्यमयी भाव-वृत्ति का निरूपण तो बालकृष्ण के उपासक कवियो द्वारा प्राय किया गया है परन्तु वसुदेव और देवकी के हृदय की भावनाओ का मर्मस्पर्शी आलेखन गुजराती कृष्ण-काव्य की एक विशेषता कहा जा सकता है। ब्रजभाषा के कवियो की तरह नद-यशोदा के हृदय की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित रखकर गुजराती कवियो ने वसुदेव और देवकी के मनोभावो की उपेक्षा नही की है। ब्रजभाषा मे सूरदास तक ने कृष्ण के ऐश्वर्य ज्ञान से देवकी के हृदय के सहज मातृत्व को अभिभूत करके उसके प्रति एक प्रकार का उपेक्षा-भाव ही प्रदर्शित किया है। 'दीनदयालु भक्तभयहारी' कृष्ण के कहने मात्र से पुत्र से बरसो के लिए बिछुडती माता का विलाप रुक जाता है—

कहि जाको ऐसो सुत बिछुरै सो कैसे जीवै महतारी।
करि न विलाप देवकी सो कहि दीनदयालु भक्तभयहारी।
—सू० सा०, पृ० १२६

कसवध के अनन्तर जब कृष्ण-बलराम उनसे मिलते हैं उस समय भी सूर ने उनके हर्षातिरेक की अभिव्यक्ति के साथ न्याय नही किया है। उनको प्रसन्नता होती है और वे उस आवेग में कस का भडार भी लुटा देते हैं परन्तु कृष्ण द्वारा प्रबोध पाने पर शीघ्र ही शात भी हो जाते हैं—

क तब वसुदेव हरषित गात।
स्याम रामहिं कंठ लाये हरषि देवै मात।
—सू० सा०, पृ० ६०१

ख फूले मात पिता दोउ आनंद बढ़ाय कै।
कस को भंडार सब देत हैं लुटाइ कै।
—वही

. .राती कवियो में भालण, नरसी और प्रेमानद ने प्रमुख रूप से देवकी की मर्मव्यथा को पहचाना है और उसे पर्याप्त भावावेग के साथ अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। देवकी को सबसे बडा दु ख यह है कि पुत्र तो उसने जाया है परन्तु उत्सव और बधाई यशोदा के द्वार पर होगी। माता होकर भी उसे मातृत्व के अधिकारो एव सुखो से वचित रहना पडेगा। उसके भाग्य में कृष्ण को जन्म देना भर लिखा था। उनके पालन पोषण करने और पास रखने के लिए उसे तरसना होगा और दूसरे यह सुख, उसके जीते जी ही, पायेंगे। यही उसकी मर्मव्यथा है और यही उसकी करुण कथा। भालण की देवकी यह सब सोचकर कृष्ण को हृदय से लगा लेती है और वसुदेव के हाथो में पुत्र को सौंपते हुए उसका कलेजा भय से कांप उठता है। कृष्ण के शिशु-जीवन के भांति-भांति के चित्र उसकी आंखो के आगे आ आकर उसे और भी कातर बना जाते हैं—

नानडियो साद देतो आवशे, अधरण अधर ते हसशे रे।
मारा भाग्य माहे नवल खियु, तेने अतर वसशे रे।
विषम चरित्र अे विधाता ना, मारे घर थी ओसरियु रे।
पुत्रजन्म नो आनन्द ओच्छव तेने घर जइ करिये रे।
तेने घेर तोरण बधाशे, थाशे अति दीवाली रे।
वेरण विधाताअे शु सरज्यु जे हु दुखे बाली रे।
पाग पागे घुघरडी ने, पगला भरशे लटके रे।
उतावली आवी ने मलशे अेने हरि त्या मटके रे।
ते जाण्या विना जननी थइ, मारो खोलो ठालो रे।
रूप देखाडी अभिनवु मने मूकी किम चालो रे।
पुनरपि कहेवारे देखिशु, सुदर मुख रढियालु रे।
में राके काइ नव चाले, पछे आसुडा ढालू रे।
अेणी पेरे देवकी टलवल्या, हरि ने हैये चापे रे।
पीयु तण कर बालक आपे, भे थी हैडु कापे रे।
—दशमस्कध पृ० १३

नरसी और प्रेमानन्द ने इसी के समानान्तर देवकी की भावनाओं का चित्रण

नरसी—पुत्र धन कमाई जशोदा केरी, माता ते कहेवाशे
मिथ्या माता हुँ पुत्र तुं मारो, पर घेर तोरण बधाशे
पुत्र ने आपी माता आसुडा ढाले पुत्र छेली अरज हमारी
क्रोड वरस आयुष्य हजो पुत्र ने, माता लूण नाखे उतारी
—न० कृ० का०,

प्रेमानंद— धन्य जसोदा, धन्य जसोदा, वण प्रसवे थई माता।
कोनु सांच्यु कोण भोगवे, लख्या लेख विधाता।
कीडी सचे ने तेतर खाओ, तेम थयु आज माहरे।
अेक रातनी हु नहीं माता, पर घेर पुत्र पधारे।
नदनदिनी नाथ झुलावशे, ते थी शु सुख थाशे।
दीठी रे भाई देवनी लीला, जसोदा घेर गीत गवाशे।
धमक घूघरी ठमक ठेकडे, सुत गोपी घेर रमशे।
हुं अपराघण हरखे ह णाई, विजोग पुत्रनो दमशे।
काला काला वचन वहालाना, जसोदा मात साभलशे।
बारे मास चोमासु मारे विजोगे नयणा गलशे।
मारे वारणे वैठा रखेवाल, राक्षस जेवा मदमाता।
गोपी ने घेर गुणीजन गाशे, वारणे तारण हाथा।
मलवा आवशे भाई भोजाई जसोदा नो धन सुख दहाडो।
मारे कस भाई धाइने आवशे करमा खड्ग उघाडो।
सगी मा ते नंद नी नारी, हु आसरे म्हो बोली।
सामुल्यु कही पोपटी प्रसवे, सुतने हुलावे होली।
पधारो तात महियारी माता, जीवजो तमे गौचारी।
आ मनोहर मुखडे क्यारे कहेशो, मुजने माता मारी।
—श्रीम० भा०, पृ०

प्रेमानंद के उक्त पद में कारावासिनी देवकी और गोकुल की रानी यशोदा की परिस्थितियों की भिन्नता को अत्यन्त कलात्मक रूप से किया है। साथ ही भावातिरेक का भी अधिक स्वाभाविक चित्रण उपलब्ध है। देवकी के हृदय में कृष्ण को अपने मुंह से माता कहने-सुनने की जो अभि व्यक्त की गयी है वह अत्यन्त मानवीय है और माता की सहज मानसिक दश पूर्णयता व्यक्त कर देती है।

- कृष्ण के मथुरा पहुँच जाने के पश्चात् देवकी के हृदय की दशा का चित्रण करने में भालण ने अतुलनीय भावुकता एवं कुशलता का परिचय दिया है। देवकी को जब यह समाचार मिलता है कि कंस के चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लों से कृष्ण को युद्ध करना है तो उसे घनी चिंता हो जाती है। वह दासी को समाचार लेने भेजती है और उसके मन में नाना प्रकार के संकल्प उठने लगते हैं।

कृष्ण का मन मथुरा में न लगता देखकर वह बार-बार उन्हें जो कुछ जैसे यशोदा करती थी वह सब वैसे ही करने का आश्वासन देती है। जब कृष्ण चित्र में गाय देखकर विश्वास भरने लगते हैं तो वह कहती है—

सुरभि देखी चित्रनी, सुत का मेलो निश्वास।
कहो तो अहीं आणवियो रे गोकुलनी सर्व वास हो।
जसोदा करती ते करू जे कहो मुजने बीर।
सभारी नदनारी ने का नयणे ढालो नीर हो।

परन्तु कृष्ण मनाये से नहीं मानते। वे बार बार यशोदा के प्रेम का बखान उसी के आगे करते हैं जिससे उसका दुख और भी बढ़ जाता है। पुत्र तो उसे मिल जाता है पर उसमें जिस भाव के पाने के लिए वह आतुर थी वह नहीं मिलता। जब कृष्ण अन्त तक यही कहते रहते हैं कि मेरे बिना यशोदा जी नहीं सकेगी तो लाचार होकर वसुदेव देवकी को यशोदा के बुलाने की सलाह देते हैं जिससे परिस्थिति और भी अधिक मार्मिक हो जाती है।[१८]

यह सुनकर देवकी को यशोदा से ईर्ष्या होती है और उस भाव के आवेग में वह यशोदा के किये हुए सारे कामों में दोष खोजने लगती है। वह सोचती है कि गायें चरवा-चरवा कर तथा तनिक से माखन के लिए नन्हें से कृष्ण को मार बाँध कर सचमुच यशोदा ने बहुत ही क्रूरता की है उसके सुत के साथ और तिसपर भी उसे उसके रूपरस का पान करने को मिला। न जाने कैसे वह माता कहलाई—

आपणपे अधिकेरा साधन नद जशोदाऐ कीधा रे।
गाय चारवा सरखा कारज, कोटि कर्म ने दीधा।
मही माखण काजे नीजडे बाध्यो, माड मारवा लीधा रे।
भालण जाणे जननी थइ, अमृत आखडी पीधा।

—वही, पृ० १७०

भालण ने जितनी मार्मिकता से देवकी की मानसिक अवस्था का चित्रण किया है उतनी ही मार्मिकता से यशोदा और नद के मनोभावो को भी व्यक्त किया है और इस स्थल पर वे सूर के समकक्ष पहुँच जाते हैं। सूर ने कृष्ण से वियुक्त नद और यशोदा की दशा का जितना भावपूर्ण अकन किया है उतना अन्य किसी भी कवि ने नही किया। इस क्षेत्र में एकमात्र भालण ही कुछ अशो में उनसे प्रतिस्पर्धा करते हैं। दोनो के भाव निरूपण में बहुत कुछ समानता उपलब्ध होती है परन्तु भावानुभूति के क्षेत्र में सूर से उनकी किसी प्रकार समता नही की जा सकती। सूर के भाव-वर्णन में उमडते हुए समुद्र की लहरो का आवेग है। सूरसागर में सागर शब्द की यथार्थता ऐसे ही स्थलो से सिद्ध होती है।

सूर की यशोदा किसी दशा में कृष्ण-बलराम को अक्रूर के साथ भेजने को उद्यत नही होती। अत्यन्त भोले भाव से वह अक्रूर से राजअश का धन लेकर वयस्क महर के साथ मथुरा लौट जाने को कहती है। उसकी समझ ही में नही आता कि नगर मे बालको को क्यो ले जाया जा रहा है—

> अपनो लाग लेहु लेखो करि जे कछु राजअश के दाम।
> और महर ले सग सिधारे नगर कहा लरिकन को काम।
>
> —सू० सा०, पृ० ५८१

पर जब कृष्ण स्वय अपने मुँह से मथुरा जाने की बात कहते है तो यशोदा को वियोग प्रत्यक्ष और असह्य हो उठता है, वह तत्काल मूर्छित होकर गिर पडती है। इस दशा का वर्णन सूर ने जिन शब्दो में किया है वे अत्यधिक भावोत्पादक हैं—

> जिहि मुख तात कहत ब्रजपति सो, मोहिं कहत है माइ।
> तिहि मुख चलन सुनत जीवति हौ विधि सो याह बसाइ।
> को कर कमल मथानी धरिहै को माखन अरि खैहै।
> बर्षत मेघ बहुरि ब्रज ऊपर को गिरिवर कर लैहै।
> हौं बलि बलि इन चरन कमल की इहईं रहौ कन्हाई।
> सूरदास अवलोकि यशोदा धरणि परी मुरझाई।
>
> —वही, पृ० ५०२

कृष्ण की विविध क्रीडाओ का जिस रूप में यशोदा ने स्मरण किया उससे उनके प्रति उसकी गहन आसक्ति की व्यजना होती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् यशोदा की दशा और भी अधिक चिन्त्य हो जाती है। उसके प्राण कृष्ण

पुनर्मिलन की आशा में ही शरीर नहीं त्यागते। वह रह रह कर सोचती है कि यदि कृष्ण सचमुच न लौटे तो वह यमुना में डूबकर अवश्य अपने प्राण त्याग देगी—

मनौं हौं ऐसे ही मरि जैहौं।
जो न सूर कान्हा अइहैं तौ जाइ यमुन धँसि लैहौं।

—वही, पृ० ५८७

भालण ने नद के वापस लौटने से पहले की यशोदा की मनःस्थिति के अन्तर्गत न तो इतनी गहराई से प्रवेश ही किया है और न इतना भावसकुल चित्रण ही। कृष्ण के द्वारा नद के प्रति कहे गये शब्दो से यशोदा के इस दुःख की ओर उन्होंने सकेत अवश्य कर दिया है।"

इसी प्रकार नरसी मेहता ने कृष्ण से बिछुड़ती हुई यशोदा की मनोभावनाओ का व्यापक चित्रण तो नहीं किया है परन्तु उसकी दुःखानुभूति की तीव्रता को एक पद में अवश्य दिया है। यशोदा कृष्ण को मथुरा में जाकर उच्छृङ्खल न होने की सीख देती हुई अपने अवर्णनीय दुख को प्रकट करने की चेष्टा करती है। वह एक ओर आसू भर कर बलराम को उनकी रक्षा करने के लिए कहती है, दूसरी ओर कृष्ण के मुख से ही लौट आने की बात भी सुन लेना चाहती है—

लाडकडा वेहेला पधारजो रे, उछकल नव थाशो रे दयाल।
नहि राज तहीं आपणु रे, वहाला नव मणिये कोने गाल।
मुख मयक निरख्या विना रे, हु तो घेली थईश मोरार।
हरि वेहेला आवजो रे, मारा प्राण जीवन आधार।
शुभ कामे जाओ हरि रे, तोय हु ने थाय अपशकुन।
मुज निर्धन ने एक दिकरो रे, मारु जीवन जगजीवन।
. . . .
जशोमती केहे बलराम ने रे, करजो कृष्ण तणु तु जतन।
अेम कही आखडली भरे रे, जाणजो रकतणु रतन।
श्यामला तु मुखे कहे रे, क्या रे आवीश मारा प्राण।
समय गये निश्चे मरु रे, तुज ने वरकी वरकी जाण।

—गु० कृ० का०, पृ० ६६-६७

केशवदास कायस्थ ने भी अपने 'कृष्णक्रीडाकाव्य' में यशोदा को इसी प्रकार भाव-विह्वल चित्रित किया है। कृष्ण को बुलाने आने वाले अक्रूर के प्रति तिरस्कार से

'जा जा' कहती हुई वह कृष्ण के प्रति अपना प्रेम प्रकट करती है। उसका सारा गोधन चला जाय पर कृष्ण को वह जाने न देगी क्योंकि कृष्ण उसकी आत्मा के आधार हैं—

> जा-जा भणती यशोमति म्हारो धरणीधर नहि धरी।
> प्राणपाजे अति वाहलो रे आतम नो आधार।
>
> . . . .
>
> गोधन धन लीयें सहु परग हरि न आपू हस।
>
> —श्री कृष्णलीला, पृ० १२२

नद के वात्सल्यपूर्ण हृदय की कोमलता और राज्यप्राप्त कृष्ण की कठोरता को भालण ने दोनो के सवाद में भली भाँति प्रकट किया है। नद समझ नही पाते कि क्यो कृष्ण व्रज लौट नही चलते। उनके आगे वे अपनी सफाई देते हुए हृदय खोल कर रख देते है और अन्त में यह भी कह देते हैं कि यदि कृष्ण नहीं ही लौटे तो वह काशी जा कर सन्यास ग्रहण कर लेंगे क्योकि उनके लिए कृष्ण अधे की लाठी जैसे हैं—

> मे तमने क्यारे कह्यु छे जे चारवा जाओ गाय जी।
> रमवानी खाते जाता, घर गुॐ वारती माय।
>
> . . . .
>
> प्राणजीवन तु छे माह्‌रो, शु कहु वारवार जी।
> अधाने ज्यम लाकडी त्यम, तु मुज प्राणआधार।
>
> . . . .
>
> जो तमो आवो नहि तो, अमो जाशु काशी जी।
> गौ गृह सर्व परहरी, थइ रहेशु सन्यासी।
>
> —द० स्क०, पृ० १७२

दुखी नद की भावधारा एक नया मोड लेती है जब उनकी वृत्ति कृष्ण के क्रूर उत्तरो से प्रताडित होकर अपनी पुत्री के अभाव का अनुभव करने लगती है। वसुदेव जिन कृष्ण के बदले उनकी पुत्री मथुरा ले आये थे वे भी उनके पुत्र न निकले और पुत्री भी हाथ से गई। कृष्ण गये तो गये यदि वह पुत्री होती तो घर तो बसता—

> अेम न जाण्यु रे पुत्र पीयारो थाशे।
> घवरावीने हॅडे चाप्यो ते छेह दइने जाशे।
>
> . . . .
>
> कुवरी मारी राये गई, अे नव आव्यो हाथ रे।

शु कीजे जो झुटी लीधी , दुर्बलनी ज्यम आथ।
वसुदेवने तो घणाअे छे, अेक आपे शु जातु रे।
कहानजी ने मोकलता तो, मारु घर मडातु।
अथवा मारी कुवरी रहेती, तोअे त्या घर वसतु रे।
क्या जाउ ने क्या पोकारु दैव दुर्बल ने मारे रे।
तेनु लइ माता ने आपे, बलियाने कोण वारे।
बीजो आपशो तो नहि लेउ कदाच साटे बोल रे।
चौद लोकमा अेवो नहि भालण प्रभु ने तोल।

—वही, पृ० १७५

नद में इस प्रकार का भाव प्रेमानद ने भी प्रदर्शित किया है—

में उछायो आदर करीरे साचो जाणी पुत्र।
तुज माटे गइ दीकरी रे मारु उजाड्यु घरसूत्र।

—श्रीम० भा०, पृ० ३१७

भाव के क्षेत्र में अथवा का स्थान नही होता। नद की जो भावना भालण तथा प्रेमानद ने उक्त पक्तियो में व्यक्त की है वह कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की अनन्यता में बाधक सिद्ध होती है। व्रजभाषा काव्य में कृष्ण के प्रति अनन्य भाव की रक्षा बराबर की गयी है। यह ठीक है कि भालण ने अन्तिम पक्तियो में दूसरे किसी बालक के स्वीकार न करने की बात कही है जिससे इस भाव-दोष का बहुत कुछ परिहार हो जाता है परन्तु तो भी नद की ऐसी भावना कृष्ण के प्रति उनके प्रेम को द्वितीय कोटि में ला रखती है। दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो ऐसे कथन में एक विचित्र स्वाभाविकता मिलती है जिसको सूर तक ने परख नही पाया। पुत्री देकर पुत्र पाये और जब वह पुत्र भी पराया सिद्ध हो तो एक सामान्य पिता को अपनी पुत्री का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही कहा जायेगा।

नद के प्रति कृष्ण अत्यन्त क्रूर होकर उनसे सीधे-सीधे गोकुल लौट जाने की बात कह डालते है। देवकी-वसुदेव को अपना माता पिता कह कर वे नद से सारा नाता तोड लेते है—

नद जी गोकुल साचरो, सुधी कहु अक बात रे।
देवकी माता माहरी, वसुदेव मारो तात रे।

—दशमस्कध, पृ० १७५

इस क्रूर उत्तर का एक ही परिणाम होता है कि नद कृष्ण की निर्दयता से निराश होकर, दशरथ की तरह, मर जाने की बात सोचने लगते है—

दया दामोदर तारी क्या गयी रे, टलवल्यानो नहि वाक रे।
यापनुं सगपण ते टल्युं आवो आवो जाणी मने राक रे।
धन्य ते जीव्युं दशरथ तणुं रामजी जाता गया प्राण रे।
हैडुं कठिण फाटे नहि जाणे घडियु पाषाण रे।

—वही, पृ० १७६

नंद और दशरथ की भावस्थिति के साम्य और वैषम्य की ओर सूर का भी ध्यान गया पर उन्होंने इसका प्रयोग यशोदा द्वारा नंद को दिये गये उपालभ में किया है। वहाँ वह इतने तीखे ढग से प्रयुक्त हुआ है कि नंद उसे सुनते ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं—

यहूँ कहनि सुनी नहीं दशरथ की करनी।
यह सुनि नंद व्याकुल ह्वै परे मुरछि धरनी।

—सू० सा०, पृ० ६०६-७

कृष्ण से बिछुड़ते हुए नंद की मनोदशा का चित्रण सूर ने भी पर्याप्त मार्मिकता से किया है। सूर के कृष्ण भालण के कृष्ण से कम कठोर हैं। वे माता-पिता विषयक तथ्य को उतनी कटुता से नंद से नहीं कहते जितनी कटुता से भालण ने कहलाया है। एक ओर वे नंद के स्नेह को, स्मरण रखने का आश्वासन देकर उसका तिरस्कार नहीं करते, दूसरी ओर मिलन-वियोग की अनिवार्यता और माया-मोह की निस्सारता का, ज्ञान द्वारा प्रतिपादन करके समझाने की चेष्टा भी करते हैं। भावविभोर नंद के नेत्रों में यह कठोर कथन फिर भी आँसू भर लाता है।[२०]

ब्रज लौट जाने की बात सुनने पर नंद के हृदय की विह्वलता का चित्रण सूर ने भालण से कम भावमयता से नहीं किया है। कुछ पंक्तियाँ जो भाव के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करती हैं, निश्चित रूप से अद्वितीय हैं—

गोपालराइ हौं न चरण तजि जैहौं।
तुमहिं छाडि मधुबन मेरे मोहन कहा जाइ ब्रज लैहौं।
कत हम लागि महारिपु मारे कत आपदा बिनासी।
डारि न दियो कमल कर ते गिरि दबि मरते ब्रजवासी।
ऊरध स्वास चरणगति थाक्यो नैन नीर न रहाइ।
सूर नंद के बिछुरे की बेदन मो पै कही न जाइ।

—सू० सा०, पृ० ६०५

इन पंक्तियों में भाव की तीव्रता, उक्ति वैचित्र्य और अनुभावों की सहज योजना सराहनीय है।

कृष्ण जब विदा देने लगते हैं तो उनके शब्दों को सुनकर नंद की जो दशा होती है उसके चित्रण में सूर ने और भी अधिक भावों-अनुभावों की संयोजना की है—

उठे कहि माधो इतनी बात ।
होहु विदा घर जाहु गुसाईं माने रहियो नात ।
ठाढो थक्यो उतर नहि आवै लोचन जलन समात ।
भये बलहीन खीन तनु कंपित ज्यों बयारिवश पात ।
धकधकात मन बहुत सूर उठि चले नंद पछिलात ।

—सू० सा०, पृ० ६०६

सूर की तरह प्रेमानंद ने कृष्ण को भालण के कृष्ण जैसा क्रूर न चित्रित करके कोमल-हृदय चित्रित किया है। देवकी जब उनसे गोपवेश त्याग कर राजसी वेश धारण करने तथा नंद और गोपों को विदा देने के लिए कहती हैं तो वे गहरी वेदना से भर जाते हैं। नंद को वे किस प्रकार उत्तर देंगे; प्रतिक्षण प्राण अर्पण करने वाली यशोदा का क्या होगा? यह सोच सोच कर उनका मन मसोसने लगता है और आँखें आँसुओं से भर जाती हैं—

क यशोदा केम जीवे मारु सगपण जाणी फोक ।
पिताने प्रकाशी कहेता, नंदजी जाय जमलोक ।
. . . .
जागृत स्वप्न माहे ध्यानज मारं पुत्रसुखमां बूडी ।
हु बिना टळवळी मरशे, जेम टळवळे टीटूडी ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३१५

ख. केम उत्तर आपु पिताने, केम उत्तर आपु ।
वचन वज्रना प्रहार करी केम कालजडु कापु ।
. . . .
तु नहीं पिता हु नही बालक कहेना थाय मुखश्याम ।
अेवु कही ने आंसु ढाल्यां, प्रेमानंद प्रभु राम ।

—वही

इन शब्दों से प्रेमानंद ने कृष्ण की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति तो की ही है, साथ ही नंद-यशोदा के प्रेम की व्यंजना भी कर दी है।

देवकी कृष्ण को पुनः नंद-यशोदा का 'सगपण' छोड देने की शिक्षा देती है परन्तु कृष्ण यशोदा की प्रीति पर सौ 'सगपण' निछावर करने को प्रस्तुत हो जाते हैं—

शु प्रीत जाणो मा मारी रे,
यशोदानी प्रीत उपर सो सगपण नाखु वारी रे।

—वही, पृ० ३१६

जब देवकी समझाकर हार जाती हैं तो वसुदेव समझाने लगते हैं। वे नद को विदा देने की बात तो कहते हैं परन्तु उनकी भावना को देखते हुए नद के प्रति विनयशील तथा कोमल रहने का आदेश भी दे देते हैं। प्रेमानद ने वसुदेव का चित्रण एक समझदार पिता के रूप में किया है—

आपो नदजी ने विदाय, आपो नदजी ने विदाय ।
उत्तर देजो अेवी रीते जेम डोपो नद दुखाय।

—वही

नद और कृष्ण के सवाद को प्रेमानद के द्वारा अ यन्त भावमयता प्राप्त हुई है और कवि ने उसमें दोनो के भावो को सफलतापूर्वक अकित किया है। नद कृष्ण की प्रत्येक बाल क्रीडा का स्मरण कर उठते हैं और उन्हें यह सोच कर कि कृष्ण के बिना कौन उन्हें पिता कहेगा, गहरा दुख होता है और जब कृष्ण फिर अपना स्नेह प्रकट करने लगते हैं तो उन्हें मूर्छा आ जाती है—

क—कोण रूडी शिखामण देशे रे, हवे पिता मूने कोण कहेशे रे।

—वही, पृ० ३१७

ख—धरणे ढलीया नदजी रे थइ पड्या अचेत।

—वही, पृ०

यशोदा की भावस्थिति नद की अपेक्षा और भी हृदयद्रावक रूप में चित्रित की गयी है। कृष्ण बलराम के बिना उसकी व्याकुलता प्रतिक्षण बढती जाती है। नद के वापस लौटने की प्रतीक्षा में अत्यन्त उत्कठित होकर वह बार-बार मार्ग की ओर देखती रहती है। जब नद को आते देखती है तो, कृष्ण के पाने की लालसा से, उन्हें सबसे आगे जाकर आतुरता से भेंटती है।

और जब यशोदा को विश्वास हो जाता है कि नद वास्तव में अकेले ही लौट आये हैं, कृष्ण-बलराम मथुरा में ही रह गये हैं तो उसकी सारी उत्कठा, आतुरता, लालसा और व्याकुलता एक ही क्षण में तीव्रतम आक्रोश और आवेश में परिणत हो जाती है। नद को वह एक के बाद एक उपालम्भ देने लगती है जो कटु से कटुतर

हो जाते हैं। यशोदा का मातृत्व उसके अन्दर निहित पत्नीत्व से प्रधान हो उठता है और वह नंद के जीवित लौट आने पर भी व्यंग्य कर डालती है। मनोवैज्ञानिकतया सूर का यह भाव वर्णन मानव-हृदय में उनकी एक विशेष तीव्र अन्तर्दृष्टि एवं पैठ का परिचायक है—

क—उलटि पग कैसे दीन्हो नंद।
छाडे कहाँ उभय सुत मोहन धिग जीवन मतिमंद।
कै तुम धन-यौवन-मदमाते कै तुम छूटे बंद।

—वही, पृ० ६०७

ख—यशोदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गई तिहारी चारो कैसे मारग सूझै।
इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीने फूंक।
यह छतिया मेरे कुँवर कान्ह बिनु फाटे न भये द्वै टूक।
धिग तुम धिग वे चरण अहो पति अवलोकन उठि धाये।
सूर श्याम बिछुरन की हम पै देन बधाई आये।

—वही

कृष्ण के बिछुड़ने पर स्वयं नंद यशोदा को बधाई देने आये हैं, यह कथन कितना व्यंग्य-पूर्ण और कटु है। कृष्ण ने चलते समय क्या कहा इस उत्सुकतावश यशोदा नंद से प्रश्न करती है परन्तु भावावेग में प्रश्न तो भूल जाता है और मन का आक्रोश उपालंभ बन बन कर पुनः व्यक्त होने लगता है—

नंद हरि तुमसों कहा कह्यो।
सुनि सुनि निठुर वचन मोहन के क्योंकरि हृदय रह्यो।
छाडि सनेह चले मंदिर कत दौरि न चरन गह्यो।
फाटि न गयी वज्र की छाती कत यह शूल सह्यो।
सुरति करत मोहन की बातैं नैनन नीर बह्यो।
सुधि न रही अति गलित गात भयो जनु डसि गयो अह्यो।
कृष्ण छाँडि गोकुल कत आये चाखन दूध-दह्यो।
तजे न प्राण सूर दशरथ लौं हुतो जन्म निबह्यो।

—सू० सा०, पृ० ६०७

नंद की सहनशक्ति व्यंग्य पर व्यंग्य सुनते सुनते समाप्त हो जाती है और वे परिस्थिति को स्पष्ट करने अथवा अपनी सफाई देने का प्रयास न करके यशोदा को ही दोषी

ठहराते हैं। पति-पत्नी के बीच आवेश के क्षणों में परस्पर दोषारोपण की वृत्ति अत्यन्त स्वाभाविक होती हैं। सूर ने उसे भी परखा हैं। नंद कहते हैं—

> तव तू मारिबोई करति।
> रिसनि आगे कहि जो आवत अबलै भांडे भरति।
> रोस कै कर दाँवरी लै फिरति घर-घर धरति।
> कठिन हिय करि तब जो बाँध्यो अब वृथा करि मरति।
> नृपति कंस बुलाइ पठयो बहुत कै जिय डरति।
> इह कछू विपरीत मो मन माँझ देखी परति।
> होनहारी होइहै सोइ अब यहाँ कत अरति।
> सूर तब किन फेरि राखे पाइ अब केहि परति।
>
> —वही

आवेश दूर हो जाने के बाद दम्पति उत्तरदायित्व को परस्पर मिलकर स्वीकार करते हैं।

> कोमल चरण कमल कंटक कुश हम उनपै वन गाय चराई।
>
> —वही, पृ० ६१०

नंद के व्रज लौटने के बाद की भावस्थिति का जो चित्रण भालण ने किया है उसमें भावों में सामान्य उद्दीप्ति ही प्रदर्शित की गई हैं। सूर की तरह भावना उपालंभ, व्यंग्य और कटूक्तियों तक नहीं पहुँच पाती। इससे कवि की भावानुभूति की शिथिलता व्यक्त होती हैं। यशोदा की मातृत्वमयी हृदयवृत्ति के भाव-संघर्ष को भालण भी पूरी तरह परख नहीं सके। यशोदा के उद्गारों में उन्होंने माता की वास्तविक संवेदना को सम्यक् अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की। चिंता, विह्वलता कातरता और आवेग की अपेक्षा यशोदा के शब्दों में जिज्ञासा मिलती हैं और उनसे उसकी दशा की अपेक्षा उसके पति की दशा का ज्ञान अधिक होता हैं। नंद की दशा का जो वर्णन हुआ है उसमें अनुभावों का सौन्दर्य अवश्य दर्शनीय हैं—

> नंदजी गोकुल आव्या, हलधर श्याम न लाव्या।
> पूछे जशोदा राणी, कंयजी कहो मने वाणी।
> वाणी कहो मारा कंयजी मने, कहान कुंवर क्यां रह्या।
> विरह अति वा ला तणो, में दिवस अति दोहेला सह्या।
> वंशीवट के वृन्दावन सुत कुंजमां क्रीडा करे।
> वेण दीं नथी वाजती, जे चित्त सहुअेना हरे।
> ....

चिंतातुर तमो काय दीसो, जुहारी ज्यम हारिया ।
व्यापारी वहाण वूडे, रग अेवे आविया ।
स्वेद अगे गात्र भगे, नीर दो नयणे झरे ।
ऋणे पीड्यो अति घणु निर्धन ज्यम चिंता करे ।
उत्तर शे नथी आपता, दिग्मूढ दीसो दामणा ।
साथी सघला क्या गया, जे वा' ला विट्ठळजी तणा ।

—दशमस्कध, पृ० १८६

यशोदा स्वतन्त्र रूप से अपने भावावेग से कुछ निश्चय नही कर पाती है । अपने दुख की अभिव्यक्ति के रूप में भी पति की मुखापेक्षिणी बनी रहती है, एक ओर सूर की यशोदा पति के जीवन तक पर कटाक्ष कर सकती है, दूसरी ओर भालण की यशोदा उनकी सम्मति तक का निषध नही कर पाती—

जशोदा कहे हु जाउ, कहो तो निर्लज थाउ ।
जइने झघडो माड्, क्हानजी क्यम छाडु ।

—दशम०, पृ० १८७

कृष्ण के न छोड सकने का भाव पर्याप्त विकास नही पा सका है । भालण ने नद की तरह यशोदा को भी कन्या की चिन्ता करते चित्रित किया है जिससे कृष्ण के प्रति उसके प्रेम की अनन्यता पूर्वत्व बाधित हो उठती है । यही, नही वह कृष्ण को *धूर्त और पुत्री को सुन्दर भी बताती है—*

मारी कुवरी लावो, पीयु हूंडु दाझे ताप शमावो ।
ते अति रूपे रूडी नयणे [जुग मोहे ।
झुमी झघडो करियें नें, जेणे आगणडे [शोहे ।
तेह पुत्र पर पुत्री वारु जेह थकी ठरिये ।
तेणे धूतारे शु कीजे जेणे दाझी [मरिये ।

—वही

यदि पुत्री-प्राप्ति की इच्छा को कृष्ण-प्राप्ति की निराशा से उद्भूत मान कर उसे कृष्ण के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति का रूप विशेष कहा जाय तो कदाचित् यह भी उचित नही होगा, क्योकि ऐसी दशा में पुत्री के प्रति व्यक्त ममता में आलम्बनत्व का अभाव होना चाहिए जो यशोदा के उक्त भावो में नही मिलता है । इन पक्तियो के अतिरिक्त अन्यत्र भालण ने यशोदा के कृष्ण-प्रेम तथा तज्जन्य वेदना का भी चित्रण किया है । वह अपने प्राण तक त्यागना चाहती है पर विवश है—

प्राण काढ्या नव निसरे, विण छूटे नव मरियें रे।
श्यामसुन्दर दीसे नहिं तो, घरमा रही शु करिये।

—वही, पृ० १९०

यशोदा का देवकी के प्रति ईर्ष्या करना अत्यन्त स्वाभाविक मनोभाव है जिसे भालण ने पकड़ लिया है। यशोदा सोचती है कि वह मथुरा चल कर ही रहे। कृष्ण तो देखने को मिलेंगे परन्तु दूसरे ही क्षण कृष्ण के राजवेश और देवकी के प्रति उनके मातृभाव की याद करके उसे क्षोभ और ईर्ष्या हो आती है—

हा हु केम रहुं रे अेके न दीसे पेर रे।
त्या गये तो सुख नहि, रह्यु न जाये घेर।
जाणु मथुरा जइ रहू, जाता वलता दीसे रे।
अश्व चढी ने चालता जोइ हैंडु मारुं हीसे।
दहाडी तो देखीश नहि रे क्यां रे के तो मलशे रे।
देवकी ने माता कहेशे त्यारे हैंडुं मारु वलशे।

—वही, पृ० १९१

सूर की यशोदा भी मथुरा जाने की इच्छा व्यक्त करती है पर देवकी के प्रति ईर्ष्याभाव उनमें उदित नही होता वरन् उसके विरुद्ध दैन्य की प्रधानता हो जाती है—

हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं।
दासी ह्वै वसुदेवराइ की दरशन देखत रैहौं।

—सू० सा०, पृ० ६११

परिस्थिति की सारी विषमता को आत्मसात् कर लेने के बाद दीनता और दुख की एक गहरी छाया यशोदा के मन को छा लेती है। देवकी से अब उसे ईर्ष्या नही होती और वह अपनी करुणा को अपने भीतर ही सहेज समेट कर 'धाय' का पद स्वीकार कर लेती है। अब 'धाय' होने में ही उसे संतोष है, क्योंकि इसी नाते कृष्ण से अपना सम्बन्ध तो वह व्यक्त कर लेती है। इस भावस्थिति को सूर और भालण दोनों ने समान रूप से परख लिया है। सूर ने उसे देवकी के प्रति यशोदा के सदेश रूप में व्यक्त किया है, भालण ने कृष्ण के प्रति पुनरागमन की याचना के रूप में—

सूर— सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तौ धाइ तुम्हारे सुत की कृपा करत ही रहियो।
यदपि टेव तुम जानत उनकी तदपि मोहि कहि आवै।

प्रातहि उठत तुम्हारे कान्ह को माखन रोटी भावै।
तेल उबटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम करि करि न्हाते।
सूर पथिक सुनि मोहि रैनि दिन बढ़यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लडैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच।

—सू० सा०, पृ० ६१२

भालण— अेकवार आवो आगण रे रमवाने यादवराय रे।
मुखडु जोवु माहरे रे नहि थाउ तारी माय रे।
धाव कही ने बोलावजो रे, मीठडा सुणिये वचन रे।
तारा सम छे त्रिकमा रे, नहि दुहवावु मन रे।

—दशम०, पृ० १९२

ख— घवरावीने हेडे चापती त्यम देवकी नहि चापे रे।
रोमाचित मारी देहडी थाती, त्यम तेनी नव कापे।
माता नहि थाउ तमारी धाव कही ने जाणो रे।
में बाध्यो जे माखण माटे तेणे रोष भराणो।

—वही, पृ० १९३

यशोदा द्वारा अपने को 'धाय' मानने की बात देवकी के प्रति कहे जाने में जो मार्मिकता है वह उसके कृष्ण के प्रति कहे जाने की मार्मिकता से कहीं अधिक तीव्र है। अपने साहचर्य और प्रेम को सूर की यशोदा अत्यन्त दैन्य और दुख के साथ व्यक्त करती है। उसका शब्द शब्द व्यजना से पूर्ण है। भालण के भाव-निरूपण में कृष्ण-प्रेम की पर्याप्त प्रधानता है, तज्जन्य दैन्य और दुख की व्यजना अपेक्षाकृत उतनी तीव्र नही है।

उद्धव के व्रज में आने पर नद-यशोदा का हृदय पुन पुत्र-वियोग से अभिभूत हो उठता है। सूरदास, भालण तथा प्रेमानन्द आदि ने भ्रमरगीत के प्रसग में भी इनके वात्सल्यपूर्ण उद्‌गारों का इसी प्रकार निरूपण किया है। सूर ने नद-यशोदा दोनो की भावनाओ को अकित किया है परन्तु भालण तथा प्रेमानन्द का ध्यान यशोदा के हृदय की दशा पर विशेष केन्द्रित हुआ और इस स्थल पर निश्चय ही वे सूर को पीछे छोड गये है।

उद्धव के आने पर सूर ने नद और यशोदा की मानसिक स्थिति का जो चित्रण किया है वह अपूर्ण प्रतीत होता है यद्यपि सामान्यत दोनो के मनोभावो की अभिव्यक्ति कर दी गई है। वृद्ध दम्पति की पहली जिज्ञासा यह होती है कि क्या कृष्ण कभी हमारा

स्मरण करते हैं। साथ ही उन्हें वासुदेव के वास्तविक रूप को न समझने पर पश्चात्ताप भी होता है—

> कबहिं सुधि करत गोपाल हमारी।
> पूछत नद पिता ऊधो सो अरु यशुदा महतारी।
> बहुतै चूक परी अनजानत कहा अबके पछिताने।
> वासुदेव घर भीतर आये मैं अहीर कै जाने।
>
> —सू० सा०, पृ० ६४७

उद्धव कृष्ण का भावमय सदेश यशोदा से कहते हैं परन्तु सूर ने उसकी कोई प्रतिक्रिया यशोदा के मानस में प्रदर्शित नही की। सदेश में कृष्ण की कोमल भावना का अत्यन्त मार्मिक अकन है।

कृष्ण के प्रेम और ऐश्वर्य-ज्ञान से अभिभूत नद अपनी असमर्थता, अज्ञान तथा दोषमयता पर गभीर रूप से पछताने लगते है और उद्धव के आगे कृष्ण का एक बार ही दर्शन पाने के लिए विलख उठते हैं—

> हमते कछु सेवा न भई।
> धोखे धोखे रहे धोख ही जाने नाहिं त्रिलोकमई।
> चरण पकरि करि विनती करिबो सब अपराध क्षमा कीबे।
> ऐसो भाग होइगो कबहूँ, स्याम गोद में लीबे।
> कहै नद आगे ऊधो के एक बेर दरशन दीबे।
> सूरदास स्वामी मिलि अबकै सबै दोष गत कीबे।
>
> —वही

यशोदा के हृदय में उद्धव से मिलने की उत्सुकता का जो चित्रण प्रेमानद ने किया है वह सूरसागर में नही मिलता। कृष्ण के सदृश कोई आ रहा है, इतना सुनते ही उतावली से बाहें पसारे उठ भागने वाली यशोदा की यह गतिशील भावमुद्रा अनुपमेय है—

> मात उठी वेणी छूटी, घणु हाफली हरखे भरी।
> लावा कर करी भेंटवा धाई, आव मलीओ श्रीहरी।
>
> —श्रीम० भा०, पृ० ३२२

इसी प्रकार प्रेमानद द्वारा यशोदा की मनस्थिति का भी अत्यन्त सूक्ष्म स्वाभाविक एव हृदयद्रावक आलेखन हुआ है। वात्सल्य की अतिशयता में सारा ईर्ष्या-द्वेष खो

जाता है और वह उद्धव से, सूर की यशोदा की तरह, पहले पहल कृष्ण की बात न करके देवकी-वसुदेव के कल्याण की बात करती है; कृष्ण द्वारा अपने याद किये जाने के सम्बन्ध में उसकी जिज्ञासा इसके बाद प्रकट होती है—

कहो वीरा उद्धव चतुर सुजाण, छे वसुदेव देवकी नें कल्याण ।
कहीयें सभारे छे गोकुल ग्राम, मुने संभारे छे सुन्दरश्याम ।

—वही, पृ० ३२३

कृष्ण सम्बन्धी जिज्ञासा ही उसकी वास्तविक जिज्ञासा है, इसका प्रमाण तब मिल जाता है जब वह बार-बार कृष्ण पुष्ट है या दुर्बल, आयेंगे या नही, आदि प्रश्न पूछती ही चली जाती है—

छे पुष्ट वपु के थया दूबला, प्राणनाथ थया मुजयी वेगला ।
फरी फरी उद्धव ने पूछे माय, अहिं आवशे के कहांवी नाय ।

—वही

इस जिज्ञासामयी भावाकुलता एव विह्वलता के पश्चात् अनेक पूर्वकृत अथवा संभावित पापो की कल्पना करती हुई अत में सबका प्रायश्चित करने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। उसे कृष्ण से इतना मोह है कि वह उस ककड को भी सहेज रखते है जिससे उन्होंने मटकी फोड डाली थी। चादी के जिस कटोरे से नद दूध पिलाते थे वह भी उसके पास है। कृष्ण से सम्बन्धित खिलौनो और वस्त्रों को उद्धव के आगे दिखा-दिखा कर वह उनका स्मरण करने लगता है—

जेणे माजी गोली पाषाण नाखी, ते कटका हु रही छौं राखी।
नदजो ने हाथे दूध पीता लाडको, उद्धव ते आ रूपानो वाडको।
मोर पोपट पुतलीयो गेडी दडी, ओ पेली वजाडवानी वासली पडी।
पाघडी टोपी ने आगला घणा, आ जुवो कामली पीछोडो हरितणां।

—वही

प्रेमानंद की यशोदा भावनाशील होने के साथ ही कल्पनाशील भी है अतएव वह सोचने लगती है कि यदि उसकी विनती विधाता सुनले और वह देवकी के साथ ही धर्मराज के आगे जाये तो वे निश्चय ही उसका दुःख देखकर कृष्ण को देवकी से वापस दिला देंगे। कृष्ण नया अवतार धारण करके गोकुल में उसकी कोख से प्रकट होंगे और तब वह उन्हें अपना पुत्र कह कर प्यार कर सकेगी। यशोदा का इस प्रकार का प्रलाप सुनकर ज्ञानी उद्धव के भी आँसू बह चलते है—

अमो विधाता ने अेक विनती करीअे, हु ने देवकी साथे मरीअे ।
धर्मराज आगलहु जघडु जइ, ऊभी राखु हु देवकी ने पालव ग्रही ।
यम राढ चूकावशे खरी, मारो पुत्र अपावशे पाछो फरी ।
अवतार लइ गोकुल मा आवीश, अेनाअे पुत्रने हु लडावीश ।
अेमय शोदाज़ी रुअे टळवळे, उद्धव ने नयणे आँसु ढळे ।

—वही

काव्य की दृष्टि से कल्पना-मिश्रित यह भावचित्रण अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखता है क्योकि समस्त कृष्णकाव्य में यह अतुलनीय है । यशोदा की कल्पना वस्तुतः उसकी गभीर अनुभूति की ही व्यजना करती है । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस वस्तु को व्यक्ति यथार्थ में नही प्राप्त कर पाता उसे कल्पना में पाने का प्रयास करता है और इस जन्म के अभावो की पूर्ति अगले जन्म में करना चाहता है ।

प्रेमानद की यशोदा उद्धव से कृष्ण को देने के लिए सदेश रूप में जो कुछ कहती है वह उसकी प्रारभ में अभिव्यक्त भावनाओ के पूर्णतया अनुकूल है । इस प्रकार यशोदा का भावविकास अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है । वह कृष्ण-बलराम के पास देवकी माता तथा वसुदेव पिता को सुखी रहने का सदेश भेजती है और अत में यह भी कहला देती है कि मुझ अनाथ से भी ऐक वार मिल जाना । अगर अकेले देवकी न आने दे तो उसे साथ लेते आना—

ओधवजी कहेजो बन्धो भ्रातने, सुखेणी करजो देवकी मात ने ।
रखे छेह देता वसुदेव तातने, अेकवार मलजो अमो अनाथ ने ।
दुर्लभ जाणी गोपने को समे गोकुल आवजो ।
धीरे नही जो देवकी तो साथे तेडी लावजो ।

—वही, पृ० ३३१

उद्धव को विदा करते समय यशोदा के अन्तस्तल में उठने वाली भावनाओ को भालण और सूर दोनो ने व्यक्त किया है परन्तु निश्चय ही प्रेमानद की सी मार्मिकता वे उत्पन्न नही कर सके ।

देवकी के प्रति सदेश कहलाते हुए भालण की यशोदा पुत्र-सुख के गत क्षणो की स्मृति में विभोर होकर कृष्ण की प्रत्येक मनोमोहक क्रीडा का ध्यान करने लगती है। उस सुख को पाने के लिए पुनर्जन्म धारण करने की लालसा उसके हृदय में भी उत्पन्न होती है—

उद्धव कहेजो, उद्धव कहेजो, देवकी ने अेक वात रे ।
पुत्रतणा सुख अमो भोगव्या, हवे तमो थाओ मात रे ।
पुनरपि द्वापर गोकुल माहे, कहानजी अवतरशे रे ।
त्यारे भालण प्रभु रघुनदन अमशु अेमज करशे रे ।

—दशम स्कध, पृ० २२३

एक अन्य पद में वह कृष्ण के प्रिय व्यजन बनाती हुई दिखाई देती है वह चाहती है कि कृष्ण एक बार ही आकर उसे कृतार्थ कर जाय । जिसे उसने हृदय से चिपकाये रक्खा उसे कैसे विसार दे, जन्म-जन्म तक यदि वह कृष्ण की धाय ही बनती रहे तो भी उसे सुख होगा—

आज में राध्यो ढ्ढण धोइ रे, वाटकी जोइ कृष्ण देवनी रे ।
आज में राध्यो कूर कातलीयो रे, कृष्ण ने पातलियो मारे प्रोहोणो रे ।
हेंडे चाप्यो वयमकरी विसारु रे वायु ने मन रहेशी पेर रे ।
भव भव थाउ धाव हु ताहरी रे, मारीने आश तमो पूरजो रे ।

—वही, पृ० २२५

सूरदास की यशोदा नाना प्रकार से अपना दुख समझा कर अत में कृष्ण को अपना आशीर्वाद कहला भेजती है । साथ ही वह घी-भरी दोहनी और मुरली आदि भी देती है जिससे उसके हृदय की गहरी वेदना की प्रीति का परिचय मिलता है ।

कहियौ यशुमति की आशीस ।
जहाँ रहो तहाँ नदलाडिलो जीवो कोटि वरीस ।
मुरली दई दोहिनी घृत भरि ऊधो धरि लइ शीस ।
यह घृत तौ उनही सुरभिन को जो प्यारी जगदीश ।

—सू० सा० पृ० ७१४

३ रासलीला—रास को सामान्यत कवियो ने आनद-उल्लास, नृत्य-सगीत तथा प्रेम-मिलन के महापर्व के रूप में वर्णित किया है । कुछ कवियो ने उसकी विराटता एव आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया है। बहुत कम कवि ऐसे है जिन्होने अलौकिक नृत्यगीतमय आनद की सहज स्थिति के बीच उदासी, दुख, उत्सुकता, विरह-कातरता, उद्विग्नता तथा तन्मयता आदि मानवीय भावो के लिए भी स्थान खोज निकाला हो और स्वतन्त्रता के साथ उनका विस्तार किया हो । सूरदास, नददास तथा प्रेमानद ने ऐसा ही किया है । नरसी मेहता का रास-वर्णन कृष्ण गोपियो के सयुक्त

नृत्य के नाद-पूरित आनदमय वातावरण को अनेक रूपो में अनेक प्रकार से प्रस्तुत करता है। उसमें मानवीय भावो के आलेखन का आग्रह नही है। रास के इस पक्ष ने नरसी को इतना मुग्ध किया कि वे उसके भाव पक्ष की ओर ठीक से दृष्टिपात न कर सके। जहाँ कही भी रास के प्रसग में भाव-चित्रण की ओर उनका झुकाव हुआ वहाँ वे अधिक से अधिक गोपियो की नृत्योत्सुकता, कृष्ण को रिझाने की लालसा, विलास-वासना, प्रिय की समीपता से उत्पन्न प्रसन्नता तथा मुग्धता का ही वर्णन कर सके है। शारदी पूर्णिमा की शुभ्र चादनी में यमुना-तट पर होने वाले रास के नादमय एव गति-शील दृश्य को प्रत्यक्ष करने की ओर उनका विशेष आग्रह रहा है। व्रजभाषा के भी अनेक कवियो में रास-वर्णन में दृश्य-निरूपण की अपेक्षा भाव-निरूपण की ओर कम ध्यान दिया है। फिर थोडा-बहुत जो भाव-निरूपण इन कवियो ने किया है वह भागवत के आश्रित और अनुकरणमूलक होने के कारण विशेष महत्त्व नही रखता। जैसा निर्देश किया जा चुका है सूरदास, नद दास तथा प्रेमानद की स्थिति इनसे भिन्न है। भागवत का आधार लेते हुए भी भाव-चित्रण में इन कवियो ने पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है और अनुकरण करते हुए भी अपनी अनुभूति से भावो का अधिकाधिक विस्तार किया है।

रास का प्रारम्भ कृष्ण के वेणुवादन से होता है। उनकी वशी में चराचर को विमुग्ध कर देने की शक्ति है, गोपियाँ तो योही कृष्ण पर अनुरक्त रही। कात्यायनी-व्रत के द्वारा उन्होने कृष्ण को प्राप्त करने का उपक्रम भी किया। अर्धरात्रि में ज्योत्स्ना के शत शत आवरणो को वेधती हुई जब अपार सम्मोहन लिये प्रिय की वशी मधुर स्वर से उनका आवाहन करती है तो उन्हें एक विचित्र प्रकार का आह्लाद मिश्रित पाद होता है जिसमें सारा गृह-काज, सारी लोक-लाज तिरोहित हो जाती है कृष्ण के पास जा पहुँचने की उतावली वे सारे कार्य अधूरे छोड देती है अथवा उन्हें विपरीत ढग से करने लग जाती है। भागवतकार ने गोपियों की इस मन.स्थिति ने निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है—

> दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
> पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥५॥
> परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
> शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥६॥
> लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
> व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

—दशमस्कध, अध्याय २९

सूरदास ने परिस्थिति को आत्मसात् करके गोपियों की आतुरता एवं व्याकुलता को जो अभिव्यक्ति प्रदान की है वह भागवत की मुखापेक्षिणी मात्र नहीं है। आभूषणों की अस्तव्यस्तता का जो संकेत भागवत में है उसे अत्यन्त स्वाभाविकता एवं मौलिकता से उन्होंने स्पष्ट किया है।

> सुनि मुरली-सबद ब्रजनारि।
> धरति अंग शृंगार भूली काम गयी तनु मारि।
> चरण सो गहि हार बाध्यो नैन देखत नाहिं।
> कंचुकी कटि साजि लहँगा धरति हिरदय माहिं।
> चतुरता हरि चोरि लीन्ही भई भोरी बाल।
> सूर प्रभु रति काम मोहन रासरुचि नंदलाल।
>
> —सू० सा०, पृ० ४३१

यही नहीं, कृष्ण के आकर्षण के समक्ष संसार के समस्त आकर्षणों एवं सम्बन्धों के प्रति जो उपेक्षा भाव गोपियों के हृदय में उत्पन्न होता है उसका वर्णन सूर ने भी अत्यन्त कुशलता के साथ किया है।

> चली बन वेणु सुनत जब धाइ।
> मात पिता बंधन इव त्रासत जाति कहाँ अकुलाइ।
> सकुच नहीं, संका कहु नाहीं रैनि कहाँ तुम जाति।
> जननी कहति दई की घाली काहे को इतराति।
> मानति नहीं और रिस पावति निकसी नातो तोरि।
> जैसे जलप्रवाह भादों को सो को सकै बहोरि।
> ज्यों केंचुरी भुजंगम त्यागत मात पिता यों त्यागे।
> सूर श्याम के हाथ बिकानी अलि अंबुज अनुरागे।
>
> —वही

जाती हुई गोपी की जननी के भावावेगमय शब्दों को अत्यन्त स्वाभाविक रूप में व्यक्त करके परिस्थिति को सजीवता प्रदान की गयी है तथा अनेक सटीक उपमाओं से भाव को विशेष बल मिला है।

प्रेमानंद ने प्रेमजन्य उत्सुकता के अतिरेक को व्यक्त करने वाले विभ्रम को अधिक विस्तार प्रदान किया है। आभूषणों की अस्तव्यस्तता के अभिनव उदाहरण तो दिये ही हैं, साथ ही अनेक नवीन परिस्थितियों का सृजन करके कल्पना-वैभव तथा भावाभिव्यक्ति की विशेष क्षमता का परिचय भी दिया गया है। साथ ही स्वाभाविकता की सर्वत्र रक्षा की गयी है—

कोइक नहाता नाद साभल्यो मन थयु हरिमा मग्न रे।
ते जळे निगलती उठी चाली वस्त्र बहोणी नग्न।
अबला आभरण भूषण पहेर्या मनडु रह्यु जुगदीश रे।
ओढणी पहेरी कटि सगाथे चरणा ओढ्या शीश।
अेक बाहे पेहेरी चोलीनी, माहे अवळो आण्यो हाथ रे।
अेक स्तन उघाडु दीसे जेम देहेरा विना उमयानाथ।
को काजले करी ने सेथो पूरे को नयणे आजे सीन्दुर रे।
को कोई ने प्रीछे नही वाला प्रेम उदधीनु पूर।
करमुद्रिका पग अगुलिये, विछुवा कर अगुली माये रे।
चरणना झाझर काने पेहेर्या कर ककण पेहेर्या पाये।
कटि मेखला कठे पेहेरी कटि विंठ्या मोती हार रे।
गलुबध. पावलीये बाध्यो पग घूघरी कठ घमकार।
गोफणे बाजुबध ने स्थानक पहोचे बाध्या शिशफूल रे।
आभूषण मारगमा पडता जेना मोघा मूल।

—प्रेम० भा,० पृ० २८८

यहाँ प्रेमानद ने इतने उदाहरण एक के बाद एक प्रस्तुत किये हैं कि उनमें एकरसता का आभास आने लगता है परन्तु उनकी कल्पनाशक्ति की स्वतन्त्रता को अस्वीकृत नही किया जा सकता। एकस्वरता से भावाभिव्यक्ति को जो आघात पहुँचता है उसका परिहार परिस्थितियो की नवीनता के द्वारा हो जाता है। अपूर्ण रूप से बद्ध आभूषणो के मार्ग में गिर जाने का उल्लेख कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। इस प्रकार अस्तव्यस्त गोपिया जब कृष्ण के समीप पहुँची तो उन्होंने प्रेम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से घर वापस लौट जाने के लिए कहा। जिसके लिए गोपियो ने माता, पिता, पति, पुत्र सभी को त्याग कर निशीथ में निर्जन वन के बीच आना स्वीकार किया उसी के मुख से इस प्रकार के कठोर शब्द सुनकर उनका सारा उल्लास शिथिल हो गया और वे दुख से कातर हो उठी। कवियो ने गोपियो की इस मर्म वेदना को परखा। सूरदास ने उनके हृदय की अनन्य प्रीति को भावविह्वल उद्गारो के द्वारा व्यक्त किया। प्रेमानद ने दुख की दशा को चित्रित करने वाली अनेक भावमुद्राओं की सयोजना की जिसकी प्रेरणा उन्हें भागवत के 'चरणेन भुव लिखन्त्य.' से मिली। इस आकस्मिक प्रहार से आहत गोपियो के स्तभित एव शिथिल शरीर की अवस्था को अभिव्यक्ति प्रदान करने में नददास ने भी पर्याप्त तन्मयता प्रदर्शित की है। उनके वर्णन में भावमुद्राओं के साथ अनुभावो तथा उपमाओं का विचित्र सगुफन मिलता है—

सूर—क स्याम उर प्रीति मुख कपट बानी।
युवती व्याकुल भई धरणि सब गिरि गई
आश गई टूटि नहिं भेद जानी।

—सू० सा०, पृ० ४३३

ख तुम पावन हम घोष न जाहिं।
कहा जाइ लैहें हम ब्रज में, हम यह दरसन त्रिभुवन में नाहिं।
तुमहू ते ब्रज हित कोऊ नहिं कोटि कहौ नहिं मानें।
काके पिता मात हैं काके काहू हम नहिं जानें।
काके पति सुत मोह कौन को घर हैं कहा पठावत।
कैसो धर्म, पाप है कैसो, आश निराश करावत।
हम जानें केवल तुमही को और वृथा ससार।
सूर स्याम निठुराई तजिये तजिये वचन विसार।

—सू० सा०, पृ० ४३४

ग सुनहु स्याम अब कछु चतुरई क्यो तुम वेणु बजाइ बुलाई।
विधि-मरजाद लोक की लज्जा सबै त्यागि हम धाई आई।

—वही

प्रेमानद—उत्तर आप्यो अविनाश मर्मनी वात कही।
हतो उत्साह सहु नार रुपे श्यामी थई।
करें माहोमाही अवलोकन, कर्मनी वात कहे।
ऊंडा मूके निश्वास ललाटे हाथ दीधे।
को मुख ऊपर दे हाथ, वढवा दोडती।
को नयणा चढावी जोय, नयी दृष्ट चोरती।
को करी हस्तना चिन्ह हरि कने आवती।
को अधर डसी ने जोय, हरिने विह्वडावती।
को कर पर देइ कपोल, वेसे शिथिल थई।
कोइ अेक मागे मर्ण, विधि कने ऊभी रही।
को निंदे कात्यायनी व्रत, सुकृत वृथा थयु।
अेणे जोया नग्न शरीर, आज ब्रह्मचर्य गयु।
को झटके लाबा केश, अबोडो फरी वाले।
को ले अगुली मुखमाहे नयण जल ढाले।

को नमी करे नमस्कार, हरिना गुण जणती ।
को अलवेली करे आल, अगुठे धरा खणती ।

—श्रीम० भा०, पृ० २५९

उक्त पक्तियो में प्रेमानद ने भावमुद्राओ के साथ हृदय के उद्गारो का भी वर्णन किया है परन्तु उनमें सूर जैसी विह्वलता के दर्शन नही होते । प्रेमानद की तरह सूर ने गोपियो को अपने किये का पश्चात्ताप करते नहीं दिखाया। उनकी गोपिया अत तक कृष्ण को अपने प्रेम का विश्वास दिलाना चाहती हैं । पश्चात्ताप की भावना प्रेम को चरमोत्कर्ष तक नही पहुँचने देती, यद्यपि वह भी एक मानवीय वृत्ति ही है और मनोहर भी । यो प्रेमानद ने गोपियो के उद्गारो में अनन्यता तथा प्रेमातिरेक का भी वर्णन किया है—

अमो मेली पतिकुल लाज, बालक परहर्या ।
अमो अमारा शीष तारे चरण धर्या ।
तुने मलता थाशे अधर्म तो थावा द्यो सुखे ।
शु अधिकु करशे यमराय, नाखशे नरक विखे ।

—वही

नददास ने इस अवसर पर कृष्ण के शब्दो की गोपियो पर होने वाली प्रतिक्रिया का अनुभावो द्वारा चित्रण किया है—

नददास— जब पिय कह्यो घर जाहु, अधिक चित चिता वाढी ।
पुतरिन की सी पाँति रहि गई इक-टक ठाढी ।
दुख के बोझ छवि सीव ग्रीव नै चली नाल सी ।
अलक अलिन के भार नमित मनु कमल माल सी ।
हिय भरि विरह हुतास, उसासनि सग आवत झर ।
चले कछू मुरझाई मधुभरे अधर बिंब वर ।
तब बोली ब्रज-बाल, लाल मोहन अनुरागी ।
सुन्दर गदगद गिरा गिरिधरहि मधुरी लागी ।

—नददास, पृ० १६३

गोपियो की उदासी एव दुख का परिहार तब होता है जब कृष्ण उनके साथ रास करना स्वीकार कर लेते हैं । सूर ने इस अवसर पर गोपिया की प्रसन्नता का जैसा अकन किया है वैसा अन्य किसी कवि ने नही किया । कृष्ण और गोपियो के मन की मुख्य अभिलाषा मूर्त होने जा रही थी अतएव भाव के साथ अनभाव और अनुभाव के साथ चेष्टाएँ स्वत प्रकट हो उठी—

हरि मुख देखि भूले नैन।
हृदय हरषित प्रेम गदगद मुख न आवत बैन।
धाम आतुर भजी गोपी हरि मिले तेहि भाइ।
प्रेमवश्य कृपालु केशव जानि लेत सुभाइ।
परस्पर मिलि हँसत रहसत हरषि करत विलास।
उमगि आनदसिधु उछल्यो श्याम के अभिलाष।
मिलति इक इक भुजनि भरि भरि रास रुचि जिय आनि।
तेहि समय सुख श्याम-श्यामा सूर क्यों कहँ गानि।

—सू० सा०, पृ० ४३६

जैसा निरूपित किया जा चुका है, उत्सुकता तथा आतुरता के भाव के कारण आभूषणों एव वस्त्रो की विपर्यस्तता का वर्णन तो अनेक कवियो ने किया है, परन्तु विपर्यस्त वस्त्राभूषणो के कारण उत्पन्न एक नवीन भावस्थिति का वर्णन सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया है—

रास रुचि जबहिं श्याम मन आनी।
करहु शृगार सँवारि सुन्दरी हँसत कहत हरि बानी।
जो देखे अँग उलटे भूषण तव तरुनिन मुसुकानी।
बारबार देखि पिय को मुख पुनि पुनि युवति लजानी।

—सू०, सा० पृ० ४३६

वस्तुत परिस्थिति के अनुकूल भावो की योजना तथा भावो के अनुकूल परिस्थिति की योजना अपनी मौलिक कल्पना एव अन्तर्दृष्टि के आधार पर करते जाना सूर का स्वभाव है। जितनी पूर्णता से भाव और स्थिति को वे आत्मसात् कर पाते है वह अन्यत्र दुर्लभ है। गुजराती तथा ब्रजभाषा का कोई कवि इस दिशा में उनकी समानता नही कर पाता। उक्त प्रसग इसका एक उदाहरण है। सारे सूरसागर में ऐसे अगणित उदाहरण मिलते है। रास के प्रसग में ही कई कवियो ने राधाकृष्ण के ब्याह का वर्णन किया है परन्तु सूर की तरह इस अवसर पर ककण खोलने के साथ व्यग्य परिहास एव आनद के मनोभावो का सयोजन किसी ने नही किया है—

नहिं छूटे मोहन डोरना हो।
बडे हो बहुत बछोरियो हो ये गोकुल के राइ।
की कर जोरि करौ विनती कै छुवौ श्री राधाजी के पाइ।
यह न होइ गिरि को धरिबो हो सुनहुँ कुँवर गोपीनाथ।

आपन को तुम बड़े कहावत काँपन लागे हैं दोउ हाथ।
बहुरि सिमिटि ब्रज सुन्दरी मिलि दीन्ही गाठि बनाइ।
छोरहु वेगि कि आनहु अपनी यशुमति माइ बुलाइ।

—सू० सा०, पृ० ४४२-४३

रास के बीच जब कृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं उस समय गोपियाँ पुन विरह-वेदना तथा दुख से कातर हो उठती हैं। उनकी यह कातरता इस सीमा पर पहुँच जाती है कि वे लता, द्रुम, पशु-पक्षी आदि सभी चेतन, अचेतन पदार्थों से कृष्ण का पता पूछने लगती हैं। भागवत में दशम स्कंध के तीसवें अध्याय में इस प्रकार का वर्णन है जिसका निर्देश वर्ण्य वस्तु के प्रसग में किया जा चुका है। अनेक कवियो ने भागवत का अनुकरण करते हुए गोपियो की इस मन.स्थिति का चित्रण किया है परन्तु इसमें नददास को अद्वितीय सफलता मिली है। कृष्ण को खोजती हुई गोपियो के हृदय के साथ जितनी तन्मयता उनके हृदय की हो सकी है उतनी अन्य किसी कवि में नहीं मिलती। नंददास की रासपचाध्यायी का यह स्थल भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठतम काव्य की कोटि में रक्खा जा सकता है। उनका वर्णन किसी प्रकार अनुकरण मूलक प्रतीत नहीं होता—

ह्वै गई विरह विकल मन, बूंझत द्रुम बेली बन।
को जड़, को चैतन्य कछु न जानत विरही जन।
हे मालति! हे जाति! जूथिके! सुनि हित दै चित।
मानहरन, मनहरन लाल गिरिधरन लहे इत।
हे केतकि, इत तें चितये, कितहू पिय रूसे।
किधौं नँद नदन मद मुसकि तुम्हरे मन मूसे।
हे मुक्ताफल बेलि धरे मुक्ताफल माला।
देखे हैं नैन विसाल, मोहना नद के लाला।
हे मदार उदार, बीर करबीर महामति।
देखे कहुँ बलवीर धीर, मनहरन, धीरगति।
हे चदन, दुखकदन सब की जरनि जुड़ावहु।
नँदनदन, जगवदन, चदन हमहिं बतावहु।
पूछहु री इन लतनि फूलि रही फूलन जोई।
सुन्दर पिय कर परस बिना अस फूल न होई।
हे सखि, हे मृगवधू, इनहि किन पूछहु अनुसरि।
डहडहे इनके नैन अबै कहुँ देखे हैं हरि।

—नददास, पृ० १६७-६८

उद्धरण की दूसरी पंक्ति कालिदास के मेघदूत की उक्ति 'कामर्ता हि प्रकृति कृपणा-श्चेतनाचेतनेषु' से स्पर्धा करती है। फूलों से लदी हुई लता को देख कर कहना कि बिना प्रिय के स्पर्श के ऐसी प्रफुल्लता हो ही नहीं सकती, प्रेमी के भावविभोर हृदय के भोले विश्वास का परिचायक है। इसी तरह मृगवधू के डहडहे नेत्रों ने अवश्य प्रिय को देखा होगा, इसी कारण उनमें डहडहापन है, जैसी भावनाएँ भी अत्यन्त सरल एव निश्छल प्रेम को ही व्यक्त करती है। गुजराती कवि नरसी मेहता ने अपने रास-वर्णन के एक पद में इस स्थिति का जो वर्णन किया है वह नददास के उक्त उद्धरण के आगे बहुत फीका लगता है। नददास की तरह इस स्थल पर वे तन्मय न हो सके—

पुछती हिंडे कल्पद्रुम वेली, तरुअर ताल तमाल रे।
हरि हरि करती नयणे जल भरती, कोणे दीठडो नदजी नो लाल।

—न० कृ० का०, पृ० १९५

रासलीला के अन्तर्गत भावाभिव्यक्ति के प्रधान स्थल यही हैं।

४ दानलीला—दही वेचने मथुरा जाती हुई गोपियो से कर रूप में कृष्ण का दधि-दान मागना दानलीला की मुख्य घटना है, जिसका विस्तार करके कवियो ने भावाभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त क्षेत्र खोज लिया। चाहात दान के औचित्य को लेकर वाद विवाद का सूत्रपात होता है जो भावातिरेक की सीमा पर पहुच कर मुक्त सघर्ष का रूप धारण कर लेता है, परन्तु सारे वाद विवाद, सारे सघर्ष के अन्तर्गत विशुद्ध एव प्रगाढ प्रेम की एक विचित्र अन्तस्सलिला प्रवाहित होती रहती है जिसको रसमय अभिव्यक्ति कहना ही प्राय कवियो का लक्ष्य रहा है। सूर ने अपनी दानलीलाओ में शृगारमयी भावभूमि को स्पष्ट आध्यात्मिक सकेतो से सयुक्त करके उच्चतर बनाने का सफल प्रयास किया है और साथ ही भावनाओ की सूक्ष्मतम अनुभूतियों को अनेका-नेक रूपो में प्रकट करते हुए उन्हें चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। गुजराती तथा व्रजभाषा के सभी कवि इस क्षेत्र में उनसे बहुत पीछे छूट गये हैं यद्यपि भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से सूर तथा अन्य कवियो में पर्याप्त समानता है और भाववस्तु भी प्राय एक-सी ही है।

कृष्ण की ओर से दान माग जाने पर गोपियो को आश्चर्य होता है, क्योकि उनके व्रज में एसा कभी हुआ ही नही। वे कृष्ण के अधिकार प्रदर्शन पर तीव्रतम व्यग्य कर उठती है। कृष्ण की पिछली सारी करतूतें उन्हें याद आती है। भावावेग में वे विविध प्रकार से कृष्ण की आलोचना करने लगती है। उनके व्यग्य वचनो तथा उपालभो

के पीछे से उनके हृदय का वास्तविक सत्य झलकता रहता है। कवियों ने गोपियों की इस मनोदशा को परखने और व्यक्त करने की पूरी चेष्टा की है। इस सम्बन्ध में जो वाद-विवाद कवियों ने कराया है उसकी वचन-वक्रता तथा भाव-भंगिमा दर्शनीय है।

सूर की 'ग्वालि' ज्योंही यह जान पाती कि दान की याचना कृष्ण ने की त्योंही उसकी भावमुद्रा व्यंग्यात्मक हो जाती है—

तब हँसि बोली ग्वालि नाम जब कान्ह सुनायो।
चोरी भरयो न पेट आनि अब दान लगायो।
कालिहि घर घर डोलते खाते दही चुराइ।
राति कछू सपनो भयो प्रात भई ठकुराइ।
हमहि कहत हौ चोरटी आपु भयो हौ साहु।
चोरी करत बडे भये मही छाक लै खाहु।

—सू० सा०, पृ० २९७-९८

निषेध के पीछे स्वीकृति, 'नाहीं' के पीछे 'हां' छिपाये रखना स्त्री-स्वभाव की प्रसिद्ध विशेषता है। बाहर बाहर कृष्ण के दान माँगने से खीझने वाली ग्वालिन भीतर भीतर उन पर कितनी अनुरक्त है, इसे सूर ने निम्न पद में अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया है—

भोरहिं ते कान्ह करत मोसो झगरो।
औरन छाँडि परे हठ हमसा दिन प्रति कलह करत नहिं डगरो।
अनबोहिनी तनक नहिं दैहौ ऐसहि छीनि लेहु बरु सगरो।
सब कोउ जात मधुपुरी बेचन कौने दियो दिखावहु कगरो।
अचल ऐंचि ऐंचि राखत हौ जान देहु अब होन है दगरो।
मुख चूमति हँसि कंठ लगावति आपुहि कहति न लाल अचगरो।
सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँडहु दियो परत नहिं पगरो।
परम मगन ह्वै रही चितै मुख सबते भाग याहि को अगरो।

—सू० सा,० पृ० २९९

'ऐसेहि छीनि लेहु बरु सगरो' कहने से दही के छीने जाने से उत्पन्न होने वाली सुखानुभूति और तदर्थ स्वीकृति की पूर्ण व्यंजना होती है जिसे कवि ने अन्तिम पंक्तियों में बहुत स्पष्ट कर दिया है।

इसी प्रकार भालण की भी एक गोपी उत्तर देते समय व्यग्यात्मक शब्दो के साथ आत्मश्लाघा करती जाती है परन्तु वस्तुत उसका हृदय कृष्ण पर आसक्त है—

गाय चारो नदनी तो दाणी तु कोने थयो।
चोरी ने दूध दहि खातो पीयारे तु उछर्यो।
वीहावो ते बीजी ने भोली होये भामिनी।
तम थकी हु अधिकु छु रे कुटिल विद्या धामिनी।
वीहे ते तो वले आपे, बीक मारे छे कशी।
भालण प्रभु रघुनाथ नें वह प्रीति रीतें मन वशी।
—द० स्क० पृ० १००-१०१

एक अन्य परकीया गोपी कृष्ण से अपना हाथ छुडाती हुई जो कुछ कहती है उससे उसकी मधुर अनुरक्ति पूरी तरह व्यजित होती है। एक ओर तो वह कृष्ण को सीख देती जाती है, दूसरी ओर अपनी परवशता तथा स्नेहविभोरता को भी छिपाना नही चाहती। पहले कहती है कि हाथ छोड दो, मेरी कोमल उगली मत मरोडो, अब कभी नही आऊगी। फिर कहती है कि कल नद तुम्हारा ब्याह कर देंगे, सुन्दर स्त्री आयेगी, कही परस्त्री से घर बसता है।

बहुत कुछ उसके इतने कथन से ही प्रकट हो जाता है। इसके पश्चात् जब वह चतुराई की दुहाई देकर कृष्ण से घर जाने के लिए कहती है और वहाँ बातें करने योग्य एकान्त का अभाव तथा सखियो के आने का भय बताती है तो जो कुछ रहा सहा है वह भी स्पष्ट हो जाता है।[३१]

नरसी और प्रेमानद ने भी अपनी-अपनी रीति से गोपी के हृदय की गुप्त प्रीति को प्रकट किया है। नरसी ने आगिक चेष्टाओ के माध्यम से भावमुद्रा को अत्यन्त मनोहारी रूप में चित्रित किया है—

मुख आडो, पालव ग्रही, ताण्या भवाना बाण।
नयन कटाक्षे निहाली नें बोली, 'प्रभु शाना मागो छो दाण'।
—न० कृ० का०, पृ० १५६

अपने सौन्दर्य को प्रदर्शित करके गोपी का यह पूछना कि किसका दान माँगते हो, एक गूढ अर्थ की प्रतीति कराता है।

प्रेमानद ने भी गोपी की रीझ-खीझ-भरी मनोदशा को सफलता से अकित किया है।[३२]

पर राधा-कृष्ण का व्यंग्य-प्रेमयुक्त वाद-विवाद प्रेमानंद के द्वारा जिस रूप में वर्णित किया गया है वह अधिक प्रशंसनीय है। राधा और कृष्ण दोनों के उत्तर एक दूसरे से अधिक सचोट सिद्ध होते हैं। दोनों एक दूसरे के द्वारा लगाये गये आरोपों का प्रत्युत्तर नये-नये आरोप लगाकर देते हैं तथा अधिकाधिक उत्तेजक शब्दों का प्रयोग करके अपनी-अपनी अप्रतिहत क्षमता का प्रदर्शन करते हैं। संवाद का एक ही अंश उदाहरण के लिए पर्याप्त है जिसमें दोनों एक दूसरे के बाप तक पहुंच जाते हैं—

राधिका—पाघरी वांटे ते लडे रे, जेने होये वे बाप।
दाणनी शु ते महोर करावी, कसे कीधी शु छाप।

श्रीकृष्ण—छाप तो तारो बाप करावे, रांकडो वृषमान।
अमो कुवर नंदजीतणा, कोनी नव मानुं आण।

परस्पर अहंकार का प्रदर्शन एवं संघर्ष दान के प्रसंग की लीलात्मकता को निखार देता है।

नरसी की पूर्वोद्धृत पंक्तियों में जिस गूढार्थ को केवल व्यंजित करके छोड़ दिया गया है उसका आधार लेकर सूर ने अद्भुत भाव विस्तार किया है। दूध-दही का दान मांगने के पीछे कृष्ण का जो वास्तविक भाव था वह प्रकट हो जाता है। वे दधिदान के स्थान पर यौवनदान लेने का संकल्प करते हैं और प्रगल्भ ग्वालिनों को पूरी तरह अपने वश में करना चाहते हैं—

जोबनदान लेउँगो तुमसौं।
जाके बल तुम बदति न काहुहिं, कहा दुरावति हमसौं।
ऐसो धन तुम लिये फिरति हौ दान देत सतराति।
अतिहि गर्व ते कह्यो न मोसों नित प्रति आवत जात।
कंचन कलश महारसभारे हमहूँ तनक चखावहु।
सूर सुनहु करि भार मरति कत हमहिं न मोट दिवावहु।

—सू० सा०, पृ० २९९

यहाँ अभिधा के द्वारा सीधे-सीधे अभिप्राय प्रकट किये जाने से काव्य-सौन्दर्य में जो हानि हुई है, अन्यत्र इसी अभिप्राय को व्यंजना द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत करके सूर ने एक प्रकार से उसका परिहार कर दिया है।

कृष्ण 'जोबनदान' अथवा 'अंग अंगनि को दान' स्पष्टतया न माँग कर कनक-कलश, हंस-केहरि आदि उपमानों के द्वारा अंग-प्रत्यंग के दान लेने की व्यंजना करते हैं"

गोपियाँ कृष्ण के इस पहेली जैसे कथन को समझ नही पाती। वे चकित हो उठती हैं, क्योंकि दूध-दही को छोडकर इन वस्तुओ का न कभी उन्होने व्यापार किया, न वे आसपास कही दिखाई ही दे रही हैं।

जब वह पूरी तरह असमर्थ हो जाती हैं तब कृष्ण उन्हें प्रत्येक उपमान का उप-मेय बताकर वास्तविक अभिप्राय समझाते हैं। ज्यो ही गोपियो की समझ में कृष्ण का अभिप्राय आता है त्योही वे पुन खीझ कर व्यग्य करने लगती हैं—

मागत ऐसे दान कन्हाई।
अब समुझी हम बात तुम्हारी प्रगट भई कछु धौं तरुनाई।
यहि लालच अँकवारि भरत हो हार तोरि चोली झटकाई।
अपनी ओर देखि धौं लीजै ता पाछे कीजै वरिआई।
सखा लिये तुम घेरत पुनि पुनि बन भीतर सब नारि पराई।
सूर श्याम ऐसी न बूझिये इनि बातनि मर्यादा जाई।

—सू० सा०, पृ० ३११

फिर तकरार बढ जाती है। गोपियाँ यशोदा के पास उलाहना देने जाती हैं और यशोदा 'मेरो हरि कँह दसहि वरप को तुम यौवन मद उदमानी' कह कर सारा दोष गोपियो के ही सिर मढ देती है। इन उपालभो में सूर ने भावो का अकन अत्यन्त कौशल से किया है। कल्पना द्वारा सारा प्रसग रचकर विविध मानवीय भावो को उसमें ग्रथित कर देने की उनमें जो क्षमता है उसका पूरा परिचय उनकी दान-लीलाओ से मिल जाता है।

उपालभ देने वाली इन गोपियो के बीच सूर ने एक ऐसी भाव भरी गोपी को खोज लिया जो यौवनदान की बात सुनकर सकोच और लाज से मरी जा रही है। वैसे ही लोग उसका उपहास करते थे, जब यह सुनेंगे तो वे सचमुच कृष्ण से उसके प्रेम-सबध को समझ जायेंगे। उसकी अनुनय पूर्ण मनोदशा दर्शनीय है—

श्यामहि बोलि लियो ढिग प्यारी।
ऐसी बात प्रगट कहुँ कहिये सखनि माझ कत लाजनि मारी।
एक ऐसेहि उपहास करत सब तापर तुम यह बात पसारी।
जातिपाँति के लोग हँसहिंगे प्रगट जानिहैं श्याम भतारी।
लाजनि मारत हो कत हमको हाहा करति जाति बलिहारी।
सूर श्याम सर्वज्ञ कहावत मात पिता सो दयावत गारी।

—सू० सा०, पृ० ३१२

कुछ ऐसा ही भाव एक स्थल पर नरसी ने भी दिखाया है—

फजेत थवानी आ वातडी रे कान जी माडी ते आज ।
ब्रज मा ते जाणशे नद जी कहो केम रहशे लाज ।
—न० कृ० का०, पृ० ३१६

दान के प्रसग में कृष्ण और गोपियो का झगडा बातो तक ही सीमित नही रहता। उसमें आलिगन, स्पर्श, चुवन तथा हाथापायी तक की स्थिति आ जाती है। नरसी ने दान के कारण होने वाले सघर्ष को 'सुरतसग्राम' में पूरी तरह सग्राम का रूप दे दिया है। जिस प्रकार उपर्युक्त पदो से सूर की असाधारण कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है उसी प्रकार 'सुरतसग्राम' में नरसी की अद्भुत कल्पना के दर्शन होते हैं। रति के साथ उत्साह का सम्मिश्रण रतिवर्णन में अनेक कवियो ने किया है परन्तु दान के साथ उसे सम्बद्ध करके शृगार के अन्तर्गत वीर रस का पूरा वातावरण प्रस्तुत कर देना वस्तुत एक विचित्र भाव-योजना है। नरसी ने रूपक के आधार पर दोनो का निर्वाह करना चाहा है जिसमें अधिकतर उन्हें सफलता मिली है परन्तु कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ रूपक एकागी होकर टूट जाता है और जिन वस्तुओं का उल्लेख वातावरण को पूरा करने के लिये किया गया है वे वीभत्सता का आभास कराकर शृगार रस के आस्वादन में व्याघात उत्पन्न करती हैं। उदाहरणार्थ कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं—

क निर्वलो मागिया, मलमूत्र त्यागिया, कोपि सुणो शब्द नही गोपी जेवो ।
—न० कृ० का०, पृ० १०१

ख शान्ति गई वस्तिनी, वृष्टि थई अस्थिनी, वायु भयकर त्यारे वातो ।
—वही, पृ० १०३

ग अशुद्धना चक्ष ने, गीध करे भक्षने, दक्षने जोइ करे कईक ले' के ।
—वही, पृ० ११३

जिस युद्ध मे कटाक्ष ही बाण हो, भौहें ही धनुष हो तथा आलिगन-चुबनादि ही प्रहार एव आघात हो वहाँ मलमूत्र-त्याग, अस्थिवर्षा तथा गीधो द्वारा नेत्र-भक्षण का क्या प्रश्न उठता है। ऐसे वर्णन सग्राम के यथार्थ वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए किये गये हैं परन्तु कवि को यह नही भूलना था कि यह सग्राम मात्र का वर्णन न होकर 'सुरत सग्राम' का वर्णन है। ऐसे स्थल अस्वाभाविक इसलिए लगते हैं कि जुगुप्सा शृगार रस का सचारी भाव नही है। इन स्थलों को छोडकर अन्यत्र रति उत्साह

के सम्मिलित चित्रण में नरसी को पर्याप्त सफलता मिली है। कहीं-कहीं भावो का विकास अपनी चरमसीमा तक पहुच गया है। बलराम के साथ विशाखा और कृष्ण के साथ राधा के युद्ध के दो ऐसे दृश्य नीचे दिये जा रहे हैं जिनमें भावावेश का अत्यन्त ओजपूर्ण चित्रण हुआ है—

क पिंड द्रय पीसता, मन मा हीसता, त्राहे त्राहे करती विशाखा।
चुवने चोल्ता, सप्त विधि घोलता, अष्ट आलिंगने चोली नाख्या।
अष्टादश हाव मा, वलि पच भाव मा, पकडता दाव मा दाग पाय।
नव हवा चूकिये, कोइदि नव मूकिये, भात नरसैंनो बहु पीडाय।
—न० कृ० का० पृ० १०८

ख मर्यादने लोपी नें, दु खी करी गोपी ने, धोपी नें धाइ रण बीच राधे।
दृग-असि सज करी, ढाल उरनी धरी, भुव शरासन विच शर ने साधे।
—वही

दान के प्रसग में राधा-कृष्ण का प्रेम और रोषपूर्ण सघर्ष सूरदास ने भी चित्रित किया है परन्तु उसमें ओज के स्थान पर कोमलता की तथा रोष के स्थान पर प्रेम की प्रधानता मिलती है।[३४]

जिन कवियो ने युद्ध और सघर्ष को दान के मूल भाव के बहुत अनुकूल नही समझा उन्होने कृष्ण में इतनी विनम्रता प्रदर्शित की है कि वे याचक बनकर प्रिया के चरणो में अपना शीश तक रख देते हैं। भालण और ध्रुवदास ने कृष्ण की मनोदशा का इसी रूप में चित्रण किया है—

भालण—श्याम सुन्दर हस्या त्यारे वचन श्यामाना सुणी।
केशवजी कर जोडिया ने प्रीति बाधी अति घणी।
—द० स्क०, पृ० १०३

ध्रुवदास—प्रिय प्रवीन रस प्रेम में कह्यो सहचरी कौन।
दान मान रस छाँडि कै सीस पगन तर दीन ॥१७॥

गौडीय कवि माधवदास ने राधा को इतना स्नेह-विभोर चित्रित किया है कि सघर्ष की स्थिति आने ही नही पाती। कृष्ण के हाथ का स्पर्श होत ही वह पूर्णतया प्रेमविह्वल हो जाती है और अनेकानेक अनुभाव प्रकट होने लगते हैं।[३५]

दधिदान और यौवनदान देने के अनन्तर ग्वालिनो में जो प्रेमोन्माद उत्पन्न होता है और जो विसुधि उनके मन पर छा जाती है उसका वर्णन सूर ने अत्यन्त स्वाभाविक

रूप से किया है। दही बेचनेवाली ग्वालिन प्रेमजन्य विस्मृति की अवस्था में कभी वृक्षों के हाथ दही बेचने लगती है, कभी दही का नाम ही भूल जाती है और 'दही लो, दही लो' न कह कर 'कृष्ण लो, गोपाल लो' आदि कहने लगती है—

क तरुणी श्याम रस मतवारि।
प्रथम जोवन रस चढायो अतिहि भई खुमारि।
दूध नहिं, दधि नही, माखन नही, रीतो माट।
महारस अँग अँग पूर्‌यो कहाँ घर कहाँ घाट।

—सू० सा०, पृ० ३२४

ख या घर में कोउ है कि नाही।
बार बार बूझति वृक्षन को गोरस लैंहौ कि नाही।
आपुहि कहति लेहु नाही दधि और द्रुमन तर जाती।
मिलति परस्पर विवश देखि तेहि कहति कहा इतराती।
ताको कहति आपु सुधि नाही सो पुनि जानत नाही।
सूर श्याम रस भरी गोपिका बनते यो बितताही।

—वही

ग कोऊ माई लैहै री गोपालहिं।
दधि को नाम श्यामसुन्दर रस विसरि गई ब्रजबालहिं।
मटुकी शीश फिरत ब्रजवीथिन बोलत बचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँदिशि चितवति चित लाग्यो नँदलालहिं।
हँसति रिसाति बोलावति बरजति देखहु उलटी चालहिं।
सूर श्याम बिनु और न भावै या विरहिनि बेहालहिं।

—वही, पृ० ३२६

कृष्ण-प्रेम से उत्पन्न विस्मृति की उस मनोदशा का जिसमें ग्वालिन दही का नाम भूल कर उसके स्थान पर कृष्ण का नाम लेने लगती है, ब्रजभाषा के अन्य कवियों—चतुर्भुजदास तथा मीरा—ने भी किया है।[३१]

गुजराती कवि नरसी में भी यह भाव मिलता है। ग्वालिन के द्वारा मटकी में दही के स्थान पर कृष्ण बताये जाने पर नरसी के कृष्ण सचमुच उसकी मटकी में समा जाते है—

धरणीधरसु लागु मारु ध्यान रे।
लोक कहेशे गोपी घेली रे थइ छे।
माथे छे महि कहे छे कान रे।

बेचती बेचती चाली नगर मुझार रे।
मटुकी माहे आवी रह्या देव मोरार रे।
चौद लोक अेना मुखमा समाय रे।
अेवो वैकुंठनाथ केम मटकी मा माय रे।
नरसैंया चो स्वामी भक्त आधीन रे।
आप ,सरीखडा कीधा आहीर रे।

—न० कृ० का०, पृ० ५३६ तथा पृ० २८८

इस पद में नरसी ने मूल-भाव विस्मृति का विकास न करके अन्तिम पंक्तियों में कृष्ण के ऐश्वर्यमय रूप का तथा उनकी सर्वव्यापकता का जो परिचय दिया है, काव्य की दृष्टि से उसकी कोई उपयोगिता नहीं दिखाई देती। दानलीला के अन्तर्गत सूर ने भी कृष्ण के ऐश्वर्य की ओर कई बार संकेत किया है। ऐसा करके उन्होंने दान की सामान्य भावभूमि को आध्यात्मिक संकेत देकर उच्चतर बनाना चाहा है जिसकी ओर इंगित किया जा चुका है परन्तु संकेतात्मकता के स्थान पर जहाँ उपदेशात्मकता आ गयी है वहाँ उनका काव्य भी शिथिल प्रतीत होने लगता है।

जब गोपियाँ खीझ कर गाँव छोड जाने की बात कहती है तो कृष्ण उन्हें विचित्र उत्तर देते हैं—

गाउँ हमारो छाँडि जाइ बसिहौ केहि केरे।
तीन लोक में कौन जीव नाहिन बश मेरे।

—सू० सा०, पृ० २९७

इसी प्रकार गोपियाँ जब कृष्ण को 'लरिका' कहती है, उनकी 'कमरी' पर व्यग्य करती या उनके माता-पिता की बात उठाती है तो भी वे ऐसे ही विचित्र उत्तर देते है जिनसे लीला का आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट हो जाता है।[१७]

गहरी भावधारा के बीच-बीच सूर ने इस प्रकार के कथनो को गूंथ दिया है। निश्चय ही इनसे मूलभाव को बल नही मिलता वरन् एक प्रकार का व्याघात ही होता है परन्तु जैसा कि बाल-लीलाओ के प्रसग में लिखा जा चुका है, भक्तो के हृदय में वे अद्भुत रस का सचार भी करते है जिससे रस दोष का बहुत कुछ परिहार हो जाता है।

५. मानलीला—स्नेह व्यक्ति में अन्तर्निहित अहं की तीव्रतम अभिव्यक्ति है। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि इसमें अहं की सारी तीव्रता विगलित होकर परस्पर

समर्पण का रूप धारण कर लेती है। प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों के हृदय एकीभूत होकर, शारीरिक द्वैत के रहते हुए भी, एक अद्भुत मानसिक अद्वैत की सृष्टि करते हैं जिसके कारण प्रत्येक अपने स्थान पर दूसरे को अपने जीवन का केन्द्र एवं आधार मानने लगता है। दोनों के बीच किसी तीसरे का प्रवेश दोनों को असह्य हो उठता है। समर्पण के साथ अधिकार भावना का भी विकास होता जाता है। मान अथवा रोष तभी उत्पन्न होता है जब काम्य वस्तु पर रहने वाले एकाधिकार में बाधा पड़ती है। 'कामात्कोधोभिजायते' के द्वारा गीताकार ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्पष्टतया व्यक्त किया है। वस्तुतः रोष, क्रोध अथवा मान काम का ही परिवर्तित रूप है। मानलीला द्वारा इसी भाव सत्य को व्यक्त किया गया है। दाम्पत्य प्रेम में उदारता की अपेक्षा ईर्ष्या ही अधिक स्वाभाविक है। पहली प्रतिक्रिया उत्तेजना के रूप में ही होती है। परन्तु यह उत्तेजना 'रीति' स्थायी की उद्दीपक बनी रहती है। उसमें बाधक नहीं बनती, मान प्रेम भाव को निखार देता है, राधा कृष्ण को अन्य स्त्री में अनुरक्त समझ कर रुष्ट हो जाती है। इसी मूल प्रसग को लेकर कवियों ने पर्याप्त भाव विस्तार किया है। मान करनेवाली राधा की मनोदशा, उसके मान के कारण उत्पन्न होने वाली कृष्ण की व्याकुलता तथा मनानेवाली दूती की भावनाएँ, सभी का अंकन कवियों ने पर्याप्त तन्मयता और कुशलता के साथ किया है।

राधा के हृदय में ज्योंही सदेह उत्पन्न होता है, वह व्यंग्यपूर्वक कटु शब्द कहती हुई कृष्ण से अपना हाथ छुडा लेती है; एकांत में जाकर सारे आभूषण उतार डालती है और मारे क्रोध के निश्वास भर-भर कर आँसू बहाने लगती है। नरसी ने मानिनी राधा का इसी रूप में अंकन किया है जो अत्यन्त स्वाभाविक बन पड़ा है—

क. लपट मेली देने मुजने नीर्लज साथ शुं नेह।
भुजथी वहाली चा'लमा, उर विषे राखी छे तेह।
कर मुकाव्या पाणथी रमा भराणी रोष।

—न० कृ० का०, पृ० १४०

ख. विनता ते वन जोती गई ज्या कामिनी नुं भूवन।
शोकसागर अंगे आतुर, रही रही करे रुदंन।
हार चीर शणगार भूषण, काकण कंकण जेह।
शणगार सर्व अग थकी अबलाये उतार्या तेह।
ते सोल कलाओ शोभती त्रैलोक्य तारुणी सुन्दरी।

शोक सागरे पडी श्यामा, ललिताअे दीठी अणमणी ।
कमल सरखा नयन दीठा, निश्वास महेले नार ।

—वही, पृ० १४

'मयणछंद' के रचयितामयण कवि ने राधा की मनोदशा को नरसी की तर
रोष की अवस्था में नहीं अंकित किया है। वसंत आने पर जब राधा का रोष उद्दीप
के कारण आप ही दूर हो जाता है उस समय कृष्ण का विरह उसे अत्यन्त विह्वल क
देता है। कवि ने इसी का वर्णन किया है—

विलवइ विरहणि नारि वारि विण नलिनी सूकइ।
वसति दर्ष जाइ जाय रमणि नीसासह मूकइ।
गिरि नीझरण जिम नीर नयण जलि कचू भिजउ।
मच्छी विलवइ जिम्म अबु, अबु विण जीवह सुन्नउ।
सखी ए वसंत प्रिया रङ्ग माननि मान धमुक्कीउ।
रे रहसि मयण नियतणु दहण धाम वाण शिरि ढुक्कीउ ॥२६।

ब्रजभाषा में सूर ने मानिनी राधा की मनोदशा का सूक्ष्मतर अंकन किया है
उसकी भाव मुद्रा को अधिक कुशलता के साथ प्रस्तुत करते हुए रोष और विर
दोनों को एक साथ अभिव्यक्त किया है—

आज हठि बैठी मान किये।
महाक्रोध रस अश तपत मिलि मनु विष विषम पिये।
अधमुख रहति विरह व्याकुल सिख भूरि मत्र नहि मानैं।
मूक न तजै सुनि जाति ज्यो सुधि आये तनु जानैं।
कबहुक धुकति धरनि श्रम जलभरि महाशरद रवि सास।
इकटक भई चित्र पूतरि ज्यो जीवन की नहि आस।

—सू० सा० पृ० ४८७ ८

क्रुद्ध व्यक्ति, जिसके प्रति क्रोध है उसको, कटु शब्द कहने के साथ साथ समझा
वाले का भी तिरस्कार करता है क्योंकि वह समझाने वाले को अपराधी का समर्थ
मान लेता है। इस मनोभाव की ओर गुजराती कवि भालण ने दो पंक्तियों
संकेत भर किया है परन्तु सूर के द्वारा इसको पूरी तरह विकसित रूप में अभि
व्यक्ति मिली है—

भालण—दूती ने त्या गाल दे छे, तु तो धूतारी।
मने शाने तेडी आवी, अे तो व्यभिचारी।

—दशमस्कंध, पृ० १०

सूर—वादि बकति काहे को तू कत आई मेरे घर।
वे अति चतुर कहा कहिये जिन तोसी मूरख
तनु बेधत लैन पठाई वचनन शर।

उतकी इत इतकी उत मिलवति समुझति नाहिन
को ही प्रीति रीति तू को हूं गिरिवरधर।

सूरदास प्रभु आनि मिलेंगे छै हूं पग अपने कर।

—सू० सा० पृ० ४८७

राधा जिस दूती की इस प्रकार भर्त्सना करती है उसके मनोभावों को भी सूरदास ने व्यक्त किया है—

ज्यों ज्यो मैं निहोरे करौं त्यों त्यों यों बोलति हूं री अनोखी रूसनिहारी।
बहियाँ गहत सतराति कौन पर, मग धरी उंगरी कौन पै होत पीरी कारी।
कौन करत मान तोसी और न त्रिय आन हठ दूरि करि धरि मेरे कहे आरी।
सूरदास प्रभु तेरो पथ जोवत तोहिं रट लागी मदन दहत तनु भारी।

—वही

दूती चतुर है अतएव भर्त्स्ना का प्रतिशोध करती हुई भी अपने उद्देश्य की पूर्ति का ध्यान रखती है और मनाने के निमित्त अंत तक कृष्ण की व्याकुलता का उल्लेख कर ही डालती है।

कवियों ने दूतियों द्वारा जो कुछ जिस ढग से कहलाया है वह मनोवैज्ञानिकतया अत्यन्त उपयुक्त है। रूठी हुई राधा को मनाने के लिए वे कभी कृष्ण की एकनिष्ठा, व्याकुलता तथा निर्दोषिता का बखान करती हैं, कभी ऋतु के उद्दीपक स्वरूप का वर्णन करके क्रोध के कारण सुप्त कामभाव को जगाने का प्रयास करती है, और जब यह सब सफल नहीं होता तो वे यौवन की क्षणभंगुरता पर वार बार बल देकर जीवन के आनन्द को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण रूप में पा लेने की इच्छा उत्पन्न करने की चेष्टा करती है। इस दृष्टि से भालण, नरसी तथा सूरदास की दूतियों के कथनों की समानता विशेष रूप से दर्शनीय है।[१८]

गुजराती कवियों की अपेक्षा सूरदास के कथनों में कुछ विशेषताएँ अधिक है। एक तो दूती का राधा के रूप-गुण की प्रशंसा करने का प्रयास अत्यन्त स्वाभाविक है, दूसरे उद्दीपन के लिए प्रकृति का जो चित्र रक्खा गया है वह पूर्णतया उपयुक्त है। समस्त प्रकृति में तीव्र एवं व्यापक मिलन भावना दिखा कर राधा के मन में मिलनेच्छा

उत्पन्न कराने का भाव सूर की मौलिक काव्यशक्ति का परिचायक है। इसी शक्ति के आधार पर सूर यौवन की क्षणिकता की तुलना 'अजुरी' के 'जल' और 'वदरी की छाही' से कर सके।

राधा को मनाने के लिए उपर्युक्त बातो के अतिरिक्त कवियो ने कृष्ण के द्वारा अपने ऐश्वर्य का स्वय वर्णन कराया है जो सारी भावस्थिति को अलौकिक धरातल पर ला देता है। मानलीला में नरसी और सूर ने कृष्ण के लोकोत्तर स्वरूप को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट किया है।[१]

राधा के मान करने से कृष्ण की जो दशा होनी है, उसका सकेत मात्र गुजराती कवियो ने यत्रतत्र कर दिया है परन्तु ब्रजभाषा में सूर, ध्रुवदास तथा माघवदास ने उसका पूरा चित्रण किया है। सूर के कृष्ण इतने दुखी होते है कि उनकी चेतना ही 'कुछ काल के लिए विलीन हो जाती है। मुकुट, पीताम्बर आदि का भी उन्हें ध्यान नही रहता—

यह सुनि श्याम विरह भरे।
कहुँ मुकुट कहुँ कटि पिताम्बर मुरछि धरणि परे।

—सू० सा०, पृ० ४८५

कृष्ण को राधा की कुज में प्रतीक्षा करनी होती है। जब तक राधा आ नही जाती तब तक एक एक क्षण का विलम्ब उनके लिए असह्य हो उठता है—

श्याम वन धाम मग वाम जोवै।
कबहुँ रचि सेज अनुमान जिय जिय करत लता सकेत तर कबहुँ सोवै।
एक छिन इक घरी, घरी इक याम सम, याम वासरहु ते होत भारी।
मनहि मन साथ पुरवत अग भाव करि धन्य भुज धनि हृदय मिले प्यारी।
कबहि आवै सांझ, सोच अति जिय मांझ, नैन खग इदु ह्वै रहे दोऊ।
सूर प्रभु भामिनी वदन पूरणचन्द्र रस परस मनहि अकुलात वोऊ।

—सू० सा०, पृ० ४८८-८९

ध्रुवदास ने भी सूर की ही तरह अत्यन्त मार्मिकता एव स्वाभाविकता से कृष्ण की भावदशा का अ कन किया है। उनकी प्रतीक्षाकुलता को कवि ने अन्यतम अभिव्यक्ति प्रदान की है—

लुठत धरनि अँसुवनि भरनि बाढी नदी अपार।
गहि रहे गुन एक नेह को राधा नाम अधार ॥१२॥

मुकुट कहूँ वंसी कहूँ, भूषन कहुँ पटपीत।
मैन सैन लिये घेरिके ताते भये अति भीत ॥१३॥
सेज कुंज भूषन बसन अरु फूलनि के हार।
देखि सबै बनखात है पावक की सी झार ॥१४॥
तुव मग जोवत छिनहि छिन और न कछू सोहात।
पत्र पवन खरकत जबहि उठि धावत अकुलात ॥१७॥
—मानविनोदलीला

माधवदास ने कृष्ण की उस मन.स्थिति को सूक्ष्मता से आँका है जब वे मानिनी राधा को मनाने का प्रयास भी करते जाते हैं और शरीर छूने हुए डरते भी जाते हैं।

आये सनमुख लाल लोचन सजल कीने, माला एक मल्ली की नवल कर लीने हैं।
आगे लै लै घरत करत मनुहार अति पाइन परत कर कैंसे डारि दीने हैं।
मोहन मनावत उठावति चिबुक गहि, जतन बनावत न सौंहे दृग कीने हैं।
छुउ न सकत पै न रह्यो पुनि जात जिय अति अकुलात जैसे मीन जलहीने हैं।
—श्री माधुरी वाणी, पृ० ८०

६. पनघटलीला—पनघटलीला की भाव-भूमि दानलीला की भाव-भूमि से बहुत समानता रखती है। दोनो में भाव-विकास भी प्रायः एक ही क्रम से होता है। जिस प्रकार दधि-दूध बेचने जाती हुई गोपियो को कृष्ण दान के बहाने से उसमें उलझाते खिझाते हैं उसी प्रकार इसमें भी यमुना-जल भरने आने वाली गोपियो को कभी गागर फोड देते हैं, कभी बाँह मरोड देते हैं; और भी अनेक प्रकार से वे गोपियो को मुग्ध कर लेते हैं। गोपियाँ भी कभी खीझ कर यशोदा के पास तक उपालभ ले जाती हैं और कभी रीझ कर फिर उसी घाट पर जल भरने आती है या जल भरना ही भूल जाती हैं। पारस्परिक स्नेह की अभिव्यक्ति इसमें भी अत्यन्त स्वाभाविक रूप में की गई है। गुजराती तथा ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने राधाकृष्ण और गोपियों की पारस्परिक प्रीति का विकास चित्रित करने के लिए इस पनघट के प्रसंग को उपयुक्त पृष्ठभूमि समझ कर चुना है। सूर ने इसको अतिशय भाव-सम्पन्न बनाकर अन्य लीलाओ की सी पूर्णता प्रदान की है।

सूर के कृष्ण मथुरा के मार्ग की तरह पनघट को भी रोक रखते हैं। गोपियाँ बेचारी उन्हें देखते ही लौट जाती है। एक गोपी अनजाने जल भरने आ ही गई। ज्योही जल हिलोर कर उसने गागर भरी और सिर पर रखकर घर चली कि कृष्ण

ने आकर डरवा दिया। उसने भी कृष्ण की 'कनक लकुटिया' छीन ली और 'समसरि' करते हुए कहा कि जब तक तुम मेरी गागर नही भरोगे तब तक लकुटिया नहीं मिलेगी। चतुर कृष्ण ने चीरहरण के प्रसग की स्मृति दिला कर उसे इतना भाव-विभोर कर दिया कि उसे तन-बदन की सुध भूल गई; सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दीखने लगे। इस प्रकार उसकी तन्मयता चरम कोटि तक पहुँच जाती है।"

सूर ने जिस प्रकार मौलिक कल्पना से इस भावमय गोपी की सृष्टि की उसी प्रकार उसकी एक सखी को उससे भी अधिक भावमयता प्रदान करके चित्रित किया है। कृष्ण की खोज में वह भी पनघट आती है और जल भर चुकने पर जब उसकी विकलता सीमा पर पहुँच जाती है तो अन्तर्यामी कृष्ण प्रकट हो कर उसे आलिंगन में भर लेते है। इस रूप में कृष्ण का स्नेह पाकर वह उन्मादिनी बन जाती है।"

वह ग्वालिन अपने मनोभावो को स्वय प्रकट करती है। सूर ने उसके आत्म-कथन के द्वारा उसकी तन्मय अवस्था का और भी उत्कृष्ट निरूपण किया है—

आवत ही यमुना भरे पानी।
श्याम बरन काहू को ढोटा निरखि बदन घर गई भुलानी।
उन मो तन मैं उन तन चितयो तबही ते उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी टकटकी लागी तनु व्याकुल मुख फुरत न बानी।
कह्यो मोहन मोहनी तू कहि या ब्रज में नहिं मैं पहिचानी।
सूरदास प्रभु मोहन देखत जनु बारिधि जल बूँद हेरानी।
—सू० सा० पृ० २५८

नरसी और मीरा के गुजराती पदो में पनघट के सम्मोहन से आत्मविभोर गोपी की दशा का चित्रण प्राय इसी रूप में मिलता है परन्तु उन्होने सूर की तरह परिस्थि-तियों की विविधता के साथ स्नेह-विकास को चित्रित न करके केवल विकसित स्नेह तथा तज्जन्य विह्वलता को ही चित्रित किया है। नरसी की गोपी पनघट की घटना को अपनी सखी से भावमग्न होकर इस प्रकार बताती है—

सामल वहेनी वातलडी, मीठामा अति मीठी रे।
जुमना पाणी हु गई ती, तहा नदने कुवरे दीठी रे।
आगल आवी ऊभो रह्यो हु ने घाली पग माहे आटी रे।
मारा वाहला अेम जोर न आणो अमे अबला तमो माटी रे।

अधर अमृत रस गृही ने दावी, मारी नवल पटोली फाटी रे।
आलिंगन लीधु अति प्रेम केशर लइ लइ छाटी रे।
जादवराय शु स्नेह सबलो, पीठ थर उपर न मेली छाती रे।
नरसैयाच्यो स्वामी भले मल्यो, हु ने आपी हाथे बीटी रे।
—न० कृ० का०, पृ० ५०६

अन्त तक इतनी सुधि तो उसे रहती ही है कि वह अपनी सखी को कृष्ण के आकर्षित होने की बात बता देती है परन्तु प्रेम की कटारी से विद्ध मीरा की गोपी कच्चे धागे से बधी केवल खिचना ही जानती है, प्रिय को अपनी ओर खीचने की स्मृति उसे कहाँ—

प्रमनी प्रेमनी प्रेमनी रे मने लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुना मा भरवा गयाता हती गागर माथे हेमनी रे।
काचे ते तातण हरि जीए बांधी जम खीचे तेम तेमनी रे।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर शामली सुरत शुभ एमनी रे।
—मीराबाई की पदावली, पृ० ६०

इस प्रसग में यशोदा को दिये गये उपालभो के रूप मे गोपियो की भावनाओ का चित्रण कदाचित् सूर के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नही किया है। सूर उपालम्भ के रूप में भावो के व्यक्त करने में विशेष पटु है और उनकी यह पटुता पनघटलीला के अन्तर्गत किये गये भाव निरूपण में भी परिलक्षित होती है।[33]

यशोदा आवेश में उन्हें कृष्ण को दडित करने का वचन दे देती है और उसी आवेश में जो कुछ उलाहने में गोपियाँ नही भी कह जाती उसे भी कल्पित कर लेती हैं। यही नही, रोहिणी को सुनाय बिना उसका आवेश उसे चैन नही लेने देता—

× × × × ×
यशुमति यह कहिकै रिस पावति।
रोहिणि करति रसोई भीतर कहि कहि ताहि सुनावति।
गारी देत वह वेटिन को वै धाई इ्या आवति।
हा हा करति सबनि सो मैं ही कैसेहु खूंट छँडावति।
जाति पाति सों कहा अचगरो यह कहि सुतहि धिरावति।
सूर स्याम को सिखवत हारी मारेहु लाज न आवति।
—वही, पृ० २६०

उपालभ सुनकर अपने कृष्ण पर खीझना भी उसके वात्सल्य का ही एक रूप है और सामने आ जाने पर क्षण भर में अपने पुत्र के शब्दो पर विश्वास कर लेना औरउसे

[मचाट कर सब कुछ भूल जाना भी उसी भाव का दूसरा रूप है। पीछे छिपे कृष्ण [चानक सामने आकर गगरी फूट जाने का कारण ग्वालिनो का सर मटकाना [ताते हैं और यशोदा का रोष कृष्ण से उलट कर ग्वालिनो पर ही जा केन्द्रित होता है।" भाव की यह परिणति पूर्णतया स्वाभाविक है, क्योकि जिसके प्रति सहज स्नेह होता है उसकी बात पर सहज विश्वास भी आ जाता है और उसे दोष देने वाले पर सहज रोष भी।

यशोदा अन्त में कृष्ण को ग्वालिनो से उलझने के लिए वर्जित करती है, क्योकि अब उसे कृष्ण की निश्छलता पर पूरा विश्वास हो गया है। परन्तु कृष्ण कृष्ण ही बने रहते हैं। वे फिर पनघट पर जा पहुँचते हैं और कभी राधा की छाँह से अपनी छाँह छुवाकर सुख लेते हैं कभी उसकी गागर में काकरी मार कर। सूर ने इस रूप में प्रसग विस्तार करके भावो की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त क्षेत्र पनघटलीला में भी खोज लिया।

राधा-कृष्ण की पारस्परिक प्रेमभावना तथा तज्जन्य आत्मविस्मृति का एक अनुपम भाव-चित्र रसखान ने प्रस्तुत किया है—

भूल्यौ गृहकाज लोक-लाज मनमोहिनी को, भूल्यो मनमोहन को मुरली बजाइबो।
कहै रसखानि दिन द्वै में बात फैलि जैहै सजनी कहाँ लौं चद हाथन दुराइबो।
कालि ही कलिंदीतीर चितयो अचानक ही दोउन सो दोउन को मुरि मुसुकाइबो।
दोऊ परे पैंया दोऊ लेत है बलैया उन्हे भूलि गयी गैया उन्हे गागरि उठाइबो।
—सुजान रसखान, छन्द ६०

इसी प्रकार ब्रजभाषा के अन्य अनेक कवियों ने पनघटलीला के प्रसग में भावो का निरूपण पर्याप्त उत्कृष्टता से किया है। हरिराम व्यास की एक ग्वालिन इतनी प्रगल्भ है कि वह कृष्ण से उनका पीतपट 'इडुरी' बनाने के लिए माँग बैठती है। सर पर गागर रखवा देने के बहाने वह एकान्त का सकेत करके स्वय-दूतिका का कार्य भी करती है, फिर जब कृष्ण उसकी मनोकामना पूरी कर देते है तो सारी परिस्थिति को स्वय स्मरण करके रह रह कर सुखी होती है—

कान्ह मेरे सिर धरि गगरी।
यह भारी, पनिहारिन कोऊ मनसा पुजवन सगरी।
राति परी घर दूरि डर बाढ़्यो मेरी सासु जनगरी।
देहु पीत पट करहु इडुरी छाउहु छैल अचगरी।

अचल गहि चचल बने झगरत नगरत लट बगरी।
विहरत व्यासदास के प्रभुसौं ग्वालिनि सुख लै डगरी।
—व्यासवाणी, पृ० ५०९

पनघटलीला के भावचित्रण में इस प्रकार की विविधता गुजराती काव्य में नही मिलती।

७ **संयोगावस्था की विविध मनोदशाएँ**—राधाकृष्ण तथा गोपियो की संयोग-लीलाओ का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। पूर्वोक्त रास, दान, तथा पनघट के प्रसग भी इसी के अन्तर्गत आते है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार मान वियोग की एक अवस्था है परन्तु उसके भी प्रारभ और अत मे सयोग का ही चित्रण मिलता है। इन प्रधान प्रसगो के अतिरिक्त और भी अनेक प्रसग है जिनके माध्यम से कवियो ने सयोगावस्था की विविध मनोदशाओ की अभिव्यक्ति की है। यहाँ उन्ही पर विचार किया गया है। कवियो का लक्ष्य राधाकृष्ण के प्रेम का चित्रण करना रहा है अतएव पृष्ठ-भूमि को बहुधा गौण रक्खा गया है। कृष्ण किस गोपी से कहाँ, कैसे, कब, मिले इसको स्पष्ट न करके मिलने की उत्सुकता, मिलन-समय के मनोभावो, आगिक चेष्टाओ तथा मिलनोपरान्त की विह्वलता आदि का चित्रण करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। मनोभावो के चित्रण के साथ साथ कही कही परिस्थिति की व्यजना भी मिलती है। बहुत सी परिस्थितियाँ मनोभावो के कारण ही उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परिस्थितियो में गोपियो की मानसिक अवस्था का चित्रण कवियो ने विशेष जागरूकता से किया है। ब्रजभाषा में सूर तथा गुजराती में नरसी ने सयोग से सम्बद्ध अनेकानेक मनोदशाओ का अपने अपने ढग से मार्मिक निरूपण किया है।

गोदोहन के प्रसग को लेकर सूर ने राधाकृष्ण के किशोर हृदया में उत्पन्न होने वाले प्रथम स्नेहाकर्षण तथा स्वाभाविक स्नेह-विकास को जितनी कुशलता से अकित किया है, वह सारे कृष्ण काव्य में अद्वितीय है। सूर की भावयोजना सश्लिष्ट रूप में चलती है अतएव इस स्थल पर भी सूर ने राधाकृष्ण के मनोभावो का ही वर्णन नही किया है वरन् उनके साथ यशोदा, वृषभानुपत्नी तथा अन्य ब्रजवासियो की भावनाओं को भी व्यक्त किया है जिससे परिस्थिति-विशेष की भावाभिव्यक्ति में पूर्णता आ जाती है तथा परस्पर के भावसघात से नवीन नवीन भावो की सृष्टि होती चलती है। एक ही घटना विभिन्न व्यक्तियो के हृदय में विभिन्न भाव उत्पन्न करती है। सूर प्रत्येक के हृदय में पैठ कर प्राय उसी के मुख से उसके भावो को अभिव्यक्ति प्रदान करते जाते है। इस प्रकार की भावयोजना तथा ऐसा भाव निरूपण गुजराती कृष्ण-काव्य में

अलभ्य है। इसे वर्णन शैली की विशेषता मात्र कह कर उपेक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसका मूलभूत सबध कवि की भावानुभूति से है। भावविस्तार की क्षमता वास्तव में भावानुभूति की गहराई का एक परिणाम होती है।

भोली चचल राधा यशोदा के यहाँ खरिक मे गाय दुहाने आई। कृष्ण से उसका प्रथम परिचय खेलने में हुआ। कृष्ण ने ही आँखो के इगित से उसे खरिक में गाय दुहाने के छल से आने के लिए कहा। अनुरक्ता राधा कृष्ण के अनुराग की मिलनेच्छा के रूप में पहली पहली अनुभूति करके ही उन्मत्त हो जाती है। उसके किशोर हृदय में माता-पिता का भय भी व्याप्त है और तरुणाई के आगमन से पूर्व की मुग्ध प्रीति का ---- भी। फलत उसकी मनोदशा अत्यधिक उलझ जाती है—

नागरि मनहिं गई अरझाइ।
अति विरह तनु भई व्याकुल घर न नेक सुहाइ।
श्यामसुन्दर मदनमोहन मोहनी सी लाइ।
चित्त चचल कुँवरि राधा खान पान भुलाइ।
कबहुँ बिलपति कबहुँ बिहँसति सकुचि बहुरि लजाइ।
मातु पितु को त्रास मानति मन बिना भई बाइ।
जननि सो दोहनी माँगति बेगि दे री माइ।
सूर प्रभु को खरिक मिलिहौ गये मोहिं बुलाइ।

—सू० सा०, पृ० २०५

इन कुछ ही पक्तियो में सूर ने वय-सधि में उदय होने वाली अनक भावसधियो को सजीव बना कर प्रस्तुत कर दिया है। इतनी उत्कठा लिये राधा जब खरिक में आकर भी कृष्ण को नही पाती तो चकित भी होती है और विह्वल भी। उसके मन को तभी विश्राम मिलता है जब कृष्ण को आते देखती है। उसमें चतुरता का भी उदय होने लगता है। घर से चलते समय उसका कारण भी कल्पना से दे देती है, साथ ही शीघ्र आने का आश्वासन भी देती जाती है जिससे माता मना न कर दे। माता को खोजने आने के लिए वह बहाने से वर्जित करती आती है। गन्तव्य स्थान के छिपाने का साहस उसमें अभी नही है।

कृष्ण नागर है अत पूरी तरह चतुर है। राधा के साथ प्रेम-क्रीडा करते समय जब यशोदा उन्हें देख लेती है तो क्षणमात्र में वे एक झूठ गढ लेते है। माता विश्वास कर लेती है कि वह शृगार-क्रीडा न होकर बाल-विनोद था—

नीवी ललित गही यदुराई।
जबहि सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति गइ आई।
तत्क्षण रुदन करत मनमोहन मन में बुधि उपजाई।
देखो ढीठि देति नहिं माता राखी गेंद चुराई।
काहे को झकझोरत नोखे चलहु न देउँ बताई।
देखि विनोद बालसुत को तब महरि चली मुसुकाई।
सूरदास के प्रभु की लीला को जानै इहि भाई।

—वही, पृ० २०५-६

ऐसे चतुर कृष्ण भी राधा की प्रीति के कारण इतने विमुध हो जाते हैं कि गाय के स्थान पर बैल को दुहने लगते हैं और सखाओं की बातो पर ध्यान नही दे पाते—

दुहन श्याम गैयाँ बिसराई।
नोआ लै पग बाँधि वृषभ के दोहनी माँगत कुँवर कन्हाई।

—सू० सा०, पृ० २४३

जब सुधि आने पर वे राधा की गाय दुहते हैं तो प्रेमातिरेक के कारण एक धार दोहनी में छोड़ते हैं और दूसरी राधा के मुख पर। वयस्क सखियाँ इस अन्यतम प्रेम की अभिव्यक्ति को देखते ही कामपीड़ित हो उठती हैं और उन्हें भी गृहकाज भूल जाता है—

धेनु दुहत अति ही रति बाढी।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढी।
मोहन करते धार चलत पय मोहनी मुख अतिहि छवि गाढी।
मनो जलधर जलधार वृष्टि लघु पुनि पुनि प्रेम चंद पर बाढी।
सखी सग की निरखति यह छवि भईं व्याकुल मन्मथ की डाढी।
सूरदास प्रभु के रस भईं सब भवनकाज ते भईं उचाढी।

—वही, पृ० २४५

ज्यों त्यों दूध दुहना समाप्त होता है। राधा अपनी दोहनी माँगती है पर कृष्ण देते नही। प्रेमविभोर कृष्ण के हृदय में एक ओर अधिक से अधिक समय तक रोके रखने की लालसा है, दूसरे राधा को खिझाने में उन्हें और भी आनन्द आता है।"

राधा के हृदय में भी जाने की तिलमात्र इच्छा नहीं है क्योंकि दोनो का प्रेम उभय पक्षी रूप में चित्रित किया गया है। सूर ने जितनी विह्वलता कृष्ण में दिखाई है

उतनी ही राधा में, वरन् स्त्री होने के कारण राधा की विह्वलता को चरमसीमा तक पहुँचा दिया है। कृष्ण से बिछुड़ कर स्वयं जाना उसके लिए असह्य है। पैर घर की ओर नहीं उठते। दो-चार पग चलती है तो फिर मुड़ कर कृष्ण को देख लेती है—

क—चलन चहति पग चलत न घर को।
छाँडत बनत नहीं कैसेहू मोहन सुन्दर वर को।

—वही

ख—मुरि चितवत नंदगली।
डग न परत ब्रजनाथ साथ बिनु विरह व्यथा मचली।

—वही

इस प्रकार राधा कृष्ण के बीच इतनी समीपता बढ़ जाती है कि उन्हें हार का व्यवधान भी असह्य हो उठता है। जो वस्तु उन दोनों के हृदय में अंतर बनाये रक्खे उसे कब तक धारण किया जा सकता है—

उतारत है कंठनितें हार।
हरि हर मिलत होत है अंतर यह मन कियो विचार।

—सू० सा०, पृ० २०६

नरसी मेहता की राधा के हृदय में कृष्ण की समीपता पाने की भावना तीव्रतर है। मिलन के समय हार समीपता में बाधक होता है अतएव वह उसे धारण नहीं करती। कुछ काल के लिए हार को उतार देने से कभी धारण न कर देने की बात निश्चय ही अधिक भावुकता प्रदर्शित करती है—

पीयु मारी सेजडी नो शणगार।
जोबन सीचणहार।

पीयुजी कारण हुं तो हार न धरती जाणु रखे अतर थाये।

—न० कृ० का०, पृ० ५२८

आभूषणों के प्रति किसी स्त्री का आकर्षण वास्तविक प्रेम को पाकर ही पराजित होता है क्योंकि उस आकर्षण के मूल में प्रिय को प्रसन्न करने की ही भावना निहित रहती है। सूर और नरसी के उपर्युक्त उद्धरण राधा-कृष्ण के अनिर्वचनीय प्रेम की व्यंजना करते हैं। उनमें देव कवि की सामान्या नायिका के कथन 'देव हमें तुम्हें अंतर पारत हार उतारि उतै धरि राखौ' के पीछे छिपी स्वार्थमयी भावना का लेश भी नहीं है। यह सभी उक्तियाँ 'हारो नारोपितः कंठे मया विश्लेष भीरुणा' की परम्परा में आती है।

इसी तरह गोपियो के हृदय को नरसी ने अत्यन्त तीव्र अनुभूति से आसिक्त करके अभिव्यक्त किया है। उनके हृदय का मूल भाव ही गोपीभाव रहा है। गोपियो की भावनाओ के रूप में उनकी अपनी भावनाएँ मूर्त हो उठी है। अन्य कवियों की अपेक्षा उन्होने कृष्ण के प्रेम में अनुरक्त गोपियो की मनोदशा को अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उनकी कोई गोपी, कृष्ण की वशीध्वनि से विह्वल होकर, नाम जाने बिना ही श्यामछवि पर अपना हृदय निछावर कर डालती है—

नाम न जाणु पण छे कालो।
ओ जाये ओ जाये कोई पाछो, वालो।
छेलपणे छमक्लो वहालो, शामलीये साइडु लीधु रे।
मारगमा वासलडी वाहता चित हरी ने लीधु रे।
आलिंगन आप्यु वहाला अलवे, नाथ मन मान्यु तमशु रे।
नरसैंयाचा स्वामी आपण रमिये अतर टालो अमशु रे।

—न० कृ० का०, पृ० २८३

कोई कृष्ण की मुसकान से विद्ध और अगभगिमा से लुब्ध हो जाती है। वह नाना प्रकार के मगलमय उपायो से उनका स्वागत करना चाहती है—

बाइ हु तो मरक्लडे वेघाणी रे।
शामळियो आव्यो मदिरमा लटके त्या लोभाणी रे।
मोतीओ चोक पुरावु प्रेमना, कुमकुमनी रोल करावु रे।
सैंयर मारी मानती मीठु मगल गान करावु रे।
सोव्रणपाट वेसारी वहालानी आरती उतरावु रे।
नारसैंयाचो स्वामी रुदीया भीडो फूली अगनमावु रे।

—वही, पृ० ३८०

धीरे धीरे गोपियाँ कृष्ण को सुख देने और स्वय सुख पाने के लिए नाना प्रकार की इच्छाएँ करने लगती है। उनकी इच्छाएँ क्रिया का रूप धारण कर लेती है। एक गोपी कृष्ण को एक छोटी सी वात कहने के लिए एकान्त में बुलाकर अगभगियो से अपने मनोभाव को स्वय व्यक्त करती है। नरसी ने उसकी मुद्रा और उसके भावो का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है—

ओरा आव अलगो, अेक वात नानी कहु तुजने जम हुंडा माहे हर्ष पामे।
कामनी काम अभिलाष करी बोलती मुर गोवालिया माहे हु रे रमे।

नेण नीशान, सनकारती सुन्दरी, नेण कटाक्ष गुण बाधुरी।
नवनवा रग करी दाखवु आपु अपूरव तेडली तारुणी प्रेमे करी।

—वही, पृ० ३१८

एक अन्य गोपी की जिस दिन कृष्ण से दिनभर बात नही हो पाती है उस दिन काम-काज में उसका जी नही लगता और घर भी आकर्षणहीन प्रतीत होने लगता है। वह मुग्धा नही है कि स्नेह के भाव को समझ न सके परन्तु इतना साहस भी नही है कि ससार के आगे अपने स्नेह को प्रकट कर दे। अभी लोक-लाज और मर्यादा का भय बना है—

अेकवार आखा दीन माहे वाहाला तमशु वात न थाय।
कामकाज मारे चित ना आवे मंदीर मा न सोहाय रे।
जाहेर तमशु प्रीत बधाणी ते कहे ते सोहाय।
छानो स्नेह ते मीठो लागे, प्रगट थये पत जाये'रे।

—वही, पृ० ३०२

कभी प्रतीक्षा करते करते रात हो जाती है और उसकी आँखो को नीद घेर लेती है। कृष्ण आकर लौट गये, यह जान कर गोपी को गहरा पश्चात्ताप होने लगता है। सखियाँ सुनेंगी, कृष्ण भी उसपर हँसेंगे, यह सोचकर वह पैर पडकर क्षमा माँगने का निश्चय करती है तब तक एक सखी आकर सूचना देती है कि कृष्ण तो आँगन में खडे प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी तुझे घर गाय दुहाने जाना है—

पाछली रातना नाथ पाछा वह्या, शु करु रे सखी हु न जागी।
निरखंता निरखतां निद्रा आवी घणी, बोल दीयोनी वहाला वदे पापी।
सोलडी सुणसे कृष्णजी हासशे, अेहने जइने पाय लागुं।
सरल छे शामलो मेलशे आमलो, माहावजी कने खमा जइने मागु।
उठ आलस तजी नथी गया नाथ हजी, ते आगणे उभा हेत जोवा।
नारसैयाचो स्वामी भले मळीयो, घेर जइअे हवे धन दोहोवा।

—वही, पृ० ३७३

गोदोहन के प्रसग को लेकर नरसी ने सूर की तरह भाव-विकास तो नही किया परन्तु पृष्ठ-भूमि में उसे स्थान देकर भावो में तथा वातावरण में स्वाभाविकता लाने का प्रयास अवश्य किया है। सयोग की प्रत्येक स्थिति पारस्परिक प्रीति के विकास में सहायक होती है। राह चलते कृष्ण कभी बाँह मरोड देते है, कभी एकात में मिलने का सकेत करते हैं, कभी मुस्करा भर देते है और कभी उपेक्षा का अभिनय करते हुए

किनारे से निकल जाते है। हर दशा में गोपियो का मन झकझोर उठता है। कभी हर्ष से, कभी विषाद से। कृष्ण को अपने हाथ से जिमाने के लिए नरसी की गोपियाँ प्राय उत्सुक रहती है—

पेर पेरना पक्वान करीने मेहेल्या वहाला काजे रे।

—वही, पृ० २७३

कृष्ण गोपियो के लिए कठहार बनजाते है। वे उनसे कभी पृथक् नही होना चाहती उन्हें देखते ही एकात में आलिगन में भर लेने के लिए लालायित हो उठती है—

क—कठडाचो भूषण सजनी, अलगो न मेलु दिवस ने रजनी।
हरि विलोकता अधररस चाखु, हृदया सरसो भीडी ने राखु।

—न० कृ० का०, पृ० २९३

ख—कहाने अेकलडा मळजो वृदावन, ते वारे करीश हु उरहार।

—वही, पृ० २८७

भिन्न मन स्थिति मे यही गोपियाँ आलिगन करते हुए कृष्ण का निवारण करने लगती है। इस निषेध के द्वारा मिलन की इच्छा का रूप और भी निखर जाता है। शब्दो में वक्रता आ जाती है। निषेध के जो कारण दिये जाते है उनसे इच्छा ही प्रकट होती है और निवारण उस इच्छा की पूर्ति का साधन बन कर सामने आता है—

जावा देनी जादव, मेल मारो पालव मोडीश ना मारु अग दुखे।
मीड न भूवरा, राखडी तूटशे, चोली कबुआकेरा वध छूटशे।

—वही

कोई गोपी कृष्ण को अपना आन्तरिक आत्मसमर्पण करके अनन्य भाव से उन्हें अपना वर स्वीकार कर लेती है। भाव की इतनी तीव्रता सास-ननद के भय, तथा लोक-लाज सभी को अपने में लीन कर लेती है। मन का सत्य ससार के झूठे बन्धनो, मर्यादाओं तथा नियमो से ऊपर उठकर स्वय अपने को प्रशस्त करने लगता है—

वरियो में कृष्ण वर वरीशो, बीजो तो हुँ नव जाणु रे।
सासरिया मा साद पडावु, नणदीनो भे न आणु रे।

—वही, पृ० २६८

ऐसी ही एक अन्य गोपी कृष्ण से मिलने के लिए आतुर पति और परिवार की भी परवाह नहीं करती, क्योकि उसके अग-अग में कृष्ण व्याप्त हो गये है। उनके सिवा किसी दूसरे की गति उसके हृदय तक समव नही—

ते जतन करे बहु आपनु, तेनु धीर तम दीठे टले।
मळवा कारण मावजी तुजने पति परिवार थी ते चले।
सकल अगे तमो व्याप्या, अवर बीजे नव गमे।
तेह तणा मनोरथ पूर्या, अवर मन कही नव भमे।

—वही, पृ० १३०

भालण के एक पद में गोपी के हृदय में कृष्ण के प्रति उठने वाली कोमल भावनाओं का शृंखलाबद्ध वर्णन है—

रात दिवस हु टलवलु पण स्वप्न माहे नव देखु जी।
आगणडे उभी रहु जाणु आणीवाटे हरि आवेजी।
गौ दोहता अेम जाणु आ दूध हरिने पाउ जी।
दही रूडु जम्यु देखी इच्छा अेवी कीजे जी।
भोग लागे भूधरजीने, सासु नणदर खीजे।

—दशमस्कध, पृ० १३५

व्रजभाषा के अनेक कवियों ने राधा तथा अन्य गोपियों में आत्मसमर्पण, निषेधात्मक स्वीकृति, तीव्रमिलनेच्छा, कृष्ण के प्रति अनन्य अनुरक्ति, लोकलाज, परिवार के भय तथा सास-ननद के प्रति खीझ अथवा उपेक्षा भाव का अनेक रूपों में अनेक प्रकार से वर्णन किया है। विशेष कर रीति-परम्परा के कवियों द्वारा दिये गये उदाहरणों में प्राय. ऐसे ही भावों का चित्रण मिलता है। इन कवियों ने एक ओर भावों के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद दिखाकर उन्हें क्रमबद्ध करते हुए शास्त्रीयता प्रदान की, दूसरी ओर विविध गुणों, अलकारों तथा उक्तियों से सजाकर कलात्मक भी बना दिया जिससे सौन्दर्यवृद्धि होने के साथ प्राय कृत्रिमता भी आ गई है।

इस सब को प्रमाणित करने के लिए कुछ उदाहरण आवश्यक है। नरसी की गोपी कृष्ण को कठहार बनाने तक की कामना करती है परन्तु देव की गर्विता नायिका ने अपने प्रिय को हृदय का हार बना कर तो सुख दिया ही, साथ ही आँखों में पुतली बना कर भी बसा लिया। यही नहीं, वह उसके अग-प्रत्यग में अगराग की तरह रम चुका है ठीक नरसी के 'सकल अगे तमो व्याप्या' के सदृश—

आँखिन में पुतरी ह्वै रहै, हियरा में हरा ह्वै सबै सुख लूटै।
अगनि सग बसै अगराग ह्वै, जीवते जीवनमूरि न फूटै।

—भवानीविलास

अगों को छूने से कृष्ण का निवारण करती हुई गोपियो की जैसी आन्तरिक स्वीकृति नरसी ने प्रदर्शित की है वैसी ही वाह्य निषेध से युक्त आन्तरिक स्वीकृति मतिराम की नायिका में, कुट्टमितहाव के रूप में, अधिक स्पष्टता से मिलती है—

नेंकु नीरे जाय करि बातन बनाय करि,
कछु मन पाय हरि वाकी गही वहियाँ।
चैनन चरचि लई सैनन थकित भई,
नैनन में चाह करै वैनन में नहियाँ ॥३६९॥

—रसराज

अनन्य आत्मसमर्पण के भाव को भी देव के द्वारा कही अधिक तीव्र अभिव्यक्ति मिली है—

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कोऊ,
कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं।
कैसो नरलोक परलोक वरलोकनि में,
कीन्ही हौं अलीक लोक लीकन ते न्यारी हौं।
तन जाउ मन जाउ 'देव' गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ टेक टरत न टारी हौं।
वृंदावनवारी वनवारी के मुकुटवारी,
पीतपटवारी वाहि मूरति पै वारी हौं।

भक्त कवियो ने इस प्रकार के भाव अपने पदो में प्रचुरता से व्यक्त किये हैं। रीति काव्य की भाव सम्पत्ति बहुधा अपने पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य पर आधारित है।

जिस प्रकार रमण से पूर्व की मनोदशाओं का सूक्ष्म वर्णन कवियों ने किया है उसी प्रकार रमण के समय की और उसके बाद की मानसिक स्थितियो को भी अंकित किया है। गुजराती में भालण और नरसी ने इनसे सम्बद्ध भावों को विशेष मनोयोग और रसात्मकता के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है। नरसी मेहता का तो यह सर्वाधिक प्रिय विषय है। राधा के सुरतोल्लास, सुरतान्त-सुख और सुरत-संगोपन का विविध चेष्टाओं एवं अनुभावों से युक्त वर्णन उक्त दोनों कवियों ने पर्याप्त विस्तार से किया है। ब्रजभाषा काव्य मे भी इस प्रकार के भाव उपलब्ध होते हैं और दोनों में साम्य भी कम नहीं है। गुजराती में इस तरह के भावों की अभिव्यक्ति प्राय: राधा के स्वानुभव के रूप में ही कराई गई है।

राधा की शिथिल और अस्तव्यस्त दशा को देख कर एक अन्तरग सखी उसका कारण पूछती है। राधा पहले उससे छिपाने का प्रयास करती है और जिस जिस चिह्न की ओर सखी सकेत करके प्रश्न करती है उस उस चिह्न के लिए वह काल्पनिक कारण देती जाती है। भालण ने इस भाव का एक विस्तृत पद लिखा है जिसमें से कुछ प्रारम्भिक पक्तियाँ उद्धृत की जाती है—

कहे रे मने कामिनी, तु कां श्वास भराणी जी।
परसेवो तन का वल्यो, भमर बहु मींजाणी।
मांचु बोलोजी

राधा कहे हु भूली पडी, वाट में नव जाणी जी,
वनमा वीहनी अेकली, अतिशे त्यां उजाणी।
साभल सुन्दरी

अतलसनी नवी शिवडावी, सहियरे वखाणी जी।
ते चोलीनी कस कयमत्रूटी, आवडु क्या चोलाणी।
मारु हैडु आव्यु फाटवा, वाअे करीने काप्यु जी।
पीडा टालवाने में चोल्यु करे करीने आप्यु।

—दशमस्कध, पृ० १३२

सगोपन के भाव को सूर ने अत्यन्त मौलिक रूप म प्रस्तुत किया है। राधाकृष्ण रमण करके जब अपने अपने घर जाते है तो दोनों की माताएँ प्रश्न कर उठती है और दोनो ही सत्य को अपने-अपने ढग से छिपाने का प्रयास करते है—

क. पीत उढनियाँ कहाँ बिसारी ?
यह तो लाल ढिगनि की औरैं है काहू की सारी।
हौं गोधन लै गयो यमुनतट तहाँ हुती पनिहारी।
भीर भई सुरभी सब बिडरी मुरली भली सँभारी।
हौं लै गयो और काहू को सो लै गयो हमारी।

—सू०, सा० पृ० २०७

ख जननी कहति कहा भयो प्यारी ?
एक बिटिनियाँ सँग मेरे थी कारे खाई ताहि तहाँ री।
मों देखत वह परी धरनि पर मैं डरपी अपने जिय भारी।

—वही

सूरदास के अतिरिक्त व्रजभाषा में नायिकाभेद लिखने वाले कवियों ने इसी भाव को गुप्ता, लक्षिता, सुरतसगोपना जैसी नायिकाओ में प्रदर्शित किया है। पर उनके उदाहरणो में वह सरसता नही आ पायी है जो भालण के वर्णन में मिलती है। प्रश्नोत्तर के रूप में व्यक्त करके सूर और भालण ने मूल भाव को अधिक सजीव बना दिया है। नरसी की राधा सगोपन का प्रयास नही करती। वह भालण की राधा जैसी चतुर नही दीखती। ललिता के पूछने पर वह जब स्वानुभव बताने चलती है तो उसे लाज आने लगती है। सगोपन का प्रयास और कथन में लज्जा दोनो ही मनोभाव स्वाभाविक एव परिस्थिति के अनुकूल है। भालण ने भी लाज का प्रदर्शन किया है परन्तु अत में इस प्रकार उन्होने उसे नरसी की अपेक्षा कही अधिक अर्थपूर्ण बना दिया है। नरसी की राधा लाज करते हुए भी काफी निर्लज्जता से सुरत सुख का वर्णन करती है। भालण ने ऐसे स्थल पर सकेत से काम लिया है।[36]

रमण के कारण कृष्ण के अग दुखने लगते है। राधा उनकी पीडा अमृत से अधिक मधुर रस देकर दूर करती है—

अबला ते मारु अग दुखे, भीडीश मा रे भामिनी।
कठण पयोधर ताहरा, मुजने ते खुचे कामिनी।
अमृत पें अदकु हतु, मुज कने फल जेह।
पछे पीयुना मुखमाही, प्रेमशु मूक्यु तेह।
—न० कृ० का०, पृ० १५०

निश्चय ही भालण के वर्णन में कोमल भावो की पर्याप्त रक्षा की गयी है जबकि नरसी ने इस ओर ध्यान नही दिया है। उनके वर्णन में स्थूलता अधिक है। इस तरह के वर्णन व्रजभाषा में भी उपलब्ध होते है। गुजराती और व्रजभाषा के सभोग वर्णन में कहीं-कहीं आश्चर्यजनक भाव-सादृश्य मिल जाता है। एक ही उदाहरण इस सत्य को प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। भालण के कृष्ण सीधे राधा के अगो का स्पर्श न करके बहाने से छूने का प्रयास करते है। राधा को प्रसन्न बनाने और मुग्ध करने के लिए ही कृष्ण की यह चेष्टाएँ होती है। राधावल्लभीय कवि ध्रुवदास ने भी इस भाव का वर्णन किया है। उनके कृष्ण भी वैसी ही चेष्टाएँ करके अग स्पर्श करना चाहते है—

भालण—पगरगु हु पद्मिणी जो पड्यो लगार जी।
पछे तमे पधारजो, क्षण नहि लागे वार जी।
अेवु कहीने चरण तलासे, मुख सामु निहाले जी।

जाणे कोये देवना ते नयण निमेख न घाले ।
हार जुअे ने उर उघाडे गलगलियाँ करे प्रीते जी ।
गाले त्या चुबन करे रमवातणी रसरीने ।
बेसरनु मोती जुअे ने हाथ फेरवे गाल जी ।

—दशमस्कध, पृ० १३८-३

ध्रुवदास—अलक सँवारन व्याज मे परस्यो चहत कपोल ।
मृदुल करन झारति झटकि रसमय कलह कलोल ॥५॥

—रसरत्नावल

राधा के द्वारा कृष्ण के हाथ झटक दिये जाने की बात लिख कर ध्रुवदास ने मू भाव को और भी अधिक रसमय बना दिया है क्योकि निषेध स्वीकार से अधि आकर्षण उत्पन्न करता है । भालण ने भी अपने पद की एक पक्ति में 'नाना मा म रहो रहो करता' लिख कर रसमय निषेध का प्रदर्शन किया है । ध्रुवदास को राध कृष्ण को नेत्रों तक से अपने अग नही छूने देती । दोनो भाव-विभोर होकर एक दूस की चतुरता समझते और मुस्कराते हैं—

जो अग चाहत रसिक प्रिय इन नैननि सों छ्वाइ ।
सो ठा सुन्दरि पहिले ही राखति बसन दुराइ ॥४०॥
काँपत कर, धरकत हियौ बनत न मन की बात ।
कुसल जुगल कलकोक मैं समुझि समुझि मुसुकात ॥५१॥

—वही

इसके अतिरिक्त उन्होने एक ऐसी आभ्यतरिक सूक्ष्म अनुभूति को पकड लिया ह जिस तक किसी गुजराती कवि की पहुँच नही हुई । घनीभूत स्नेह होने पर दो स्नेहियो का मिलन कितना भी प्रगाढ क्यो न हो, उसमें विरह की अनुभूति बनी ही रहती है । वे दो हैं इसलिए विरह बना रहता है और एक होना चाहते हैं इसलिए मिलन भी अखड रहता है । इस सूक्ष्म मानसिक स्थिति को कवि ने केवल दो पक्तियो में बाँध दिया है ।

विरह सँजोग छिनहि छिन माँही ।
जद्यपि प्रीतम मेले बाही ॥४२॥

—नेहमजरी

खंडिता गोपियों के भाव—जहाँ एक ओर कृष्ण राधा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट दिखाये गय हैं वहाँ दूसरी ओर कवियो ने उनमें बहुनायकत्व अथवा अनेक

गोपियो को सन्तुष्ट करने की भावना का भी प्रदर्शन किया है। तब तरुणी गोपियाँ, उनको पाने के लिए व्याकुल रहती हैं। कृष्ण कभी इसके साथ रमण करते हैं, कभी उसके साथ। उनमें परस्पर ईर्ष्या अथवा सपत्नी-भाव उत्पन्न हो जाता है। एक को वचन देकर जब वे दूसरी के यहाँ रात बिताते हैं और प्रभात मे अनेक रतिचिह्न लिये उसके पास लौटते हैं तो उसका खडित प्रेम कटु एव व्यग्यपूर्ण शब्दो से उनका स्वागत करता है। एक एक रतिचिह्न उसकी ईर्ष्याविष्ट कल्पना को जागृत करने लगता है और उन कृष्ण को, जिनके लिए स्वय सेज रचकर वह सारी रात प्रतीक्षा करती रही, तत्काल वही वापस लौटा देने के लिए उद्यत हो जाती है। परन्तु इतने आवेश के वाद भी जब कृष्ण क्षमा याचना के लिए एक कातर दृष्टि उनकी ओर डालते हैं तो वह क्षणमात्र मे क्षमा ही नही कर देती वरन् उनके रतिश्रमनिवारण के लिए अनेक उपक्रम भी करती है। कुछ गोपियाँ अत तक कृष्ण को क्षमा नही करती और एक के वाद एक कटु से कटुतर व्यग्य-वाक्य कहती जाती हैं। कुछ अत्यन्त स्निग्ध शब्दो के द्वारा अपना रोष प्रकट करती हैं और कुछ स्पष्टतया उग्र शब्दो का प्रयोग करते हुए कृष्ण की भर्त्सना करती हैं। इस प्रकार खडिता गोपियो की मनोदशा की अभिव्यक्ति कवियो ने पर्याप्त सूक्ष्मता से की है यद्यपि वर्णन में रूढिगत एकस्वरता भी बराबर मिलती है। गुजराती और ब्रजभाषा दोनो में खडिता के मनोभावो का वर्णन प्राय समान ढग से किया गया है। वही रतिचिह्न, वही उपालभ, वैसे ही व्यग्य और वैसा ही चित्रण। भावो के अकन में अन्य स्थलो की तरह सूर की विशेष क्षमता यहाँ भी परिलक्षित होती है। कृष्ण की एक ही कातर दृष्टि से अभिभूत होकर क्षमा कर देने वाली जिस खडिता गोपी की ओर ऊपर सकेत किया गया है वह राधा की सुपरिचित सखी ललिता, सूर की भावमयी वाणी के द्वारा, नवीन रूप में सामने आती है। शाम से ही कृष्ण के लिए वह अतिशय प्रतीक्षाकुल है और सारी रात वैसी ही विह्वलता से बिता देती है—

> साँझहि ते हरिपथ निहारै।
> ललिता रुचि करि धाम आपन सुमन सुगधनि सेज सँवारै।
> कबहुँक होत बारने ठाढी कबहुँक गनति गगन के तारे।
> कबहुँक आइ गली मग जोवति अजहुँ न आये स्याम पियारे।
> वे बहुनायक अनत लुभाने और वाम के धाम सिधारे।
> सूर स्याम बिनु बिलपति बाला तमचुर शब्द जहँ तहाँ पुकारे।
>
> —सू० सा०, पृ० ४७२

उसकी यह विकलता स्वाभाविक है, क्योंकि कृष्ण उसे स्वयं वचन दे गये हैं। जब कृष्ण सवेरे रतिचिह्न लिये पधारते हैं तो वह और कुछ न कह कर दर्पण भर देख लेने का आग्रह करती है परन्तु जब वे सकोच के मारे उधर नहीं देखते तो ललिता ललित शब्दों में व्यंग्य करती है—

क—क्यों मोहन दर्पण नहिं देखत।
क्यो धरणी पग नखन करोवत क्यों हम तन नहिं पेखत।
क्यों ठाढ़े, बैठत क्यों नाही कहा परी हम चूक।
पीताम्बर गहि कह्यो बैठिये रहे कहा ह्वै मूक।
उघरि गयो उर ते उपरैना नखछत बिनगुन माल।
सूर देखि लटपटी पाग पर जावक की छवि लाल।

—वही, पृ० ४७३

ख—ऐसी कहो रँगीले लाल।
जावक सो कहाँ पाग रँगाई रँगरेजिन मिलि है को बाल।
बदन रंग कपोलन दीन्हो अधर अरुण भये श्याम रसाल।
माला कहाँ मिली बिन गुन की उर छत देखि भई बेहाल।
सूर श्याम छबि सबै बिराजी इहै देखि मोको जजाल।

—वही

उसके प्रश्न भरे सीधे-सादे वाक्य व्यंग्य को तीक्ष्णतर बना देते हैं। बिना कृष्ण की क्षमायाचना भरी दृष्टि पाये उनका क्रम समाप्त नहीं होता।

काहे को कहि गये आइहैं काहे झूठी सौहें खाए।
ऐसे मैं जाने नहिं तुमको जे गुण करि तुम प्रगट देखाए।
भली करी दरशन हरि दीन्हें जन्म जन्म के ताप नशाए।
तब चितए हरि नेक त्रिया तन इतनेहि सब अपराध क्षमाए।
सूरदास सुन्दरी सयानी हँसि लीन्हे पिय अंकम लाए।

—वही

उसके लिए इतना ही बहुत है क्योंकि उसका प्रेम प्रेम का याचक है, वासना न मिली न सही। वह स्वयं कृष्ण का श्रम दूर करने के लिए नाना प्रकार के उपचार करती है। परस्त्रीरमण के चिह्नों का निवारण करके वह एक प्रकार से उस पर अपनी विजय घोषित करती है। घायल प्रेम एवं आहत अहंभाव अपनी क्षतिपूर्ति के लिए कितना जागरूक रहता है, इस तथ्य तक सूर की सूक्ष्म दृष्टि कितनी सरलता से पहुँच गयी है—

नैनकोर हरि हेरिकै प्यारी वश कीन्ही।
भाव कह्यो आधीन को ललिता लखि लीन्ही।
तुरत गयो रिस दूर ह्वै हँसि कंठ लगाए।
भली करी मनभावते ऐसेहु मैं पाए।
भवन गई गहि बाँह लै जागे निशि जानै।
अंग शिथिल निशि श्रम भयो मनही मन जानै।
अंग सुगंध मर्दन कियो तुरतहि अन्हवाये।
अपने कर अंग पोछिके मनसाध पुराये।
चीर अभूषण अंग दै बैठे गिरिधारी।
रुचि भोजन प्रिय को दियो सूरज बलिहारी।

—वही

एक खंडिता गोपी के भाव का विकास करके सूर ने एक पूरे प्रसंग की सृष्टि कर दी। साथ ही खंडिता के हृदय में रूढ़िगत आवेश का ही वर्णन न करके उस स्नेहातिरेक को भी प्रदर्शित किया है जिसकी गहराई में सारी ईर्ष्या, सारा मान और सारा निषेध खो जाता है।

ठीक इसी प्रकार के कोमल मनोभावों वाली एक खंडिता गोपी का चित्रण नरसी मेहता ने किया है। नरसी की गोपी भी कृष्ण से वचन पाकर सारी रात प्रतीक्षाकुल रही और प्रभात में शिथिल-देह कृष्ण को पाकर सब कुछ समझती हुई भी वह अपने रुष्ट न होने की बात कहती जाती है। कृष्ण यहाँ भी सकोच से गड़े जा रहे हैं। वे निद्रा का बहाना करते हैं पर विश्वास नहीं दिला पाते। जिस तरह सूर के कृष्ण क्षमा-याचनामयी दृष्टि से ललिता को प्रसन्न कर लेते हैं उसी प्रकार नरसी के कृष्ण प्रीति-युक्त हास्य से गोपी को आनंद प्रदान करते हैं—

व्रजविहारी साभलो, साचो कहु अेक वात।
मुज सगाथे दृष्ट करीने आवीया प्रभात।
रजनी सुख माने गमी, जोइ रही छु वाट।
मुख वचन दीधु वीठला, कोई सु कीधो ठाट।
साचु बोलो प्रसन्न छु, मन रीस नही लगार।
काहा सुख पाम्या श्यामजी ते कहोने प्राणाधार।
नीचु ढाली ने नंदसुत, तव वदे मुखथी वाण।
निद्रा आवी नव लहु, ने अे ते तु सत्य मान।

आ चिन्ह निद्रा तणा न होय, अन शीयल दीसे गात्र ।
प्रकट जो जो पारखु, पाग ठरे नही पल मात्र ।
हस्या हरजी प्रीत आणी , अन भीडी भामिनि अग ।
दुख सर्व वीसर्यु न रम्या वेहु जण रग ।
सकल मनोरथ पूरण कीधा पोहोती मननी आश ।
निकट उभो नरसैयो ते जूअे कौतुक हास ।
—न० कृ० का०, पृ० १२८

नरसी ने सारा वर्णन प्रत्यक्षदर्शी की भाँति किया है जो उनकी शृंगारप्रियता से व्यक्त करता है। उनके कृष्ण ने निद्रा का बहाना किया। अतएव झूठ के परिहार के लिए परिहास की आवश्यकता हुई, केवल क्षमा-याचनामयी दृष्टि यहाँ अपर्याप्त होती। रतिश्रम-निवारण की चेष्टा के स्थान पर नरसी ने रमण का उल्लेख किया है। इस स्थान पर सूर भाव की अधिक रक्षा करते हुए प्रतीत होते हैं।

नरसी के उपर्युक्त पद में रूढिगत रतिचिह्नो का उल्लेख नही है किन्तु अन्यत्र उन्होने उनका उल्लेख करते हुए राधा की मनोदशा का चित्रण किया है। कपोल पर काजल, भाल पर महावर, पीताम्बर के स्थान पर नीलाबर, अटपटी पाग, शरीर में गडे हुए ककण तथा नखक्षत आदि से विभूषित कृष्ण की विचित्र अवस्था राधा के शब्दो में दर्शनीय है।

कृष्ण भल्य रगे रमीया ते क्या रेणजी, अरुण उजागरा राता नेण जी।
अधर भर्यो रग तबोळजी, काजळ रेखा तारे कपोल जी।
काजल रेखा कपोल सोहे, तीलक खडीत ताहेरु।
विभिचारी बोल मा वालमा तो मन माने माहेरु।
अटपटी शीर पाघ लटके, केसर ने फुरे भरी।
अबील गुलाल ने चुवा चदन, शोभ नाभी श्री हरी।
ककण कोमल अग खुच्या रेखा दीसे नख तणी।
जेशु रगे रम्या रजनी, वेगे पधारो ते भणी।
आ नीलावर कोइ नारनु, तमो साचु, कहोने सम तेहना।
आधीन थया प्रभु तेहने वहाला, लाव्या ने क्याथी रेणमा।
कौस्तुभ मणि आ क्या वीसारी, नवसेरो पहेर्यो कही नारनो।
रीश मा आणो मन विषे, मुने कहोने सुख विहारनो।
वड भामनीअे भोगव्या, रजनी ते चारे जाम।
कोमल अगे केम खम्या, रतिपति रणसग्राम।

वेगे पधारो भुवन तेने हु आवु तमारे सग ।
श्रीहरी सुख देखाड तारु रमीआ.तें जेशु रग ।
हावे तेने प्रसन थइने, हु आपीश उरनो हार ।
नरसैया नाथजी मारी, वीनतडी वारवार ।

—वही, पृ० १५२-५३

कृष्ण से राधा सारी बात का उसकी सौगध खाकर, पूछना जिसके साथ कृष्ण ने रमण किया है अत्यन्त कठोर व्यग्य है साथ ही अत में जब वह अत्यन्त विनय से उनके सग चलकर अपना हार उसे भेट करने की बात कहती है तो व्यग्य की मार्मिकता और भी अधिक बढ जाती है । पद के प्रत्येक शब्द से राधा के मनोभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति हो रही है ।

नरसी अन्यत्र एक दूसरी गोपी का अकन करते हैं जो कृष्ण के माथे में लगा महावर दिखाकर अपने रोष को व्यग्यपूर्ण ढग से प्रकट करती है—

जो जो रे जो जो रे, माथे महावर लाग्यो ।
नण निद्रालुवा मोहे, अग सुगधी वागो ।
उलट जायो जाहा वस्या हुता रात ।
नरसैयाचो स्वामी चुक्या, जो न लाव्या साथ ।

—न० कृ० का०,पृ० ५९१

ब्रजभाषा मे खडिता के इस प्रकार के मनोभावो की अभिव्यक्ति प्राय शृगार रस के सभी कवियो ने की है । सूर और हरिराम व्यास के निम्नोक्त उद्धरण इसके प्रमाण है—

सूर—जावक रग लग्यो भाल, वदन भुज पर विशाल,
पीक पलक अधर झलक काम प्रीति गाढी ।
क्यो आये कौन काज, नाना करि अग साज,
उलटे भूषण शृगार निरखत हौं जाने ।
ताही के जाहु श्याम जाके निशि बसे धाम,
मेरे गृह कहा काम, सूरदास गाने ।

—सू० सा०, पृ० ४७५

व्यास—आजु पिय राति न तुम कछु सोये ।
कौन भामिनि के भवन जगे हरि जाके रस बस मोये ।

रति रस उमगि चले नखशिख अँग नीरस अधर निचोये ।
खडित गड पीक मुख की छवि अरुन अलस अति पोये ।
जावक पीक मसी रस कुमकुम स्वाद वासना भोये ।
लटकति सिर पगिया, लट विगलत सुन्दर स्वाँग सँजोये ।
तन मन वारे हौंहि न गोरे कोटि चारि जो धोये ।
खोटी टेव न तजत व्यास प्रभु मैं कै बार बिगोये ।

—व्यासवाणी, पृ० ५२३

सूरदास ने खडिताओ की ही मन स्थिति को व्यक्त नही किया वरन् कृष्ण के मनोभावो को भी स्पष्टता से अभिव्यक्ति प्रदान की है । सारे प्रसग को उन्होने लीला-रूप में ग्रहण किया है अतएव सारी भावनाओ की अन्तिम परिणति आनन्द में होती है । कृष्ण बाह्यत तो सकोच प्रकट करते हैं परन्तु अन्तर से गोपी के व्यग्य वचन, उसका रोष, उसकी खीझ उनके मन मे क्षोभ के स्थान पर एक विचित्र सुख की अनुभूति जगाते है जिसकी पुलक से उनका सारा शरीर सिहर उठता है—

श्याम त्रिया सन्मुख नहिं जोवत ।
कबहुँ नैन की कोर निहारत कबहुँ वदन पुनि गोवत ।
मन मन हँसत त्रसत तनु परगट सुनत भावती बात ।
खडित वचन सुनत प्यारी के पुलक होत सब गात ।
इह सुख सूरदास कछु जाने प्रभु अपने को भाव ।
श्रीराधा रिस करति निरखि मुख सो छवि पर ललचाव ।

—सू० सा०, पृ० ४८१

कृष्ण के मनोभावो से सम्बद्ध इस तरह का कोई उदाहरण गुजराती में नही मिलता ।

८. *कृष्ण का मथुरा गमन*—*कृष्ण-काव्य* की प्रधान भावना प्रेम है और प्रेम की जितनी तीव्र अनुभूति मिलन मे होती है उससे कही अधिक विरह में । विरह एक प्रकार से मिलनकाल में विकसित होने वाले प्रेम की गहनता एव स्थिरता का प्रमाण है । कृष्ण के ब्रज से मथुरा जाने की बात उनके प्रेम में उन्मत्त रहने वाले ब्रजवासियो के लिए कितनी मर्मान्तक पीडा का कारण हो सकती है, इसको सूर और नरसी

के अनुभूतिशील हृदयों ने पूरी तरह पहचाना। दोनो कवियों ने अपने अपने स्वभाव के अनुसार समस्त कृष्ण-काव्य की संयोग वियोगमयी भावभूमि के बीच संधिस्थल जैसे इस प्रसंग को विशेष भाव-संकुल बना कर प्रस्तुत किया है। सूर का भाव-निरूपण नरसी की अपेक्षा अधिक विस्तृत और अधिक गंभीर संवेदना उत्पन्न करने वाला है। कृष्ण को मथुरा ले जाने वाले अक्रूर के मनोभावों का सूक्ष्म आलेखन सूर ने पर्याप्त कुशलता से किया है। अक्रूर के हृदय में कृष्ण के चरणो का दर्शन पाने की अभिलाषा एवं उत्कंठा तथा उनके ऐश्वर्य-ज्ञान से उत्पन्न विनम्र भक्ति भाव भागवतकार ने भी प्रदर्शित किया है परन्तु सूर ने उसे और भी अधिक सवेद्य और संपूर्ण बना दिया है। गुजराती में नरसी के अतिरिक्त अन्य किसी महत्त्वपूर्ण कवि ने अक्रूर की मनःस्थिति का स्पर्श तक नही किया; भालण एक दो पंक्तियों में संकेत मात्र करके रह गये हैं। यथा—

अक्रूर जी ते वेगे जाये, मनमाहे आनद न माये।
आज मारा पूर्वज मूकाशे, दामोदरनुं दर्शन थाशे ॥

—दशमस्कंध, पृ० १५५

सूर ने कृष्ण-चरण-स्पर्श करने की कल्पना में विभोर अक्रूर के मनोभावों का सानुभाव वर्णन किया है—

जब शिर चरण धरिहौ जाइ।
कृपा करि मोहिं टेकि लैहैं करन हृदय लगाइ।
अग पुलकित वचन गदगद मनहिं मन सुख पाइ।
प्रेमघट उच्छलत ह्वै है नैन अंशु बहाइ।
कुसल बूझत कहि न सकिहौं बार बार सुनाइ।
सूर प्रभु गुण ध्यान अटक्यो गयो पथ भुलाइ।

—सू० सा०, पृ० ५८७

एक भावुक-हृदय व्यक्ति भाव-विभोर होकर किस प्रकार कल्पनाशील बन जाता है और क्या सोचता है, यह सूर को भली भाँति विदित है। सूर का उक्त पद भाव की दृष्टि से भागवत पर आधारित है परन्तु कृष्ण को रथ में बिठाकर मथुरा की ओर जाते समय अक्रूर के मन में होने वाले जिस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण सूर ने किया है वह उनकी नितान्त मौलिक भावानुभूति का प्रमाण है। व्रजवासियों को दुखी करके क्रूर कंस के पास कृष्ण को ले जाना उन्हें पाप कर्म लगता है, साथ ही उन्हें कंस का भय भी है। इस अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित होकर उनका मन आत्मग्लानि से भर जाता है।

मनहिं मन अक्रूर सोच भारी।
जननि दुखित करी इनहिं में लै चल्या भई व्याकुल सबै घोष नारी।
अतिहिं ए बाल भोजन नवनीत के जानि तिन्हैं लीन्हे जात दनुज पासा।
कुवलयामल्ल मुष्टिक चाणूर से कियो मैं कर्म यह अति उदासा।
फेरि लै जाउँ व्रज श्याम बलराम को कम लै मोहिं तब जीव मारें।
सूर पूरण ब्रह्म निगम नाहीं गम्य तिनहिं अक्रूर मन यह बिचारें।
—सू० सा०, पृ० ५८७

किन्तु जहाँ सूर न अक्रूर के मन में उठन वाली इन मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए स्थल खोज लिया वहाँ कृष्ण के ब्रह्मत्व का निरूपण करना ही उनका प्रधान लक्ष्य रहा है। यह भक्त कवियों की एक सहज प्रवृत्ति रही है।

नरसी में भी यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है परन्तु अक्रूर की आर्त दशा उन्होंने सूर की तरह किसी आभ्यन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व के कारण न दिखा कर एक ऐसे कारण से दिखायी है जो पूर्णतया बाह्य तथा स्थूल है। कृष्ण से मिलने के लिए उतावली गोपियाँ अक्रूर को ही कृष्ण समझ लेती हैं और 'स्पर्शसुख' पाने की झोंक में उनकी दुर्दशा बना देती हैं। अक्रूर घबराहट में अपना नाम तक ठीक से नहीं बता पाते—

गोपी कहे हरि आव्या ठावे रे, लीजीअे रस हवे भरपूर।
अेम बोली मनमा डोली रे, अक्रूर पकडिया तेणि वार।
स्पर्शसुख माटे झाल्या रे, हाथ, पग, चीर, केश अपार।
ज्यम कीडीयो कीटने पकडे रे, त्यम अक्रूर वीटी लीधा।
कुंजमा लइ जइअ चालो रे हवे मनोरथ सीध्या।
अक्रूर केहे नोय नोय कृष्ण रे, अ अ क्रू क्रू ररररे बोलाय।
—न० कृ० का०, पृ० ६२

चींटियों द्वारा पकड़े गये कीड़ की तरह अक्रूर की एक बात भी गोपियाँ नहीं सुनती हैं तब वे त्राहि त्राहि करके कृष्ण से सहायता की प्रार्थना करते हैं—

अक्रूर बोले घणु, नव को सुण ते तणु, वण्यु दीन रूप हरि भक्त केरु।
स्हाय माहरी करो, नहितो निश्चे मर हु ने उगारो तमे थइने हेरु।
—वही, पृ० ६३

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो अक्रूर की स्थिति कारुणिक होने के स्थान पर हास्यास्पद हो गयी है जो प्रस्तुत प्रसंग में वियोग के पूर्व के गहन दुःखमय वातावरण के अनुकूल

प्रतीत नही होती। रसास्वादन मे सहायक होने के स्थान पर वह एक प्रकार से उसमे बाधक सिद्ध होती है। गोपियो में भी विछोह के अवसर पर 'स्पर्शसुख' को पाने की जो अघ उतावली प्रदर्शित की गयी है वह प्रेम के सूक्ष्म रूप को व्यक्त करने के स्थान पर स्थूल रूप को ही अधिक व्यक्त करती है। कृष्ण 'कुजररूप' होकर गोपियो को 'कदली' की तरह मर्दित करके परिश्रान्त करते है। इस सादृश मे भी प्रेम के स्थूल रूप की ही व्यजना होती है।

इस तरह के वासनापूर्ण प्रेम का चित्रण करना नरसी का स्वभाव है किन्तु इसके साथ 'गोविंदगमन' में उन्होंने गोपियो की मानसिक व्यथा, तथा कृष्ण के प्रति तीव्र आसक्ति का भी चित्रण किया है।

नरसी के कृष्ण सारे ब्रज में इतने लोकप्रिय रहे कि सारे गोप-गोपी सोते-जागते, बैठते-उठते उन्ही का नाम लेते रहते। जब कृष्ण के गमन का समाचार उन्हें मिलता है तो गोपियाँ दुख से दग्ध होकर पति, परिवार की चिंता भूल जाती है और गोप उत्तेजित होकर अक्रूर को मारने का विचार करने लगते हैं—

क—सूता वेसता उठता रमता जमता करे कृष्ण।
वाल रूओ कृष्ण कृष्ण कही, न मटे कोनी तृष्ण॥
—न० कृ० का०, पृ० ५६

ख—कृष्ण जवानु साभल्यु गोपियोओ ज्यारे जी।
वाघ देखी अजा जेवी तेम थई स्त्रियो त्यारे जी।
कोना ससरा स्वामी पिता भ्राता हुता जी।
माटे 'गले झलाइ' गई त्याथी सौको दुहिता जी।
वली त्या गोप सखाओ सुण्यु गमन जी।
तिणे तो अक्रूर मारवानु कीधु मन जी।
—वही, पृ० २७

सूरदास ने भी कृष्ण के मथुरा-गमन का समाचार सुनकर उदास गोप-गोपियो का चित्रण किया है पर उन्होंने गोपो में वैसी उत्तेजना प्रदर्शित नही की जैसी नरसी ने की है—

सब मुरझानी री चलिब की सुनत भनक।
गोपी ग्वाल नैन जल ढारत गोकुल ह्वै रह्यो मूंदचनक।
यह अक्रूर कहाँ ते आयो दाहन लाग्यो देह दनक।
सूरदास स्वामी के बिछुरत घट नहिं रहै प्राण तनक।
—सू० सा०, पृ० ५८०

इसके अतिरिक्त सूर ने एक ऐसी गोपी की दशा का वर्णन किया है जिससे स्वय कृष्ण ने अपने जाने की बात कही। जिसके केवल चलने की भनक सुनते ही गोपियाँ मुरझा जाती हो उसके स्वय कहने पर कितनी गभीर वेदना उस गोपी की हुई होगी, यह सूर की वाणी से ही व्यक्त हो सकता है। 'जल ज्यो जात बही' कह कर सूर ने उसकी अश्रुविगलित दशा की व्यजना की है—

हरि मोसो गौन की कथा कही।
मन गह्वर मोहि उतर न आयो ही सुनि सोचि रही।
सुनि सखि सत्य भाव की बातें विरह बेलि उलही।
परवत चिन्ह कहे हरि हमको ते अब होत सही।
आजु सखी सपने मैं देख्यो सागर पालि ढही।
सूरदास प्रभु तुम्हरो गवन सुनि जल ज्यो जाति बही॥

—सू० सा०, पृ० ५८०

कृष्ण के प्रवास से खिन्न होकर विगत। स्नेह-स्मृतियो से आपूरित नरसी की राधा अतिशय स्मरणशील हो उठती है। कृष्ण ने एक बार उसे मिलन का वचन दिया और नही आये। उसने उनके आल्स भरे शरीर को देखकर सब कुछ समझ लिया। वह कृष्ण से झगड पडी, रूठ गयी। कृष्ण ने मनाने के सौ यत्न किये पर नही मानी। कृष्ण ने उसे एक दिन कुजगली में मटकी ले जाते हुए देख लिया और 'अलि अलि सर्प' कह कर डरा दिया। फिर जब सर्प के भय से राधा काँपने लगी और सारा मान भूल कर 'कृष्ण कृष्ण' पुकार उठी तो अचानक आकर आलिगन में भर लिया—

केवडा ऊपर वाली जशो सर्प अे 'अलि अलि सर्प' अेम शब्द सुनियो।
अग ध्रूजी गयु केश विखरड गया, शरीर सारे परस्वेद वळियो।
नासता नासता हु पडु आखडु त्रास पामी घणु मन माही।
वडाई ने विसरी, हे कृष्ण ! कृष्ण ! ऊचरी, गोपीनो नाथ में निरख्यो त्याही।
वा' लो दडवड धोडियो, मुजने आलिगियो 'डर नही, डर नही' अेम भाख्यु।
नरसइना नाथनु कपट वळी गई तोय वाई हेत अेनु अेज राख्यु।

—न० कृ० का०, पृ० ६०

सूरदास ने भी एक स्थल पर कृष्ण के वियोग में राधा को ठीक ऐसी ही पूर्व स्मृति-सकुल मन स्थिति में चित्रित किया है। उसे भी मान करने का घना पश्चात्ताप हो रहा है—

मेरे मन इतनी शूल सही।
वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखी जे नँदलाल कही।
एक दिवस मेरे गृह आये हौं ही मथत दही।
रति माँगत मैं मान कियो सखि सो हरि गुसा गही।
सोचति अति पछिताति राधिका मूर्छित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरे ते व्यथा न जाति सही।

—सू० सा०, पृ० ६३८

कृष्ण से अपने सुकुमार सम्बन्ध की सरस स्मृतियों में डूबी नरसी की विरहिणी राधा आधी रात, प्रभात किसी भी समय गा उठती, कृष्ण कृष्ण रटने लगती। राधा के वेदनासिक्त स्वर का बाह्य जगत् पर व्यापक एव मार्मिक प्रभाव अकित करके नरसी ने राधा की विरहव्यथा को सूफियों की तरह रहस्यात्मक बना दिया है। उसके स्वर को सुन कर पशु पक्षी जाग उठते हैं, यमुना डोलने लगती है, सूर्य उग आता है, कमल खिल जाते हैं और कुमुदिनी के मन मे त्रास उत्पन्न हो जाता है—

आ विधे कृष्णचरित्रना, गाय मधराते प्रभात।
विरह कृष्ण कृष्ण उचरती जुओ व्हाणु वायानीवाट।
पखीमात्र नही पण पशु जागिया, सुणी स्वामिनी मुख वाण।
त्या स्थिर जमना लागी डोलवा, स्वर थयो जळचर ने जाण।
स्वर सुणियो सूरज देवता, पाळा धाय करवा प्रकाश।
स्वर सुणि रे कमळ खीलिया, उपन्यो पोयणी ने त्रास।

—वही

असह्य वेदना से उबरने का अन्य कोई उपाय न देखकर राधा नरसी के द्वारा कृष्ण के पास पत्र भेजती है जिसे लिखते समय वह इतनी विभोर एव शिथिल हो जाती है कि 'मुआ हाथ' काम ही नही करता। यहाँ 'मुआ' शब्द भावव्यजना की अद्भुत शक्ति रखता है। कमलपत्र पर राधा जो कुछ लिख पाती है उससे उसके दैन्यविगलित हृदय की पूरी झलक मिलती है—

अमो अबुध अबला शु लखु छो सर्वज्ञ घनश्याम।
करगरी लखीओ किंकरी, जाउ जमडाने धाम।
वली निश्चे मनमा कर्यु, आवु जाओ ते गाम।
बुध लखु शु रे विट्ठळा, मुआ हाथ न करे काम।

—वही, पृ० ६५

कविया द्वारा नद और यशोदा आदि की मनोदशा का जो चित्रण किया गया है उसका परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है ।

नरसी ने कृष्ण के व्रज से विछुडते समय धेनु-प्रेम को जिस रूप में व्यक्त किया है वह गुजराती काव्य में अद्वितीय है । जिस समय गायें कृष्ण के मथुरागमन का आभास पाती है, तत्काल 'हिंसारव' करती, बधन तोडती, गौशाला फोडती निकल पडती है । कृष्ण भी उन्हें देखने के लिए अक्रूर के साथ गौशाला में जाते है । कृष्ण को देखते ही गायें चारा ओर से उन्हें घेर लेती है और प्रिय के हाथ का स्पर्श पाकर उनकी आँखो से आँसू बहने लगते है । वे यशोदा को बुलाकर गायो और बछडा की दीन दशा दिखलाते है । गायें इस प्रकार कातर दृष्टि से कृष्ण को देखती है जैसे उन्हें रोकना चाहती हो । पीठ पर हाथ फेरते हुए आश्वासन देकर जब कृष्ण जाने लगते है तो वे बडी देर तक गर्दन उठा उठा कर उन्हें देखती रहती है और अत में निराश होकर पड रहती है—

गायोअे जावानु जाण्यु ज्यारे रे, मोटा हिंसारव कीधा त्यारे रे ।
तोडी वरेडु गौशाला फोडी रे, नीकली गायोनी घणी जोडी रे ।
धेनु प्रेम निरखियो नाथे रे, पेठा गौशाळा मा अक्रूर साथे रे ।
आवी गायोअे गोविंद घेर्या रे, हरिये वारा फरती कर फेर्या रे ।
चक्षुथी चोधारे अश्रु खरता रे, बा बा शब्द वाछरु करता रे ।
जाणी गायो तेमज भणती रे, लेइ जावाना शब्दो सुणती रे ।
न जावा देवा अेवु दीसे रे, हिंसारव करी माहे माहे हीसे रे ।
हरिअे जननी ने त्या बोलावी रे, जशोमती व्हेली व्हेली आवी रे ।
बोलिया हरि मुखथी हसी रे, आवी जोइ लेओ गायो जशी रे ।
काळी कावरी खोडी बोडी रे, धोळी पीळीनी रुडी जोडी रे ।
हसली बगली पोयणी राती रे, गोमती टिळवी रखे कइ जाती रे ।
तेना वाछरु सघला जो जो रे, गायने वेहे काळे न आवु तो रोजो रे ।
कमळ कर पीठ ऊपर धरी रे, गायो रीझवी चीकळया हरि रे ।
ऊँची डोक करी करी भाले रे, हरि ने जोता गायो न्याले रे ।
अदर्श थया ज्यारे दयाल रे, निराशी पडी गायो ततकाल रे ।

—वही, पृ० ६७

व्रजभाषा में सूर ने गायो की वेदना को तो व्यक्त किया ही है, साथ ही उनके स्व भाव का अधिक सूक्ष्म निरूपण किया है । उन्होने कृष्ण से विछुडती हुई गायो की दशा अकित न करके विछुडने के बाद उनकी जैसी कारुणिक अवस्था हो जाती है उसका

अकन किया है। प्रसग-भेद अवश्य है परंतु यहाँ तुलना की दृष्टि से सूर का एक पद उद्धृत कर देना अनुचित न होगा—

मधुकर इतनी कहियहु आइ।
अति कृशगात भई ए तुम बिनु परम दुखारी गाइ।
जलसमूह बरषति दोउ आँखें, हूँकति लीने नाँउ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनो सूँघति सोई ठाँउ।
परति पछार खाइ छिनही छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु सूर काढि डारी है वारि मध्य तें मीन।

—सू० सा० ,पृ० ७११

नरसी के 'उँची डोक करी करी भाले रे' में जितनी स्वाभाविकता है उससे अधिक स्वाभाविकता नाम सुनते ही हूंकने और गोदोहन के स्थानो को जा जा कर सूघने में है परन्तु जहाँ तक सवेदना का प्रश्न है, नरसी और सूर दोनो के वर्णनो में वह समान रूप से उपलब्ध होती है।

नरसी ने जिस प्रकार गायो की कातरता एव उत्सुकता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है उसी प्रकार कृष्ण से बिछुडती हुई गोपियो की मनस्थिति को भी पूरी तरह अभिव्यक्त किया है। सारी गोपियाँ कृष्ण से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक है। घर की बडी-बूढी मना करती ही रह जाती है और वे भरे जल को ढलका कर सुनी-अनसुनी करती हुई जल भरने के बहाने घर से निकल ही पडती है—

आ आवी कही चाली गोपियो, जोई सासु लडवा धाती रे।
भर्यु पाणी वृथा ढोळी बहुवर, सुण्यु न सुण्यु करी जाती रे।

—न० कृ० का०, पृ० ६४

कृष्ण का रथ जब मथुरा की ओर चल पडता है तो वे राह में जा खडी होती है। कृष्ण की आज्ञा से अक्रूर रथ हाँकने में अपना पूरा कौशल प्रदर्शित करते है परन्तु गोपियाँ आगे-पीछे गिरती-पडती, उडती हुई धूल मे भी रथ को पकड लेती है। चतुर राधा पहिये की कील निकाल कर रथारोहियो को पराजित कर देती है। भावावेश में वे अक्रूर को मारने और कृष्ण-बलराम को कुंज में उठा ले जाने के लिए उद्यत हो जाती है—

अक्रूर ने मारो बाँधो पछाडो, बे वीर कुंजे लीजे।
अवलाअे बलवता पकड्या नरसहियो घणु रीझे।

—वही, पृ० ६९

कुंज तक जाने के लिए कृष्ण जब हाथी मांगते हैं तो वे तत्काल मिलजुल कर नारी कुंजर का रूप बना लेती हैं और कुंज में जाकर रास-विलास में मग्न हो जाती हैं। गोपियाँ कृष्ण को किसी प्रकार छोड़ने को राजी नहीं होती-जब वे पिता की सौगन्ध खाकर शीघ्र आने को कहते हैं तब कहीं मुक्ति पाते हैं। अंत में लाख प्रयत्न करने पर भी जब विदा की वेला आ ही जाती है तो वे कृष्ण के अगणित आश्वासनों पर संदेह करती हुई बार बार शीघ्र आने का आग्रह करती हैं। कृष्ण चल देते हैं तो वे प्रेमाभिभूत होकर उनके डग गिनती रह जाती हैं—

> वेहेला आवजो, वेहेला आवजो, अेम गोपी भणती जी।
> नरसईयानो स्वामी तो चाल्यो गोपीयो डगला गणती जी।
>
> —वही, पृ० ७२

इसी तरह जब कृष्ण का रथ बजता हुआ चल पड़ता है तो वे उसे टकटकी बांध कर देखती रहती हैं। ज्यों ज्यों रथ दूर जाने लगता है त्यों त्यों उनकी उत्सुकता बढ़ती जाती है और वे उच्च से उच्चतर वृक्ष पर चढ़कर उसे देखने का प्रयास करती हैं। पहले रथ में कृष्ण दीखते रहते हैं, फिर रथ ही दिखाई पड़ता है और अंत में जब उसकी ध्वजा भी छिप जाती है तो सारी गोपियाँ दुख के अतिरेक में चेतनाहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। यहाँ परिस्थिति के अनुकूल नरसी ने गोपियों की स्नेहाकर्षणजन्य उत्सुकता का जो क्रमिक विकास चित्रित किया है वह काव्य की दृष्टि से सराहनीय है—

> रथ वेगे वाजे घणो रे, ते गोपी टकटक जोय।
> अरे सखि हरि तो गया रे, शी वले आपणी होय।
> जेवा तेवा हरि दीसशे रे, चालो चढिये ऊंची डाल।
> जेम जेम हरि जाय छे रे, तेम तेम ऊंची चढती बाल।
> पछे हरि दिखता रह्या रे, एक रथ देखे सहुको नार।
> ओ रथ दिसतो रह्यो रे टकटक धज जोई रही निरधार।
> *धज पण छूपी गयो रे, तहीं रज जोती ते बाल।*
> ते जब नव लही रे, ताड चढी कौतिनी बाल।
> ताडथी दीसता रह्या रे, के वृक्षथी पडी, गइ निराश।
> त्रास आस करतइ रह्यो रे, 'राधा जीव्यानी मूकी आश।
> लोथ्यो पडी अेक अेक परी रे, कोइ नव लीजे तपास।
> माधव ने शु कहीये रे, प्रभुअे घणो कर्यो विनाश।
>
> —वही

नरसी की गोपियाँ भावुक होने के साथ ही क्रियाशील भी बनी रहती हैं। उनकी भावना उन्हें मिलन और दर्शन के लिए प्रयत्नरत रहने की प्रेरणा देती हैं। इसके विरुद्ध सूर की गोपियों का भावातिरेक उन्हें सारी परिस्थिति के प्रति विचित्र प्रकार से निश्चेष्ट, निष्क्रिय तथा जड बना देता है। वे केवल पश्चात्ताप, रुदन एवं क्रन्दन करती रह जाती हैं। उनकी सारी चतुरता विरहानुभूति की गंभीर अश्रुधारा में बह जाती हैं। वे लाज त्याग कर कृष्ण को मथुरा जाने से रोकने की बात सोचती है पर जब अवसर आता है तो उनसे प्रेम के कारण बोला तक नही जाता, सारा शरीर रोमाच से भर जाता है—

गोपालहि राखहु मधुबन जात।
लाज गहे कछु काज न सरिहैं बिछुरत नद के तात।
रथ आरूढ़ होत बलि बलि गई होइ आयो परभात।
सूरदास प्रभु बोलि न आयो प्रेमपुलकि सब गात॥

—सू० सा० पृ० ५८४

कृष्ण रथ पर चढ कर चल भी देते हैं फिर भी उनसे गभीर दुःखानुभूति के कारण कुछ करते ही नही बनता, जहाँ की तहाँ चित्रवत् खडी रह जाती हैं—

रही जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी।
हरि के चलत देखियत ऐसी मनहु चित्त लिखि काढ़ी।
सूखे वदन स्रवत नैनन ते जलधारा उर बाढ़ी।
कधनि बाँह धरे चितवति दुम मनहु बेलि दव डाढ़ी।
नीरस करि छाँडी सुफलक सुत जैसे दूध बिन साढ़ी।
सूरदास अक्रूर कृपा ते सही विपति तन गाढ़ी।

—वहीं, पृ० ५८५

कृष्ण से उनकी चेतना पूर्णतया आबद्ध रहती है। सिधुधि एव निष्क्रियता उसी का एक परिणाम है, उसकी न्यूनता अथवा अभाव का प्रमाण नही। बिछोह के अवसर पर उनके प्रेम में वासना की उग्रता तथा चचलता की गध भी नही रह जाती। न तो वे नरसी की गोपियों की तरह मार्ग में व्यूह बना कर उन्हें रोकने का प्रयास करती है और न कुज में ले जाकर रास-विलास में निमग्न होती है। जब उनके प्रेम का बल कृष्ण को नही रोक पाया तो बौद्धिक और शारीरिक बल का प्रयोग वे क्या करें। स्थूल चेष्टाएँ उनकी सुकुमार भावना के अनुकूल नही पड़ती। परन्तु सुकुमार हो कर भी उनकी भावना हृदय के गभीरतर स्तरो तक व्याप्त दीखती है। रथ का

देखने की लालसा, कृष्ण के प्रति अनुरक्ति एवं उनके साथ रहने की इच्छा उनमें किसी प्रकार भी नरसी की गोपियों से कम प्रतीत नहीं होती। रथ कितनी दूर गया इसकी जिज्ञासा, रथ उनके कृष्ण को लेकर जा रहा है इसकी अनुभूति, रथ के साथ साथ धूल, पताका पवन आदि होकर मथुरा तक जाने की लालसा तथा रथ के चले जाने पर मूर्छित होकर गिर पड़ना इसका प्रमाण है—

क—केतिक दूरि गया रथ माई ?
  नँद-नंदन के चलत सखी री तिनको मिलन न पाई।
  एक दिवस हौं द्वार नद के नही रहति बिनु आई।
  आजु विधाता मति मेरी गई भौन काज बिरमाई।

—सू० सा०, पृ० ५८५

ख—सखी री वह देखौ रथ जात।
  कमलनैन काँधे पर न्यारो पीत वसन फहरात।

—वही

ग—पाछे ही चितवत मेरे लोचन आगे परत न पाँइ।
  मन लै चली माधुरी मूरति कहा करौं ब्रज जाइ।
  पवन न भई, पताका अंबर भई न रथ के अंग।
  धूरि न भई चरण लपटाती जाती वहँ लौं संग।
  ठाढी कहा करौं मेरी सजनी जिहि विधि मिलहि गोपाल।
  सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी मुरझि परी ब्रजबाल।

—वही

भाव-विकास की अन्तिम सीमा सूर और नरसी में समान है परन्तु मध्य की भाव-स्थिति में पर्याप्त अन्तर है। बचपन का प्रेम और रथ की धूल के कारण कृष्ण को भर आँख न देख पाने की विवशता उन्हें बहुत समय तक कचोटती रहती है—

अब तो है हम निपट अनाथ।
जैसे मधु तोरे की माखी त्यो हम बिनु ब्रजनाथ।
अधर अमृत की पीर मुई हम बाल दशा ते जोरि।
सो छिड़ाय सुफल्क-सुत लै गयो अनायास ही तोरि।
जौलगि पानि पलक मीडत रही तौ लगि चलि गये दूरि।
करि निरध निबहे दै माई आँखिन रथ पद धूरि।

—सू० सा०, पृ० ६१०

बलराम और कृष्ण को अवश्य सूर ने नितान्त निस्पृह एव निर्लिप्त रूप में चित्रित किया है। बिछोह का ऐसा अवसर भी उनके मन में किसी प्रकार के भाव उत्पन्न नही कर पाता—

व्याकुल भये ब्रज के लोग।
श्याम मन नहिं नेक आनत ब्रह्म पूरण योग।
कौन माता पिता को है, कौन पति को नारि ?
हँसत दोउ अक्रूर के सँग नवल नेह बिसारि।

—वही, पृ० ५८०।

नरसी के कृष्ण ऐसे नही है। वे 'प्रेमाकुश' पकड कर नारीकुजर का आरोहण करते हुए कुज मे क्रीडा करने जाते है और जाते जाते फिर आने का वचन भी देते जाते है पर भावुकता उनमे भी उत्पन्न नही होती।

९ **भ्रमरगीत**—कृष्ण-काव्य में भ्रमरगीत का प्रसग ब्रजवासियो, विशेषकर गोपियो की मनोदशा की अभिव्यक्ति का अत्यन्त प्रधान केन्द्र रहा है। क्रमश इसमे सैद्धान्तिकता का समावेश हो गया परन्तु उससे भावाभिव्यक्ति की क्षति न होकर कुछ उत्कर्ष ही हुआ है। गोपियाँ भक्ति एव प्रेम का प्रतीक बन गई। ज्ञान और योग के समर्थनकर्ता उद्धव को वे प्राय अपनी गम्भीर प्रणयानुभूति और निश्चल आसक्ति से पराजित कर देती है। बौद्धिक तर्क की अपेक्षा वे अश्रु और उच्छ्वास का आश्रय लेती है जो उनके विरहविदीर्ण हृदय की सहज अभिव्यक्ति करते है। ऐसे कवि कम है जिन्होने गोपियो के भावो के साथ कृष्ण के भावो का भी अकन इस प्रसग में किया हो। सूरदास और भालण ने कृष्ण के ब्रज प्रेम का अकन किया है परन्तु दोनो में मौलिक अतर है। सूर के कृष्ण ब्रज और ब्रजवासियों के प्रति जो ममता व्यक्त करते है वह 'छल' के रूप में प्रकट की गई है। निर्लिप्त कृष्ण उद्धव का ज्ञानगर्व नष्ट करने के निमित्त वैसे भाव प्रदर्शित करते है परन्तु भालण ने अपने कृष्ण मे ब्रज के प्रेम का जो चित्रण किया है वह वास्तविक है। उनके भाव छलमय होकर पूर्णतया निश्छल रूप में व्यक्त किये गये है,।[१७] किसी निमित्त से भावो को व्यक्त करना भावो के असत्य होने का आवश्यक प्रमाण नहीं है, फिर भी सूर की अपेक्षा भालण के कृष्ण की स्थिति मानवीयता की दृष्टि से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है। गुजराती के अन्य कवि प्रेमानद ने भी इस स्थल पर अपने पूर्ववर्ती भालण की ही तरह कृष्ण को मानवीय दुर्बलताओ से आपूर्ण चित्रित किया है।[१८]

यही नही, प्रेमानद ने उद्धव में ज्ञानगर्व की अपेक्षा गोपियों के प्रेम के प्रति आदर तथा कोमलता का भाव आदि से ही चित्रित किया है—

जड लोचने जोउ व्रजवधू, मारो थम पिंड पवित्र ।

—श्रीम० भा० पृ० ३२५

भालण ने कृष्ण की उन ममतापूर्ण व्रज-स्मृतियो का विस्तार से आलेखन किया है जिनमें वे मथुरा के राजवैभव की अपेक्षा व्रज के वन्य वातावरण और सहज सुख को अधिक प्रिय स्वीकार करते है। गोपियो और यशोदा के साथ बीती हुई अनेक सुकुमार घटनाओ का स्मरण करके वे उद्धव को अपना अभिन्न मित्र समझकर व्रजवासियो का दुख दूर करने भेजते हैं। उद्धव कृष्ण का सदेश व्रज में लाते हैं इस वस्तु को तो कवियो ने सामान्यत स्वीकार किया है परन्तु उसकी भावभूमि को कुछ ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तित एव विस्तृत कर लिया हैं। भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में सूर की विशेषता यहाँ भी परिलक्षित होती हैं। उद्धव के मथुरा लौट आने पर गोपियो की दशा सुन कर कृष्ण के हृदय में वास्तविक उद्वेलन होता हैं। दुखी गोपियो के पास योग का सदेश भेज कर वे पछताते है—

सुनु उधो मोंहि नेंक न विसरत वे व्रजवासी लोग।
तुम उनको कछु भली न कीनी निशिदिन दियो वियोग।
यद्यपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राज-सुख भोग।
तदपि मनहि बसत वसीवट व्रज यमुना सयोग।
वे उत रहत प्रेम अवलबन इतते पठयो योग।
सूर उसास छाँडि भरि लोचन बढ्यो विरह ज्वर शोग।

—सू० सा०, पृ० ७२५

कृष्ण की मन स्थिति पूर्ववर्णित मन स्थिति से विरोध उपस्थित करती है परन्तु विचारकरने पर विरोध विरोध न रहकर विरोधाभास सिद्ध होता है, क्योकि कृष्ण उद्धव को गोपियो के पास व्रज-प्रेम की महिमा समझाने के लिए ही तो भेजते हैं। यह उद्देश्य उनके हृदय में अन्तर्निहित व्रजप्रेम को व्यजित करता है। सूर ने इसको उक्त पद में अभिव्यक्त किया है। यो सूर ने कृष्ण को कभी निर्लिप्त, निष्काम तथा निर्विकार रूप में चित्रित किया है और कभी उनमें भावो, अकामनाओ तथा मनोविकारो का भी प्रदर्शन किया है, इसमें सदेह नही।

सदेश पाने से पूर्व व्रजवासियों की मनोदशा—सदेश पाने से पहले व्रजवासियो में जो आशामयी उत्सुकता उत्पन्न होती है उसको सूर ने पूरी तरह प्रत्यक्ष करके व्यक्त किया है। गोपियो की वृत्ति कृष्ण में इतनी रमी हुई है कि उन्हें उद्धव के आने का आभास अपने आप हो जाता है, सुख-दुख का मिश्रित अनुभव होने लगता

हैं और वे प्रिय के आगम को जताने वाले काग को खीर और पाग देने की कामना करने लगती हैं।"

भावमुग्ध अवस्था में गोपियाँ वेश-साम्य देख कर उद्धव को ही कृष्ण समझ लेती हैं। यह भ्रान्ति सारे व्रजवासियों के हृदयों को आन्दोलित कर देती है। नद, यशोदा, व्रजललनाएँ तथा गोवृद सभी प्रेम जन्य अनुभावों से आपूरित हो जाते हैं। उनमें वितर्क का भी सचार होने लगता है—

घर घर इहै शब्द पर्यो।
सुनत यशुमति धाइ निकसी हर्षि हियो भर्यो।
नद हर्षित चले आग सखा हर्षत अग।
झुड झुडन नारि हर्षित चली उदधितरग।
गाइ हर्षत पय स्रवत थन हुकरत गउ बाल।
उमँगि अग न मात कोऊ वृध तरुन अरु बाल।
कोउ कहत बलराम नाही श्याम रथ पर एक।
कोउ कहत प्रभु सूर दोऊ रचित बात अनेक।

—सू० सा० पृ० ६४६

इतनी आशान्वित उत्सुकता के बाद जब उन्हें ज्ञात होता है कि वस्तुत कृष्ण नही हैं, उद्धव हैं तो वे तत्काल मूर्छित हो जाती हैं। यह मूर्छा कृष्ण के प्रति उनकी गहरी आसक्ति की परिचायक है। उन्हें लगा जैसे स्वप्न में पाया साम्राज्य छिन गया हो।

जबहिं कह्यो ए श्याम नही।
परी मुरझि धरणी व्रजबाला जो जहँ रही सु तही।
सपने की रजधानी ह्वै गई जो जागी कछु नाही।
बारबार रथ ओर निहारहिं श्याम बिना अकुलाही।

—वही

कृष्ण की कुशल पूछते हुए भी उनका कलेजा काँपता रहता है। हर्ष के साथ ही आशका उन्हें व्याप्त हो जाती है—

पूछन कुशल नारि नर हरषत आये सब व्रजवास।
सकसकात तन धकधकात उर अकबकात सब ठाढे।

—वही, पृ० ६४८

इस स्थल पर किसी भी गुजराती कवि ने इतनी कुशलता से भावांकन नहीं किया है। प्रेमानंद ने नंद-यशोदा में तो आशामयी उत्सुकता प्रदर्शित की है परन्तु गोपियों की मानसिक प्रतिक्रिया भिन्न रूप में चित्रित की है। वे नंद के द्वार पर रथ देख कर अक्रूर के आने की भ्रान्त कल्पना कर लेती हैं और इसी भ्रान्ति के वशीभूत होकर भावावेश में सारथी को मारने लगती हैं—

सारथि लीधो मारवा, क्रोधे गोपिका उन्मत्त।
शु पुनरपि पापी आवियो, अक्रूर नंद ने गेह।
—श्रीम० भा०, पृ० ३२५

निश्चय ही इस कठोर भावाभिव्यक्ति की तुलना सूर के कोमल भावनिरूपण तथा सूक्ष्म अनुभूति से नहीं की जा सकती। यों सूर की कुछ गोपियों को भी उद्धव के रथ से अक्रूर के पुनरागमन का आभास होता है—

आजु ब्रज कोऊ आयो है।
कैधौं बहुरि अक्रूर क्रूर है जियत जानि उठि धायो है।

पर इसे केवल आभास तक सीमित रखकर सूर ने भाव के सौन्दर्य की पूरी तरह रक्षा की है।

सूर की गोपियों में अप्रतिहत अबाध कृष्ण-प्रेम परिलक्षित होता है। कृष्ण के न आने की बात जान कर जो गहरी निराशा उन्हें होती है उसी के भीतर से कृष्ण की पाती में कुछ पा जाने की आशा फूट पड़ती है। आगन्तुक के प्रति जो आशामयी उत्सुकता उनमें उत्पन्न हुई थी वह पाती को देखकर पुनः जग उठती है। कृष्ण के हाथ के लिखे हुए अक्षर पाकर वे इतनी अधिक भावविह्वल हो जाती है कि आँसू बहाने के अतिरिक्त प्रिय के संदेश को पढ़ने की भी चेतना नहीं रहती। वे उसे बार बार हृदय से लगाकर आत्मविभोर हो जाती हैं—

निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार बार लावत लै छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम जू की पाती।
—सू० सा०, पृ० ६४९

संदेश की प्रतिक्रिया—उद्धव के द्वारा कृष्ण का ज्ञान, योग, तपस्या और निर्गुण ब्रह्म की उपासना का क्रूर संदेश पाकर गोपियों के स्नेहाप्लावित हृदय में जो प्रतिक्रिया होती है उसे कवियों ने बड़ी स्वाभाविकता के साथ बड़ी अतिरंजना के साथ,

पूरा विस्तार देकर चित्रित किया है। एक तो यह प्रतिक्रिया अनेकमुखी होती है-दूसरे उतनी ही गंभीर जितनी गंभीर गोपियों की प्रीति है। दोनों ही बातें मानव-मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। गोपियों का आक्रोश पहले पहल उन कृष्ण पर होता है जिन्होंने प्रीति करके धोखा दिया और ऐसा संदेश भेजा। भ्रमर को आधार बना कर वे अपना सारा आक्रोश कृष्ण की जैसी लम्पटता, चंचलता, स्वार्थपरता, अस्थिर प्रीति तथा क्षणिक रसलुब्धता का बखान करती हुई प्रकारान्तर से व्यक्त कर डालती हैं। फिर वे उन उद्धव पर रुष्ट होती हैं जो ज्ञान का संदेश लाद कर ब्रज लाये। इसके बाद जब वे कृष्ण की इस आकस्मिक विरति का कारण खोजती हैं तो उनकी वाग्धारा कुब्जा की ओर मुड़ जाती है और वे कृष्ण और कुब्जा के अवैध एवं अशोभन संबंध की कल्पना करके तीव्र से तीव्र व्यंग्य करने लगती हैं।

संदेश में कही हुई प्रत्येक बात का उन्हें भिन्न ही अर्थ प्रतिभासित होने लगता है। वे एक के बाद एक प्रहार करके उस संदेश की धज्जियाँ उड़ाने लगती हैं। जिस पाती में संदेश लिख कर भेजा गया और जिसे प्रेम की पाती समझ कर उनका हृदय लहरा उठा था उसे वे पढ़ती तक नहीं। कुछ कवियों ने इस तीव्र भावात्मक प्रतिक्रिया को उसकी गंभीरता के साथ आत्मसात् न करके बौद्धिक रूप दे दिया है परन्तु अधिकतर काव्य में इसका भावात्मक रूप ही प्रकट किया गया है। सूर ने प्रतिक्रिया की गंभीरता तथा उसके बहुमुखी प्रसार को पूरी तरह अभिव्यक्त किया है। अन्य कवियों में इसकी आंशिक अभिव्यक्ति मिलती है। गुजराती तथा ब्रजभाषा के समस्त कृष्ण-काव्य में भ्रमरगीत सम्बन्धी भावनाओं के आलेखन में सूर का स्थान सर्वोपरि है।

सूर की गोपियों का प्रत्येक उद्गार सीधा हृदय से निःसृत हुआ लगता है। इन उद्गारों में कवि ने सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदन को तीव्र से तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान की है। वे कृष्ण के संदेश और संदेशवाहक का जी भर कर परिहास करती हैं उनपर कठोर से कठोर व्यंग्य कसती हैं परन्तु इस सबके पीछे से उनके हृदय में रह रह कर लहराता हुआ गहरा भाव-समुद्र झलकता रहता है। कवि ने कदाचित् अपने हृदय की तीव्रतम अनुभूति से भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों का निर्माण किया है। भाव में डूब कर अनोखी कल्पना भावाभिव्यक्ति के अनगिनत प्रकार रचती जाती हैं जो अन्य कवियों के काव्य में नहीं मिलते।

कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालंभ, व्यंग्य और अनन्य प्रेम—'यह पाती लै जाहु मधुपुरी जहाँ बसैं स्याम सुजान' कह कर सूर की गोपियाँ संदेश की सम्पूर्ण उपेक्षा करती हैं। इस भाव को प्रेमानंद ने भी प्रदर्शित किया है—

जे सदेशो श्रीकृष्णे वहाव्यो ते तमो फरी लेता जाओ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२७

'कृष्ण के सदेश को वापस लेते जाओ' कहने की अपेक्षा 'इसे उस मथुरा में ले जाओ जहाँ कृष्ण रहते हैं' कहना व्यग्य को अधिक मार्मिक बना देता है। कृष्ण के सदेश पर व्यग्य करने के साथ ही सूर की गोपियाँ अपने भेजे सदेशो का स्मरण करने लगती है। उनका यह सोचना कि हो न हो क्रूर-हृदय कृष्ण ने उनके सदेशवाहक पथिकों को उलटा-सीधा समझा दिया होगा, अत्यन्त स्वाभाविक लगता है।

> संदेसन मधुबन कूप भरे।
> अपने तौ पठवत नंदनदन हमरे फिरि न फिरे।
> जइ जेइ पथिक हुते ब्रज पुर के बहुरिन सोध करे।
> कै वह स्याम सिखाय प्रबोधे कै वह बीच धरे।
>
> —सू० सा०, पृ० ६५०

भ्रमर के माध्यम से कृष्ण पर आक्षेप करती हुई गोपियाँ सभी काली वस्तुओं को सदोष एव निकृष्ट घोषित कर देती है। इस भाव को गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों में समान रूप से अभिव्यक्ति मिली है क्योंकि इसका मूल सूत्र भागवत की गोपियों के 'तद-लमसितसख्यै' में निहित है। कवियो ने सूत्रनिहित भाव को अधिक तीव्र एव स्पष्ट करके व्यक्त किया है—

गुजराती

भालण—काळा सघला धूतारा, कोणे मल्या नव जाय जी।
मन वाल्यु वले नहि तो, कीजे कशो उपाय रे।

—द० स्क०, पृ० २१४

प्रेमानद—जेटला काळा ते सहु कपटी, विश्वासकोनो नव करीअे।
काळा सर्पनी सगत करता, कोइक दहाडो मरीअे।

—श्रीम० भा०, पृ० ३२८

ब्रहेदेव—काळा सरखा होय्र कूडे भर्या।
चपक सरखा काळे परहर्या।

—बृ० का० दो० भाग १, पृ० ६६७

ब्रजभाषा

सूर—क मधुकर यह कारे की रीति।
मन दै हरत परायो सरबस करै कपट की प्रीति।
ज्यो पटपद अबुज के दल में बसत निशा रति मानि।

दिनकर उए अनत उडि बैठे फिरि न करत पहिचानि।
भवन भुजग पिटारे पाल्यो ज्यों जननी जिय तात।
कुल करतूति जाति नहि कबहूँ सहज सुडसि भजि जाति।
कोकिल काग कुरग श्यामघन हमहि न देखे भावें।
सूरदास अनुहारि श्याम की छिनु छिनु सुरति करावैं।

—सू० सा०, पृ० ६७७

ख विलग मति मानहु ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजर की उबरी जे आवें ते कारे।
तुम कारे, सुफलक-सुत कारे, कारे मधुप भँवारे।

—वही

काले के अन्य अनेक दोष तो उक्त सभी कवियो ने दिखाये है परन्तु वे प्रतिक्षण कृष्ण की स्मृति दिलाते हैं, इस रसमय दोष को सूर की ही अन्तर्दृष्टि ने देखा। साथ ही सारी मथुरा को 'काजर की उबरी' कह कर अक्रूर, उद्धव, कृष्ण सब के प्रति व्यग्य करना भाव की और भी व्यापक अनुभूति का परिचायक है।

इसी प्रकार कुब्जा के साथ कृष्ण के अनुचित एव अनुपयुक्त सबध की परिकल्पना करके गोपियो का हृदय आहत और विदीर्ण हो उठता है। आहत स्नेह व्यक्ति के उद्गारो का जो रूप होना है वह कुब्जा को लेकर लिखे गये पदों में पूर्णतया व्यक्त हुआ है। सूर ने इस भावस्थिति को कुब्जा के मनोभावों का चित्रण करके और भी अधिक सजीव बना दिया है। अपने सदेश में राधा और गोपिया के प्रति वह मृदु कटु दोनों प्रकार से व्यग्य करके कृष्ण पर अपना स्वत्व प्रदर्शित करती है और कृष्ण के व्रज से विमुख होने का सारा दोष उन्ही पर मढ देती है।"

इस प्रकार की भाव-योजना करके सूर ने एक ओर तो कुब्जा को प्राणवता प्रदान की, दूसरी ओर गोपियो के व्यग्यपूर्ण उद्गारो के लिए अधिक उपयुक्त आधार प्रस्तुत किया जिसकी पृष्ठभूमि में गोपियो की सारी ईर्ष्या, सारा आक्रोश अधिक स्वाभाविक तथा मार्मिक प्रतीत होने लगता है। कृष्णकाव्य के किसी अन्य कवि ने भावयोजना के क्षेत्र में ऐसी कुशलता प्रदर्शित नही की। कुब्जा के प्रति व्यग्यपूर्ण उद्गार व्यक्त करती हुई गोपियों की भाव विह्वल दशा का चित्रण दोनों भाषाओ के अनेक कवियों ने किया है। नरसी के भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों का प्रधान भाव कुब्जा पर ही केन्द्रित है—

कमरायनी दासी कुब्जा, गुधी ने मळी गोडी रे।
काळो काहो काळी कुबजा, सरगी मळी छे जोडी रे।

—न० कृ० का०, पृ० २८२

कुब्जा-कृष्ण के सबध की असगति का परिहास करती हुई एक गोपी कुब्जा को वे बातें भी कहला भेजती है जिनके द्वारा वह कृष्ण को सुखी रख सके। इस प्रकार के उद्गारों में प्रिय की कल्याण-कामना ईर्ष्या को पराजित करके प्रमुख हो उठती है अथवा रति के साथ वात्सल्य का उदय हो जाता है—

> कुबजा ने कहेजो रे, ओषद अटलु रे, हरो हीरो आव्यो ताहारे हाथ।
> मान करीने रे, अेहेने तु लजावेरे, कहु छु शीखामणनी वात।
> प्राते उठीने प्रथम पूछजे रे, जे मागे ते आपजे ततखेव।
> बीजु काइरे, भुधर ने भावे नही रे, माहावाने छे महिमाखननी टेव।
>
> —वही, पृ० ३१२

भालण की गोपियो का व्यग्य कुब्जा से अधिक कृष्ण के प्रति उन्मुख है। वे कहती हैं कि *कृष्ण ने कदाचित् इसीलिए विवाद नही किया कि जब दासी से ही कार्य सिद्ध* होता है तो बधन में कौन पडे—

> हजी शु परणूया नथी, घणी वधारी लाज जी।
> बधन मा शाने पडे, जो दासीअे सरे काज।
>
> —द० स्क०, पृ० २१२

और इसीलिए कृष्ण गोकुल नही आते कि अगर कुब्जा खो गयी तो कोटि उपाय करने पर भी नही मिलेगी—

> गोकुल कयम आवे हरि न प्रीत जडी।
> कोटि उपाय कीजे जो आपण क्याहि मके कुबडी।
>
> —वही, पृ० २१९

'हरिअधरामृत' पीने वाली प्रेमानद की गोपियो को ज्ञानसुधा विष के तुल्य प्रतीत होती है और वे उद्धव से कुब्जा को ब्रह्मविद्या देने के लिए कहती है, क्योकि वे उसे ही उसके परम उपयुक्त समझती है—

> ब्रह्मविद्या कुब्जा ने आपो, शीखी जाशे वहेली रे उद्धवजी।
> अमो आहिरडी महीडा वेचु, ओढु धाबल मेळी रे उद्धवजी।
>
> —श्रीम० भा०, पृ० ३३०

इस कथन मे भी जो वक्रता है वह भाव से सीधे सम्बद्ध है। व्यग्य यो तो कुब्जा पर प्रतीत होता है परन्तु वह ब्रह्मविद्या शीघ्र ही सीख जायेगी, इस कथन में सदेश भेजने

वाले कृष्ण के प्रति गहरी ध्वनि हैं। प्रेमानद ने यशोदा तक को कुब्जा के प्रति व्यग्य करते हुए चित्रित किया हैं यद्यपि वह व्यग्य स्वतन्त्र न होकर एक दूसरे व्यग्य के आश्रित रूप मे व्यक्त हुआ हैं—

अेटलु कहेजो देवकी ने, जे पुत्रनु सुख लीधु अमो।
पागे लागशे कुलवत कुब्जा, बहुना सुख लेजो तमो।

—वही, पृ० ३३१

सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति भावातिरेक में तीव्रतम व्यग्य करती जाती हैं जिनमें कुब्जा, उद्धव तथा उनका योग और निर्गुण सभी आ जाता हैं परन्तु उसके बाद ही वे अत्यधिक खिन्न तथा शिथिल होकर कभी अपनी त्रुटि खोजने लगती हैं, कभी सीधे सीधे कृष्ण को कुब्जा के परित्याग की सलाह देने लगती हैं। इस प्रकार सूर ने गोपियो की भावाकुलता के अनेक स्तरो का स्पर्श किया हैं।"

सूर के काव्य में वे स्थल और भी अधिक मार्मिक हैं जहाँ उन्होने गोपियो की गभीर अनन्य अनुरक्ति को अत्यन्त सहज भाव से व्यक्त कर दिया है। गोपियो के सरल तर्क प्रेम की जटिल गति को पूरी तरह प्रकट कर देते हैं—

क—ऊधो मन न भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम सँग, को अवराधे ईस ?

—सू० सा०, पृ० ६७४

ख—मन में रह्यो नाहिन ठौर।
नद नदन अछत कैसे आनिये उर और।

—वही

ऐसी भावाभिव्यक्ति एक स्थल पर प्रेमानद में भी मिलती हैं—

अमृतनो घट मुख लगी भरीओ, ऊपर भरीअे ते वही जाय।
श्री कृष्ण भर्या छे कंठ प्रमाणे, ते केम जोल समाय।

—श्री म० भा०, पृ० ३२८

सूर ने गोपियो की एक अन्य सुकुमार भावना का चित्रण किया हैं कृष्ण को देखने वाली आखो से उन्हें देखनेवाले उद्धव को पाकर वे अपने को कृतार्थ मानती हैं। एक क्षण को उन्हें लगता है कि जैसे कृष्ण ही मिल गये।

ऊधो हम आजु भई बड भागी।
जिन आँखिन तुम श्याम विलोके ते अँखियाँ हम लागी।

जैसे सुमन वास लै आवत पवन मधुप अनुरागी।
ज्यो दर्पन में दर्शन देखत दृष्टि परम रुचि लागी।
तैसे सूर मिले हरि हमको विरह व्यथा तनु त्यागी।

—सू० सा०, पृ० ६४५

इतने सरल सहज ढग से गभीरतम स्नेहानुभूति को कृष्णकाव्य में किसी भी अन्य कवि ने शब्दबद्ध नही किया।

नददास की गोपियो में हृदय की अभिव्यक्ति इतनी स्वाभाविक नही हो पाई है, फिर भी एक स्थल पर उनके तर्कों का भोलापन दर्शनीय है—

जो मुख नाहिन हुतो, कहौ किन माखन खायो ?
पाइन विन गोसग कहौ को बन बन धायो ?

—नददास, पृ० १२५

गुजराती में भालण की कतिपय पक्तियो में भी इस तरह की सरल भावाभिव्यक्ति उपलब्ध होती है—

ते मन पाछु क्यम वले जेणे मुरली नो रस चाख्यो जी।
ते वा' लो क्यम विसरे जे हूँडे चापी राख्यो।
कुब्जा सरखी कोटिक करजो तमो अमारे ओक जी।

—द० स्क०, पृ० २१५

सूर और भालण ने राधा की मनोदशा को और भी अधिक सुकुमारता से चित्रित किया है। सूर की राधा इतनी भावुक है कि कृष्ण की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए वह अपनी सारी तक नही धुलाती—

अति मलीन वृषभानु-दुलारी।
हरि श्रमजल अतर तनु भीजे ता लालच न धुवावति सारी।

—सू० सा० पृ० ७१२

भालण की राधा के हृदय में एक नदकुमार के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए स्थान नही। वह क्या उपालभ दे ? एक जिज्ञासा उसे अवश्य होती है और वह यह कि क्या कुब्जा सचमुच उससे अधिक सुन्दरी और चतुर है जो कृष्ण देखते ही मुग्ध हो गये।

उद्धव साचु कहो निरधार।
कुब्जा अमथी रूपे रूडी चतुराई अपार ।

जेने देखीने मोहपाम्या तत्क्षण देवमुरार।
में तो बीजो कोय न दीठो अेकज नदकुमार।
पुनरपि मन मां तेने वाच्छु वृंदावन अवतार।

—द० स्क०, पृ० २१७

इसी के साथ दोनो ने उद्धव के मन पर राधा की परम प्रेममयी मूर्ति का अपूर्व प्रभाव भी अंकित किया है। विरहिणी राधा की दशा से उद्धव अभिभूत हो जाते हैं। भालण और सूर ने उनके मुख से राधा की दशा का जो वर्णन करता है वह गभीर विरह की पूर्ण व्यंजना करता है।

भालण—उद्धव करे कहुं वात खरी,
राधा नथी को चौद लोक मा (तुज समी) सुन्दरी।
अेवी प्रीत नहि करे कोये, जेती तमो करी।
तनमन धन समर्प्या सहुअे, निश्चल ध्यान धरी।

—वही,

सूर—चित दै सुनहु श्याम प्रवीन।
हरि तुम्हारे विरह राधा मैं जु देखी छीन।
कंठ बचन न बोलि आवइ हृदय परिहस भीन।
नैन जलभरि रोइ दीनो ग्रसित आपद दीन।

—सू० सा०, पृ० ७१९

१०. पुनर्मिलन—सुदीर्घ वियोग के पश्चात् कुरुक्षेत्र में व्रजवासियो का कृष्ण से मिलन, भाव की दृष्टि से, अन्यतम घटना है परन्तु सूर और भालण के अतिरिक्त दोनों भाषाओ में कदाचित् ही किसी कवि ने इस स्थिति की मार्मिकता का अनुभव किया हो। उसकी सफल अभिव्यक्ति का प्रश्न तो अनुभूति के बाद उठता है। उक्त दोनों कवियों ने भी पुनर्मिलन की विविध भाव-संकुल परिस्थिति का व्यापक चित्रण नही किया है। सूर ने राधा और रुक्मिणी के मनोभावों को विशेष अभिव्यक्ति प्रदान की है और भालण ने यशोदा के।

सूर ने रुक्मिणी के हृदय में राधा तथा अन्य व्रजवासियों के प्रति एक सुकुमार जिज्ञासा-भाव का अकन किया। अपने प्रिय कृष्ण के विगत जीवन और पूर्वपरिचित व्रज की गोपियों के संबंध में उसे ममतापूर्ण उत्सुकता होती है। कृष्ण व्रजवासियों की बात उठते ही भावाकुल हो जाते हैं और उनकी आँखो में जल भर आता है—

रुक्मिणि बूझति हैं गोपालहिं ।
कहूँ बात अपने गोकुल की कतिक प्रीति ब्रजवालहिं ।
कहा देखि रीझे राधा सों चंचल नैन विशालहिं ।
तब तुम गाय चरावन जाते उर धरते बनमालहिं ।
इतनी सुनी नैन भरि आये प्रेम-नंद के लालहिं ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै घोष बात जनि चालहिं ।

—सू० सा०, पृ० ७५३-५४

'रुक्मिणि मोहि ब्रज बिसरत नाहीं' कह कर वे रुक्मिणी के आगे भावविभोर होकर अपनी जन्मभूमि ब्रज के जीवन की अनेक बातों का गुणगान करने लगते हैं । ब्रज-वासियों से मिलने का आकर्षण उन्हें नंदयशोदा के पास एक दूत भेजने के लिए प्रेरित करता है । कृष्ण की भावना राधा के हृदय में प्रतिध्वनित होती है और उसके अंग अंग फड़क उठते हैं, मन पुलक से भर जाता है और अंचल लहराने लगता है । राधा-कृष्ण की अभिन्न प्रीति इसमें पूर्णतया व्यंजित होती है—

माधवजी आवनहार भये ।
अंचल उड़त, मन होत गहगह्यो फरकत नैन खये ।

—वही, पृ० ७५४

कृष्ण का भेजा हुआ दूत सब कुछ यशोदा के प्रति ही कहता है । राधा के लिए कृष्ण ने एक शब्द भी नहीं भेजा, फिर भी भावविह्वल होकर राधा ही आँसू बहाती हैं । उसी के हृदय में सूर ने मिलन की उत्कंठा का चित्रण किया है—

राधा नैन नीर भरि आई ।
कबधौं श्याम मिलें सुन्दर सखि यद्यपि निकट हैं आई ।
कहा करौं केहि भाँति जाउँ अब पेखहि नहि तिन पाई ।
सूर श्याम सुन्दर घन दरसे तन की ताप बुझाई ।

—वही, पृ० ७५५

इस स्थल पर सूर द्वारा यशोदा के मनोभावों की उपेक्षा अवश्य कुछ विचित्र सी लगती है । ब्रजवासियों की मिलनोत्सुकता का जहाँ सामूहिक रूप से चित्रण किया गया है वहाँ यशोदा का भी उल्लेख कर दिया गया है—

नंद यशोदा सब ब्रजवासी ।
अपने अपने शकट साजिकै मिलन चले अविनाशी ।

—वही,

उपेक्षा के स्थान पर यह भी सभव है कि सूर ने यशोदा की अनुभूति की चरम गभीरता को उसके मौन द्वारा ही व्यजित करना चाहा हो। यह अनुमान इसलिए होता है कि कृष्ण से मिलने के बाद भी यशोदा सारी घटना के प्रति अचेत एव विसुध बनी रहती है। उसे अपनी सुध तब आती है जब स्वय कृष्ण स्मरण दिलाते हैं। यह स्थिति कदाचित् उस जडता को ध्वनित करती है जो वियोग की चरम स्थिति है और जिसके आगे मरण ही शेप रह जाता है—

तेरी जीवनमूरि मिलहि किन माई।
महाराज यदुनाथ कहावत तबहि हुते शिशुकुँवर कन्हाई।
पानि परे भुज धरे कमल मुख पेखत पूरव कथा चलाई।
परम उदार पानि अवलोकत हीन जानि कछु कहत न जाई।
फिरि फिरि अब सन्मुख ही चितवति प्रीति सकुच जानी न दुराई।
अब हँसि भेंटहु कहि मोहि निजजन बाल तिहारो हो नद दोहाई।
रोम पुलकि गदगद तनु तिहि छिन जलधारा नैनन बरषाई।

—वही,

भालण ने यशोदा के दुख की इस प्रकार मौन अभिव्यक्ति न करके मुखर अभिव्यक्ति की है।

भालण की यशोदा को कृष्ण द्वारा विसार दिये जाने का गहरा क्षोभ है। देवकी को मातृत्व का पद देकर स्वय को धाय स्वीकार कर लेने पर भी अपनी इतनी उपेक्षा उसे असह्य है। वह बिलख बिलख कर अपना दुख सुनाने लगती है— ,

हु दुखणी मात, शी कहु वात, वेहुअे भ्रात त्यजी ने गया द्वारका।
तारे देवकी मात, वसुदेव तात, बलभद्रभ्रात धाव हु का विसारी।

—दशमस्कध, पृ० ४०८

देवकी यशोदा को अपनी बहन कह कर आत्मीयता प्रदर्शित करती है। यह सुन कर यशोदा की आँखो में जल भर आता है। वह उसके आगे और भी भावविभोर होकर अपना हृदय दिखाने लगती है। देवकी ज्यो ज्यो उसस सहानुभूति व्यक्त करती जाती है, यशोदा का हृदय उतना ही भावाकुल होता जाता है। निश्चय ही भालण द्वारा वर्णित देवकी-यशोदा-मिलन काव्य की दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक स्थल कहा जायगा।

देवकी कहे सुणो जशोदा, तमे भगिनी छो मारी जी।
कृष्ण हलधर उछेरिया, शी सेवा करू तारी।

ज्यम पापण नेत्र (ने) राखे, त्यम तें राख्या तन जी।
अेवा वचन सुणी जशोदा, जळ भरे लोचन।
जशोदा कहे देवकी सुणों में पीयारो नव जाण्यो जी।
निश्चे तमो शु कहो छो मारो, प्राणाधार अहीं आण्यों।
मारे स्वप्नवत् थयु, वरस अगीयार त्या जेह जी।
कृष्ण दीपक उत्सव वही गयो, मारे हुताशनी रही अेह।
तमो पाळ्या मुजने शु कहो छो, अे तो प्राण आधार जी।
दुष्ट हृदय तो न थी फाटतु, मार आणे ठार।
अेम कही जशोदा रड्या गदगद कठे तेह जो।
त्यारे देवकी प्रतिबोध दे, तमो शु दुख आणो अेह।
देवकी कहे अेने पोतानु को नथी त्या तेह जी।
भालण प्रभु रघुनाथ ने, घणो छे तमशु नेह।

—वही, पृ० ४०९

यशोदा की तरह भालण ने गोपियो की मनोदशा का भी चित्रण किया है। वे सबकी सब कृष्ण को देख कर चित्र की तरह जड होकर रह जाती हैं। जब स्वय कृष्ण बोलते हैं तो उनको चेतना आती है। यह जडता सूर द्वारा वर्णित यशोदा की जडता के समान है परन्तु भालण आगे इसका निर्वाह नहो कर सके, क्योकि इतनी भावलीन गोपियो के लिए यह स्वाभाविक प्रतीत नही होता कि जडता से मुक्त होते ही वे कृष्ण के साथ एकान्त में रमण और आलिंगन के लिए प्रस्तुत हो जायें पर भालण ने वर्णन इसी प्रकार किया है। प्रकार साथ रमण और आलिंगन करने के बाद कृष्ण का स्वय गोपियो को ज्ञान देने लगना भी कम अस्वाभाविक नही लगता—

कृष्णजी हस्या त्यारे सही जो, गोपी ग्रही सर्वदेवमुरार जो।
अेकाते प्रभु चालिया जो, तेशु रमिया आप जो।
आलिंघन सर्व कोने कर्यु जो, विरह सवधी ताप जो।
पछे कृष्णजीअे विचारियु जो, अेने ज्ञान हवु हवे आप जो।

—वही, पृ० ४१०

भालण ने जितनी मार्मिकता से यशोदा-देवकी का मिलन चित्रित किया है, राधा-रुक्मिणी के मिलन मे सूर ने भी उतनी ही मार्मिकता उत्पन्न की है। एक अन्तर है वह यह कि रुक्मिणी में राधा से मिलने की अतीव उत्सुकता दिखाई देती है जब कि देवकी में यशोदा के प्रति वैसा कोई भाव नही मिलता। रुक्मिणी की यह उत्सुकता द्वारका से ही प्रकट होने लगती है और जब वह ब्रजगोपियो के समूह को प्रत्यक्ष

देखती है तो वह सब से प्रधान भाव के रूप में व्यक्त हो उठती है। कृष्ण एक नीलवसन वाली गोरी भावमूर्ति की ओर इंगित कर देते हैं।

> बूझति हैं रुक्मिणि पिय इनमें को वृषभानुकिशोरी।
> नेक हमें देखरावहु अपनी बालापन की जोरी।
> परम चतुर जिन कीन्हे मोहन अल्प बैस ही थोरी।
> बारे ते जिहिं यहैं पढायो बुधि बल कल विधि चोरी।
> जाके गुण गनि गुथति माल कबहूँ डरते नहिं छोरी।
> सुमिरन सदा बसत ही रसना दृष्टि न इत उत मोरी।
> वह देखो युवतिवृंद में ठाढी नीलवसन तनु गोरी।
> सूरजदास मेरो मन वाकी चितवन देखि हर्यौरी।
>
> —सू० सा०, पृ० ७५६

राधा और रुक्मिणी में सहसा गहरी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। दोनों का प्रेम अधिकार भावना से ऊपर उठकर आत्मसमर्पण के क्षेत्र में पहुँच चुका है इसलिए ईर्ष्या के स्थान पर सहानुभूति का चित्रण ही उपयुक्त है और सूर ने वही किया भी है—

> रुक्मिणि राधा ऐसे बैठी।
> जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी।
> एक सुभाव एकलै दोऊ, दोऊ हरिकी प्यारी।
> एक प्राण मन एक दुहुन को तनु करि देखियत न्यारी।
> निज मंदिर लै गई रुक्मिणी पहुनाई विधि ठानी।
> सूरदास प्रभु तहँ पग धारे जहाँ दोऊ ठकुरानी।
>
> —वही, पृ० ७५६।

इसके अनन्तर सूर ने रुक्मिणी के भवन में राधा-कृष्ण की भेंट का वर्णन करना चाहा परन्तु उनकी रसना उस चरम सुख की अभिव्यक्ति में असमर्थ हो गई किन्तु जितनी पंक्तियाँ उन्होंने लिखी हैं वे व्यंजना की पूर्ण शक्ति रखती हैं—

> राधा माधव भेंट भई।
> राधा माधव, माधव राधा, कीटभृंग-गति होइ जो गई।
> माधव राधा के रँग राचे माधव राधा रंग रई।

माधो राधा प्रीति निरतन रसना कहि न गई ।
बिहँसि कह्यो हम-तुम नहि अंतर यह कहि ब्रज पठई ।
सूरदास प्रभु राधा माधव ब्रज विहार नित नई नई ।

—वह

राधा-कृष्ण-मिलन की अनिर्वचनीयता का आभास देकर भी सूर ने उसक निरूपण कर ही दिया और यही नहीं, मिलन के क्षणा में सकोच के कारण अपूर तुष्टि की जो कचोट राधा के हृदय में रह गई, उसकी भी अभिव्यक्ति करना वे नह भूले । कृष्ण-मिलन के बाद राधा अपनी सखी से इस मनोदशा को व्यक्त करती है—

करत कछु नाही आजु बनी ।
हरि आये हौं रही ठगीसी जैसे चित्त धनी ।
आसन हर्षि हृदय नहि दीन्हो कमल कुटी अपनी ।
न्यवछावर उर अरघ न अचल जलधारा जो बनी ।
कचुकी ते कुचकलश प्रगट ह्वै टूटि न तरक तनी ।
अब उपजी अति लाज मनहिं मन समुझत निजकरनी ।
मुख देखत न्यारे सी रहिहौं बिनु बुधि मति सजनी ।
तदपि सूर मेरी यह जडता मगल माँझ गनी ।

—वही, पृ० ७५

नरसी न एक पद में राधा रुक्मिणी और कृष्ण के साथ होने का उल्लेख तो किया है परन्तु उनके मिलन के क्षणों का सूर की तरह भावमय निरूपण नहीं किया—

तो हार हरिजे रुक्मिणि ने दीधो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ४२६

पादटिप्पणियाँ

१. अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, पृ० १६४

२. न० कृ० का०, पृ० ७६

३. वही, पृ० ६०

४. वही, पृ० १२३

५. सू० सा०, पृ० १२१

६. श्रीम० भा०, पृ० २४०

७. सू० सा०, पृ० १४४, १४५

८. द० रू०, पृ० ३६

९. श्रीम० भा०, पृ० २५२, २५३

१०. सू० सा०, पृ० १५६

११. वही, पृ० १५६

१२. वही, पृ० १६१

१३. द० रू०, पृ० ३५, ३६; सू० सा०, पृ० १४७, १४८

१४. द० रू०, पृ० ४०, ४१; सू० सा०, पृ० १३५, १७८

१५. सू० सा०, पृ० १६८; मी० पदा० द्वितीय भाग, पृ० ४; न० कृ० का०, पृ० ४६८

१६ श्रीम० भा०, पृ० २६०

१७. द० रू०, पृ० ६६२

१८ वही, पृ० १६८, १६९

१९. वही, पृ० १७१

२०. सू० सा०, पृ० ६०५

२१ द० रू०, पृ० ६५, ७६

२२ सू० का० दी० भाग १, पृ० ११०, १११

२३. सू० सा०, पृ० ३११

२४ वही, पृ० ३०८

२५ मा० सा०, पृ० ७४, ७५

२६ काँकरौली के पदसंग्रह से, २ . १: १८; मी० पदा०, पृ० ६१

२७ सू० सा०, पृ० २६८, ३०६, ३००

२८. मानस द० रू०, पृ० १०७, १०८; नरसी : न० कृ० का०, पृ० ५८७; सूरदास : सू० सा०, पृ० ४८७, ५०९

२९. नरसी : न० कृ० का०, पृ० ३०४; सूरदास : सू० सा०, पृ० ५१८

३० सू० सा०, पृ० २५७

३१, वही, पृ० २५७-५८

३२ वही, पृ० २५९

३३ वही, पृ० ३१०

३४ वही, पृ० ३०५

३५ वही, पृ० ३४५

३६ द० का०, पृ० ११९, न० कृ० का०, पृ० १४८

३७ सूरदास सू० सा०, पृ० ६४०, माखन द० १५० पृ० २००-८

३८, श्रीम० भा०, पृ० ३२१

३९, सू० सा०, पृ० ६४५

४० वही, पृ० ६४३

४१ वही, पृ० ६६५ ६६६

कला पक्ष

कला का व्यवहार व्यापक और सकीर्ण दोनो अर्थों में होता है। व्यापक अर्थ में वह मनुष्य की अन्तश्चेतना से गभीर रूप में सबद्ध एक सत्य है और उसके सौन्दर्य-प्रिय स्वभाव की सहज अभिव्यक्ति है। सकीर्ण अर्थ में उसे कुतूहल एव आश्चर्य उत्पन्न करने की एक प्रक्रिया मात्र कहा जा सकता है जिसकी मौलिक प्रेरणा अपेक्षाकृत बाह्य है और जिसका सम्बन्ध बुद्धि-कौशल से अधिक है। काव्य में जहाँ भावपक्ष की प्रधानता है वहाँ उसके कलापक्ष की भी कम महत्ता नही है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र का जितना भी विस्तार है उस सब में कला की गति है। अनुभूति की सीमा से जहाँ भी कोई भाव अभिव्यक्ति की सीमा में पहुँचा वहीं उसे कला की अपेक्षा होती है, भले ही कवि असजग होकर उसका प्रयोग करे अथवा सजग होकर। अभिव्यक्तिपरक अतिशय सजगता कभी-कभी कवि को भाव से विच्छिन्न कर देती है और श्रेष्ठ कला के लिए अनुभूति और अभिव्यक्ति का जो सामजस्य अपेक्षित है वह नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में कला विकृत होने लगती है और काव्य का प्रभाव भी समुचित रूप में नही हो पाता। अन्तत कला भावाभिव्यक्ति का साधन ही है, साध्य नही। यो एक मत उसे साध्य भी मानता है और इस धारणा के अनुरूप काव्य रचने की परम्परा भी रही है।

भावो के आलेखन, चित्रण एव अभिव्यजन में कला की जो सूक्ष्म गति है उसका निदर्शन आवश्यकतानुसार भावपक्ष के निरूपण के साथ ही कर दिया गया है परन्तु दृश्य-चित्रण, स्वभाव-चित्रण, प्रकृति चित्रण और प्रबन्ध निर्वाह आदि में तथा उक्ति-वैचित्र्य और अलकार-विधान में कला का जो रूप गुजराती और ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य के अन्तर्गत मिलता है उसका निरूपण यहाँ किया गया है।

दृश्य-चित्रण

किसी पुराण अथवा काव्य ग्रथ का आधार लेकर काव्य रचने वाले कवि बहुधा जो दृश्य चित्रण करते हैं उसमें अनुकरणात्मकता तथा परम्परा परि-पालन का इतना आग्रह रहता है कि उसका समुचित प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता। बहुत कम कवि ऐसे मिलते है जो दृश्यो को कल्पना द्वारा पूर्णतया प्रत्यक्ष करके उनका स्वानुभूत रूप में चित्रण करते है। प्रत्यक्षीकरण भौतिक रूप में ही न होकर काल्पनिक रूप में भी होता है इसलिए कल्पनाशील कवि भौतिकतया अनुभूत रूप-चित्रो, छायाओ

अथवा दृश्यो को भी इस प्रकार प्रस्तुत कर देते हैं जैसे उन्होने उनका बहुत काल तक उसी रूप में गहन अनुभव किया हो। यह सत्य है कि काल्पनिक प्रत्यक्षीकरण मूलत यथार्थ जगत् के प्रत्यक्ष अनुभवो पर ही आधारित होता ह। भावना कल्पना-शक्ति के द्वारा उसका विकास एव विस्तार भर कर देती है। दोनो भाषाओ के अधि-काश काव्यो में दृश्यचित्रण के जो स्थल मिलते है उनसे ज्ञात होता है कि सामान्यत कवियो ने परम्परा का पालन और आधारभूत ग्रथ का अनुकरण दोनों ही काम किये है। उनकी यह प्रवृत्ति अत्यन्त व्यापक है। परतन्त्र कल्पना तथा अनुकरण की प्रवृत्ति को स्पष्ट करने लिए रास का उदाहरण लिया जा सकता है। समस्त कृष्णकाव्य में रास अतुलनीय महत्त्व का विषय रहा है। चांदनी रात में कृष्ण के साथ असख्य गोपियो के सामूहिक नर्तन का जिस रूप में भागवतकार ने वर्णन किया वह कवियो की भावना और कल्पना दोनो का केंद्र बना। अनेक रूपधारी श्याम वर्ण कृष्ण और असीम सौन्दर्यवती गौरवर्णा गोपियो के अविरल, अविराम नृत्य की अलौकिक शोभा का उन्होने जहाँ वर्णन करना चाहा वही भागवतकार की कल्पना उनकी कल्पना पर छा गई। यह कल्पना-पारतन्त्र्य असमर्थता का ही द्योतक नहीं है। कही वही भागवत में वर्णित दृश्यो एव रूप-चित्रो के सौन्दर्य का आकर्षण भी इसका कारण प्रतीत होता है। किन्तु यह सत्य है कि दृश्य चित्रण करते समय प्राय कवियो ने उप मानो तक के चयन में भागवत का आधार लिया है। 'गायन्त्यस्त तडित इव ता मेघचक्रे विरेजु' में जो रूपचित्र मिलता है वह अनेक कवियो की कल्पना का अग बन कर व्यक्त हुआ है। निम्न पक्तियाँ इसका प्रमाण हैं —

ब्रजभाषा

सूर— मानो माई घन घन अतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अतर शोभित हरि ब्रजभामिनि।
—सू० सा० पृ० ४३७

नददास— सावरे पिय सग निरतत, चचल ब्रज की बाला।
जनु घनमडल मजुल, खेलति दामिनिमाला।
—नद० पृ० १७७

हरिवश— रास में रसिक मोहन बने भामिनी
उभै कल हस हरिवश घन दामिनी।

—श्रीहित० प० ३४

गुजराती

नरसी— अलवे अग मोडती वहाला सग द्रोडती,
जाणे घन दामिनी चमके भारी।
—न० कृ० का०, पृ० २१७

इसी प्रकार 'मध्ये मणीना हैमाना महामरकतो यथा' के रूपचित्र के आधार पर भी कवियो ने रास का दृश्याकन किया है।[1] विविध आगिक चेष्टाओ, नृत्यमुद्राओ तथा आभूषणो के अनुरणन से उत्पन्न ध्वनियो के सामजस्य से वैसी ही पूर्णता लाने का प्रयास किया गया है जैसी भागवत के रास-वर्णन में मिलती है।

सूर, नददास तथा नरसी जैसे कवियो, जिन्होने रास के दृश्य को पूर्ण तन्मयता के साथ अकित किया है, के आगे भी भागवत का रास आदर्श रूप में प्रस्तुत रहा है। यद्यपि इन कवियो के रास-वर्णन में स्वतन्त्र उद्भावनाएँ पर्याप्त रूप में मिलती है तथापि उपर्युक्त सत्य भी स्पष्ट रूप से झलकता है।

कवियो की स्वतन्त्र उद्भावनाशक्ति तथा कल्पनाशक्ति का परिचय उन स्थलो पर विशेष रूप से प्राप्त होता है जो भागवत आदि आधार ग्रथो में उपलब्ध नही होते अथवा जिन्हें भिन्नता देकर चित्रित किया गया है। इन स्थलो पर समर्थ कवियो में एक दूसरी प्रवृत्ति के दर्शन होते है और वह प्रवृत्ति मौलिकता-प्रदर्शन, अननुकरण तथा स्वानुभव के द्वारा आधारभूत वस्तु के अभिनवीकरण की है।

भिन्नता देकर जिन स्थलो पर दृश्य-विधान किया गया है वहाँ इस प्रवृत्ति का पूर्ण प्रस्फुटन तो नही ही पाया जाता परन्तु उसका जो भी रूप मिलता है वह कम महत्त्वपूर्ण नही है।

सूर ने भागवतोक्त दावानल के भयानक तथा उग्र रूप के विस्तार का जो दृश्य अकित किया है वह उनकी अपनी कल्पना से विकसित हुआ है। वन में अग्नि के प्रचड रूप धारण करने के समय किस प्रकार की परिस्थिति हो जाती है, इसका सूर ने सूक्ष्म एव सजीव चित्रण किया है। इस चित्रण में अनुकरणात्मकता के स्थान पर मौलिकता का आग्रह अधिक है —

भहरात झहरात दावानल आयो।
घेरि चहुँ ओर करि शोर अदोर बन धरणि आकाश चहुँ पास छायो।
बरत बन बाँस, थरहरत कुसकाँस, जरि उडत है बाँस अति प्रबल धायो।

झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत फटि चटकि लट लटकि द्रुम नवायो।
अति अगिनि झार भार धुधार करि उचटि अगार झझार छायो।
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा धरणी गिरायो।

—सू० सा०, पृ० २३१

इसी प्रकार प्रेमानंद ने दावानल से दग्ध वन के दृश्यांकन में मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है यद्यपि सूर का सा नादसौन्दर्य वे न उत्पन्न कर सके। उन्होंने दावानल के स्वरूप को आलिखित करने की अपेक्षा उसके कारण गायों तथा अन्य पशुपक्षियों की दुर्दशा का सूक्ष्म चित्रण किया है —

अनल प्रबल वायु छे घणो, थयो तीव्र ताप दावानल तणो,
तपित तन सुरभिना थया, प्रस्वेदना जलबिंदु बह्या।
त्रासे गाय नासे अरी परी, न शके अग्नि आगल नीसरी।
मा शब्द सुरभि भाखे, अंकेक पर जइ कोट नाखे।
धाई धाई सहु टोले थाय, काढी जीभ पडे भूमि माय।
श्रीकृष्णध्यान सुरभि सहु धरे, उकली अकलाई आसु भरे।
आकाश सर्व धूम्रे आवर्यु, आच्छाद्यो भानु अधारु कर्यु।
फाटे वांस वृक्ष चडचडे, बले पाँख पखी तरफडे।
मशक शशक मृग पामे त्रास, फाटे फणा सर्प मूके श्वास।
कीट पतंग दह्य कई कोट, उडे धूम्रना गोटेगोट।
ते ज्वाला जइ पहोंती आकाश,.......... .. . .।

—श्रीम० भा०, पृ० २७५

ब्रजभाषा के कवि गदाधर भट्ट द्वारा कृष्ण के कालीदह में कूदने तथा नाग-नाथने का जो दृश्य अंकित हुआ है वह भी इसी कोटि में आता है। गति और रूप का सम्यक् आभास देने के लिए कवि ने स्वतन्त्र रूप से अप्रस्तुत योजना की है जिससे प्रस्तुत दृश्य की छवि निखर आयी है—

नचत गोपाल फनि फणा रंग।
मनहु मनिनील के खम्भ ऊपर सिखी नृत्य आरंभ किय अति उतंगे।
प्रथम तरु तुंग चढ़ि झप यमुना लई, सुभग पटपीत कटि तट लपेटे।
एक घन ते निकसि और घन को चल्यौ श्याम घन मनहुँ चपलाहिं भेंटे।
बहुरि फिरि झगरि चढ़ि सीस तडव रच्यो परसि पदतलनिमनिरँग सोहायो।
चरण पट तार विप झार झरहत जनु तैलनप ते कहूँ नीर नायो।

दुसह हरि भार ते कठ आयो लटकि परसि करै कवि सकल उपमा विचारा।
मनहुँ नखचंद्र की चद्रिका त्रास ते डरपि नीची धँसी तिमिरधारा।

—वाणी० गदा०, पृ० ३२

इस एक ही दृश्य के अन्तर्गत अनेक दृश्यो की शृखला सी प्रतिभासित होती है। कवि का ध्यान नाग-दमन के सघर्ष, सघात से आपूरित ओजमय पक्ष पर उतना नही है जितना सौन्दर्य-पक्ष पर। इसीलिए उसने सम्पूर्ण दृश्य को कुछ गहरी रेखाओ द्वारा अकित सौन्दर्यमय रूपचित्रो मे परिवर्तित कर दिया है। प्रत्येक रूप चित्र उसकी कल्पना की उर्वरता तथा सौन्दर्यप्रियता का परिचायक है। ऐसा दृश्याकन कवि के उस स्वभाव की भी व्यजना करता है जिसके कारण वह किसी दृश्य-विशेष को भाव का केन्द्र बना कर स्वय रम जाता है और उसके द्वारा किया हुआ सारा वर्णन अपूर्व आत्मप्रत्यक्षता का बोध कराता है। सूर, नददास आदि मे इस प्रकार का दृश्य-विधान प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होता है। उक्त उदाहरण इस बात का द्योतक है कि व्रजभाषा मे यह सामान्य प्रवृत्ति है। गुजराती मे इतनी समृद्ध सौन्दर्यवृत्ति से किया गया दृश्याकन कम उपलब्ध होता है। वहाँ सूक्ष्म किन्तु सहज भाव से दृश्याकन का आग्रह अधिक है। नरसी द्वारा अकित दधिमथन करती हुई गोपी का चित्र दर्शनीय है—

मही वलोवे रे गोपी, मही वलोवे रे गोपी।
परवश थइने प्रेमे भराणी, तनमन हरि ने सोपी।
भरजोबन महि कामनी घेली, नादे नूपुर वाजे।
वलोणु अति वाये भराणु, मेघ पे रही रही गाजे।
हैंया ऊपर हार हुलावे, पाछल कुमकु फरके।
कामा कृष्ण तणे रग राती, शीश राखलडी झलके।
कटी माहे तो घुघरी घमके, झाझरीया झमझमके।
गाये गुण गोविंद तणा रे विछीडाने ठमके।
मगन थइ गोरस भूली, कृष्ण कृष्ण मुख बोले।
शीशफुल वेणी लट लटके, जाणे मणीधर डोले।

—न० कृ० का०, पृ० ३९६

इस चित्र मे कवि ने हिलते हुए हार, अलक, शीशफूल आदि की रूप-छायाओ को उनकी गतिशीलता के साथ अत्यन्त सहज रूप मे प्रस्तुत किया है और मेघ तथा मणिधर के द्वारा अप्रस्तुत की भी सौन्दर्यमय योजना की है। परन्तु रूप-सौन्दर्य की अपेक्षा नाद सौन्दर्य पर उसका अधिक ध्यान है। विविध आभूषणो की अनुरणन-ध्वनियो को व्यक्त करने के लिए कवि ने विविध अनुरणनात्मक शब्दो का प्रयोग किया है। ध्वनि-सौदर्य की ओर नरसी का विशेष आकर्षण है। उनके दृश्य-चित्र प्रायः नादपूर्ण

होते हैं। रास सहस्रपदी में यह विशेषता और भी अधिक परिलक्षित होती है। कवि ने रूप और ध्वनि के साथ भावों का समास करके चित्र को अद्भुत सजीवता प्रदान करदी है तन्मयता विस्मृति और प्रेमजन्य विवशता की भावना दधिमन्थन के इस चित्र को गोपी के आत्ममथन की अभिव्यक्ति के साथ और भी अधिक मोहक बना देती है। इसकी प्रेरणा संभव है भागवत में वर्णित १० ९ ३ दधिमथन करती हुई यशोदा के चित्र से ग्रहण की गई हो परन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता है। सूर ने भी इस प्रकार का चित्र प्रस्तुत किया है परन्तु उनका ध्यान नरसी की तरह नाद-सौन्दर्य पर विशेष रूप से केन्द्रित न होकर अंगसंचालन एवं गति पर केन्द्रित हुआ है। भावों के सामंजस्य से सूर का वर्णन भी सजीव हो उठा है—

> देख्यो हरि मथति ग्वालि दधि भेद सो ठाढी।
> यौवनमदमाती इतराती बेनी ढुरत कटि पर छवि वाढी।
> दिन थोरी भोरी अति कोरी देखत ही जु श्याम भये चाढी।
> फर्पति है दुहुँ करन मथानी शोभाराशि भुजा गहि गाढी।
> इत उत अंग मुरति झकझोरति अँगिया वनी कुचनसों माढी।
> सूरदास प्रभु रीझि थकित भये मनहुँ काम साचे भरि काढी।

—सू० सा०, पृ० १७१

पनघट का दृश्य प्रस्तुत करते हुए सूर ने इससे भी अधिक कुशलता से गागर सिर पर रक्खे सखियों के साथ आती हुई एक गोपी की छवि अंकित की है। अप्रस्तुत विधान अत्यन्त समृद्ध है। गज के सादृश से गति और उन्माद तथा रूप-सज्जा की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है—

> गागरि नागरि लिये पनिघट ते चली घरहिं आवै।
> ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै।
> ठिठकत चलै, मटकि मुँह मोरै बंकट भौंह चलावै।
> मनहुँ कामसेना अँगसोभा अचल ध्वज फहरावै।
> गतिगयद कुचकुंभ किंकिनी मनहुँ घंट झहनावै।
> मोतिनहार जलाजल मानों खुभी दंत झलकावै।
> मानहुँ चंद महावत मुख पर अंकुश बेसरि लावै।
> रोमावली सूँडि तिरनीलौं नाभि सरोवर आवै।
> पग जेहरि जंजीरन जकर्‌यो यह उपमा कछु पावै।

घट जल छलकि कपोलनि किनुका मानहुँ मदहि चुवावै ।
वेनी डोलति दुहुँ नितव पर मानहुँ पूछ हलावै ।
गज सरदार सूर स्वामी को देखि देखि सुख पावै ।

—सू०सा० ,पृ० २६१

ऐसे स्फुट चित्र अपने में पूर्ण होते हुए भी दृश्य को खड रूप मे ही व्यक्त करते हैं । सम्पूर्णता के साथ विविध अगोपागो का सश्लिष्ट वर्णन करते हुए दृश्य अकित करने की प्रवृत्ति पदकारो की अपेक्षा प्रबन्धकारो में अधिक पाई जाती है । इस दृष्टि से व्रज-भाषा में नददास तथा गुजराती में प्रेमानद का विशेष स्थान है । इन कवियो ने अपने प्रबन्धात्मक काव्यो में दृश्याकन करते हुए सूक्ष्म निरीक्षण तथा वर्णन कौशल का पर्याप्त परिचय दिया है।

स्वभाव-चित्रण

मानव-प्रकृति की सूक्ष्म विशेषताओ को लक्षित करते हुए कुछ कवियो ने अपने काव्य में मानव स्वभाव का भी चित्रण किया है । इस क्षेत्र में सूर और प्रेमानद की विशेष गति है । प्रेमानद के प्रबन्धो का तो यह असाधारण गुण है जो उनकी लोकोन्मुखी काव्य-चेतना की एक सहज प्रवृत्ति को व्यक्त करता है । रूढि अथवा परम्परा के अनुरूप स्वभाव-चित्रण एक वस्तु है और स्वानुभव के आधार पर जीवन्त रूप में मानव-स्वभाव को चित्रित करना दूसरी । प्रेमानद और सूर दोनो ही की प्रतिभा दूसरी दिशा में जागरूक रही पर सूर ने स्वभाव की अपेक्षा भाव को अधिक आत्मीयता से व्यक्त किया है और प्रेमानद ने भाव की अपेक्षा स्वभाव को ।

कृष्ण-जन्म के अनन्तर अपने वालक को परघर भेजने वाली देवकी की भावनाओ को प्रेमानद ने लोकानुरूप अत्यन्त स्वाभाविक ढग से प्रस्तुत किया है । 'मळवा आवशे भाई भोजाई जशोदानो धन सुख दहाडो' में लोकसामान्य स्त्री की चिता अनुस्यूत है । यशोदा का कुडी खटका कर, घुंघरू बजाकर और ऐसे ही अन्य प्रयत्नो से अधिकाधिक रोते हुए कृष्ण को चुपाने का प्रयास माता के स्वभाव को मूर्त कर देता है । इसे क्रिया की स्वाभाविकता कहा जा सकता है—

खखडावे कडा द्वार साकळी, वजाडे घुघरो मा थई आकळी ।
मुघाडे पुष्प, देखाडे गाय, तेम तेम वमणो रोतो जाय ।

—प्रेम० भा०, पृ० २४९

प्रेमानद के काव्य से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे स्वाभाविकता के पर्यवेक्षण में उनकी सहज प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । निम्नलिखित कुछ अश विशेष दर्शनीय है—

क—काइ आपी पाछु लीये झोटी रे, गोपी खणे गालमा चोटी रे।

—वही, पृ० २५४

ख—वृषभ वच्छ मही पी वहुगाय, भा शब्द मार्ग मा थाय।
हीसारव करे गौ पाछी फरे, पोताना वच्छने आवी मले।
लीधी वस्तु जे जे कार्जनी, उरवल मुशल सम्मार्जनी।
काढ्या गोना खीला खंची खंची, लीघा सुप टोप चक्की माची।
शकट घन धान्यना भर्या, जुवो घरमा काइ विसर्‌या।
धातु पात्र वस्त्र गासडी, लइ गोपिका शकटे चडी।
थाओ चालता सासु भणे, घरमा जई दाटी थापण खणे।
टालु गोकुल उदवस्त थयु, माजार श्वान सौ सागे गयु।
श्रीकृष्ण कहे केम रहेशे राक्डा, सौ सान करी तेड्या माक्डा।
रमक्डा लीधा जशोमती, नवे घेर अेवा मळता नथी।

—वही, पृ० २५९

ग—हाथना क्डा चडावेरे, मारे दोट पाधरी फावे रे।

—वही, पृ० २७०

घ—कोई कहे हाउ आव्यो विकाळ, देखाडो रोता रहेशे वाळ।
पुठे वाळक काकरा नाखे, ऋषि जी रामकृष्ण मुखथी भाखे।

—वृ० का० दो०, भा० १, पृ० २४६

प्यार से गाल में चिकोटी काट लेना, खेलते समय हाथ के क्डो को ऊपर चढा लेना, वृद्ध व्यक्ति के ऊपर कक्ड फेक कर खिझाना आदि यह सब ऐसे विंदु हैं जिनका उल्लेख वही कवि कर सकता है जिसने जीवन को उसके व्यापक और सहज रूप में सूक्ष्म दृष्टि से देखा हो। वृंदावनगमन से सम्बद्ध जो दूसरा उद्धरण है उसमें पशुस्वभाव का यथार्थ अकन है, साथ ही गाँव और घर को छोड कर जाने वालो की, व्यवहार में आने वाली छोटी से छोटी वस्तु के प्रति गहरी ममता का जो शृंखलाबद्ध सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन प्रेमानद ने किया है वह उनके लोक-जीवन से घनीभूत परिचय का स्पष्ट प्रमाण है। मनुष्य की ममता वस्तुओ तक ही सीमित नही रहती वरन् कुत्ते-बिल्ली आदि तक व्याप्त हो जाती है। कुछ घर में छूटा तो नही, यह सोच कर घर को फिर फिर देखना-भालना कितना स्वाभाविक है। माता अपने बालक के खिलौने तक रख लेती है क्योंकि नये घर में इस प्रकार के कहाँ मिल सकेंगे। वस्तुत यह एक ही उदाहरण प्रेमानद की स्वभाव-चित्रण-पटुता को पूरी तरह प्रकट कर देता है।

बाल-स्वभाव, स्त्री-स्वभाव, लोक-स्वभाव, पशु-स्वभाव जैसे स्वभाव-चित्रण के अनेक रूपो में सूर ने भी अपनी सहज गति प्रदर्शित की है। बालस्वभाव की बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातो का उल्लेख बाललीलाओ के प्रसग में किया जा चुका है। बालकृष्ण के स्वरूप-विकास और लीलालेखन में सूर ने बाल-स्वभाव में अपनी पैठ का अभूतपूर्व एव आश्चर्यजनक परिचय दिया है। साथ के ग्वाल-बालो का खेलते-खेलते कृष्ण को अनेक प्रकार से खिझाना और उनका अपनी माता से बलराम आदि की शिकायत करना बालको के लोकसामान्य सहज स्वभाव को ही प्रकट करता है। कृष्ण के सस्कारो का जो वर्णन सूर ने किया है वह स्पष्ट ही सामान्य लोक जीवन के अनुरूप है।

स्त्रियो के स्वभाव का भी सूर ने कम परिचय नही दिया है। गोपियो का बात बात पर उलाहना लेकर यशोदा के घर जाना स्त्रियो की स्वाभाविक वृत्ति को प्रदर्शित करने के लिए ही सूर ने वर्णित किया है। यशोदा और गोपियो के पारस्परिक सवादो में स्वाभाविकता को और भी निखार मिला है—

प्रेमानद की तरह सूक्ष्म पर्यवेक्षण की शक्ति भी सूर में दिखाई देती है। जल भरने की क्रिया की स्वाभाविकता लक्षित करते हुए सूर लिखते है—

> जल हलोरि गागरि भरि नागरि जबही शीश उठायो।
>
> —सू० सा०, पृ० २५७

इस वर्णन में जल भरने से पहले उसे हिलोरने की बात कवि की पर्यवेक्षणशक्ति की सूक्ष्मता व्यक्त करती है।

पशुस्वभाव का चित्रण सूरसागर में अनेक स्थलो पर उपलब्ध होता है। इस दिशा में सूर प्रेमानद से अधिक सूक्ष्मदर्शी प्रतीत होते है। चरवाहो के नियन्त्रण में तनिक भी शिथिलता आई कि पशुओ का समूह इधर उधर भटक जाता है। ग्वालबाल कृष्ण को पुकारने के निमित्त नद के द्वार पर थोडा सा रुके कि गायें आगे निकल गई। एक ग्वाल यह देख कर अपने सखाओं को पुकार उठता है—

> आवहु वेगि विलम जनि लावहु गैयाँ दूरि गई।
>
> —सू० सा०, पृ० १९४

'गैयन घेरि सखा सब लाये' लिख कर सूर ने गायों को घेर घेर कर इकट्ठा करने की विधि का भी सकेत कर दिया है। कभी कभी यह काम एक समस्या बन जाता है क्योंकि पशु भी अपने साथ ममता दिखाने वाले की इच्छा का ही अनुमरण करते है। सूर ने

निम्न पद में गायो के स्वभाव की एक बहुत ही सूक्ष्म बात की ओर लक्ष्य किया है। पराये घर से आये हुए पशु सदा ही पूर्व स्मृति के कारण भाग जाने को उत्सुक देखे जाते हैं। इसी आधार पर सूर वृषभानु की दी हुई गायो में भाग जाने की विशेष उतावली प्रदर्शित करते हैं—

> द्रुम चढि काहे न टेरहु कान्हा गइयाँ दूरि गई।
> धाई जात सबनि के आगे जे वृषभान दई।
> घेरे न घिरत तुम बिन माधवजू मिलत नहीं बादई।
> बिडरत फिरत सकल बन महियाँ एकइ एक भई।
> छाँडि खलि सब दूरि जात हैं बोली जोमके थोक कई।
> सूरदास प्रभु प्रेम समुझि कै मुरली सुनत सब आइ गई।
>
> —वही पृ० २३४

नरसी मेहता ने भी गोविंदगमन में कृष्ण से बिछुडती हुई गायो के स्नेह-स्वभाव का अत्यन्त मार्मिक अकन किया है जिसका उल्लेख भाव-चित्रण के प्रसग में किया जा चुका है।

प्रकृति-चित्रण

कोई भी जीवन्त काव्य प्रकृति से पूर्णतया विरत नही हो सकता। कृष्णकाव्य तो और भी नही, क्योंकि कृष्ण का वह जीवन जो प्रधानत काव्य का विषय बना, यमुना के तटवर्ती वनो, पशु, पक्षियो के मधुर रव से मुखरित सघन कुजो और मुक्त आकाश के नीचे कभी हरियाली बिखेरती हुई, कभी चाँदनी से धोई हुई गोकुल और व्रज की धरती से निकटता से सम्बद्ध रहा है कि कृष्णलीलाओ का स्मरण आते ही वृदावन की कल्पना अपने अलौकिक प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ प्रत्यक्ष हो उठती है। गुजराती तथा व्रज दोनो के कृष्णकाव्य में कृष्ण-लीलाओ से अभिन इस नैसर्गिक सौन्दर्य को अभिव्यक्ति मिली है। कृष्णभक्त कवियो द्वारा किये गये प्रकृति चित्रण को सामान्यत उद्दीपन की कोटि में रखा जाता है जो बहुत दूर तक उचित भी है, क्योंकि उनके लिए कृष्ण और उनकी लीलाओ से इतर और कुछ आलम्बन हो ही नही सकता था। दार्शनिक दृष्टि से सभी कुछ कृष्णमय तथा कृष्ण के ही स्वरूप का विस्तार माना गया अतएव प्रकृति को स्वतन्त्र आलबन के रूप में स्वीकार करना उस भावभूमि पर सभव नही था जिसमें प्राय समस्त कृष्णोपासक कवि विचरण करते थे। सूर ने राधा को आदि प्रकृति मान कर प्रकृति को कृष्ण ब्रह्म से अभिन्न स्वीकार किया। पुरुष और प्रकृति की तरह राधा कृष्ण को स्वीकार करने वाले कवियो ने प्रकृति को आध्यात्मिकता के आरोप के साथ कृष्ण से सम्बन्ध करके देखा। यह स्थिति भी प्रकृति को महत्त्वपूर्ण तो बनाती है पर आलबन कोटि में नही प्रस्तुत करती, दूसरे

आदि प्रकृति राधा मे प्रयुक्त 'प्रकृति' वन वृक्ष लता रूप मे व्यक्त 'प्रकृति' से अर्थ में बहुत कुछ भिन्न हैं। राधा का समस्त वर्णन प्रकृति वर्णन की कोटि में नही आ सकता। इतना सब होते हुए भी प्रकृति के आलबन तथा उद्दीपन रूपो के बीच कोई स्पष्ट सीमा-रेखा निर्धारित नही की जा सकती। वस्तुत इनसे भिन्न बीच की एक अन्य स्थिति भी मभव है और जो सगुण भक्ति काव्य में उपल^ब भी होती हैं। इस विषय में 'प्रकृति और काव्य' के एक विशेषज्ञ का मत उल्लेखनीय है —

"हिन्दी साहित्य के मध्ययुग में प्रकृति के स्वतन्त्र आलवन रूप को स्थान नही मिल सका। परन्तु यह भी देखा गया है कि प्रमुखता न मिलने पर भी प्रकृति मानवीय भावो से सम स्थापित कर सकी है। वस्तुत जब प्रकृति मानवीय भावो के समानान्तर भावात्मक व्यजना अथवा सहचरण के आधार पर प्रस्तुत की जाती है, उस समय उसको विशुद्ध उद्दीपन के अन्तगत नही रखा जा सकता। वैसे प्रकृति को लेकर भावप्रक्रिया का आधार मानव है। आलवन की स्थिति में, व्यक्ति अपनी मन स्थिति का आरोप प्रकृति पर करके उसे इस रूप में स्वीकार करता है, जब कि उद्दीपन मे आलबन प्रत्यक्ष रूप से दूसरा व्यक्ति रहता है। ऊपर की स्थिति मध्य मे मानी जा सकती है। आश्रय का आलबन परोक्ष मे है और प्रकृति के माध्यम से भाव व्यजना की जाती है। इस सीमा पर भी प्रकृति पर आश्रय की भावस्थिति का आरोप होता है पर वह किसी अन्य आलबन की सभावना को लेकर।"[२]

कृष्णकाव्य के अन्तगत प्रकृति-चित्रण व्यापक एव विविध रूप में हुआ है और इस सारी व्यापकता एव विविधता के साथ मानवीय भावो का अद्भुत सामजस्य मिलता है। आलबन रूप में प्रकृति को न स्वीकार करने पर भी एक विचित्र आत्मीयता से उसका चित्रण किया गया है। उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति के साथ मानवीय भाव-नाओ के सम्बन्ध की इतनी अनेकरूपता उपलब्ध होती है कि उसको सकुचित शास्त्रीय परिभाषाओ में बाँधना कठिन है। कभी कवियो ने भाव को आधार मानकर प्रकृति को उसी के अनुरूप चित्रित किया है और कभी प्रकृति को आधार मानकर भाव-जगत म उसकी प्रतिक्रिया का सवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। कभी मानवीयता अथवा-मानव सबधो का आरोप उस पर किया गया है और कभी उपमानो के रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य के अगणित उपादाना को ग्रहण किया गया है। कल्पना का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। कही कही तो प्रकृति के वास्तविक रूप की नितान्त उपेक्षा करके कल्पना के सहारे अलौकिक रूप-विधान अत्यन्त मोहक रूप में रच डाला गया है और भक्तहृदय के सहज विश्वास ने उसे यथार्थ समझ कर कल्पना के आनन्द से भिन्न अलौकिक आनन्द की उपलब्धि भी की।

वृन्दावन का वर्णन गुजराती और ब्रजभाषा दोनों के कवियों ने प्राय इसी प्रकार किया है। ब्रजभाषा के कवियों में अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करने का आग्रह अपेक्षाकृत अधिक है। कृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया जाना ही स्वाभाविक है। यथार्थ जगत् में प्रकृति परिवर्तनशील है, रमणीय के साथ उसका भयानक तथा कष्टकर रूप भी अनुभव में आता है परन्तु कवियों ने वृन्दावन के लिए इन सब दोषो से मुक्त एक आदर्श प्राकृतिक सौन्दर्य का विधान स्वीकार किया है। गौडीय तथा राधावल्लभीय कवियों की भावना के अनुसार वृन्दावन में सदा वसत ऋतु बनी रहती है। वहाँ की प्रत्येक लता कल्पतरु है और प्रत्येक फूल पारिजात है। वहाँ की भूमि विविध वर्ण वाले रत्नो से खचित सुवर्णमयी है। अगणित कुजो में सप्तवर्णी प्रकाश छाया रहता है। प्रत्येक कुज के प्रवेश द्वार पर सहचरियाँ नियुक्त है जिनकी सख्या कल्पनातीत है—

इसी सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट की दृष्टि में वह 'योगपीठ' है।

श्री वृन्दावन योगपीठ गोविंद-निवासा।
तहाँ श्री गदाधर चरन-परन सेवा की आसा।

—गदा० वाणी०, पृ० ६

नरसी को भी वृन्दावन के लताद्रुम अनेक वर्णों में प्रतिभासित होते है। वस्तुत उनके लिए वृन्दावन वैकुठ से भी अधिक सुन्दरतर है—

मारु वृन्दावन छे रूडुरे वैकुठ नहि आवु।

—न० इु० का०, पृ० ५३७

कृष्ण की लीलाभूमि वृन्दावन नददास के लिए चिद्घन है। वहाँ निरन्तर शरद ऋतु रहती है और प्रत्येक रात्रि पूर्ण चद्र से आलोकित रहती है। सूर और नरसी ने किसी एक ऋतु को नित्य न मान कर वर्षा, शरद् और वसत आदि सभी ऋतुओ में वृन्दावन का अलौकिक सौन्दर्य से युक्त चित्रित किया है। सारी प्रकृति कृष्ण के रास-नृत्य के साथ उल्लास से नाच उठती है। चन्द्रमा थक जाता है, यमुना का प्रवाह उलट कर बहने लगता, रात्रि असाधारण रूप से षट् मास की हो जाती है।

आराध्य की लीलास्थली के इस अलौकिक वातावरण के साथ कवियों की भावना का इतना तादात्म्य हुआ कि उनके हृदय में वृन्दावन की रज, लता, गुल्म और तृण-तरु सभी के प्रति एक विचित्र आत्मीयता एव मुग्धता का भाव जाग उठा। ब्रजभाषा के अनेक कवियों में इसकी अभिव्यक्ति मिलती है—

सूर—माधव मोहि करौ वृन्दावन रेनु ।

—सू० सा०, पृ० २०३

हरिराम व्यास—क. वृन्दावन के रुख हमारे मात-पिता सुत-बंधु ।
ख. मैंदामिश्री मुँह रे मेरे वृन्दावन की धूरि ।

व्यास वाणी, पृ०

रसखान—कोटिन के कलाधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं ।

गुजराती कवियों में वृन्दावन के प्रति इतनी तन्मयता का भाव विकसित नहीं हुआ ।

प्रकृति के साथ मानवीय सुख-दुख की भावना का समीकरण गोपियों की संयोग और वियोगमयी मनोदशा के चित्रण में विशेष रूप से उपलब्ध होता है । पशुपक्षी और लता-वृक्ष सभी उनकी अनुभूतियों के प्रति सहानुभूति रखते हुए दिखाई देते हैं । गोपियों को कुछ कहना-सुनना होता है तो वे ही उनके सबसे अधिक आत्मीय सिद्ध होते हैं । उन्हीं के माध्यम से वे हृदय की गंभीरतम भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं । दोनों भाषाओं के कवियों ने ऐसे स्थलों पर प्रकृति को विशेष संवेदनीय प्रदर्शित किया है ।

नरसी की विरहिणी राधा के स्वर का प्रभाव इतना व्यापक है कि अर्धरात्रि में पक्षी उसे सुन कर जाग उठते हैं और यमुना भी डोल उठती है, सूर्य देवता प्रकाश करने लगते हैं, कमल खिल जाते हैं और पद्मिनी भयभीत हो जाती है—

पंखीमात्र नहि पण पशु जागिया, सुणी स्वामिनी मुख वाण ।
त्या स्थिर जमना लागी डोलवा, स्वर थयो जलचर ने जाण ।
स्वर सुणियो सूरज देवता, पाला धाय करवा प्रकाश ।
स्वर सुणि रे कमल खीलिया, उपन्यो पोयणी ने त्रास ॥

—न० कृ० का०, पृ० ६०

नरसी ने पक्षियों पर राधा के स्वर के प्रभाव को व्यक्त करने के साथ साथ राधा पर उनके स्वर का प्रभाव भी व्यक्त किया है । विरह की दशा में राधा को उनका स्वर नहीं भाता—

चकचक करती चकलियुं आवे, जाणे वियोग तो भागे रे ।
खुश खुश खुश खीशकोली कहे छे, राधा ने रुडु न लागे रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ६१

अन्य क्षणों में यही प्रकृति राधा के मन में कृष्ण के साथ रमण करने की उल्लासमयी भावना जागृत करती है—

केसुडा फुल्या रे, आव्यो फागण मास।
रगभरी रमशु नरहरि साथे, आणी मन उल्लास।

—वही, पृ० २२४

वर्षाकाल में बरसते हुए मेघो के बीच ज्यो-ज्यो पक्षीरव बढता है त्यो त्यो राधा के हृदय में प्रेम उमडता है—

श्रावण मास सदा सुखकारी झरमर वरसे मेह रे।
दादुर मोर बपैया बोले, तम तम उपजे नेह रे।

—वही

भालण की गोपी का मान मेघो में तडपती हुई बिजली को देखकर तथा पपीहे की पुकार सुनते ही विलुप्त हो जाता है। बादल के गरजने के साथ उसका हृदय विदीर्ण हो उठता है—

सामु जोरे सुन्दरी, विजलडी (झी) जबुकेरे।
मेघ अधारी आवियो, हलवे हलवे टपके, रीसाव्यो रहिये नहि रे।

वर्पैयो पीयु पीयु कहीने, धाढे सादे पुकारे (रे)।
मान करे (ज) मिन्नशु, ते स्त्री ने (अवारे)।
घणा रे दिवसना रसणा (ते) भादरवे भाजे।
हैडु फाटे विरहिणी, जे वारे घन गाजे।

—दशमस्कध, पृ० १०७

इस प्रकार गुजराती के अनेक कवियो ने प्रकृति के उद्दीपक वातावरण की अनुकूलता और प्रतिकूलता के अनुरूप मानव-हृदय की विविध दशाओ का आलखन किया है। १५वी शती के नर्षपि की रचना फागु में प्रकृति के उद्दीपक रूप का अत्यन्त निखरा हुआ चित्रण है। कवि लिखता है—

वसत तणा गुण गहगह्या, महमह्या सवि सहकार।
त्रिभुवन जयजयकार, पिकारवु करहि अपार ॥३॥
जिमि विहसई वणसई, वणसई माननि मानु।
यौवन मदि हि तु दपती, दपती थाहि युवानु ॥४॥

पिक के स्वर को त्रिभुवन पर वसत की विजय के जयजयकार के रूप में ग्रहण करना तथा वनस्पतियो के माननियो के मान नष्ट करने के लिए विहंसने की कल्पना वास्तव

में सुन्दर हैं। वसंत ऋतु को विलास की ऋतु के रूप में गुजराती काव्य मे बहुधा निरूपित किया गया है। नरसी के 'वसंतनां पद' इसके प्रमाण हैं। यह सब होते हुए भी संयोग और वियोग दोनो पक्षों मे जितनी व्यापकता एवं विविधता से सूर ने प्रकृति का चित्रण किया है वह समस्त कृष्ण-काव्य में दुर्लभ है।

सूरदास की गोपियाँ अपनी विरह-विगलित दशा की अभिव्यक्ति के लिए यमुना को माध्यम बनाती हैं परन्तु वे इतने से ही संतुष्ट नही होती। यमुना को वे अपनी तरह सजीव और विरह-कातर देखती हैं। जिस प्रकार कृष्ण के वियोग ने उन्हें म्लान-मना बना दिया है उसी प्रकार यमुना भी उनके विरह-ज्वर से दग्ध होकर और भी काली पड गयी है—

दिखियत कालिंदी अति कारी।
अहो पथिक कहियो उन हरिसों भई विरह-जुर जारी।
मन पर्यंक ते परी धरणि धुकि तरँग तलफ नित भारी।
तट बारु उपचार चूर जल परी प्रसेद पनारी।
विगलित कच कुच कास पुलिन पर पंक जु काजल सारी।
मन में भ्रमर ते भ्रमत फिरत है दिशि दिशि दीन दुखारी।
निशि दिन चकई वादि वकत है प्रेम मनोहर हारी।
सूरदास प्रभु जोई यमुन-गति सोइ गति भई हमारी।

—सू० सा०, पृ० ६१५

पद के मध्य की पक्तियों में भावावेग आरोप का रूप ग्रहण कर लेता है। बालू, कास, पंक आदि सब एक भिन्न रूप में प्रतिभासित होने लगते है। प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ साथ भाव-जगत् की सूक्ष्म अनुभूति का ऐसा साहचर्य सूर के ही पदों में मिलता है। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन को केवल उद्दीपन विभाव तक सीमित नही रक्खा जा सकता—

सूर ने उद्दीपन रूप में भी प्रकृति में अद्भुत प्राण-प्रतिष्ठा की है।

प्रकृति के प्रति व्यक्त होने वाली रागात्मिका वृत्ति तीव्रता की सीमा पर पहुँच कर उपालंभ से युक्त भावात्मक अनुकथनो के रूप मे प्रकट होने लगती है। 'मधुबन तुम कत रहत हरे' तथा 'माई मेरे मोरउ वैर परे' से प्रारम्भ होने वाले पदो में इसी प्रकार की तीव्र अनुभूति मिलती है।

नरसी मेहता के काव्य में भी उपालंभ की ऐसी तीव्र भावना कही कहीं उपलब्ध हो जाती है। पपीहे के बोल एक गोपी को बाण के सदृश लग रहे हैं। वह उसे पापी और वैरी कह-कह कर कोसने लगती है—

बपैया पीउने शे रे सभारे ।
अबलाना हैडा होयरे सकोमल, वेणने वाणे प्रेम वा मारे ।
अघोजली जल नयण भराणा, शब्द सुणी सुणी तारो ।
तोय रे बपैया तु अरे पापीडो, जनमनो वेरी मारो ।

—न० कृ० का०, पृ० ३००

रास के प्रसग में भाव-विभोर होकर गोपियाँ वृक्ष वेलियो, पशु-पक्षियो तक से कृष्ण का पता पूछने लगती है । प्रकृति के प्रति ऐसी आत्मतल्लीनता का चित्रण भागवत का आधार लेकर गुजराती तथा व्रज दोनो के कवियो ने किया है । चन्द्रमा आदि को दूत बनाकर भावाभिव्यक्ति का रूप भी मानवीयकरण की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है । वसत ऋतु के वाद जिस ऋतु का अत्यत तल्लीनता के साथ कृष्णकाव्य में वर्णन मिलता है वह है वर्षा । उमडते-घुमडते काले काले वादलो को देखकर सूर की गोपियाँ कभी उन्हें कामदेव के बधनमुक्त हाथी समझने लगती हैं और कभी उनमे कृष्ण की प्रतिच्छाया देखने लगती हैं—

क. देखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे ।
मानहु मत्त मदन के हथियन बल करि बधन तोरे।

—सू० सा० पृ० ६२७

ख आजु घनश्याम की अनुहारि ।
उनइ आये साँवरे ते सजनी देखि रूप की आरि ।
इन्द्रधनुष मानो पीत बसन छवि दामिनि दसन विचारि ।
जनु वगपाँति माल मोतिन की चितवत हितहि निहारि ।
गर्जत गगन गिरा गोविन्द मिसु सुनत नयन भरे वारि ।
सूरदास गुण सुमिरि श्याम के विकल भयी ब्रजनारि ।

—सू० सा०, पृ० ६२९

पहले पद में मेघ केवल उद्दीपन की सामग्री है, दूसरे में वे गोपियो की कृष्ण-विषयक आसक्ति के सजीव रूप बन कर कृष्ण के ही सदृश प्रतिभासित होने लगते हैं ।

सयोग पक्ष में वर्षा का वर्णन कम मनोरम नही हुआ है। वरसते हुए मेघो और तडपती हुई विजलियो के बीच कभी हिडोलो पर राधाकृष्ण को झूलते देखकर, कभी कुजो में से भीगते हुए आते देखकर कवियो ने एक विचित्र प्रकार के आह्लाद का अनुभव किया जिसकी अभिव्यक्ति दोना भाषाओ के कृष्ण-काव्य में मिलती है,

ब्रजभाषा में विशेष रूप से। हिंडोला झूलने के चित्र सूर और नरसी ने प्रायः समान भावात्मकता से अंकित किये हैं परन्तु कुंजविहार के समय रिमझिम बूंदों के आघात से जो स्नेह संबंध में नवोन्मेष आ जाता है उसकी अभिव्यक्ति ब्रजभाषा के काव्य में अनुपम रूप से हुई है। श्रीभट्ट द्वारा निम्नलिखित पद में अंकित राधाकृष्ण का भावमय चित्र वस्तुतः अद्वितीय है—

> भीजत कुजन ते दोउ आवत।
> ज्यो ज्यो बूंद परत चूनरि पर त्यों त्यों हरि उर लावत।
> अति गंभीर झीने मेघनि की द्रुम तर छिन विरमावति।
> जय 'श्रीभट्ट' रसिक रस लंपट हिलिमिलि हिय सचुपावत।
>
> —नि० मा०, पृ० १९

इसी चित्र को नरसी ने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है।[1]

षड्ऋतुवर्णन प्रकृति-वर्णन का रूढ़ स्वरूप रहा है। इस विषय मे जितनी सूक्ष्मता सेनापति के काव्य में उपलब्ध होती है वैसी गुजराती के किसी कवि की कृति में नहीं मिलती। परन्तु बारहमासा में जितना जीवन्त वर्णन प्रेमानन्द ने प्रस्तुत किया है वह ब्रजभाषा में दुर्लभ है।

उपमान रूप में तृण, तरु, पर्वत, लता, कमल, भ्रमर, हंस, चकोर आदि प्रकृति की विभिन्न वस्तुओं का उपयोग साहित्य में सदा से होता आया है। न गुजराती का काव्य इसका अपवाद है, न ब्रजभाषा का। कृष्ण का गोपाल रूप आराध्य रूप में मान्य होने से कृष्णभक्त कवियों ने रूढ उपमानो के अतिरिक्त नवीन नवीन उपमान प्रकृति से चुने है। ब्रजभाषा में सूर तथा गुजराती में प्रेमानंद ने इस क्षेत्र में विशेष मौलिकता प्रदर्शित की है।

प्रबन्ध-निर्वाह

प्रबन्धकाव्य की सर्जना पदरचना से भिन्न प्रकार की कला की अपेक्षा रखती है। वस्तु-सयोजन, कथा-कथन तथा भाव-निरूपण सबका सम्यक् रूप से सामजस्य स्थापित करने के साथ साथ प्रवाह को अक्षुण्ण रखना आवश्यक होता है। पदकार केवल भावमय अथवा रमणीय स्थलो का चयन करके उन्ही की अभिव्यक्ति तक अपने को सीमित रख सकता है, पुनरावृत्ति उसके लिए क्षम्य है, परन्तु प्रबन्धकार एक तो भावमय स्थलो के बीच आने वाले इतिवृत्तात्मक नीरस स्थलों की उपेक्षा नही कर सकता, दूसरे किसी प्रकार की पुनरावृत्ति प्रबन्ध को सदोष बना देती है। एक ही पात्र की मनस्थिति के आलेखन से उसका दायित्व समाप्त नही होता वरन्

उसे अनेक पात्रो की मानसिक अवस्था का सश्लिष्ट चित्रण करना होता है । कथा को विकसित करने के लिए एक जीवन्त वातावरण की सृष्टि करना अनिवार्य है जिसके लिए उसे लोक-जीवन के विविध पक्षों तथा लोकस्वभाव के विविध रूपो से परिचित होना भी आवश्यक है । यह बात नही है कि पदकारो को उक्त वस्तुओ के परिज्ञान की अपेक्षा नही होती, फिर भी उनका प्रधान उद्देश्य गेय भावाभिव्यक्ति ही होता है। अन्य सब कुछ उसकी पृष्ठभूमि में गौण रूप से स्थित रहता है । परन्तु प्रबन्धकारो को भावनिरूपण के साथ लोकजीवन और लोकचेतना से सम्बद्ध सभी वस्तुओ को पर्याप्त महत्त्व देना होता है ।

ब्रजभाषा में नददास तथा गुजराती मे प्रेमानद और भालण में प्रबन्ध-विधान की पटुता विशेष रूप से परिलक्षित होती है । कथा-प्रवाह का उक्त कवियो ने सम्यक् निर्वाह किया है और वस्तु-सयोजना में भी अपने अपने स्वभाव के अनुसार पर्याप्त कुशलता प्रदर्शित की है ।

नददास की अनेक रचनाओ में प्रबन्धात्मकता के दर्शन होते हैं परन्तु आख्यान शैली का पूर्ण निर्वाह और वास्तविक प्रबन्ध योजना 'रुक्मिनीमगल' तथा 'रूपमजरी' में ही सभव हो सकी है । 'विरहमजरी' में कथा का अभाव है । 'भँवरगीत' में सवादात्मकता की प्रधानता के कारण प्रबन्ध के अन्य अगो का विकास नही हुआ है । 'श्याम सगाई' और 'सुदामाचरित' अत्यन्त सक्षिप्त रचनाएँ हैं जिनमें कथा की तीव्रता ने कवि को वातावरण और भावो के विकास के लिए अवसर नही दिया । 'रासपचाध्यायी' में अवश्य कथा का पर्याप्त विस्तार एव स्थिरता है जिससे भावो और दृश्यो का समुचित आलेखन हो सका है । उसमें आने वाले भावपूर्ण स्थलो की समीक्षा भावपक्ष के अन्तर्गत 'रासलीला' के प्रसग में की जा चुकी है । प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से इन सभी रचनाओ से पूर्वप्रोक्त दोनो रचनाएँ श्रेष्ठ हैं । 'रूपमजरी' कवि की नितान्त मौलिक कल्पना-सृष्टि है । प्रारभ में सैद्धान्तिक आधार और वैयक्तिक निवेदन देकर कवि ने आत्मीयता और आध्यात्मिकता का वातावरण रच दिया है जिससे आगे की प्रेम-कथा में अर्थगाभीर्य के साथ ही रुचिरता भी उत्पन्न हो गयी है । सघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के अभाव की पूर्ति एक प्रकार से नायिका के यौवनागम, श्रवण और स्वप्नदर्शन से उत्पन्न पूर्वानुराग तथा षट्ऋतु के साथ मानसिक दशा के सश्लिष्ट निरूपण से हो जाती है, क्योंकि इसमें जिस आलकारिक शैली का प्रयोग किया गया है वह अत्यन्त आकर्षक है । वर्णन प्राचीन काव्य-परम्परा के अनुकूल हैं अतएव गुजराती आख्यान काव्यो से कही कही आश्चर्यजनक साम्य उपलब्ध होता है । नगर-शोभा, प्रेम विरह तथा यौवनागम के रंगिन वर्णन इसके प्रमाण हैं ।[1]

कथा की समाप्ति संयोग,-सुख सन्तोष की स्थिति का चित्रण करके की गयी है। दोनो भाषाओं के रुक्मिणी और सुदामा सम्बन्धी काव्य इसको चरितार्थ करते हैं। नंददास के 'रुक्मिणीमंगल' में प्रयुक्त 'मगल' शब्द सुखान्त की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। नंददास ने इस काव्य का प्रारम्भ बिना किसी भूमिका के ही कर दिया है किन्तु भावो की योजना प्रारम्भ से ही परिपक्वता धारण करती गयी है। रुक्मिणी की विरह-विह्वल अवस्था का जैसा चित्रण नंददास ने किया है वैसा गुजराती के रुक्मिणी-सबन्धी किसी काव्य में नही मिलता। रुक्मिणी-हरण से पूर्व संघर्ष की स्थिति के चित्रण में प्रेमानंद ने सर्वाधिक पटुता प्रदर्शित की है। परिस्थिति और तदनुरूप मनोभावों के अंकन में उन्होने पर्याप्त मौलिकता का प्रमाण दिया है। नारद का समावेश करके प्रेमानंद तथा अन्य गुजराती कवियो ने कथा में विशेष रोचकता उत्पन्न कर दी है। अन्त में विवाह का लोकानुरूप सजीव वर्णन करके सूर, भालण, प्रेमानंद आदि ने स्थिति को पूर्णता तक पहुँचा दिया और उसके द्वारा उनको विविध मनोभावों के वर्णन का अवसर भी मिल गया। प्रबन्ध-विधान सुरक्षित रखते हुए कवियो ने परिस्थिति और मनोदशाओं के आलेखन में विशेष कौशल प्रदर्शित किया है। सुदामाचरित के अन्तर्गत सुदामा की दरिद्रता और कृष्ण से उनकी भेट के चित्रण उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ब्रज-भाषा में इस सम्बन्ध में नरोत्तमदास का स्थान अद्वितीय है। सुदामा की दरिद्रता की पूरी व्यंजना कवि ने सुदामा की स्त्री के वाक्यों से सफलतापूर्वक करा दी है। 'या घरते न गयो कबहूँ पिय टूटो तयो अरु फूटी कठौती' में निर्धनता के अभिशाप से अभिशप्त एक गृहिणी के हृदय की मर्मवेदना समाई हुई है। सुदामा की जीर्ण वस्त्रो से आवृत्त दुर्बल काया का परिचय जब द्वारपाल कृष्ण को देता है उस अवसर पर भी कवि ने दरिद्रता का यथार्थ अंकन किया है—

सीस पगा न भगा तन में प्रभु जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा।
द्वार खड्यो दुज दुर्बल एक रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूँछत दीन दयाल को धाम बतावत आपन नाम सुदामा।

—सुदामाचरित्र

गुजराती आख्यानकार प्रेमानंद ने सुदामा की दरिद्रता का अधिक विस्तार से वर्णन किया है और उनके वर्णन में यथार्थता की मात्रा अधिक ही है—

धातुपात्र नही कर सहावा, साजु वस्त्र नथी सम खावा ।
जेम जल विण वाडी झाडुवा, तेम अन्न विण बालक बाढुवा ।
नीचा घर भीतडियो पडो, श्वान माजर आवे छे चडी ।
अतिथि फरी निर्मुख जाय, भवानक नव पामे गाय ।
अन्न बिना पुत्र मारे वागला, तो क्या थी टोपी आगला ।
वाध्या नख ने नाधी जटा, माहि उडे रक्षानी घटा ।
दर्भ तणी तूटी सादडी, माय जी ते पर रहो छो पडी ।
बीजे त्रीजे पामो छो आहार, ते मुजने दहे छे अगार ।
हुतो दरिद्रसमुद्र मा बूडी, हेवातणमा अकेकी चूडी ।
सौभाग्य ना नथी शणगार, नहि काजल नहि किडिया हार ।
नहि ललाटे देवा कुकु, अन्न बिना शरीर रह्यु सुकु ।

—बृ० का० दो०, भाग १, पृ० २४०-२४१

सुदामा के पुत्रो का चित्रण करके प्रेमानद ने कथा को अधिक मार्मिक बना दिया है। द्वारका जाते हुए अपने पिता से जब वे अपनी भूख मिटाने योग्य कुछ लाने की दीनताभरी प्रार्थना करने लगते हैं तो सारा वातावरण दुख से भर जाता है—

ऋषि सुदामा ने कहे बालकडा, करी ने रोता मुख ।
पिताजी अेवु लावजो, जेने जाय आपणी भूख ।

—वही, पृ० २४५

इस तरह की मौलिक भावस्थिति का निर्माण करके प्रबन्ध को सजीव बना देना प्रेमानद का स्वभाव है। सुदामा से कृष्ण अन्तपुर में भेंट करते हैं अतएव प्रेमानद ने प्रतिहार के साथ दासी का भी उल्लेख किया है। इस तरह की व्यावहारिक तथा राजसमाजोचित बातो के चित्रण की ओर उन जैसे पटु प्रबधकार का ही ध्यान जा सकता है। कृष्ण को सुदामा के आगमन का समाचार देने वाली दासी की सशयग्रस्त मनोदशा का आलेखन करने के साथ ही उन्होंने नरोत्तमदास की तरह आगतुक के दारिद्रय की भी व्यजना कर दी है—

न होय नारद अवश्यमेव रे, नही वशिष्ठ ने वामदेव रे ।
न होय दुर्वासा न अगस्त्य रे, मै तो ऋषि जोया छे समस्त रे ।
नही विश्वामित्र के अत्री रे, नथी लाव्यो चिट्ठी के पत्री रे ।
दुखी दरिद्र सरखो भासे रे, अेक तुबीपात्र छे पासे रे ।
पिगल जटा भस्मे भरीयो रे, सुधारूपी नारीअे वरियो रे ।

—वही, पृ० २४८

कृष्ण-सुदामा-मिलन के अवसर पर प्रेमानंद और नरोतम दोनों ने स्थिति की मार्मिकता को पूरी तरह परखते हुए कृष्ण के मनोभावों का उचित अंकन किया है परन्तु नरोतम को अधिक सफलता मिली है। कृष्ण के हृदय को उन्होंने अधिक भावुकता से अभिव्यक्त किया है—

प्रेमानंद—षोडशोपचार पूजा कीधी, अगर धूप धूमाय।
करजोडी प्रदक्षिणा कीधी, हरि ने हरख आसु थाय।
पोताने ओढवानो पीत पछेडीअे, लोह्या ऋषिना पाय।
ऊभा रही कर विंझणो ग्रही ने, विट्ठल ढोले वाय।

—वही, पृ० २५०

नरोतम—कैसे बिहाल बिवाइन सों भये, कटक जाल गये पग जोये।
हाय सखा तुम पाये महा दुख, आये इतै न किते दिन खोये ?
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिके करुनानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहि, नैनन के जल सौ पग धोये।

—सुदामाचरित्र

नरोतम के काव्य में प्रबन्धात्मकता के साथ मुक्तक काव्य का सौंदर्य भी उपलब्ध होता है। ऐसी दशा में कवि का ध्यान कथाप्रवाह की ओर से हट कर कथाक्रम का अनुसरण करने वाले मुक्तकों को सँवारने में लग जाता है। नंददास का सुदामाचरित प्रबन्ध की दृष्टि से अत्यन्त साधारण काव्य है अतएव उसमें उक्त स्थलों का विकास नहीं मिलता।

उक्तिवैचित्र्य और अलंकार-विधान

दोनों भाषाओं में जिन कवियों ने अनु- वादात्मकता से ऊपर उठ कर मौलिक कल्पना के योग के साथ काव्यसर्जना की है उनकी रचनाओं में बहुधा कला के वैचित्र्यमूलक अथवा चमत्कारवादी स्वरूप के भी दर्शन होते हैं। सामान्य रूप से कुछ न कुछ अलकार किसी के भी काव्य में खोजे जा सकते हैं क्योंकि अलकार कथन-शैली के ही विविध प्रकार हैं परन्तु कुछ कवियों में उक्ति-वैचित्र्य तथा चमत्कार-प्रदर्शन की मनोवृत्ति अन्तर्निहित होती है जो उनकी तद्विषयक जागरूकता से प्रमाणित होती है। ऐसे कवियों के काव्य में चमत्कारबहुल कलात्मकता का आग्रह अपवाद-स्वरूप न प्राप्त होकर नियमतः मिलता है। व्रजभाषा में रीति कालीन प्रेरणा से लिखा गया कृष्णकाव्य प्रधानतः इसी मनोवृत्ति का परिचायक है। भाव प्रायः उक्ति और चमत्कार-प्रदर्शन का आधार मात्र होकर आये हैं। केशवदास, मतिराम, बिहारी और देव जैसे कवियों का वर्ग का वर्ग लगभग इसी कोटि में

आता है। कतिपय भावशील कवियों ने भावपक्ष और कलापक्ष के बीच सामंजस्य स्थापित किया परन्तु ऐसे उदाहरण कम उपलब्ध होते हैं। भक्त तथा आख्यानकार कवियों के द्वारा जो चमत्कारिकता का प्रदर्शन यत्र तत्र मिलता है वह एक गौण प्रवृत्ति के रूप में ही है। इनकी उक्तियाँ तथा इनके अलंकार काव्य-वैभव में सहज अंग होकर आये हैं। जागरूकता का निषेध तो सर्वथा नहीं किया जा सकता किन्तु आग्रह अवश्य नहीं मिलता। मौलिकता पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

उक्ति-वैचित्र्य—उक्ति की विचित्रता, अथवा वक्रता बहुत से अलंकारों के मूल में निहित रहती है अतएव उक्ति-वैचित्र्य प्राय उपमादि अलंकारों के सुनिश्चित रूप में सम्मुख आता है। इस प्रकार की सामग्री 'अलंकार-विधान' के अन्तर्गत आगे प्रस्तुत की गयी है। यहाँ केवल उन्ही उदाहरणों को लिया गया है जिनमें उक्ति का सहज एवं व्यापक स्वरूप अक्षुण्ण रहा है। कवि की अपनी कल्पना से उद्भूत उक्तियों के अतिरिक्त कुछ रूढ उक्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। दोनों भाषाओं के काव्य में दोनों प्रकार का उक्ति-वैचित्र्य मिल जाता है।

भालण और नंददास की यौवनवर्णन सम्बन्धी निम्न उक्तियाँ परम्परागत और रूढ प्रकार की ही हैं—

भालण—यौवन ने पगनी चचलता लइ मेली लोचन जी।
कटि कीधी अति पातली, उरज कर्या अति घन।

—द० स्क०, पृ० १३४

नंददास—क जुवन राउ जब उर पुर लयौ, संसव राउ जघन बन गयौ।
अरन लगे जब दोउ नरेसा, छीन पर्यौ तब तिय मधि देसा।

—नंद०, पृ० ५

ख, बालपने पग चचलताई, अब चलि छबिले नैनन आई।

—वही, पृ० ६

इस प्रकार की रूढिमयी उक्तियों का प्रयोग बिहारी आदि रीतिपरम्परा के कवियों द्वारा प्राय किया गया है।

विरह-व्यथा सम्बन्धी भालण की एक दूसरी उक्ति दर्शनीय है। वियोग की अग्नि हृदय में बराबर जलती रहती है तो भी शरीर भस्म नहीं होता क्योंकि वह नेत्रों से प्रतिक्षण ढलकने वाले आँसुओं से भीगा रहता है—

हैंडे पावक प्रजले रे, नयणे नीर न माय।
भस्म न थाये ते भणी रे, आँसुडे औलाय।

—द० स्क०, पृ० २१९

भ्रमरगीत के पाती-प्रसग में सूर ने विरहाग्नि और अश्रुओं के गुणों को दूसरे प्रकार की उक्ति में संगुफित कर दिया है—

नैन सजल कागज अति कोमल कर अंगुरी अति ताती।
परसे जरै विलोके भीजै दुहूँ भाँति दुख भाती।
—सू० सा०, पृ० ६४९

सूर में भाव को तीव्रतर बना देने वाली उक्तियों की सृष्टि करने की अद्‌भुत क्षमता है। काली रात को नागिन कहने के साथ कृष्णपक्ष के बाद शुक्लपक्ष के आने की बात को उक्ति-चमत्कार प्रदर्शित करते हुए जब वे नागिन का डसकर उलट जाना कहते हैं तो कथन में एक विचित्र मार्मिकता आ जाती है—

पिया बिनु नागिन कारी राति।
कबहुँक जामिनि उवति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति।

इसी तरह वंशी सम्बन्धी पदों मे सूर ने गोपियों के भावों को अनुपम उक्ति-सौन्दर्य से विभूषित किया है। उनकी उक्तियाँ बाँस की बाँसुरी मे प्राण डाल देती हैं—

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नंदनंदहि नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाँय ठाढो करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढी ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौडे गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौढि अधर सेज्या पर कर-पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम पै कोपि कोपावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ पल अधर सु सीश डोलावति।
—सू० सा०, पृ० २४०

गुजराती कवि प्रेमानंद में भी उक्ति-वैचित्र्य की अद्‌भुत्‌ क्षमता मिलती है। गोपियाँ भ्रमर को अनेकानेक उपालभ देती है। इसी क्रम में प्रेमानद ने भ्रमर के पर्याय 'षट्पद' को आधार बनाकर एक मौलिक उक्ति का निर्माण कर डाला। चार चरणोंवाला पशु होता है, इस तर्क से भ्रमर ड्योढा पशु हुआ—

छे पट चर्ण तारे विषे, सुण्य भमरा रे।
माटे दोड पशु तु केहेवाय, भोगी भमरा रे।
—श्रीम० भा०, पृ० ३२९

ठीक इसी प्रकार की उक्ति नददास के भँवरगीत में मिलती है जिसमें इयोडे पशु की बात तो नहीं है परन्तु पशु कह कर उसके अन्य लक्षणो का विस्तार किया गया है —

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपद पसु देख्यौ ।
अब लौं इहि व्रज देस माँहि कोउ नाँहि विसेख्यौ ।
दोइ सिंग मुख पर जमे, कारौ पीरौ गात ।

—नद०, पृ० १३६

प्रेमानद की दो एक अन्य उक्तियाँ भी दर्शनीय है । गोपियाँ कृष्ण के पास संदेसा भेजती है कि मृगया के बहाने ही व्रज में आ जाना, क्योकि यहाँ सभी स्त्रियाँ मृगनयनी है—

तेना तमे म्हावो राजकुमार ।
मृगयाने रमवा रे, वन पधारजो रे,
अही अमे मृगनेणी महु नार ।

—श्रीम० भा० पृ० ३३१

आँसुओ को वर्षा के रूप में ग्रहण करके शारदीय रास के प्रसग में वे एक सुन्दर उक्ति रच डालते है—

शरद समे आव्यु चोमासु, लागी आसुनी झेली ।

—वही, पृ० २९०

सूरदास ने भी आँसू और वर्षा के सादृश्य को लेकर भिन्न प्रकार की उक्ति का निर्माण किया है—

निसिदिन वरषतु नैन हमारे ।
सदा रहति वर्षा ऋतु हम पर जबते श्याम सिधारे ।

—सू० सा०, पृ० ६२०

यह थोडे से उदाहरण ही दोनो भाषाओ के कवियो की उर्वर कल्पना-शक्ति तथा उक्ति-वैचित्र्य की क्षमता के प्रमाण है ।

अलंकार-विधान—व्रजभाषा के रीतिकवियो को छोडकर कृष्ण-काव्य के अधिकाश रचयिताओ की वृत्ति भाव-निरूपण में अलकरण की अपेक्षा गौण रही है पर जहाँ भी अलङ्कृति मिलती है वहाँ शब्दालकारो की तुलना में अर्थालकारो का प्रयोग व्यापक और सहज रूप में किया गया है । गुजराती में श्लेष, यमकादि शब्दालकारो का प्रयोग तो अपवाद रूप में ही मिलता है । फागु काव्य के रचयिता नर्यांप ने आन्तरप्रास के रूप में अभग-और सभग दोना प्रकार के यमक का प्रयोग किया है । कहो कहीं

स्वतन्त्र यमक भी उपलब्ध होता है। अनुप्रास का आग्रह फागु में आद्योपान्त मिलता है। नर्षपि की शब्दयोजना बहुत कुछ केशव, मतिराम, बिहारी और देव के समानान्तर है। निम्नलिखित कतिपय उद्धरण इसके प्रमाण हैं—

> वन्निसु फागि नरायण, राय णमइ जसु पाइ।
> तसगुण अणुदिण खेलन, हेल तजाइ अपाइ ॥२॥
> आविय मास वसंतक, संत करइ उत्साह।
> मलयानिल महि वायउ, आयउ कामगिदाह ॥१७॥
> वणवरि आदिय प्रभु वीनविउ, नवि दसइ दिसारि रे।
> माधव माधव भेटण आविन देव मुरारि रे ॥२८॥
> थणमरि नमती तरुणी करुणी वरुणी चरण संचारि रे।
> चालइ चमकत झमकत नेउर केउर कटक विशाल रे ॥३०॥

किन्तु भालण और नरसी जैसे प्रमुख कवियों में यमक के दो ही चार उदाहरण मिल पाते हैं, वह भी बहुत खोजने पर—

भालण—क. श्रीकृष्ण वर थाये अमारे, अेह वर आपो तमे।

—द० स्कं०, पृ० ७९

ख. शी कहुं वातडी, दुखे गइ रातडी, आँख अति रातडी थइरे मारी।

—वही, पृ० १९४

नरसी—क. ' पंथनु जेम पशु पूठल वलग्यु फरे नरसैंना नाथजी नाथ तोडी।

—न० कृ० का० पृ० ४७८

ख. श्वासनो शो विश्वास, नहि निमिषनो, आश अधुरी अने अेम भरवु।

—वही, पृ० ४८०

पुनरुक्तिप्रकाश का जैसा सुन्दर प्रयोग गुजराती में नरसी ने किया है वैसा व्रजभाषा में नहीं मिलता—

> क. चालंती गजनी चाल चाल।
> लट छूटी ने आवे भाल भाल।

—वही, पृ० २६०

> ख. फूली फूली फूली हुं तो हरिमुख जोइफूली रे।
> भूली भूली भूली मारा घरनो धधो भूली रे।

—वही, पृ० ५०४

भालण और सूर ने भी इसका सफल प्रयोग किया है।[१]

वर्णावृत्तिमूलक अनुप्रास गुजराती कवियो द्वारा प्रयुक्त अवश्य हुआ है परन्तु अत्यन्त सहज रूप में। आग्रहपूर्वक शब्दो को अनुप्रास के क्रम से नियोजित करने की ओर उनका ध्यान उतना नही है जितना ब्रजभाषा के अनेक कवियो का रहा है। नददास की तरह शब्दो को जड जड कर चमकाने की प्रवृत्ति उनमें कम मिलती है। भालण, नरसी, प्रेमानद की अनुप्रास-योजना के कुछ विशिष्ट उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये गये हैं—

भालण—हरिने हिंदोलु प्रीते हालरीयु गाउ।
पोढे परमानद, वारणे हु जाउ।

—द० स्क०, पृ० १८

नरसी—क नाचता नाचता नयणे नयणा मल्या, मदभर्या नाथ ने बाथ भरता।
झमकते झाझरें ताली दे तारुणी, कामिनी कृष्णसु केल करता।
—न० कृ० का०, पृ० २१८

ख कर्मकूडा करी, स्नाण चारे भरी, नासवा नीसर्यो नाम वारी।
कृष्ण कीर्तन विना, जाम जाये वृथा, जेम रहे जूगटे सिद्धि हारी।
—वही, पृ० ४८०

ग अग उमग लई रग बेरग थई उचरे व्यग उछरग आगे।
नाद करी पाद ने, वाद धरि मादने साद उल्लाद बिखवाद मागे।
—वही, पृ० १०९

प्रेमानद—क तरणीतनयाना तरगमा कीधा सध्यातर्पण।
—श्रीम० भा०, पृ० ३२६

ख केसर वोली चोली रे चोसर चपकहार।
चतुरा चाले चमकती, झाझरनो झमकार ॥५१॥
—मास

ऐसे उदाहरण अधिक नही मिलते। इन्हें एक प्रकार से अपवाद कहा जा सकता है क्योंकि इनमें अनुप्रास के प्रति सजगता का आभास है। ब्रजभाषा के पदकारो में गुजराती कवियो की तरह ही वर्ण-मैत्री का आग्रह प्राय नही मिलता। सहज नाद-सौन्दर्य, अकृत्रिम माधुर्यमयी पदयोजना, भाव के अनुरूप शब्द-विधान पद साहित्य के स्वाभाविक गुण है। सायास लाये हुए अनुप्रास तथा अलकार रूप में मिलने वाले श्लेष और यमक के उदाहरण अधिक नहीं है।

नददास की स्थिति पदकारो से भिन्न है। सानुप्रास वर्णमैत्री से युक्त शब्दयोजना उनका स्वभाव रहा है। उनके काव्य में शब्दो के अलकरण की यह प्रवृत्ति प्राय सर्वत्र

मिलती है। निम्नलिखित कुछ पंक्तियाँ इसका प्रमाण है—

क. द्विज न गयौ फिरि भवन, गवन कियौ धरि जु पवन गति।

—नंद०, पृ० १४४

ख. वगर वगर सब नगर, उड़ी नभ गुडी बनी छवि।

—वही, पृ० १४५

ग. तब रुक्मिनि कौ कागर, नागर नेह नवीनौ।
वसनछोर तै छोरि विप्र श्रीधर कर दीनौ।

—वही, पृ० १४६

घ. हरी हरी यौं दुलहिनि कहि सब लोग पुकारे।

—वही, पृ० १५३

वल्लभरसिक ने भी वर्णमैत्री का विशेष आग्रह प्रदर्शित किया है परन्तु उनकी अनुप्रास-प्रियता निरर्थकता की सीमा तक पहुँच गयी है।

इस प्रवृत्ति का चरम रूप व्रजभाषा के रीतिकालीन कवियों में उपलब्ध होता है। कहीं कहीं उनमें शब्दालंकारों का आग्रह भावाभिव्यक्ति से भी प्रधान हो गया है, समानान्तर तो वह रहा ही है। इस चमत्कार-प्रियता पर कुछ कवियों ने गर्व प्रकट किया है। सेनापति अपनी कविता की श्लेषमयता का उद्घोष करते हुए लिखते हैं—

कोई है अभंग कोई पद है सभंग, सोधि,
देखे सब अंग सम सुधा के प्रवाह कौ।
सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई,
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की ॥६॥

—कवित्तरत्नाकर, तरंग १

उनके 'कवित्तरत्नाकर' की पहली तरंग 'श्लेष तरंग' ही है जिसमें श्लेष के आधार पर ऐसे ऐसे सादृश्य उपस्थित किये गये हैं जिनका भाव से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। सादृश्य का आधार रूप और मनोभाव न होकर चमत्कार-भावना ही है। विहारी ने भी श्लेष का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है।

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥६७७॥

—विहारीरत्नाकर, पृ० २७८

ऐसा एक भी उदाहरण समस्त गुजराती कृष्णकाव्य मे खोजने पर भी न मिलेगा। 'कृष्णक्रीडाकाव्य' में केशवदास ने अवश्य श्लेष का प्रयोग किया है परन्तु वक्रोक्ति से

चंचल चपल चपला के भ्रम चौकि परै,
चाहि चकचौंधी लागे मोहन के मन को।
—मा० बा०, पृ० ७०

यद्यपि कूटत्व को अलंकरण नही कहा जा सकता तथापि प्रधानतः शब्द चमत्कार पर ही आश्रित होने के कारण 'सूरसागर' तथा 'साहित्यलहरी' मे उपलब्ध कूट पदों की ओर निर्देश कर देना यहाँ आवश्यक है। सूरदास के अनेक कूट सारंग आदि अनेकार्थी शब्दों पर ही आश्रित है—

सारंग सारंगधरहि मिलावो।
सारग बिनय करत सारंग सों सारंग दुख बिसरावहु।
—सू० सा०, पृ० ३८८

कही कही शब्द के रूप को विकृत करके उसे समानार्थी बनाते हुए दुरूह कल्पना से कूटत्व उत्पन्न किया गया है जैसे निम्नलिखित पद मे 'मास' और 'मास' तथा 'बीस' और 'विष' को एक अर्थ में ग्रहण किया गया है—

कहत कत परदेसी की बात।
मंदिर अरध अवधि बदी हमसों हरि अहार चलिजात।
शशिरिपु बरष सूररिपु युगबर हररिपु किए फिरै घात।
नखत वेद ग्रह जोरि अरध करि बनि आवै सोइ खात।
सूरदास प्रभु तुमहि मिलन को कर मीडत पछितात।
—सू० सा०, पृ० ७०१-२

सूर ने कूटों की रचना में यमक आदि के अतिरिक्त संख्या तथा सम्बन्धवाची शब्दो और रूपकातिशयोक्ति जैसे अर्थालंकारों का सम्यक् प्रयोग किया है।[1] साहित्य-लहरी में यह कूट-शैली और भी अधिक व्यापक रूप में मिलती है।

गुजराती कवियो ने कूट-शैली में पद-रचना नही की और किसी अन्य प्रकार से ही काव्य को दुरूह बनाया है।

अर्थ को अलकृत करने में कवियों ने सादृश्यमूलक अलकारो का सर्वाधिक प्रयोग किया है, विशेष रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का। इन अलंकारो में जो अप्रस्तुत योजना की गयी है वह एक ओर परम्परागत कमल, चंद्र, हंस, मीन, गज, केहरि, व्याल आदि उपमानों से समृद्ध है, दूसरी ओर उसमें कवियों द्वारा स्वप्रत्यक्ष सादृश्य को व्यक्त करने वाले अभिनव एवं अपूर्व उपमानों का भी सम्यक् योग है। दोनो

भाषाओं के अनेक कवियो ने अलकार-विधान में मौलिक प्रतिभा का पर्याप्त परिचय दिया है। उदाहरणस्वरूप नीचे कुछ उपमाएँ प्रस्तुत की जाती है जिनकी स्वाभाविकता एवं मौलिकता ने उन्हे विशेष आकर्षक बना दिया है—

गुजराती

नर्षि — तारा माहि जिम चन्द, गोपिय माहि मुकुद ॥ ४८ ॥

—फागु

भालण — १ मन तो पोतानु राखिये रे, नालिकेर ज्यम नीर ।

—द०स्क०,पृ० ९१

२ तेने प्रीत कोण शु आवे, दिन प्रत्ये नवा फल चाखे ।
चाच अडाडी ने जेम सूडो, जइने बेसे बीजी शाखे ।

—वही, पृ० १११

३. ज्यम पापण नेत्र ने राखे त्यम ते राख्या तन जी ।

—वही, पृ० ४०९

नरसी — १ वासना तारी घटघटमा, जेम वालमा पड्यु तेल ।
तारी वासना नो मने पास लाग्यो, जेम वेहवे फूलेल ।
तारे मारे प्रीत बधाणी, जेम सूतरनी फेल ।

—न०कृ०का०, पृ० ३१५

२ प्रीतडी मायली शामला साथे, जडी कुदन हीरले रे ।

—वही, पृ० ३४८

प्रेमानन्द — १ मूलरूप धरियु माया तजी, बाधी जोजन दोढ ।
जेम पर्वत ऊपर पोपटो तेम बीराजे रणछोड ।

—श्रीम० भा०, पृ० २४७

२ जेम समुद्रमा पडे वीजळी तेम अग्नि ज्वाळ गोविंदे गळी ।

—वही, पृ० २७६

३ मपपणावत श्रवण उभा,

—वही, पृ० २९९

४ हु विना वन्त्रली मरसे जेम टळवळे टीटूडी ।

—वही, पृ० ३१५

ब्रजभाषा

सूर—

१ कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा एक राजत।
कर कर प्रति पद प्रतिमणि वसुधा कमल बैठकी साजत॥

—सू० सा०, पृ० १४४

२ अब अवर ऐसो लागत है जैसो झूठो थारु।

—वही, पृ० ३४७

३. जोवन रूप दिवस दसही को ज्यो अँजुरी को पानी।

—वही, पृ० ४८६

४ सूरदास प्रभु तुम्हरो गवन सुनि जल ज्यो जात वही।

—वही, पृ० ५८०

५ अब यह शशि ऐसो लागत ज्यो विनु माखनहि मह्यो।

—वही, पृ० ५८४

६. नीरस करि छांडी सुफलक सुत जैसे दूध विनु साढी।

—वही, पृ० ५८५

७ सूरदास वा भाइ फिरत हो ज्यो मधु तोरे माखी।

—वही, पृ० ६११

८ देखी माधो की मित्राई।
आई उघरि कनक कलई सी दै निज गये दगाई।

—वही, पृ० ६१४

९ सुनत लोग लागत हमैं ऐसे ज्यो करुई ककरी।

—वही, पृ० ७०३

१० विनु गोविंद सकल सुख सुदरि भुस पर की सी भीति।

—वही, पृ० ७५०

नन्ददास—

१ पानी पर पराग परी ऐसी। वीर फुटक भरी आरसि जैसी।

—नन्द, पृ० ३

२ लै चले नागर नगधर नवल तिया कौं ऐसे।
मौखिन आँखिन धूरि पूरि, मधुहा मधु जैसे॥

—वही, पृ० १५२

३ कहुँ देखियत कहु नाहिं, वधू वन बीच बनी यों।
बिजुरिन के से टूक, सघन वन माँझ चलत ज्यौं॥

—वही, पृ० १६१

माधवदास— बैठि कहा कविता सी करौ सुधि हूँ कछु साँवर के तन की ।

—मा० वा०, पृ० ७९

ध्रुवदास— ज्यों ज्यों सर में जल बढ़ै, कमल बढ़ै तिहिं भाँति ।
ऐसे प्रिय की रुचि बढ़ै निरखि प्रिया तन काँति ।।२५।।

—रतिमंजरी

सेनापति— मान उडि जात ज्यों कपूर उडि जात हूँ ।।३६।।

—कवित्तरत्नाकर, तरंग १

बिहारी— छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग ।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता-रंग ।।७०।।

—बिहारीरत्नाकर, पृ० ३४

उपर्युक्त उपमाओं में विविधता है, अनेकरूपता है । उन्हें किसी एक वर्ग के अन्तर्गत नहीं रक्खा जा सकता । अधिकतर उपमाएँ रूप-सादृश्य पर आधारित होती हैं जैसे प्रेमानंद और नंददास की कई उपमाएँ उद्धृत की गयी हैं परन्तु रूप के अतिरिक्त गुण, भाव और स्वभाव के अनुरूप भी औपम्य की कल्पना की जाती है। नरसी और सूरदास की उक्त उपमाओं में यही बात परिलक्षित होती है । वस्तुतः धर्म, जो उपमा का आधार होता है और उपमेय उपमान को एक सूत्र में आबद्ध करता है, अपने में अत्यन्त व्यापक है । कवियों ने उसकी व्यापकता का पूरा लाभ उठाते हुए अपनी अपनी अनुभूति और कल्पना के अनुरूप वस्तु तथा वातावरण की प्रकृति को ध्यान में रखकर उपमानों का कुशलता पूर्वक चयन किया है । सादृश्य को विविध प्रकार से व्यक्त करने तथा अधिक स्पष्ट बनाने के लिए कहीं कहीं उपमाओं की शृंखलाएँ भी रच दी गयी हैं जिन्हें शास्त्रीय शब्दावली में मालोपमा की संज्ञा दी गयी है । गुजराती कवियों की कुछ मालोपमाएँ विशेष दर्शनीय हैं—

भालण—चिंतातुर तमो काय दीखो, जुहारी ज्यम हारिया ।
व्यापारी वहाण बूडे, रंग अेवे आविया ।
स्वेद अंगे गात्र भंगे, नीर दो नयणे झरे ।
ऋणे पीड्यो अति घणु, निर्धन ज्यम चिंता करे ।

—द० स्क०, पृ० १८६

नरसी—चंद्र विंट्यो जेम चादरणीअे, तरुवर विंट्यो जेम वेली रे ।
गोविंद विंट्यो गोवालणीअे, हसागवनी हेली रे ।

—न० कृ० का०, पृ० ३०७

प्रेमानंद—क जेम वर्षाकाळना तृणने, उपाडे नहानु बाल रे।
जेम उन्मत्त गज ले शुंढमा, सुकोमळ कमळ नो नाळरे।
तेम पर्वत लीधो ऊचळी, लीलाओ लक्ष्मी नाथ रे।
श्रम काई पहोतो नथी, जेम को मुद्रिका धरे हाथ रे।

—श्रीम० भा०, पृ० २८४

ख जेम गुप्त खड्गकोश मध्ये, भस्मे ढाक्यो हुताश।
जेम अभ्रमा आदित्य घेर्यो गुप्त रूप कीधु.अविनाश।

—वही, पृ० २४६

अन्य स्थलो पर भी नरसी मेहता और प्रेमानद ने रूप वर्णन में उपमा का ही अधिक प्रयोग किया है। अनेक उपमेय तथा अनेक उपमान होने से उनकी निम्न पक्तियो में मालोपमा अलकार तो नही है परन्तु विभिन्न उपमाओ की माला अवश्य है—)

नरसी—नेत्राबुज नाशा कीर जेवी, छे दशन पक्ति दाडिम बीज तेवी।
आम्रकातलीशा अधर सोहता, लाल लाल स्त्रीना मन मोहता।

—न० कृ० का०, पृ० ४५३

प्रेमानद—कदली पत्र वासो विराजे, पेट पोयण पान।
भर्या परिमल नाभि निर्मल रोमावली पक्ज तत।
कबु जेवी ग्रीवा शोभा कठ कोकिला नाद।

—श्रीम० भा०, पृ० २४६

व्रजभाषा के सूरदास नददास आदि कवियो ने उत्प्रेक्षा का सर्वाधिक प्रयोग किया है। कही वस्तु, कही हेतु और कही फल की कल्पना करके उत्प्रेक्षा के प्राय. सभी रूपों का व्यवहार किया गया है। उपमा की तरह उत्प्रेक्षाओं की भी श्रृखलाएँ रच दी गयी हैं। रीति परम्परा के कवियो ने नखशिख वर्णन में उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग किया है। गुजराती कवियो ने अपेक्षाकृत इस अलकार को बहुत कम व्यवहृत किया है। नीचे दोनो भाषाओ के काव्य से कतिपय उत्प्रेक्षाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे कवियो की कल्पना-शक्ति और वर्णन-वैचित्र्य का सम्यक् परिचय मिलता है—

गुजराती

भालण—सुन्दर वदन सोहामणु रे, नानढिया शा दत।
जाणे कलमभा प्रगटी रे, कुदकली विकसत।
कठे हरिनख लटकतो रे, कौस्तुभनो आकार।
मुक्तामाळ सोहामणी रे, जाणिये गगाधार।

—द० स्क०, पृ० ३६

नरसी—१ मुखनी शोभा शी वहु जाणे पूनमचंद नीराजे रे।

—न० कृ० का०, पृ० ४६१

२ वणीना कुसुम लटकता दीसे जाणे मणीधर डोले रे।

—वही, पृ० ५८४

प्रेमानंद—१ जिह्वा जाण सर्पिणी रे, मुख गुफानु द्वार।

—श्रीम० भा०, पृ० २४७

२ रुक्मिणी हींड ग्रहा मळती रे, जाणे तेजमाथी तारुणी प्रगटीरे।

—रुक्मिणी हरण

व्रजभाषा

सूर—१ सूरश्याम किलकत द्विज देख्यो, मानो कमल पर बीजु जमाइ।

—सू० सा०, पृ० १३९

२ भाल विशाल ललित लटकनमनि बाल्दशा के चिकुर सुहाए।
मानो गुरु शनि कुज आग करि शशिहि मिलन तम के गण भाए।
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पटपीत उढाए।
नील जलद पर उडगन निरखत तजि सुभाउ मनो तडित छपाए।

—वही, पृ० १४३

३ सूरश्याम लोचन जल बरसत जनु मुकुता हिमकर ते।

—वही, पृ० १७९

४ नैनमीन मकराकृत कुंडल भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुतमाल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए संग।
मोर मुकुट मणिगण आभूषण, कटि किंकिनि नखचंद।
मनु अडोल वारिधि में बिंबित राका उडुगणवृन्द।
वदनचन्द्र मंडल की शोभा अवलोकनि सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रगटकियो शशि श्री अरु सुधा समेत।

—वही, पृ० २३७

५ रतन जटित पग सुभगपावरी, नूपुर ध्वनि कल परम रसाल।
मानहुँ चरणकमलदल लोभी निकटहि बैठे बालमराल।

—वही, पृ० ३४७

६ चंदन चरचित कुच उर उपटित मनु नवघन में उदित दोउ शशि।

—वही, पृ० ४७६

७ केसरि आड लिलाट हो बिच सेंदुर को बिंदु।
चक्र तजे ता नैन मृग जनु बैठो रथ इंदु।

—वही, पृ० ४९०

८. बाँह उँचाइ जोरि जमुहानी ऐंडानी कमनीय कामिनी ।
भुज छूटे छबि यो लागी मनो टूटि भई द्वै टूक दामिनी ।

—वही, पृ० ४९८

९ तुम सो प्रेमकथा को कहिबो मनहुँ काटिबो घास ।

—वही, पृ० ७००

नददास—१ कज कज प्रति पुज अलि गुजत इमि परभात ।
जनु रवि डर तम तजि भज्यो, रोवत ताके तात ।

—नद, पृ० ३

२ नवला निकसति तीर जव नीर चुवत वर चीर ।
असँवन रोवत बसन जनु, तन बिछुरन की पीर ।

—वही, पृ० ६

३ और विहगम रग भरे बोलत हिय हरहीं ।
जनु तरवर रस भरे परस्पर बात करहीं ।

—वही, पृ० १४५

४ अरुन चरन प्रतिबिम्ब अवनि मैं या उनमानी ।
जनु धर अपनी जीभ धरति पग कोमल जानी ।

—वही, पृ० १५१

५ कछु रुक्मिनि चलि आई हरि लै रथ बैठाई ।
घन ते बिछुरी बिजुरी, मनौ घन मैं फिरि आई ।

—वही, पृ० १५२

हरिवश—अस अस बाहु दै किशोर जोर रूप रासि,
मनौ तमाल अरुझि रही सरस कनक बेलि ।।१७।।

—रौहित० चौ०, पृ० ८

श्रीभट्ट—पलक-पलक मानो अलिन नलिन पै प्रात मुदित हिन पख पसारे ।
अमल-अमिल रेख इधर [illegible] [illegible] सारिन मानो लखन सारे ।

—रि० मा० पृ०, १५–१६

हरिराम व्यास—याही तैं माई कुचनि पै आर भये कारे ।
ये पिय के नैननि मैं बसत, इनमें पिय के तारे ।

—व्या० बा०, पृ० ८८९

ध्रुवदास—१ जमुना की छबि रहा कहौं तहाँ न आनँद थोर ।
मनहुँ ढरयो सिगार रस बरि प्रवाह चहुँओर ।।९।।

—मडलमभासिगार

२. नासापुट मुकता फब्यो चितै रहे दृग द्वद ।
भाजन भरि तन झलकि परी मनो रूप की बुद ॥३६॥
—वही

मतिराम—स्वेद के बूंद लसे तन में रति अत रही लपटाय गुपालहिं ।
मानो फली मुकुताफल पुजन हेमलता लपटानी तमालहिं ॥३१९॥
—रसराज

केशव—मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो सनि अक लिए ।
बिहारी—मकराकृत गोपाल कै सोहत कुडल कान ।
धर्‍यो मनौ हिय-घर समरु, ड्योढी लसत निसान ॥ १०३ ॥
—बिहारीरत्नाकर

देव—भाल गुही मुकुतालर माल, सुधाधर मैं मनौ धार सुधा की ।
—भावविलास

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि व्रजभाषा-काव्य में मिलने वाली उत्प्रेक्षाओ के समक्ष गुजराती काव्य की उत्प्रेक्षाएँ सरल, असश्लिष्ट तथा अनूहात्मक हैं। व्रजभाषा के कवियो ने अपने उत्प्रेक्षण में सूक्ष्मता, सुकुमारता, सश्लिष्टता एव ऊहात्मकता का विशेष परिचय दिया है। सूर और नददास की उत्प्रेक्षाओ में रूपछायाओ के अद्भुत वैभव के साथ उक्ति-वैचित्र्य का अपूर्व आग्रह मिलता है। सूर, केशव, बिहारी आदि कवियो ने कही कही वर्ण सादृश्य के आधार पर ग्रहो को उत्प्रेक्षण का साधन बनाया है जिससे उनके ज्योतिष ज्ञान का आभास मिलता है। गुजराती में वर्ण पर आधारित ऐसी उत्प्रेक्षाओ का अभाव है। नरसी ने अवश्य एक स्थल पर ऐसी उत्प्रेक्षा की है—

लीलवट आडरे शोभती केसरतणी रे जाणे मुखे उग्यो शशीयर भाण।
—न० कृ० का०, पृ० ४०४

इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि व्रजभाषा-काव्य में कल्पना का आलकारिक स्वरूप कही अधिक विकसित हुआ। कही कही यह वृत्ति गूढ और दुरूह भी होगयी है किन्तु अधिकतर भाव, रूप, वर्ण आदि के सादृश्य का पूर्ण निर्वाह हुआ है।

गुजराती कवियो ने उत्प्रेक्षा से अधिक रूपक का प्रयोग किया है। उनके रूपको की रचना भी प्राय सहज सुलभ एव परम्परागत उपमानो पर ही आश्रित है। कल्पना का चमत्कार कम परिलक्षित होता है। रूपको का अगविस्तार करके उन्हें सागरूपक बनाने की प्रवृत्ति इसीलिए नही मिलती। गुजराती-काव्य में प्राप्त रूपक अलकार के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

भालण—१. नयण कचोले अमृत पीता, क्यम पूरण थाउं ।
—द० स्कं०, पृ० ७८

२. आशा अंबर ने तांतणे मारा वळग्याजी प्राण ।
—वही, पृ० २२०

नरसीं—भ्रकुटि भ्रमर रे, धनुष्याकार छे रे, वा लाजीना नेण दीसे छे बाण ।
प्रेम घरी ने रे नाखे वा लो श्रम भणी रे, वा ले मारे वेध्या मनने प्राण।
—वही, पृ० ४०४

प्रेमानन्द—१. कंचुकी भीजे कटावनी आसुंडा केरी धार ।
कुच-शकर पर स्वेदनी काम करे रे पखाल ॥२०॥
जोवन-जलनिधि ऊलट्यो कोटि काम तरंग ॥२१॥
—मास

२. विरहिणी ने संतापवा आव्यो मेघ भुजग ॥४३॥
—वही

३. नयणे काजल सारी रे साधे मोहना बाण ।
भ्रगुटी धनुष वसी करे, ताणे कर्ण प्रमाण ॥९४॥
—वही

४. सरजे पाले ने सहारे अेणे निपाव्या जीव ।
अे ब्रह्मा ने अे ब्रह्माणी अे शक्ति ने अे शीव ॥
—प्रा०का०मा०,पृ० १७०

उक्त उदाहरणो मे अनेक रूपक एकदेश-विवर्ति हैं । कुछ में समस्तवस्तु-विषयकता का आभास है । बहुधा निरंग रूपक का ही प्रयोग है । इसके विरुद्ध व्रजभाषा में साधारण रूपको के अतिरिक्त सागरूपको का विशेष आग्रह मिलता है । सूर ने इस क्षेत्र में अद्भुत क्षमता प्रदर्शित की है । यह सत्य है कि रूपक का अत्यधिक विस्तार कभी कभी विरसता का भी संचार करने लगता है परन्तु सूर के कतिपय सागरूपकों में कल्पना और भाव का विचित्र सयोग हुआ है । उनके कुछ अतिविस्तृत रूपको में जटिलता, दुरूहता और नीरसता भी आगयी है । ध्रुवदास आदि अन्य अनेक कवियों ने रूपक-रचना में विशेष कौशल प्रदर्शित किया है। निम्न उदाहरण प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

सूर—१. माधव जू नेक हटकौ गाइ ।
निसि वासर यह भरमति इत उत अगह गही नहिं जाइ

क्षुधित बहुत अघात नाही निगम द्रुम दल खाइ।

—मू० मा०, पृ० ८

२ अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
महामोह को नेपूर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भरमभये मन भयो पखावज चलत कुसगत चाल।
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाध्यो लोभतिलक दियो भाल।

—वही, पृ० १९

३. बिरहबन मिलन सुधि त्रास भारी।
नैन जल नदी पर्वत उरज येई मनो सुभग वेनी भई अहिनि कारी।
नैनमृग श्रवन बनकूप जहँ तहँ मिल, भ्रम गली सघन नहि पार पावै।
सिंह कटि व्याघ्र अग अग भूषन मनो दुसह भये भार अतिही डरावै।

—वही, पृ० ३८९

४ तुम्हारो गोकुल हो ब्रजनाथ।
घेर्यो है अरि चतुरगिनि लै मन्मथ सेना साथ।
गर्जत अति गभीर गिरा मन मैंगल मत्त अपार।
धुरवा धूरि उडत रथ पायक घोरन की खुरतार।
चपला चमचमाति आयुध बग-पगति ध्वजा अकार।
परत निसाननि घाव तमकि घन तरपत जिहि जिहि बार।
मारमार करत भट दादुर पहिरे बहु बरन सनाह।

—वही, पृ० ६२८

इनके अतिरिक्त सूर ने 'देखो माई सुन्दरता को सागर' तथा 'साँचो सो लिखवार कहावै' से प्रारम्भ होने वाले पदो में रूपक के अग प्रत्यगो का बहुत विस्तार किया है। ऐसे विस्तृत रूपको में उन्होने कही कही उत्प्रेक्षादि अलकारो का अन्तर्भाव कर लिया है अर्थात् प्रधान भूमिका तो रूपक की रही है परन्तु उसके अगो का सादृश्य निरूपित करने में उत्प्रेक्षादि का आश्रय लिया गया है। जैसा कहा जा चुका है कि इतने विस्तृत रूपक गुजराती काव्य में उपलब्ध नही होते अतएव इस प्रकार के अलकार समिश्रण के भी दर्शन नही होते। नरसी का 'सुरतसग्राम' एक अपवाद है। रूपक पर आश्रित इतनी विशाल कल्पना ब्रजभाषा के किसी काव्य में नही मिलती। रति को युद्ध का रूपक देकर दोनो भाषाओ में वर्णित किया गया है जिसके अनेक उदाहरण

दिये जा सकते हैं। फिर भी रूपक-रचना की व्यापक प्रवृति व्रजभाषा में ही पायी जाती है। सूर के अतिरिक्त अन्य भक्त कवियों ने भी इस प्रवृत्ति का सम्यक् परिचय दिया है जो निम्न उदाहरणों से स्पष्ट है—

गदाधर भट्ट—१. आज वहूँ ते या गोकुल में अद्भुत वरखा आई हो।
मणिगण हेमहीर धारा की व्रजपति अति झर लाई हो।
बानी वेद पढत द्विज दादुर हिये निरखि हरियारे हो।
दधि घृत नीर क्षीर नाना रग वहि चले खार पनारे हो।
आनन्दभरी नाचत व्रजनारी पहरे रग रग सारी हो।
वरन वरन वादरन लपेटी विद्युत न्यारी न्यारी हो।

—वाणी, पृ० ११

२. जो मन स्याम-सरोवर न्हाहि।
वहुत दिनन को जर्‌यो वर्‌यो तूँ, तवही भले सिराहि।
नयन वयन कर चरन कमल से, कुडल मकर समान।
अलकावली सिवाल जाल तहँ, भौंह मीन मो जान।

—वही, पृ० २५

माधवदास—माली नव मदन तरुनी तन अलबाल,
जतन जुगुति सों जोवन बीज वयौ है।
उपज्यौ है अकुर सनेह को सरस अति,
सुरति के मेह सो सुनित सरसयौ है।
मूल प्रतिकूलता सुमन फूल फूलि रह्‌यौ,
हावभाव पल्लव सघन छाँह छयौ है।
मधुरते मधुर लग्यो है एक मान फल,
सोई जाने सुख जिन लोभी रस लयौ है ॥३५॥

—मानमाधुरी

ध्रुवदास ने शतरज,चौरड़ आदि को लेकर विचित्र रूपकों की सृष्टि की है जिनमें भाव की अपेक्षा काव्य-कौतुक अधिक है—

मन नृप मंत्री चौंप सो रुचि कीनी रुख चाल।
उरज गयद तुरग दृग पायक अगुली लाल ॥१२॥

—हित० सिंगारलीला

सखियन तल्प बिसात बनाई। कहि न जाइ सोभा कुछ भाई ॥९८॥
पासे नैन कटाछनि ढारै। हावभाव रँग-रँग की सारै ॥९९॥
—नेहमजरी

नरसी और ध्रुवदास ने स्त्री शरीर की कल्पना सफल लता के रूप में की है। दोनो के रूपको की समानता दर्शनीय है। मुस्कान को फूल कह कर ध्रुवदास ने सादृश्य का अधिक निर्वाह किया है—

ध्रुवदास— कोमल कुदन बेलि मनु सीची रग सुहाग।
मुसकनि लाग फूल फल उरज भरे अनुराग ॥ २० ॥
—रतिमजरी

नरसी— अमृत वेलडी व्रज नी नारी उर वर सफळ फली रे।
—न० कृ० का०, पृ० ३३३

इस तरह की रूपक-रचना व्रजभापा के रीतिकाव्यो में भी उपलब्ध होती है। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के अतिरिक्त रूपकातिशयोक्ति, सदेह, दृष्टान्त आदि अन्य सादृश्यमूलक अलकारो का प्रयोग भी दोनो भापाओ के काव्य में मिलता है परन्तु प्रधानता पूर्वोक्त अलकारो की ही रही है। रूपकातिशयोक्ति को सूर ने सर्वोत्तम रूप में प्रस्तुत किया है। उनके पास उपमानो का अशेप कोप रहता है जिसकी सहायता से उनकी कल्पना अभूतपूर्व वैभव के साथ रूप-चित्र रचती जाती है। रूपकातिशयोक्ति सूर के समृद्ध अलकरण का एक अशमात्र है। सूर ने इस अलकार का प्रयोग अपने पूर्ववर्ती पदकार विद्यापति की परम्परा में किया है। भालण ने राधा के रूप वर्णन में इसका व्यवहार किया है। रूपकातिशयोक्ति का व्रजभापा जैसा विस्तृत समृद्ध प्रयोग गुजराती में नही मिलता—

सूर—अद्भुत एक अनूपम बाग।
युगल कमल पर गज क्रीडत है, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फले कज पराग।
रुचिर कपोत वसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर शुक पिक मृग मद काग।
खजन धनुप चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मणिधर नाग।
—सू० सा०, पृ० ३९०

भालण—कनकलता ऊपर कशा रे बे लघुपर्वत शृंग रे।
अेम अटपटू उचरे रे, कहे वच्चे वहेती गग रे।
खजनं मीन मधुकर कह्या रे, तेतो चद्रबिंब मुझार रे।
—द० स्क०, पृ० १४५

सूर ने दानलीला के अन्तर्गत तथा कूटो में इस अलकार का और भी चमत्कारिक प्रयोग किया है जिसका सकेत प्रसगानुसार किया जा चुका है।

'सदेह' सबन्धी तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित उदाहरणो से स्पष्ट हो जाती है—

ब्रजभाषा

सूर— १ राधे तेरे नैन किधौं मृगवारे।
२ राधे तेरे नैन किधौं री बान।
३ . राधे तेरे नैन किधौं बटपारे।
—सू० सा०, पृ० ५०८

नददास—किधौं नीलमनि किंकिनि माही, रोमावलि तिहि जोति की छाही।
किधौ लटी कटि दिखि करतारा, रोमधार जनु धर्‌यो अधारा।
—नद०, पृ० ७

गुजराती

नरसी—छो रे रभा के रे मोहनी, के छो रे आनद के चद।
के रे पाताळमानी पद्‌मनी, अेवो विचार करे गोविंद।
—न० कृ० का०, पृ० १५५

प्रेमानंद—सुदामे जाणी आवी राणी, इद्राणी के रुक्मिणी।
सावित्री के सरस्वती, के शक्ति शकर तणी ॥१५॥
—वृ० का० दो०, भाग १, पृ० २७५

ब्रजभाषा के कवियो ने सदेह का प्रयोग कवि-कल्पित विविध रूप-छायाओ तथा भाव-व्यजक उपमानो को लेकर किया है किन्तु गुजराती कवियो ने पात्र विशेष की किसी अन्य पात्र के सम्बन्ध में अनिश्चयात्मक मनस्थिति को व्यक्त करने में इसका व्यवहार किया है जैसा कि नरसी और प्रेमानद की उक्त पक्तियो से प्रकट है। दोनो प्रयोगो में पर्याप्त भिन्नता है। एक में रूप-सादृश्य के साथ उक्ति-वैचित्र्य पर अधिक बल है दूसरे में केवल रूप-सादृश्य पर।

कथन पर बल देने और उसे प्रभविष्णु एव सुन्दर बनाने के लिए 'दृष्टान्त' अलकार का प्रयोग गुजराती कवियों ने बराबर किया है—

भालण—रीसावी रहेवा नव दीजे, कोमळ तन करमाये।
बीजा वृक्ष रहे सिञ्च्या विना, जुइवेली सूकाये।
—द० स्क०, पृ० ११०

प्रेमानंद—मुआ वच्छना चर्मने माटे, गाय प्रीते दूझे रे।
मोटा वच्छने शृगे मारे, सगपण काइ न सूझे रे।
—श्रीम० भा०, पृ० ३१६

व्रजभाषा मे सूरदास तथा नददास आदि ने भी इसका पर्याप्त कुशलता से प्रयोग किया है। इन कवियो का लक्ष्य भी कथन को सशक्त, प्रभावमय एव सुन्दर बनाना रहा है—

सूर—तेरो बुरो न कोई मानै।
रस की बात मधुप नीरस सुनि रसिक होइ सो जानै।
दादुर बसै निकट कमलनि के जन्म न रस पहिचानै।
अलि अनुराग उडत मन बाँध्यो कही सुनत नहिं कानै।
सरिता चली मिलन सागर को कूल सबै द्रुम भानै।
कायर बकै लोभ ते भागै, लरै सो सूर बखानै।
—सू० सा०, पृ० ७००

नंददास—प्रेम एक, इक चित्तसौं एकहि सग समाइ।
गधी कौ सौदौ नही जन जन हाथ विकाइ।
—नद०, पृ० १७

गुजराती कवियो में कथन को अलकृत करने की ओर प्रेमानद का झुकाव अधिक प्रतीत होता है। उन्होंने अनन्वय, अपन्हुति तथा उल्लेख आदि कतिपय अन्य सादृश्य-मूलक अलकारो का सुन्दर प्रयोग किया है।

अनन्वय—उपमा ते कोनी आपिये, ना मळ्यु अेकु प्रश्न।
अे.रुक्मिणी ते रुक्मिणी, श्रीकृष्ण ते श्रीकृष्ण।
—प्रा० का० मा०, पृ० १७०

अपन्हुति—न होय इन्द्र अे छे कृष्णजी जेणे आप्यु मुनि ने वळ निरधार।
नोय इन्द्र कमळ लोचनखरा, जेने नथी नेत्र हजार।
—वही, पृ० १६९

उल्लेख—कोई कहे इन्दु, कोई कहे काम...
कोई कहे हाउ आव्यो विकाळ...
कोई वृद्ध जादवे दीठा ऋखी..

—वृ० का० दो०, भाग १, पृ० २४६

'उल्लेख' का उनका प्रयोग विचित्र है क्योंकि उसमें वक्रोक्ति का अन्तर्भाव हो गया है। यादव स्त्रियाँ जर्जर देह सुदामा को जब इंदु और काम कहती हैं तो वहाँ वक्रोक्ति की प्रधान हो जाती है परन्तु जब कोई स्त्री उन्हें 'हाउ' समझती है और कोई यादव 'ऋखी' समझता है तो उल्लेख ही प्रधान हो उठता है। ऐसा उदाहरण व्रजभाषा में कदाचित् ही कहीं मिले।

सादृश्यमूलक अलकारो के अतिरिक्त जिन अलकारो का दोनो भाषाओं के कृष्ण-काव्य में सफल प्रयोग हुआ है उनमें 'प्रतीप' तथा 'अत्युक्ति' विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रतीप का प्रयोग रूप-वर्णन के प्रसग में अधिक किया गया है—

गुजराती

भालण—पवद को ला ने प्रवालडा रे, मुख आगळ शु नाम रे।
दाढमनी कलिका तणु रे, कहानजी कहे शु काम रे।

—द० स्क०, पृ० १४५

प्रेमानंद—सुदामाना वैभव आगळ, कुबेर ते कोण मात्र।

—वृ० का० दो० भाग १, पृ० २५८

व्रजभाषा

सूर—१. कज खजन मीन मृग शावकनि डारति वारि।
भ्रुकुटि पर सुरचाप वारत तरनि कुडल हारि।

—सू० सा०, पृ० ३५५

२ राधे तेरे रूप की अधिकाइ।
शशि उर घटत, हेम पावक परि, चपक कुसुम रहे कुम्हिलाइ।
इभ तूटत अरु अरुण पक भए विधिना आन बनाइ।
कद्रुज पैठि पताल दुरे रहि खगपति हरिवाहन भए जाइ।
हस दुर्यो सर दुर्यो सरोरुह गज मृग चले पराइ।
सूरजदास विचार देखि मन तोर रमन पिक रही लजाइ।

—वही, पृ० ५१३

नंददास—मृगज लजे, खजन भजे, कज लजे छवि छीन।
दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भए जल लीन।
—नंद०, पृ० ६

हरिराम व्यास—निरुपम राधा नैन तुम्हारे।
अजन छवि खजन मद गजन मीन पानि दुरि हारे।
निशि शशि डरत पकजकुल मुकुचत वधिकनि मृगज विडारे।
—व्या० वा०, पृ० २४१

उक्त उद्धरणो को देखने से ज्ञात होता है कि व्रजभाषा में 'प्रतीप' अत्यन्त समृद्ध एव शृखलाबद्ध रूप में प्रयुक्त हुआ है। उसके जितने भेद व्रजभाषा काव्य में उपलब्ध होते है उतने गुजराती में नही मिलते।

दोनो भाषाओ में 'अत्युक्ति' का व्यवहार विरह सम्बन्धी वर्णन में विशेष रूप से हुआ है जो निम्नलिखित पक्तियो से स्पष्ट है। कवियो ने विरह-ताप और विरह-दौर्बल्य को लेकर विविध प्रकार की अत्युक्तियों का सृजन किया है जिनमें ऊहा का पुट लगभग समान रूप में मिलता है। रीति कवियो ने उसे अस्वाभाविकता की सीमा पर पहुँचा दिया—

गुजराती

भालण—कुसुम चदन शीतळ घणा, ते अग लागे अगार।
—द० स्क०, पृ० १३७

नरसी—हैयामां रे होळी वळे कीम करी रमु वसन्त।
—न० कृ० मा०, पृ० ५२४

प्रेमानंद—ऊपनो ताप निश्वास मूके।
कामिनी कठनी माल सूके। ॥१६॥
सूकी गयु तन हेली रे, बेली ऊतरे वाह।
धरतीअे लेता जोती रे, अगूठी अे माह ॥१८॥
—मास

व्रजभाषा

सूर—१ कर अँगुरी अति तातीं।
परसें जरैं ......
—सू० सा०, पृ० ६४९

२ गनतहि गनत गई सुनि सजनी अँगुरिन की रेखै।
—वही०, पृ० ६७९

नंददास—१ लिखी विरह के हाथन पाती अजहूँ ताती।

—नंद०, पृ० १४७

२ उपजि विरह दुख दवा अवा उर ताप तये हैं।
कोउ कोउ हार के मोतिया, तचि तचि लाल भये हैं।

—वही, पृ० १४३

बिहारी—औंधाई सीसी सुलखि बिरह-बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छीटौ छुई न गात ॥२१७॥

—बिहारीरत्नाकर, पृ० ९१

देव—हाथ उठायो उडाइबे को, उडि काग गरे परी चारिक चूरी।

—भवानीविलास

कार्य कारण, क्रम और सख्या मूलक अलकारों का प्रयोग गुजराती में नही मिलता एक दो स्थल पर अगर मिलता है तो अपवाद स्वरूप ही जैसे क्रमश 'अक्रमातिशयोक्ति' और 'सार' से युक्त प्रेमानद की निम्न पक्तियो में—

१ मुखमा मुष्टि तादुल मूक्या, दारिद्र्य नाख्या कापी।
वर मरडी ने गाठडी लीधी साथेना दुख मोड्या।
जेम चीथरा छोड्या नाथे, तेम बधन तोड्या।
ज्यारे तादुल मुखमा मूक्या, उठी छापरी आकाश।

—बृ० का० दो० भाग १, पृ० २५३

२ काष्ठ पें पाषाण कठिन छे तेपे कठिन छे लोहु।
वज्र तुल्य छे काळज माहु लोचने शु देखाडु मोहु रे।

—श्रीम० भा०, पृ० २७२

सख्या पर आधारित सूर की 'सूर सकल षट दरशन वे हैं बारह खरी पढाऊँ' जैसी पक्ति का तो एक भी सादृश्य गुजराती काव्य में नही मिलता।

पादटिप्पणियाँ

१ ब्रजभाषा—नन्ददास नंद०, पृ० १७६, हरिवंश श्रीहित चौरासी, पद, ७१

गुजराती—नरसी न० कृ० का०, पृ० १९५, प्रेमानन्द प्रेम० भा०, पृ० २६३

२ प्रकृति और काव्य, हिन्दी खंड पृ० ४२५—रचयिता डॉ० रघुवंश

३ न० कृ० का० पृ० २६७, ५९३

४ भालण द० स्क०, पृ० १२४, प्रेमानन्द प्रे० का० दो० भाग १, पृ० २४६, २४७;

नन्ददास नंद, पृ० ३ ६, १४५

५ भालण द० स्क०, पृ० ७४, सूरदास सू० सा०, पृ० १५०

६ सू० सा०, पृ० १५३, ३८८, ३९८, ४७१, ५१३, ५३०, ५३१, ६१४, ६२४, ६३५, ६३७ इत्यादि

छंद

दोनो भाषाओं के काव्य में छंद-विधान प्राय काव्य-शैली के अनुरूप ही हुआ है। काव्य की तीन प्रमुख शैलियां मिलती है—

१ आख्यान-शैली
२. पद-शैली
३. मुक्तक-शैली

आख्यान शैली का प्रधान गुण वर्णनात्मकता है और पद-शैली की प्रधान विशेषता, गेयता। गुजराती के आख्यान काव्यो में भी गेयता का पर्याप्त योग रहा है जो रागो के सकेत से स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रथम दोनों शैलियो का अनुसरण गुजराती और व्रजभाषा दोनों के कवियो ने किया है परन्तु अन्तिम मुक्तक-शैली का व्यवहार जिस रूप में व्रजभाषा के रीतिकारो ने किया है, गुजराती में उपलब्ध नही होता। व्रजभाषा मे पद-शैली की प्रधानता है और गुजराती में आख्यान-शैली की।

कवियो ने इन शैलियो का परस्पर सम्मिश्रण भी किया है और स्वतन्त्र अनुसरण भी। यह सम्मिश्रण बहुधा कवि की आन्तरिक प्रेरणा तथा भावानुभूति के समानान्तर हुआ है। मुख्यतया पद-शैली मे रचना करने वाले सूर जैसे कवि ने भी कथा क्रम का कुछ न कुछ निर्वाह किया है और आवश्यकता के अनुसार बीच बीच में आख्यान-शैली को भी अपनाया है। इसके विरुद्ध मुख्यतया आख्यान शैली में रचना करने वाले भीम, भालण, केशवदास, प्रेमानद, लक्ष्मीदास, माधवदास आदि अनेक गुजराती कवियो ने भावप्रधान स्थलों पर पद-शैली को स्वीकार किया है। व्रजभाषा में ध्रुवदास तथा माधवदास आदि ने आख्यान-शैली के साथ मुक्तक-शैली का सम्मिश्रण कर दिया है। नरोत्तमदास ने तो कथा-कथन में मुक्तको का ही आद्योपान्त व्यवहार किया है। सूरदास में अवश्य शैलीगत मिश्रण नही मिलता। उन्होने दोनों शैलियो को पृथक पृथक् व्यवहृत किया है।

वास्तव में पद भी एक प्रकार का मुक्तक ही है परन्तु गेयता प्रधान होने के कारण उसे मुक्तक से भिन्न स्वतन्त्र रूप में स्वीकार किया जाता है।

आगे इन शैलियों के अन्तर्गत आने वाले छंदों पर पृथक् पृथक् विचार किया गया है और अन्त में रागों की तुलनात्मक स्थिति भी प्रदर्शित करदी गयी है।

१. आख्यान-शैली

गुजराती में आख्यान रचना 'कडवा' बद्ध रूप में हुई है। भीम और भालण से लेकर प्रेमानंद तक प्रायः सभी आख्यानकारों ने इसी रूप का अनुसरण किया है।

कडवा के सामान्य रीति से तीन अंग होते हैं। प्रारंभ में दो-चार पंक्तियों का एक 'मुखबन्ध' आता है। यह सभी कडवों में होता हो, ऐसी बात नहीं है। परन्तु मुख्य मुख्य आख्यानों के अधिकांश कडवों में मुखबन्ध मिलता है। मुखबन्ध के समाप्त होने पर कडवा की व्यापक 'देशी' आती है। इन देशियों में 'ढाल' नामक रचना अथवा किसी अन्य प्रकार की देशी का समावेश होता है और अंत में व्यापक देशी की समाप्ति पर उपसंहार की तरह 'वलण' अथवा 'उथलो' का प्रयोग किया जाता है। यह वलण या उथलो पूरे होते हुए कडवा का उपसंहार करने तथा आगामी कडवा की वस्तु की सूचना देने के लिए आता है। उथलो या वलण का प्रारंभ कडवा की देशी की पंक्ति के अन्तिम शब्द से होता है और कदाचित् इसलिए इसकी ऐसी संज्ञाएँ हैं। यह अधिकतर एक द्विपदी का होता है। पर कहीं कहीं अधिक द्विपदियाँ भी आती हैं। कडवों में इसका होना अनिवार्य हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। मुखबन्ध की तरह यह भी कडवों का अपरिहार्य अथवा अव्यभिचारी अंग नहीं है।[1]

कडवाबद्ध शैली का प्रयोग करते हुए भी कवियों ने भिन्न भिन्न शब्दों का व्यवहार किया है।

अपने दशमस्कंध में भालण ने कडवा के स्थान पर 'पद' लिखा है और देशी के स्थान पर 'ढाल'। भीम ने किसी ऐसे पारिभाषिक शब्द का प्रयोग न करके 'पूर्वछाया' से मुखबन्ध का निर्देश किया है और 'चूर्ण' से देशी या ढाल का। यह छंदों के नाम हैं। भीम ने और भी जिन छंदों का व्यवहार किया है उनका नाम-संकेत कर दिया है। केशवदास ने यद्यपि इस परिपाटी का अनुसरण न करके अपने काव्य 'श्रीकृष्णक्रीडा-काव्य' का निर्माण सर्गबद्ध रूप में किया है तथापि कडवा का भी व्यवहार उनके द्वारा हुआ है। जिन कवियों ने कडवा, ढाल और वलण जैसे शब्दों का व्यवहार किया है उन्होंने भी कहीं कहीं छंदों के नामों का निर्देश कर दिया है। ढाल का व्यवहार नाकर और प्रेमानंद आदि कवियों ने बराबर किया है। वेहदेव ने ढाल के लिए 'ढोळ' का भी व्यवहार किया है पर प्रेमानंद ने 'चाल' का ही।[1]

व्रजभाषा मे न तो इन शब्दों का प्रयोग हुआ है और न कडवाबद्ध शैली का ही प्रवहार हुआ है। दोहा-चौपाई की शैली अवश्य मिलती है जिसका कडवाबद्ध शैली । पर्याप्त साम्य भी है और अन्तर भी। साम्य इस प्रकार कि चौपाइयों की एक नेश्चित संख्या के बाद दोहे के प्रयोग किये जाने से बीच की चौपाइयों का रूप ऊपर ौर नीचे के दोहे के साथ कडवो जैसा ही हो जाता है परन्तु अन्तर यह है कि दोहों का योग साधारण क्रम से होता है, मुखबन्ध और वलण के रूप में नहीं। नददास की रूपमंजरी, विरहमंजरी तथा दशमस्कंध इसी ढग की रचनाएँ है। ध्रुवदास और ाधवदास की अनेक रचनाओं मे दोहा-चौपाई के ऐसे ही क्रम का अनुसरण किया या है। गुजराती आख्यान-काव्यों में भी दोहा-चौपाई अथवा इन्ही से निर्मित ा इसी जाति के छदो का विशेष व्यवहार हुआ है। कीकुवसही, देवीदास, परमाणद, ाग, प्रेमानद तथा केशवदास वैष्णव के काव्य इसके प्रमाण है।

छद की दृष्टि से आख्यानो के दो प्रमुख भेद हो सकते है। एक तो वे आख्यान अथवा वर्णनात्मक काव्य जिनमें किसी एक ही छद का प्रयोग हुआ हो, दूसरे वे काव्य जिनमे मिश्रित छद-प्रणाली या अनेक छदो का प्रयोग किया गया हो। प्रथम प्रकार के काव्यो में व्रजभाषा की कई रचनाएँ आती है। नददास की गोवर्धनलीला तथा सुदामाचरित और सूर की अधिकाश वर्णनात्मक लीलाओं में चौपाई छद प्रयुक्त हुआ है। नददास की रुक्मिणीमगल, रासपचाध्यायी तथा सिद्धान्तपचाध्यायी केवल रोला छद मे लिखी गयी है। इसी तरह ध्रुवदास की दानविनोदलीला, सुख-मजरी, आनदलता, रसरत्नावली जैसी अनेक कृतियो में दोहे का ही व्यवहार हुआ है। गुजराती में नरसी की दाणलीला भी दोहो में ही लिखी गयी है। १५वीं शती की रचना 'मयणछद' मे मात्र छप्पय छद में मानलीला का प्रसग वर्णित है। किन्तु गुजराती में अधिक संख्या मिश्रित छद-प्रणाली के काव्यो की है। रासक, आन्दोल, अडैयु और फागु नामक छदो से युक्त फागु काव्य की शैली का एक स्वतन्त्र स्थान है। फागु में गेया-त्मकता और वर्णनात्मकता का विचित्र योग हुआ है। कुछ विशिष्ट एव प्रिय छदो को बदल बदल कर बार बार प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति गुजराती कवियो में बहुत मिलती है। व्रजभाषा मे ध्रुवदास तथा माधवदास ने बहुधा मिश्रित छद-प्रणाली का अनुसरण किया है। नरोत्तम के सुदामाचरित मे भी अनेक छद प्रयुक्त हुए है।

आख्यान-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छद और उनका स्वरूप

दोहा—दोहा अथवा 'दूहा' का दोनो भाषाओ में प्रचुर प्रयोग मिलता है। भीम, केशवदास तथा सत ने गुजराती में 'पूर्वछायु' अथवा 'पूर्वछायो' नाम से जिस छद का व्यवहार किया है वह भी दोहा ही है। वस्तुत पूर्वछाया शब्द का अर्थ वह

छद है जो पहले की पक्ति की छाया लेकर लिखा जाय। दोहा ही क्या, कोई भी छद पूर्वछाया के रूप में व्यवहृत किया जा सकता है। प्राचीन गुजराती साहित्य में इसके प्रमाण भी हैं परन्तु उन जातिबद्ध प्रबन्धो में जिनमें चौपाई व्यापक रूप में व्यवहृत हुई है, 'पूर्वछायो' शब्द दोहे के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1] उक्त तीनो कवियो के काव्य से एक एक 'पूर्वछायो' नीचे उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया जाता है—

भीम—उदरमाहि बालक वसइ, पीडा करइ अगाधि।
माता मनि आणइ नहीं, तेह तणा अपराध॥
—हरि० पो०, पृ० १५०

केशवदास—जलविना जलचर जम दहे, विण घन चातुक मेह।
त्यम हरिणाक्षी हरि विना, दाझ विरहे देह॥ २८॥
—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १४९

सत—शरद समधी सद कथा, शुकजी कहे सुणि भूप।
साभलता थाय सपदा, लीला ईश अरूप।
—गु० व० सो०, ह० प्र० ग्रथाक ७९२

स्पष्ट है कि पिगल के नियमो के अनुसार यह दोहे ही हैं। भालण, नरसी और प्रेमानद आदि कुछ कवियो ने गेयता के कारण 'रे' अथवा 'जी' आदि का दोहे के चरणो के साथ सयोग कर दिया है। प्रेमानद के मास मे तो यह विशेषता बराबर मिलती है। छद की दृष्टि से इनके द्वारा भी दोहे का ही व्यवहार हुआ है—

भालण—क करमाहे लइ कामडी रे, कुवर पूठे धाय।
रीसे लोचन रातडा रे, जशोदा जी श्वास भराय।
—द० स्क०, पृ० ३९

ख सर्वस्व अेने सोंपिये, ते वश क्यम न थाय जी,
आत्मसमर्पण ऊकरो, बीजो नथी उपाय जी।
—वही, पृ० १३४

नरसी—श्री गुरुने प्रणाम करीने, वर्णवु श्री जदुराय।
श्री कृष्णनी लीला साभळता, पातिक दूर पलाय।
—न० कृ० का०, पृ० ४२८

प्रेमानद—वळी अे दीठव गोकुल गामनो रे, गोवालानो राय।
वदन इदु निरखता रे, तृप्त नेत्र न थाय।
—श्रीम० भा०, पृ० २४६

वस्तुत यह दोहे की देशी है अर्थात् दोहे की गति के आधार पर निर्मित गीत। ब्रजभाषा में दोहे का व्यवहार गुजराती से भी अधिक व्यापक रूप में मिलता है। दोहे के अन्त में ९ या १० मात्राओ की एक लघु पक्ति जोड कर एक विशेष प्रकार की गेयात्मकता उत्पन्न करने का प्रमाण दिया गया है जो चरणो के बीच में गेयात्मक शब्द रखने से भिन्न कोटि की वस्तु है। सूर, नददास और हरिराय द्वारा दोहे के इस विशिष्ट प्रयोग के निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

सूर—एहि मग गोरस लै सबै, दिन प्रति आवहि जाहि।
हमहि छाप देखरावहू, दान चहत केहि पाहि।
कहत नदलाडिले।
—मू० सा०, पृ० ३२०

नददास—प्रेमधुजा, रसरूपिनी, उपजावति सुखपुज।
सुदर श्याम विलासिनी, नववृंदावन कुज।
सुनौ ब्रजनागरी,।
—नद, पृ० १२३

हरिरायजी—गोवर्धन के शिखर ते, मोहन दीनी टेर।
अति तरग सौं कहत है, सो ग्वालिनि राखी घेर।
नागरि दान दे।

हरिरायजी के दोहे में 'सो' का गेयात्मक समावेश ठीक भालण और प्रेमानद की तरह हुआ परन्तु यह अपवाद स्वरूप है। नददास ने दोहे को रोले के साथ सयुक्त करके तब उसके अत में १० मात्राओ के गेय लघु अश का योग किया है जिससे उनकी छद-योजना में अधिक विशेषता आ गयी है। गुजराती मे भालण ने 'ध्रुवा' अथवा 'टेक' के रूप में दोहे को स्थान देकर उसके साथ उक्त ब्रजभाषा कवियों की तरह गेय लघुअश सयुक्त कर दिया है—

देवकी कहे साभलो, पूरा थया दशमास।
उदर माहे त्या गर्भ धर्यो छे, ते करशे तेज प्रकाश।
पीउजी जे शु कहियें।
—द० स्क०, पृ० १०

दोहा छद के इस विशिष्ट प्रयोग का साम्य दर्शनीय है। दोहो के साथ ध्रुवा का सयोग प्रेमानद ने भी किया है परन्तु ऐसे उदाहरण वही मिलते है जहाँ पद-शैली का व्यवहार हुआ है। भालण में भी यही बात है पर ब्रजभाषा में इसे वर्णनात्मक प्रसगो में एक विशेष छद के रूप में व्यवहृत किया गया है।

दोहे के लिए 'साखी' नाम का व्यवहार दोनो भाषाओ के कवियो ने किया है, जैसे गुजराती में नरसी और प्रेमानद ने तथा ब्रजभाषा में हरिराम व्यास और पीताबरदेव ने।* नरसी ने साखी के अन्तर्गत दोहे की देशी को स्वीकार किया है पर कही कही दोहे से भिन्न छद भी प्रयुक्त मिलता है। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित छद को दोहा कहना कठिन है—

गर्भ गाल्यो उमियाजीओ, नारी पामी सुख घणु रे।
कैसे जाण्यु गर्भ गळीयो, ते पराक्रम न जाण्यु प्रभु तणु रे।

इसमें मात्रा, यति और गति का ही अतर नही है वरन् दूसरे और चौथे चरण के अत मे एक गुरु और एक लघु का भी विधान नही है। ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। साधारणतया दोहा और साखी पर्याय रूप म ही ग्रहण किये जाते हैं। सतकाव्य की परम्परा इसकी साक्षी है और साखी नामक कोई स्वतत्र छद होता भी नही। गुजराती के एक कवि वासणदास ने एक विचित्र नाम 'चुआक्षरा' का व्यवहार दोहे के लिए किया है। नीचे एक चुआक्षरा उद्धृत किया जाता है।

वृंदावनि रलीआमणू अनि रूडो माधव मास।
रुडा मोर कला धरे स्वामी पूरो आस ॥३॥

गेयतापरक 'अनि' को निकाल देने पर यह स्पष्ट ही दोहा सिद्ध होता है। यदि 'चुआक्षरा' को किसी शब्द का विकृत रूप माने तो भी दोहे से उसके अर्थ की सगति सिद्ध नही होती—

चौपाई, चौपई—दोनो भाषाओ के कवियो ने वर्णनात्मक प्रसगो मे मुख्यतया प्रयुक्त १६ मात्रा की चौपाई और १५ मात्रा की चौपई के बीच कोई अन्तर प्रदर्शित नही किया है। गुजराती में १५ मात्रा की 'चोपई' का अधिक व्यवहार हुआ है जिस के अन्त में एक गुरु, एक लघु का प्राय. निर्वाह हुआ है। कही अन्त में लघु के बाद गुरु भी मिलता है जिससे चौपई छद चौबोला छद में परिणत हो जाता है। ब्रजभाषा में १६ मात्राओं की चौपाई अधिक व्यवहृत हुई है पर कवियो ने १६ मात्रा के अन्य छंदो पद्धरि, डिल्ला, उपचित्रा, पज्झटिका, पादाकुलक आदि से उसका कोई भेद नही किया है।* प्राय चौपाई के अन्तर्गत १६ मात्रा के छदो के सभी रूपो का व्यवहार हुआ है। यही नही, १५ मात्रा की चौपई और चौबोला को भी चौपाई से पृथक नही रखा गया है। गुजराती कवियो की भी स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही है। उन्होंने भी चौपाई और चोपई के बीच कोई विवेक नही दिखाया। 'चोपाई', 'चोपई', 'चोपै' अथवा 'चूपै' को समानार्थी ही समझा है। १६ मात्रा के छद 'अरिल्ल' और

'पाघडी' का अवश्य पृथक् रूप से विधान हुआ है और इनके लक्षणो का भी निर्वाह किया गया यद्यपि अनेक स्थलो पर उनमें भी अशुद्धता मिलती है। अरिल्ल २१ मात्रा के प्लवगम छद का पर्याय भी है।[6] व्रजभाषा में यह इसी अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है जैसा कि हरिव्यास की स्फुटवाणी, ध्रुवदास की मानलीला और मनसिंगार से विदित होता है। गुजराती कवि केशवदास ने अरिल्ल का १६ मात्रा का रूप ग्रहण किया है जिसको व्रजभाषा के कवियो ने चौपाई के अन्दर समाविष्ट कर लिया है। पिंगलशास्त्र के अनुसार अरिल्ल के अन्त में दो लघु भी रह सकते है और यगण भी आ सकता है। परन्तु गुजराती में यगणान्त रूप नही मिलता। केशवदास ने इसका नाम 'अडयल' दिया है, उनके द्वारा प्रयुक्त 'युयड' और 'मुडेल' नामक छद भी अडयल से भिन्न प्रतीत नही होते।[7] इन छदो के अन्त में 'ह' अक्षर बराबर जोड दिया गया है—

आगे मत्स्यादिक अवतारह, तूह ज त्रण्य भुवन ने तारह।
हवडा भूतल भार उतारह, सुर नर पनग करवा सारह।

—श्री कृ० ली० का०, पृ० १५

भीम ने जगणात छद को 'अडयल' कहा है जो वस्तुत पद्धरि का लक्षण है—

सृष्टि विनाशइ हू अज अेक, सदा निरतर हू अज अेक।

—हरि० पो०, पृ० ४४

अरिल्ल की तरह पद्धरि भी पादाकुलक का एक भेद है जिसके अत में जगण होना आवश्यक है। भीम ने इसका भी व्यवहार किया है।[8] कही कही गुरु को लघु करके पढने की आवश्यकता होती है। यह गुजराती और व्रज दोनोमें समान रूप से किया जाता है। गुजराती में कही लघु को गुरु भी मानना पडता है—.

हे कृष्ण! कृष्ण! लीला-विलास, शरणागत-वत्सल श्रीय निवास ॥१६॥
नय-ताप-निवारण स्वय प्रकाश, वेगि करि स्वामी शोक-नाश ॥१७॥

—हरि० पो०, पृ० १६८

विना व्यवधान के १६ और १५ मात्राओ के विविध छदो का परस्पर जो सम्मिश्रण दोनो भाषाओ में मिलता है उसके भी उदाहरण आवश्यक है। भीम और केशवदास ने तो चूपै, चोपाई का व्यवहार १५ मात्रा के छद के लिए ही किया है अतएव उनके काव्य से उदाहरण नही दिये गये है—

भालण—अेम करता गोकुल माहे आव्या, माधवजीना मनमाहे भाव्या—चौपाई।
आलिंगन दीघु अति प्रेम, कहो काकाजी कुशली क्षेम —चौपाई।

—द० स्क०, पृ० १५५

नरसी—नद नाम सुणी चोदिश जोती, नहि नहि कही वली सशय खोनी—चौपाई।

हरि कहे आवे नक्की मम तात भूली गोपी मानी खरी वात।—चौपई।

स्त्रीअे नद मानी लज्जा धरी, नरसहीनो स्वामि नाठो मुठियो करि—चौबोला

—न० कृ० का०, पृ० ६३-६४

प्रेमानद—छे छेल्ले आश्रमे अे सतान, अे मारे शत पुत्र समान। —चौबोला।

तु विना दया कोण आणेजी, मामो तुनें कहेशे भाणेजी। —चौपाई।

तमने भ्राति बालकनी पड, केम घात हशे आ कन्या वड। —चौबोला।

—श्रीम० भा०, पृ० २४२

सूर—व्रतपूरण कियो नद कुमार, युवतिन के मेटे जजार। —चौबोला।

जप तप करि अब तन जिनि गारो, तुम घरनी में भर्ता तुम्हारो।—चौपाई।

अतर शोच दूरि करि डारहु, मेरो कह्यो सत्य उर धारहु।—अरिल्ल।

—सू० सा० पृ० २५३

नददास—गोपरहे सब जोहे, मोहे,जानहि नहिन कछू हम को है। —चौपाई।

गोपी चकित चाहि वँ ताहि, कहन लगी कि रमा यह आहि।—चौपई।

अपने पिय कौं देखति डोलति, यातें नहि काहू सौं बोलति। —अरिल्ल

लरिकन लहति लहति छबि छई, नद के सुन्दर मदिर गई।—चौबोला।

—नद०, पृ० २२१-२२२

ध्रुवदास—श्री हरिवश हिये जो आनै, ताको वह अपनो करि जानै ॥९७॥ चौपाई।

यह रस गायो श्री हरिवश, मुक्ता कौन चुगै बिनु हस ॥९८॥ चौपई।

रसद रहस्य मजरी भई, छिनछिन जोति होति है नई।॥९९॥ चौबोला।

—रहस्यमजरी।

दोहे की तरह चौपाई का भी अनेक रूप में व्यवहार हुआ है। प्रेमानद ने अपने भागवत दशमस्कध में कडवे के मुखबन्ध के रूप में इसको प्रयुक्त किया है। ढाल में तो व्यापक रूप से चौपाई का प्रयोग हुआ ही है। पद रचना में भी इसका योग मिलता है।

गाथा और वस्तुबन्ध—इन दोनो छदो का प्रयोग एक दो स्थल पर भीम और केशवदास के काव्यों में मिलता है। केशवदास ने 'गाहा' नाम दिया है जो अपभ्रश का रूप है। ब्रजभाषा में वर्णनात्मक काव्य में तो किसी कवि ने इसका व्यवहार नहीं किया, परन्तु हितहरिवश के शिष्य सेवकजी के स्फुट काव्य में यह 'गाथा और 'गाहा' दोनो नामो से अन्य छदो मे सयुक्त एव मिश्रित रूप मे उपलब्ध होता है—[१]

भीम—तारा कवणी गणीजइ, कवणण गणीइ भूमि रज वणिआ।

कवणि गणीइ जल ल्हरी, हरिगुण जाइ कवण गणीआ।

केशवदास—मरकत मुक्ता मळे, सोलह बनीह सोहय ।
कणय तिम शाम शरीरें, अजनि अवलेपन भणय ।

सेवक—वर भूमि रमानि सुखद द्रुम वल्ली प्रफुलित फलित विविध बरन ।
नित सरद बसत मत्त मधुकर कुल बहु पतत्रि नादहि करन ।

गाथा अथवा आर्या के नियमों का भीम ने तो लगभग ठीक निर्वाह किया है परन्तु अन्य उदाहरण नाम मात्र के लिए गाथा कहे जा सकते हैं। गुजराती और ब्रजभाषा में प्रयुक्त गाथा छद के उक्त उदाहरणो से ज्ञात होता है कि इसका कोई निश्चित रूप नही रहा है। कवियो ने इसे तुकान्त से युक्त कर दिया है। अपभ्रश में भी गाथा का कोई सुनिश्चित रूप नही रहा। यह एक सामान्य नाम था जो बाद में तीस, बत्तीस मात्राओ की चरणान्तप्रास-हीन द्विपदी के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त होने लगा।[११] केशवदास ने श्री कृष्णक्रीडाकाव्य में गाथा के एक विकसित रूप 'वडेलक आर्या' का प्रयोग किया है। साधारण आर्या का प्रयोग भी उन्होने किया है जो लक्षण में उनकी गाथा से भिन्न नही।[१२] वस्तुबध जो छप्पय की तरह मिश्र छद प्रतीत होता है, ब्रजभाषा में प्रयुक्त नही हुआ। इसकी कुछ पक्तियाँ दोहे के समान होती है, विशेष कर पाचवी और छठी।

सोरठा—ब्रजभाषा में सोरठे में काव्य-रचना माधवदास, ध्रुवदास सेवक आदि अनेक कवियो ने की है। रीति कवियो ने भी इसका व्यवहार किया है पर गुजराती कृष्ण-काव्य में भीम और केशवदास ने ही इसे व्यवहृत किया है।[१३] सोरठा के पहले गुजराती में दूहा शब्द का बराबर प्रयोग हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि इसे दोहे का ही एक भेद समझा गया है। दोनो भाषाओ में इसका स्वरूप एक जैसा ही है।

छप्पय—गुजराती में मयण के 'मयणछद' में इसका आद्योपात व्यवहार हुआ है। भीम और केशवदास ने भी इसे व्यवहृत किया है।[१४] भीम ने इसके लिए 'कवित्त' शब्द प्रधान रूप से दिया है और छप्पय गौण रूप से। केशवदास ने 'छेपाया' तथा 'कलश' नाम से जो छद लिखे है वह छप्पय ही है।[१५] ब्रजभाषा में वर्णनात्मक काव्य मे माधवदास ने इसका व्यवहार किया है और स्फुट काव्य मे हरिवश, तत्ववेत्ता, रसिकदेव, सेवक और पीताबर ने। मयण की तरह तत्ववेत्ता का यह सर्वाधिक प्रिय छद है। सोरठे की तरह ही इसके स्वरूप में भी कोई अन्तर नही मिलता।

रोला—छप्पय से इतर कही अन्यत्र गुजराती कृष्ण-काव्य में रोला छद का प्रयोग हुआ हो, ऐसा ज्ञात नही होता। नरपति और चतुर्भुज के द्वारा प्रयुक्त फागु छद का पहला और तीसरा चरण रोला का होता है और दूसरा तथा चौथा दोहे का। यदि अन्तिम अक्षर को गुरु रूप में पढा जाय तो वह रोला ही प्रतीत होता है।[१६]

व्रजभाषा में नददास ने अपने आख्यान काव्य में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया है। अन्य कवियों में सूर, वल्लभरसिक और गदाधर इसके प्रयोक्ता रूप में उल्लेखनीय है।

चन्द्रावला—इस मिश्र छद के प्रारभ में चरणाकुल के साथ दोहे के उत्तर पद के सयोग से बनी दो पक्तियाँ रहती हैं और बाद में कुडली के साथ चरणाकुल के चार चरण।[१] इसका व्यवहार मात्र गुजराती मे मिलता है और वह भी कृष्ण-काव्य में केवल कूढ कवि के द्वारा।

कुडलिया—व्रजभाषा में ध्रुवदास ने रहसिलता, प्रेमावली और निर्तविलास आदि अनेक वर्णनात्मक रचनाओ मे इस का व्यवहार किया है तथा हरिवश और सेवक ने स्फुट काव्य मे गुजराती कृष्ण-काव्य में यह व्यवहृत नही हुआ है।

गीतिका—इस छद का व्यवहार व्रजभाषा कृष्ण-काव्य मे अपवाद स्वरूप ही हुआ है जैसे सूर की निम्न वर्णनात्मक पक्तियो में—

मकर कुडल जटित हीरा लाल शोभा अति बनी।
पन्ना पिरोजा लगे बिच-बिच चहूँ दिस लटकत मनी।
—सू० सा०, पृ० ७३३

यहाँ हरिगीतिका और गीतिका की पक्तियों का मिश्रण हो गया है क्योकि पहली पक्ति २८ मात्राओं की है और दूसरी २६ की। गुजराती में भालण, नरसी प्रेमानद शोधजी आदि कई कवियो ने इसकी ढाल की रचना मे स्थान दिया है। उनके प्रयोग को गेयात्मकता की प्रधानता के कारण गीतिका की देशी कहा जा सकता है—

भालण—रात वीतक विस्तारी छे सुणिये श्रवणे नाथ हो।
मनुष्य माया अनुसरी ने झाटक्या वे हाथ हो।
विलाप त्याँ कीधा घणा ने नीर त्या नयणे झरे।
दुख पामे अति घणु ने शोक कीधो त्या सरे।
—द० स्क०, पृ० ३१२

नरसी—वाहाना सुणीअे वात मोरी, तोरा नयण छे निद्राभर्यां।
प्रगट अगो अग माहे, चिन्ह तो दीसे खरा।
—न० कृ० का०, पृ० १२७

प्रेमानद—धस्या श्रीकृष्ण हेत साथे, सकर्षण पूठे गया।
अकर पीते पाय लाग्या, नाथजी अे कर ग्रहया।

परस्परे स्तवन कीधा, भत्रीजा वाम दक्षिण रह्या।
वलगी हाथे आदर माथे मंदिर मा तेडी गया।

—श्रीम० भा०, पृ० ३०२

शेधजी—एहवे समे एक वर्ध ब्राह्मण जतो मारग माहि जो।

—रुक्मिणीहरण

मात्राओं की न्यूनाधिक्ता तथा गुरु लघु के उच्चारण की अनिश्चयता प्राय सर्वत्र मिलती है। कहीं कहीं यह भी कहना कठिन है कि यह गीतिका छंद की ही रचना है।

सवैया (मात्रिक)—यह ३१ मात्रा के वीर छंद का ही दूसरा नाम है।[18] गुजराती पिंगलकार ३२ मात्रा के सवैया का भी परिचय देते हैं।[19] पहले प्रकार के सवैये का प्रयोग गुजराती में केशवदास ने और दूसरे प्रकार के सवैये का प्रयोग ब्रजभाषा में सेवक ने किया है।[20] पर केशवदास के 'सवाइयों' छंद की भाषा ब्रज ही है। कुछ अंशों में नर्षपि के फागु में प्रयुक्त रासक छंद की गति सवैया जैसी कही जा सकती है। गेयात्मक अन्तिम 'रे' के स्थान में जगणात्मक शब्द रख देने पर इसका रूप स्पष्टतया वीर छंद जैसा हो जाता है। 'रे' को निकाल देने पर यही सरसी छंद म परिणत हो जाता है जिसका परिचय आगे दिया गया है—

गोपिय लोपिय ढाण निरोविय वनि वनि भमइ मुकुंद रे।
ब्रह्म बीचारी किहिं सचारी बोलित कुल नभचद रे॥५१॥
वाट घाट सब वाधइ सहियर तब कुण रग रे।
ब्रह्म मूकी तु किमि हिव चालई पालइ गोपिय वृंद रे॥५२॥

—फागु

चान्द्रायण—११ जगणान्त और १० रगणान्त अर्थात् कुल २१ मात्राओं के इस छंद का व्यवहार ब्रजभाषा में सूरसागर के अन्तर्गत सूर ने तथा रहसिलता के अन्तर्गत ध्रुवदास ने किया है। सूर ने इसको स्वतन्त्र रूप में व्यवहृत न करके 'रोला दोहा' से संयुक्त छंद के पूर्व स्थान दिया है।[21] गुजराती में 'चद्रायणी' अथवा 'चद्रायण' चद्रावला के पर्याय रूप में माना गया है।[22] परन्तु भालण ने दशमस्कध में २१ मात्रा के चान्द्रायण जैसे एक छंद का प्रचुर प्रयोग किया है। उसे चान्द्रायण की देशी कहा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

नमने कही सकेत, नारद वेगे गया।
गाता गुण गोविंद, अतरधान थया।

राय तणे मन क्रोध, आवी प्रगट थयो।
भालण प्रभुनो भ्रात, कसे तेडावीयो।

—द० स्क०, पृ०

प्रेमानद ने अपनी 'व्रजवेलि' में जो छद प्रयुक्त किया है वह भी २१ मात्राओ
है परन्तु गति, यति तथा अन्य लक्षणो को देखते हुए वह प्लवगम अथवा अरिल्ल
होता है जिनका उल्लेख चौपाई के प्रसग में किया जा चुका है।

सरसी और सार—चौपाई की १६ मात्राओ के बाद दोहे के सम चरण की
मात्राओ के योग से २७ मात्रा के सरसी छद का निर्माण होता है। सरसी के अ
रहने वाले एक गुरु और एक लघु वर्ण के स्थान पर यदि दोनो वर्ण गुरु कर दिये
तो वही २८ मात्रा का सार छद हो जाता है। सरसी और रासक का साम्य स
के प्रसग में निर्दिष्ट किया जा चुका है। गुजराती के वर्णनात्मक काव्य में इ
व्यवहार कम हुआ है पर व्रजभाषा में सूरसारावली जैसी सम्पूर्ण रचना कुछ पवि
को छोड कर आद्योपात सार और सरसी छद में ही लिखी गयी है। भीम द्वारा प्र
'चालतीचूर्ण' सरसी छद ही है—

उद्धवनू हितकारण जाणी, बोलइ श्री भगवान।
कथा अनादि विवेक समधी, परमारथ विज्ञान।

—हरि० पो०, पृ०

अढैयु, आदि-लघु मात्रिक छंद—वर्णनात्मक काव्यो मे कभी मुखबन्ध के रू
कभी स्वतन्त्र रूप में अनेक लघुमात्रिक छदो का प्रयोग गुजराती कवियो ने कि
जिनमें से 'अढैयु' सर्वप्रमुख है। यह फागु शैली का छद है और नयर्षि के फा
उपलब्ध होता है। पहली दो पक्तियो में दोहे के सम पदो की तरह ११, ११ मा
होती है और शेष दो चरणो मे अन्तिम गेयात्मक 'अे' के सयोग के कारण १२,
मात्राएँ मिलती है[31]—

गजविड पहिरइ बाल, सिरि वरि मोतिय जाल,
करजित कमलू अे, अति नख विमलू अे॥ ३७॥

इसी प्रकार का ११ मात्राओ के अशा से निर्मित 'आन्दोला' छद भी फागु का
प्रयुक्त हुआ है। केशवदास ने 'अढैया' नामक एक छद प्रयुक्त किया है जो गेया
है और चौपाई के साथ 'अढैयु' की एक पक्ति सयुक्त करके बना है, कदाचित्
कारण उसे 'अढैया' की उपाधि मिली है।[32] केशवदास ने १२ मात्रा के एक अन्य
का 'कारिका' शीर्षक से व्यवहार किया है।[33] भालण के दशमस्कध में, मुखबन

रूप मे, अडैमु जैसे छद का बराबर प्रयोग हुआ है पर उसमें गेयात्मक 'अे' नही मिलता। कही कही चारो चरणो मे ११, ११ मात्राएँ बनी रहती हैं—

मन विमासे वात, भगिनीनो करूँ घात।
गर्भवती छे नारी, नानी बेन अे मारी।

—द० स्व०, पृ० ८

आव्या ब्रह्मा इन्द्र, तेत्रीस कोटि ने रुद्र।
नारद रुखीवर जेह, अवतार आठमो अेह।

—वही, पृ० ९

ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में ऐसे लघु छदो का व्यवहार नही हुआ है।

झूलणा—गुजराती कृष्णकाव्य में यह नरसी मेहता का सर्वप्रिय छद रहा है और उन्ही के काव्य मे विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। यह छद गुजराती के प्राचीन रास काव्यो में भी मिलता है और नरसी तक इसका स्वरूप पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका था। इसकी गति निम्नलिखित प्रमाण से चलती है—[१५]

दालदा दालदा दालदा दालदा
दालदा दालदा दालदा गा।

नरसी के 'सुरतसग्राम' और 'सुदामाचरित' में आद्योपान्त इसी का व्यवहार हुआ है। ब्रजभाषा में सूर ने कतिपय वर्णनात्मक प्रसगो में इसे प्रयुक्त किया है—

नरसी—जदुपती नाथ ते, मित्र छे तमतणा, जाओ वेगे करी कृष्ण पासे।
प्रीत पूरवतणी, हेत धरशे हरि, मनना मनोरथ सफळ थाशे।

—न० कृ० का०, पृ० १५७

सूर—झिरकि कै नारि दै गारि गिरिधारि तब पूछ पर लात दै अहि जगायो।
उठ्यो अकुलाइ डरपाइ खगराइ को देखि बालक गरब अति बढायो।

—सू० सा०, पृ० २२०

अत मे यगण के साथ १०, १०, १०, ७ के क्रम से यति और मात्राओ का विधान हिंदी के पिंगलकारो ने झूलना के लिए आवश्यक माना है।[१७] वैसे २०, १७ मात्राओ के यतिक्रम वाले ठीक ऐसे ही छद की सज्ञा हसाल दी गयी है।[१८] सेवक ने ठीक उमी जाति के 'करखा' नामक छद का प्रयोग अपने काव्य मे किया है।[१९]

त्रोटक अथवा तोटक—इस छद का प्रयोग ब्रजभाषा और गुजराती में एक दूसरे से सर्वथा भिन्न रूप में हुआ। हिंदी के पिंगलकारो के मत से यह वर्णिक वृत्त है जिसमे

चार सगण होते हैं।[१] ब्रजभाषा कृष्णकाव्य में कदाचित् सेवक ने ही इसे प्रयुक्त किया है—

पहिले हरिवंश सुनाम कहौं, हरिवंश सुधर्मिनि संग लहौं।
हरिवंश जु नाम सदा तिनके, सुख संपति दंपति जू जिनके।
—श्रीहितचौरासी सेवकवाणी, पृ० ६७

गुजराती छंद-शास्त्र के एक विद्वान् के अनुसार त्रोटक किसी छंद-विशेष का नाम न होकर बीच बीच में आने वाले छंदों का विशेषण मात्र है।[११] त्रोटक शीर्षक से अष्टकल और सप्तकल रूप वाली जो पंक्तियाँ भीम और केशवदास की रचनाओं में मिलती हैं उन्हें देखते हुए यही कहना यथार्थ प्रतीत होता है कि गुजराती कृष्णकाव्य में त्रोटक नाम से किसी छंद-विशेष का अभिप्राय ग्रहण नहीं किया गया। निम्नलिखित उदाहरण इसके प्रमाण हैं—

१—भाजइ नही ते योध, बलदेव भरिया क्रोध।
प्रहार मूकइ ठीक, तेणइ हुंइ कूटइ हीक।
—हरि० षो०, पृ० १६४

२—क्षण हाथ्य वळगा, वळी अळगा, बहु वेले तहां वाल।
वेणु वाजे गीत ज गाजे, मधुर मादल ताल।
—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ८३

३—रथ नद दोआरे जाणी रे, आवे सहु नार्य उजाणी रे।
अक्रूर क्रूर वली आव्यो रे, अथवा को अच्युत लाव्यो रे।
—वही, पृ० १४८

उक्त तीनों उदाहरणों में से छंदशास्त्र की दृष्टि से पहला तोमर का, दूसरा २६ मात्रा के झूलना का और तीसरा पदपादाकुलक का उदाहरण है।[१२] साथ ही जिस २६ मात्रा के झूलना का केशवदास ने त्रोटक शीर्षक से अधिक व्यवहार किया है वह हरिलीलाषोडशकला में प्रबंध शीर्षक से व्यवहृत हुआ है। इस प्रकार त्रोटक प्रबंध का पर्यायवाची सिद्ध होता है।[१३]

संस्कृत वृत्त: शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, इन्द्रवज्रा और भुजंगप्रयात—गुजराती में व्यवहृत इन चारों वृत्तों का ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य में कहीं भी व्यवहार नहीं हुआ है। गुजराती में संस्कृत वृत्तों में काव्य लिखने की एक परम्परा रही है जो १४वीं शती तक जाती है।[१४] ह्रस्व-दीर्घ का निर्धारण उच्चारण और गेयात्मकता के आधार पर कर लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता कवियों ने ली है और चरणान्त में प्राय क

विधान अनिवार्य रूप से बराबर किया है जो महत्त्वपूर्ण है। इस सबके आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि गुजराती कवियों ने इनका देशीकरण कर डाला है। केशवदास ने श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य में रासवर्णन ही शार्दूलविक्रीडित में किया है, पर वासणदास ने तो अपने कृष्णवृंदावनरास के समस्त अंशों को इसी वृत्त में रच डाला। नीचे दोनों के काव्य से एक एक उदाहरण दिया गया है—

१—वाहे दुदभी देव सेव करता, पुष्पो ज वर्षी रह्या।
गाये किंनर सर्व कृष्ण गुणने तेगे न जाये कह्या।
वाजे नूपुर किंकिणी वलययुक् गौरागी गोपी तणी।
मोहे मध्य मुरारी मरक्त यथा हेमाग माहे मणी।
—श्री कृ० ली० का०, पृ० १०१

२—साथि सोल सहस्र नारि शामा कामा त कामाकुली।
कीधा अगति छाटणाति कृष्णे वाजित्र वाजे वली।
खेला खेल अपार अत्य गमता राधा ते साथ सही।
राखे वासण स्वामी शण ताहारे एहवी ते वाणी कही।
—राधारास

कदाचित् दोनों कवियों ने शार्दूलविक्रीडित को रासवर्णन के विशेष उपयुक्त समझा है अथवा इस वृत्त-विशेष में रास-वर्णन की कोई परिपाटी भी हो सकती है।

मालिनी और इन्द्रवज्रा का प्रयोग गुजराती कृष्ण-काव्य में केवल रत्नेश्वर द्वारा हुआ है। बारमास नामक गेयता-प्रधान काव्य में, प्रत्येक मास के वर्णन के प्रारंभ में, मालिनी छंद को स्थान दिया गया है। न, न, म, य, य, इन पाँच गणों से बनने वाली प्रत्येक पंक्ति को कवि ने आठ और सात वर्णों के दो भागों में विभाजित करके दोनों का तुक से युक्त कर दिया है और इस प्रकार संस्कृत के वृत्त को अधिक मनोरम बना दिया है। यथा—

सुरत मुख विशाला, सांभलो व्रीजबाला।
सुकति कुसुममाला, शोक निश्वास ज्वाला।
निरखी नयन मीचे, आसुओ अंग सीचे।
दुःख लसि सखी आवे, वाय साही बोलावे।
—बृ० को० दो०, भाग ६, पृ० ८०३

इन्द्रवज्रा का प्रयोग रत्नेश्वर ने श्रीधर के 'वागीशा यस्य वदने' के अनुवाद करने में किया है—

विराजते यस्य मुखे सरस्वती।
लक्ष्मी सदा वक्षविषे विराजती।
जेने हृदे ज्ञान प्रकाश धाम।
नृसिंह ने आद्य करू प्रणाम।
—रत्नेश्वर मेघजी कृत श्रीमद्भागवत, दशमस्क

भुजगप्रयात में भीम, केशवदास और प्रेमानद ने काव्य रचना की है। प्रेमा ने इसे वृत्त के रूप में न अपनाकर गणात्मक नियमो की अवहेलना करते हुए देशी रूप मे व्यवहृत किया है जिसका नाम उन्होंने भुजगप्रयात नी देशी दिया है। किसी और उसकी चाल की देशी मे पर्याप्त अतर होता है।[3] अन्य कवियो में भी नियमो पूर्ण परिपालन नही मिलता। तुकान्त का इसमें भी विधान किया गया है। सब वृत्तो में भुजगप्रयात ही सबसे अधिक लोकप्रिय रहा है, जैसा उक्त कवियो के काव्य स प्रमाणित होता है। निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण रूप में दर्शनीय हैं—

१—तपसा तणू मूल अे देह जाणु, तेणइ वाइ अहकार प्रमाद आणु।
तप आचरता मन शुद्ध थाइ, जिणइ माया मोह अगन्यान जाइ ॥१३॥
—हरि० पौ०, पृ० ६४

२—इका आवती गोपिका पातली अे, उवा आवती आउली कल्प लई।
इशे दतधावा करी दोश टाले, कपूरे करी कोगला म्हो पखाले।
—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०५

३—गुरुचर्ण पकजनु ध्यान राखु, काली नाग श्रीकृष्णनु युद्ध भाखु।
गुरु गणपति सरस्वती शीष नामु, शुक कहे वदन वाणी नो प्रसाद पामु।
—श्रीम० भी०, पृ० २७०

२. पद-शैली

पदो की रूपरेखा—किसी भी गेय पद्यरचना को पद कहा जा सकता है। यह सबसे व्यापक शब्द है।[1] भालण और नरसी जैसे कवियो ने इसे 'कडवा' के स्थान पर व्यवहृत किया है जिसका आधार कदाचित गेयता ही है। ब्रजभाषा में यह अपेक्षाकृत निश्चित स्वरूप की रचनाओ के लिए आया है जिनमें अधिकतर टेक या ध्रुवा का होना आवश्यक है। वस्तुत पद अनेक जाति के होते हैं। कुछ ध्रुवा-रहित और कुछ ध्रुवा-सहित। दोनो प्रकार के पद दोनो भाषाओ में उपलब्ध होते हैं। नरसी की शृगारमाला तथा हिंडोलनापदो के अनेक पद ध्रुवाहीन हैं। इसी तरह सूरदास ने भी टेकरहित पदो की रचना की है।[2] अन्य कई पदकारो ने दोनो तरह के पद रचे हैं। कुछ पद अत्यन्त लम्बे होते हैं और कुछ अत्यन्त लघु। गुजराती के

कतिपय कवियो ने ध्रुवा की एक या अनेक पक्तियो के बाद कडवो की तरह कुछ पक्तियों का क्रमिक विधान किया है जिनके अत में ध्रुवा की आवृत्ति का हर बार सकेत कर गया है । ब्रजभाषा में भी दीर्घ और लघु दोनों ढग के पद मिलते है ।

ध्रुवा और ध्रुवा-सहित पद—टेक या ध्रुवा एक स्थायी गेय पक्ति अथवा पक्ति-समूह के रूप में मिलता है । गुजराती कवियो ने कही कही पद के प्रारम्भ में दी हुई पक्तियो में से अन्तिम कुछ ही पक्तियों को ध्रुवा के रूप में व्यवहृत किया है पर ऐसा कम ही मिलता है । प्राय एक द्विपदी और उससे सम्बद्ध एक लघु किन्तु विशेष गेयता-युक्त पक्ति को ध्रुवा बनाया गया है । नीचे अनेक पक्तियो वाले कतिपय ध्रुवा दिये जाते है जिससे स्थिति अधिक स्पष्ट रूप में समझी जा सकती है—

१—आनद अेक अभिनवु रे वृ दावन मझारि ।
वश वजावइ विठ्ठलु रे, तेणइ छदइ नाचइ नारि ।—ध्रुवपद
वृ दावनि गोपी नाचइ रे तेणइ रगि राचइ राम ॥वृ दा०॥
—हरि० पो०, पृ० १५३

२—माधव अतरि नारी, अगना अतरि हरि ।
रासक्रीडा वृ दावनि रमइ आनद भरि ।—ध्रुवपद
नदानदनि अेक माडिलइ अति उछाह ।
गोपी सरगा कृष्ण रमइ, वृ दावन माहिरि ॥नदा०॥
हरि० पो०, पृ० १५४

३—नली मानती मधली टोले, सारगे हर जी वीधो सोले ।
नानडियो लाचन चोले रे ।—ध्रुवपद
हरि नहूयो रे आडे, मान रमाडे ..। रे० हरि०
—श्रीकृ० नी० भा०, पृ०३१

४—मदिर माह पेमी फरी, ग्रहे गोरग भार रे,
अभिनवी विद्या अहूनी, लहो नहीं रुगार रे ।
गामला राय यशोमती, पहूं कूअर ना गुन रे ।
परूय परूय हीडे पेमनो, लीला लाडको पुत्र रे ।—ध्रुवपद । गामलो०
—वही, पृ० ८३

५—कमल पाअ अति कोमल्डो रे नयन करी अति रूडो,
अमृत पाअ रस आगलो हुइ यादव मपरूय तू पूडो । ध्रुवपद । कमल०
—वही, पृ० १०२

६—ओल्या कपटीनो क्रूर परधान, अेहने तह्ये म द्यो अेवडू मान,
शू गोप तणी मइ सान रे।—ध्रुवपद
—वही

७—चालो सहीयो जोवानें रे जइये, विनती तो जइ वा'ला ने कहीये,
सुख दु ख तो हैं डा मा रे सहीये, कोने जोइ न ता रे रहीये ॥चालो०॥
—न० कृ० का०, पृ० ४१३

८—झोलीये झूलो कहान गोवाळा।
व्रजनी बाला गाय-हालरु हालोनी नदलाला,—टक
—श्रीम० भा०, पृ० २४८

९—गोपी आवी यशोदा पासे, करवा हरिनी रावजी।
वचन बोले वढवा सरखा, हरि साथे हृदे भाव जी।
गोकुळ केम रहीअे, भागो गोरसनो व्यापार कहोजी क्या जइअे।
—टेक, गो०
—वही, पृ० २५३

गुजराती काव्य में पदो के साथ इतने दीर्घ और विविध प्रकार के ध्रुवा अथवा ध्रुवक देने की परिपाटी प्राचीन रही है। ब्रजभाषा में ऐसे ध्रुवाओ का व्यवहार नही हुआ है। श्रीभट्ट तथा हरिव्यासदेव जैसे कुछ पदकारो ने अपने प्रत्येक पद के पहले एक दोहा रक्खा है जो टेक की पक्ति से भिन्न रहता है अतएव गुजराती ध्रुवाओ स उसकी तुलना नही की जा सकती। एक पक्ति की छोटी टेक का व्यवहार ब्रजभाषा के पदो में बराबर हुआ है। गुजराती के पदो में भी ऐसी टेक बहुधा मिलती है। फाग विवाह और लोरी के गीतो में 'रे लोल' 'मनोरा झूमक हो', जैसे गेयाशो की बराबर आवृत्ति मिलती है जो लोकगीतो की छाया प्रतीत होती है।

ध्रुवा के अतिरिक्त पदो के शष अश में स्वतन्त्र चरणान्तप्रास वाली द्विपदियो का विधान हुआ है। जिन पदो में ध्रुवा नही होता उनमे भी द्विपदियो का ही विधान मिलता है। कभी कभी यह द्विपदिया ध्रुवा के तुक की एक स्वतन्त्र पक्ति देने के बाद रक्खी गयी है। ब्रजभाषा के पदो में ऐसा अधिकतर मिलता है। बहुत से पद ऐसे भी मिलते है जिनमें द्विपदियो के स्थान पर ध्रुवा के साथ तुक का निर्वाह करने वाली तथा उसी के समान गतिवाली अपेक्षाकृत दीर्घ पक्तियो का विधान किया गया है। द्विपदियो अथवा इन पक्तियों की सख्या को निर्धारित करने में कवि पूर्णतया स्वतन्त्र रहे है। प्राय यह निर्धारण वस्तु और भाव के अनुरूप हुआ है। गुजराती और ब्रजभाषा के पदो मे ध्रुवा की उक्त भिन्नता को छोडकर बहुत अधिक समानता मिलती

है। १५वीं शती में ही गुजराती कवि भीम और भालण के काव्य में उक्त सभी प्रकार के पद उपलब्ध हो जाते हैं जब कि ब्रजभाषा में इस शती में कोई काव्य नहीं मिलता।

पद-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

पदों में केवल मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। वर्णिक छंद तो कहीं अपवाद रूप में ही मिलते हैं जिन पर आगे मुक्तक-शैली के प्रसंग में विचार किया गया है। मात्रिक छंदों में अधिकतर वही प्रयुक्त हुए हैं जिनका निरूपण किया जा चुका है जैसे दोहा, चौपाई, सवैया, गीतिका, सार, सरसी, झूलना आदि। इन्हीं की जाति के तथा और भी अनेक मात्रिक छंदों के संयोग से दोनों भाषाओं में पद-रचना हुई है। तुलनात्मक दृष्टि ऐसे प्रमुख छंदों का परिचय नीचे दिया गया है—

विष्णुपद—१६, १० के क्रम से २६ मात्रा तथा अंत में गुरु वर्ण वाले विष्णुपद नामक छंद का पद-रचना में प्रचुर प्रयोग हुआ है—

भालण—१ क्षण अेक पडखोजी मनमोहन, लइ उतसंग धरू।
उभराई जाशे मही मारु, अे नवनित हरू।

—द० स्क०, पृ० ३८

२ वडी वार थइ रमता मुजने, में अति भूख सही,
हवे तो में रह्यु न जाये, रहेवा द्यो रे मही।

—वही

नरसी—गातर भग कीधा गिरधारी, जेम रे मार्या झटके।
वेण वजाडी वहाले मारे वनमा, रंग तणे वटके।

—न० कृ० का०, पृ० ३०५

मीरा—चित्त चढी मेरे माधुरी मूरत उर बिच आन अडी।
कबकी ठाढी पथ निहारूँ, अपने भवन खडी।

मी० प०, पृ० ५

सूर—मुनि वशिष्ठ पंडित अति ज्ञानि, रचि रचि लग्न धरैं।
तात मरन सियहरन राम बन-वपु धरि विपति भरैं।

—सू० सा०, पृ० २७

हरिवंश—विथकैं स्याम घटा अति नौतन ताके रंग रमी।
एक चमकि चहुँ ओर सखी री अपने सुभाय रमी।

हि० चौ०, पद ५५

रेखाकित स्थलो पर गुरु को लघु अथवा लघु को गुरु करके पढना होता है । कुछ उदाहरण ही पद-साहित्य में इस छद की व्यापकता के प्रमाण है ।

सार और सरसी—इन छदो का परिचय दिया जा चुका है । पद-साहित्य यह छद भी विष्णुपद की ही तरह अत्यन्त व्यापक रूप में मिलते है । एक मात्र अन्तर से छद परिवर्तन तो हो जाता है पर गति प्राय वैसी ही रहती है । अनिवार्यत १६ मात्राओ के बाद आती है । कुछ कवियो ने गेयता के कारण अति 'रे या 'ने' का भी प्रयोग कर दिया है—

भीम—यह विग अव महा वृक्ष ऊग्यु, प्रसरी शाखा पच ।
बीज अकुर बहु फलि फलियु, त्रिधा विस्तारे रच ।
अलीक ससार अछइ अनोपम, अगन्यानि प्रतिभासइ ।
विवेक विचारइ, दृढविश्वासइ, ग्यान प्रकाशइ नासइ ।

—हरि० पो०, पृ०

भालण—ओणी पेरे देवकी टळवळ्या, हरिने हैये चापे रे ।
पीयु तणे कर वालव आपे, मे थी हुं डु कापे रे ।
भामणडा मावडी लइने, लइ चाल्या वसुदेव रे ।
भालणप्रभु रघुनाथ मूक्या, जशोदा घेर ततखेव रे ।

—द० स्क०, पृ०

केशवदास—करे अन्याय केशव घर मारो रे, ढोळे ने गोरस गोली ।
माखण माकडला ने आपे, नित्य तेडी ने ताही टोली ।

—श्री कृ० ली० का०, पृ०

नरसी—भावे रे भजता मारो व्हालो, रग रेल रस बाध्यो रे ।
कठ विलागी कहान जी ने अधुर अमृत रस आप्यो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २

प्रेमानद—१ मूल पोतानु विचारीय रे, तु उदे थयो आज काल ।
कसने घेर गोरस लइ जाता, नद ने पडी छ टाल ।

२ मग कीधो जड गोवालानो, टाळी राव शीरावे ।
पीडारो वन पशु ने चारे, वुद्धि कोनी पावे ।

—पृ० २

मीरा—१ ऊभी ठाढी अरज करतहूँ, अरज करत भयो भोर।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अकोर।
—मी० प०, पृ० २

२ साजि सिंगार बाँधि पग घुंघरू, लोक लाज तजि नाची।
गई कुमति लई साधु की सगति भगत रूप भई साँची।
—वही, प० ७

सूर—१ ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो।
—सू० सा०, पृ० १७६

२ अति कृश गात भई ए तुम बिनु परम दुखारी, गाइ।
जल समूह वरपति दोउ अँखै हूँकति लीनें नाउँ।
जहाँ तहाँ गोदोहन कीनो सूँघति सोई ठाउँ।
—वही, पृ० ७११

ताटक—सार छद के अन्त मे यदि एक गुरु वर्ण और रख दिया जाय तो वह ३० मात्राओ का ताटक छद बन जाता है। इसका दोनो भाषाओ के पदो में कम व्यवहार हुआ है। सार छद की पूर्वोक्त कुछ पक्तियो के साथ सयुक्त 'रे' को यदि छद का अग मान ले तो वह ताटक का ही उदाहरण मानी जायेंगी। नरसी के काव्य मे ऐसे अगणित पद मिलते है। नरसी, और मीरा के निम्नलिखित पदाश इसके शुद्ध उदाहरण प्रस्तुत करते है—

नरसी—कोह सजनी ओ केह पेरे मूकु आनद रूपी मा'वा ने।
नही समरथ अवळा विण कोई जे अेहेनो पालव सा'वा ने।
—न० कृ० का०, पृ० ५३१

मीरा—नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ प्रेमी जन को जाचूँगी।
प्रेम प्रीत की बाँधि घूंघरू, सुरत की कछनी काछूँगी।
—मी० प०, पृ० ६

झूलना, हरिप्रिया आदि दीर्घ छद—गुजराती और व्रजभाषा दोनो के पद-साहित्य में दीर्घ छदो का प्रचुर प्रयोग मिलता है। झूलना एसे छदो में सर्वप्रमुख है। इसका भी परिचय दिया जा चुका है। नीचे नरसी, प्रेमानद, सूर और हरिवश के कुछ पदाश प्रमाण रूप में उद्धृत किये जाते है—

नरसी—जागी ने जोउ तो जगत दीसे नहीं, ऊंघ मा अटपटा भोगभासे।
चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे, ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे।
—न० कृ० का०, पृ० ४८६

प्रेमानद—परब्रह्म निष्कर्म ते कर्म क्रीडा करे, रास विलास व्यभिचार भासे।
भक्तविश्राम श्रीराम करुणानिधि, नामलेता कोटि कर्म न्हासे।
—श्रीम० भा०, पृ० २९४

सूर—घेरि चहुँ ओर करि शोर अदोर वन धरणि आकाश चहुँ पास छायो।
बरत वन बाँस धरहरत कुस कॉंस जरि उड़तहैं बाँस अति प्रबल धायो।
—सू० सा०, पृ० २३१

हरिवश—वदन जोति मनो मयक, अलकतिलक छवि कलक,
छपनि श्याम अक मानौ जलद दामिनी।
विगत बास हेमखम्भ मनो भुवग वेनीदड,
पिय के कठ प्रेम पुज कुज कामिनी।
—हि० चौ०, पद ८०

हरिवश की तरह सूर ने इससे भी दीर्घतर छद हरिप्रिया का प्रयोग किया है जो गुजराती कृष्ण-काव्य में अलभ्य है। इस छद में १२, १२, १२, १० के क्रम से ४६ मात्राएँ होती हैं। " हरिवश द्वारा प्रयुक्त छद के चौथे चरण में दस के स्थान पर आठ मात्राएँ हैं—

जागिये गुपाल लाल, आनदनिधि नदलाल,
यशुमति कहै बार बार भोर भयो प्यारे।
नैन कमल से विशाल, प्रीति वापिका मराल,
मदन ललित वदन ऊपर कोटि वारि डारे।
—सू० सा०, पृ० १५८

हरिप्रिया के सदृश अन्य दीर्घ किन्तु भिन्न गति के अन्तर-आवृत्तिमूलक छद गुजराती कवियों ने भी लिखे हैं। भीम ने एक पद में समान तुक के १३, १३, मात्राओ वाले चार चरण रख कर तब टेक की पुनरावृत्ति की है—

रास रमइ, नृत्य हुइ, अेक धीइ ऊतर धोइ,
मुनिवर केरा मन मोहइ, अन्तरि ब्रह्मादिक जोइ।
रे गोकुलि जनम्या गोव्यन्द।
—हरि० षो०, पृ० १६१

रचना-तंत्र की दृष्टि से हरिप्रिया और इसमें पर्याप्त अंतर भी है और वह यह कि झूलणा या हरिप्रिया में आवृत्ति वाले अंश, छन्द के अश होते हैं जबकि यहाँ वे स्वतन्त्र खंड बनाते प्रतीत होते हैं। केशवदास ने भी १४, १४ मात्राओं की तीन आवृत्तियों के योग से एक दो पदों का निर्माण किया है—

१. घुघरीये धीर न धावे, प्रेमे वहु पानो आवे,
   भूल्यो थ्यो काइ न भावे ॥ रे० हरि० ॥

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३१

२. हरिचरण ग्रही रहि नारी, मुखे हसिया देवमुरारी,
   केशवदास स्वामी सुखकारी—नन जइये रे।

—वही, पृ० १२३

भालण के काव्य में ७, ७, ७, १३ के विराम से युक्त पद-रचना के भी उदाहरण मिलते हैं। देखने में यह ७, ७, ७, ५ के क्रम वाले लघु झूलना के समान लगता है, केवल अंतिम अंश में ८ मात्राएँ अधिक हैं पर वस्तुतः ७ मात्रा वाले अंश के अंत में प्रास-युक्त गुरु-लघु वर्णो की अनिवार्य आवृत्ति इसकी गति को उस झूलना की गति मे पर्याप्त भिन्न बना देती है—

चचल काय, कोण उपाय, माखण खाय, दोणी फोडी दूधनी।
ऊखल पीठ, माडे ठीठ, कहानक दीठ, शीके थी चढी ने ग्रहे।
माकडा साथ, त्रिभुवननाथ, लइ लइ हाथ, वहेंची आपे बाल ने।
अमे आप्यु जेह, आणीने नेह, नव ले तेह, चोरी ने भावे घणुं।

—द० स्कं०, पृ० ३७

कुंडल और उड़ियाना—२२ मात्राओं के इस छंद में १२, १० के क्रम से यति का विधान होता है और अन्त मे दो गुरु वर्णों का होना आवश्यक माना जाता है।[४०] गुजराती की अपेक्षा व्रजभाषा के पद-साहित्य में इसका व्यवहार अधिक मिलता है—

केशवदास—किंकिणी ने नादे नरहरि नाहानडियो नाचे।
आखडी ने मचकडे मात यशोमती राचे।

—श्रीकृ० ली० का०, पृ० ४०

नरसी—छानो मानो आव्यो वहान, पाछली ने राते।
वेणु मां तहीं रव गायो, आवी ने प्रभाते.

—न० कृ० का०, पृ० ४१६

सूर—नासिका लोचन विशाल, सतत सुखकारी।
सूरदास धन्य भाग्य, देखत ब्रजनारी।
—सू० सा०, पृ० १४०

मीरा—मुरली कर लकुट लेऊँ, पीतवसन धारूँ।
काछी गोप भेष मुकुट, गोधन सँग चारूँ।
—मी० प०, प० ६२

जहां कहीं अन्तिम गुरु वर्ण के पहले गुरु वर्ण न आकर लघु वर्ण आया है वहाँ यह छंद उडियाना नाम से अभिहित किया जाता है जो कुंडल का ही एक उपभेद है।[१] उदाहरण के लिए सूर की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं—

नंद जू के बारे कन्हैया छाँडि दे मथनियाँ।
बार बार कहे मात यशोमति रनियाँ।
—सू० सा०, पृ० १४९

उपमान, शोभन और रूपमाला—उपमान में १३, १० का मात्रा-क्रम तथा अंत में दो गुरु वर्ण होते हैं, रूपमाला में १४, १० के मात्रा-क्रम के साथ अन्त में एक गुरु और एक लघु। यदि रूपमाला के अंत में जगण हो तो वही शोभन छंद हो जाता है।[२] ब्रजभाषा की तुलना में गुजराती में यह छंद बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं और यदि कहीं मिलते भी हैं तो यति के नियम की पूर्ण अवहेलना के साथ। मात्राओं में भी पर्याप्त शिथिलता दिखाई देती है जो एक सामान्य वस्तु है और सर्वत्र पायी जाती है—

नरसी—सोल सहस्र सुन्दरी मळी अचरज पामी।
भक्तवत्सळ मळ्यो, नरसैंनो स्वामी॥
—न० कृ० का०, पृ० २१७

मीरा—मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
—मी० प०, पृ० ६

नरसी और मीरा की उद्धृत पंक्तियाँ उपमान छंद की लगती हैं। मीरा की अपेक्षा नरसी की पंक्तियाँ कहीं अधिक सदोष हैं। नरसी ने कहीं कहीं रूपमाला और शोभन का भी व्यवहार किया है पर वह और अधिक विकार-ग्रस्त है।[३] ब्रजभाषा में सूर और मीरा आदि के कुछ पदों में यह व्यवहृत हुआ है।[४]

३. मुक्तक-शैली

मुक्तक-शैली में प्रयुक्त प्रमुख छंद और उनका स्वरूप

मुक्तक-शैली में दोहा, सोरठा, कुंडलिया, छप्पय के अतिरिक्त मनहरण, घनाक्षरी और वर्णिक सवैया का प्रयोग विशेष रूप से हुआ। पहले चार छंदों का परिचय

आख्यान-शैली के छदो के अन्तर्गत दिया जा चुका है। मुक्तक-शैली के कवियो ने इनमें कोई छदगत भेद प्रस्तुत नही किया, प्रत्येक छद में वर्ण्य-वस्तु की पूर्णता के कारण ही यह मुक्तक बन जाते है।

मनहरण और घनाक्षरी—यह वर्णिक छद है जिनमें ८, ८, ८, ७ तथा ८, ८, ८, ८ एव ८, ८, ८, ९ का यति-क्रम रहता है। अन्तिम ३३ वर्णो की घनाक्षरी देवघनाक्षरी कहलाती है और ३२ वर्ण वाली रूप घनाक्षरी।[८] सवैया गणात्मक वृत्त है जिसके मत्तगयद आदि अनेक भेद होते है।[८] मनहरण और घनाक्षरी में ह्रस्व और दीर्घ का कोई भेद ही नही रहता। सवैया में छद-शास्त्र की दृष्टि से यह भेद रहता तो है पर ब्रजभाषा और गुजराती दोनो में ही, गति के अनुसार, दीर्घ को ह्रस्व पढने की प्रथा मिलती है। इन छदो का व्यवहार गुजराती कृष्ण-काव्य में नहीं हुआ। लक्ष्मीदास द्वारा लिखित सवैये अपवाद प्रस्तुत करते है पर उनकी भाषा भी गुजराती नही है।[८] सवैया का व्यवहार ब्रजभाषा में केशवदास, मतिराम, देव, सरसदेव, नागरीदास, माधवदास, वल्लभरसिक, ध्रुवदास, नरोत्तमदास, आलम, रसखान, हरिवश और सेवक द्वारा हुआ है।

इसी तरह मनहरण को केशवदास, मतिराम, देव, सूरदास, मदनमोहन, नरोत्तमदास, रसखान, ध्रुवदास, सेवक, वल्लभरसिक, सरसदेव, तथा सेनापति ने व्यवहृत किया है। सेनापति ने सवैया का व्यवहार किया ही नही। ध्रुवदास तथा माधवदास ने मनहरण और सवैया को अपने वर्णनात्मक काव्यो में स्थान दिया है। घनाक्षरी में देव जैसे कुछ ही कवियो ने काव्य-रचना की है। मनहरण कवित्त का कुछ रूप सूर और मीरा के पदो में भी परिलक्षित होता है।[८]

कवियो ने प्राय. ८, ८, ८, ७ के यति-क्रम का अनुसरण न करके १६, १५ पर यति का निर्वाह किया है। कुछ ने उसमें भी शिथिलता दिखाई है।

आन्तर-प्रास—दोनो भाषाओ के कवियो ने कतिपय छदो में यति के साथ अनुप्रास का निर्वाह किया है। दूसरे शब्दो में यह आन्तर-प्रास आन्तर-यति के समानान्तर मिलता है। यह लम्बे छदो में विशेष रूप से मिलता है।[८] 'प्राकृत पैगलम्' तथा 'छदोनुशासन' से ऐसे अनेक छदो का परिचय मिलता है जिनमें आन्तर-प्रास एव आन्तर-यमक का विधान नियम रूप में होता है। अपभ्रश काव्य इसका प्रमाण है। यह आन्तर-प्रास कभी अन्त्यानुप्रास जैसा मिलता है और कभी यमक के रूप मे यति के पूर्वापर अशो को शृखलाबद्ध करता हुआ। दूसरी स्थिति में उसे आन्तर-यमक की सज्ञा दी गयी है। नरपति के 'फागु' काव्य में प्रयुक्त रासक और फागु नामक छदो में कुछ अपवादा

को छोड़कर प्राय सर्वत्र इसी का विधान मिलता है। कही कही यमक के स्थान पर मात्र अनुप्रास दृष्टिगत होता है, फागु की निम्न पंक्तियों में दोनों रूप दिखाई देते हैं—

१ आविय मास वसंतह गत वरइ उतगाह।
मल्यानिल्ड मह् वायउ, आयउ कामगिदाह ॥१७॥

२ वसिगु फागि नरायण, राय णमइ जसु पाइ।
तस गुण अणुदिण ग्लत, हेल तजाइ अपाइ ॥ २ ॥

गुजराती कवि चतुर्भुज के काव्य में भी ऐसे छंद मिलते हैं।

व्रजभाषा में नंददास ने रोला छंद में कही अनुप्रास और कहीं यमक की ग्रंथि दी है—

१ कृपा रंग रस अयन, नयन राजत रतनारे।
—नंद०, पृ० १५५

२ जो जनमन आकरषत, बरषत प्रेम सुधा रस।
—वही, पृ० १५६

३ तब कही श्री सुकदेव, देव यह अचरिज नाही।
—वही, पृ० १६२

४ तैसिय पिय की मुरली, जु रली अधर सुधारस।
—वही, पृ० १६४

उक्त छंदों में आन्तर-प्रास होते हुए भी चरणान्त-प्रास का स्वाभाविक रूप से निर्वाह किया गया है पर गुजराती में कुछ छंद ऐसे मिलते हैं जिनमें केवल आन्तर-प्रास का ही विधान है। चरणान्त-प्रास या तुक उनमें प्राय नहीं मिलता। नीचे की पंक्तियाँ प्रमाण रूप में प्रस्तुत की जाती हैं—

१ निरखता रुक्मणी रूप अे, भूप मोह्या ते भूमें पडे।
पीडाये सखी परय परय कामे अे, हाम धरीने हाले नहीं अे।
—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १८३

२ छ दहाडाने छोकरे ते पूतना शोषी,
तारा दोषी दुरिजन जाजो मरी रे।
मोटा थइ ने चारो वन गावडी रे,
मावडी यशोदा जी जाशे भामणा रे।
—श्रीम० भा०, पृ० २४८

व्रजभाषा कृष्ण-काव्य में इस तरह का तुकान्तहीन कोई छंद प्रयुक्त नहीं हुआ है। तुकान्त के विधान में आन्तर-प्रास की तरह ही शिथिलता दोनों भाषाओं में दिखाई

देती हैं। उत्तम, मध्यम और अधम सभी प्रकार के तुक पाये जाते हैं। हरिप्रिया, झूलणा आदि छदो में आन्तरप्रास का विधान मिलता है। नरसी ने कही इसका पूर्ण निर्वाह किया है, कही अपूर्ण और कही किया ही नही। उनकी निम्न पंक्तियो में आन्तर-प्रास दर्शनीय है। कवि ने पहली दो यतियो पर ही अनुप्रास रखने की चेष्टा की है—

कृष्ण ने हळी मळी, शीघ्र आवो वळी, जाणशे दु ख अतरजामी।
विनति मनमा धरो, आळस परहरो, सहाय थाशे नरसैनो स्वामी।
—न० कृ० का०, पृ० १५७

सूर ने तीनो यतियो को प्रास-युक्त बनाने का प्रयास किया है जिसके अपवाद भी मिलते हैं। पद-शैली के छदो में झूलना के जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें सूर की यह विशेषता देखी जा सकती है। दो यतियो में प्रास का निर्वाह हरिवश ने भी किया है। झूलना के ही प्रसग में जो पंक्तियाँ भालण के काव्य से उद्धृत की गयी हैं उनमें तीनो यतियों में प्रास का पूर्ण निर्वाह हुआ है, ठीक वैसा ही जैसा सूर के हरिप्रिया छद में। अन्य कवियो में भी आन्तर-प्रास का विधान मिलता है। वस्तुत गेय छदो के निर्माण में यह प्रवृत्ति गुजराती और ब्रजभाषा दोनो के कृष्ण-काव्य में समान रूप से पायी जाती है यद्यपि यह सत्य है कि फागु और रासक इन दोनो छदो का व्यवहार ब्रजभाषा काव्य में नही हुआ है।

रागो का निर्देश—मुक्तक-शैली में तो नही किन्तु आख्यान-शैली और पद-शैली के काव्या में रागो का निर्देश बराबर मिलता है। ब्रजभाषा के आख्यान-काव्यो में रागो का उल्लेख नही मिलता पर गुजराती में प्राय सर्वत्र प्राप्त होता है। जिन रागो का उल्लेख गुजराती आख्यानो और पदो के साथ मिलता है उनमें निम्न-लिखित प्रमुख है।

वेराडी, सामेरी, गोडी, मारू, धनाश्री, परजियो, देशी, नटनारायण, केदारो, न्हेयाल, कल्याण, रामग्री, गूजरी, मलार, कानडो, काफी, आशावरी, वसत, भैरव, टोडी, सारग, श्रीराग, मीधुडो, मालाखाड, प्रभात, विहाग, कालेरो, भूपाल, मालव, हीडोले, अरगजो, होरि और मेघ आदि।

इसी तरह ब्रजभाषा के पदो के साथ मुख्यतया निम्नोक्त रागो का उल्लेख मिलता है।

कल्पद्रुम, काफी, विभास, बिलावल, टोडी, आसावरी, धनाश्री, वसत, देवगधार, सारग, मलार, गौड, गौरी, कल्यान, कान्हरो, केदारो, नट, कमोद, जयति श्री,

भूपाली, गूजरी, मारू, माल्व, चौतारो, विहाग, भैरव, कल्याण, अड़ानो, श्रीराग, प्रभाती, भैरवी, देस, मालकोस, ईमन, खम्माच, हमीर, पचम, रामकली, हिंडोरा तथा धमार आदि ।

दोनों नामावलियों में बहुत से नाम समान रूप से मिलते हैं । इनमें सगीत की दृष्टि से राग-रागिनियां तथा ताल-स्वर सभी पर आधारित नाम हैं जिनका स्वतन्त्र अध्ययन अपेक्षित है ।

इन रागों का छद के साथ कोई अभिन्न सम्बन्ध रहा हो, ऐसा नहीं लगता।* एक ही राग के अन्तर्गत विभिन्न छद प्रयुक्त हुए हैं और एक ही छद विभिन्न रागों में निर्दिष्ट है । अतएव रागों का निर्देशन गेयता को ही प्रमाणित करता है । सभव है, मात्रा और गति के सम्बन्ध की सामान्य त्रुटियों के मूल में सगीतात्मकता भी एक कारण हो परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से बिना स्वतन्त्र विवेचना के कुछ नहीं कहा जा सकता ।

पादटिप्पणियाँ

१ प्रा० गु० छ०, पृ० १३५

२ क—वृ० का० दो० भाग १, पृ० ६६७
ख—श्रीम० मा०, पृ० २८२, २८५, २८८ आदि

३. प्रा० गु० छं०, पृ० १३७

४. नरसी . न० कृ० का०, पृ० १९९, ४२८—४३१, प्रेमानन्द रुक्मिणीहरण; हरिरामव्यास : व्या० वा०, पृ० १७६, पीताम्बरदेव : सिद्धान्त की साखी

५. छन्द प्रभाकर, पृ० ४७-५१

६. वही, पृ० ५५-५६

७. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०४

८. छन्द प्रभाकर, पृ० ४८

९. हरि० पो०, पृ० ७, २८; श्री कृ० ली० का, पृ० १२६

१०. श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ६४, ८८

११, प्रा० गु० छं०, पृ० १०५

१२ श्रीकृ० ली० का०, पृ० १४०, १४२

१३. हरि० पो०, पृ० ८, १६४, श्रीकृ० ली० का०, पृ० १

१४ हरि० पो०, पृ० १२०, श्रीकृ० ली० का० पृ० ५८

१५. श्रीकृ० ली० का०, पृ० १४१, १४२

१६ प्रा० गु० छ० पृ० १५७-१५८

१७ वही, पृ० १५९

१८ छन्द प्रभाकर, पृ० ७२

१९ प्रा० गु० छं०, पृ० ७२

२० श्रीकृ० ली० का०, पृ० १३४, श्रीहित चौरासी सेवक

२१ सूरदास डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५

२२. प्रा० गु० छ०, पृ० १६१-१६२

२३ वही, पृ० २६६

२४ श्रीकृ० ली० का०, पृ० १३९

२५ वही, पृ० १०६

२६ प्रा० गु० छ०, पृ० १०२, १०६

२७. छंद प्रभाकर, पृ० ७६, पिंगलप्रकाश, पृ० ९२

२८ छंद प्रभाकर, पृ० ७६

२९ श्रीहित चौरासी सेवक वाणी, पृ० ६१

३० छंद प्रभाकर, पृ० १५२, पिंगलप्रकाश, पृ० २०५

३१ प्रा० गु० छं०, पृ० २१३, ३१८

३२ छंद प्रभाकर, पृ० ४४ ५०, ६५

३३. प्रा० गु० छं०, पृ० २१८

३४ वही, पृ० १२, १८

३५ वही, पृ० २२८

३६ वही पृ० २२३

३७ सूरदास डॉ० व्रजेश्वर वर्मा प्रथम संस्करण पृ० ५४३

३८ प्रा० गु० छं० पृ० ८८-८६

३९. छंद प्रभाकर, पृ० ७८

४० वही पृ० ५८

४१ वही, पृ० ५९

४२ वही, पृ० ५९, ६२

४३ न० कृ० का०, पृ० ४२३, ४२८

४४ सूरदास डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५४०, मी० प० भूमिका, पृ० ४३

४५ छंद प्रभाकर, पृ० २१३ २१६, २२०

४६ वही पृ० २०१, २०७

४७ कविचरित, भाग २, पृ० ३६६

४८ मी० प० भूमिका, पृ० ४४, सूरदास डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५४०

४९ प्रा० गु० छं०, पृ० ७०, ७१

५० वही, पृ० १४०, १४१

७

भाषा-शैली

साहित्य में भावाभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम होने के कारण भाषा अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखती है। शिथिल एवं असमर्थ भाषा सुन्दर से सुन्दर भाव को प्रभावहीन बना देती है। इसके विरुद्ध सशक्त एवं समर्थ भाषा साधारण भाव में भी विलक्षणता उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होती है। श्रेष्ठ काव्य वस्तुतः भाव और भाषा दोनों के श्रेष्ठ सामंजस्य से उद्भूत होता है। भाषा की इस शक्ति और सामर्थ्य का बहुत बड़ा आधार शब्द भाडार होता है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी भाषा-शक्ति का सहज परिचायक होता है। अतएव यहाँ गुजराती और व्रज दोनों के कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त भाषा का, उसके शब्द-भाडार तथा मुहावरों और लोकोक्तियों की दृष्टि से, तुलनात्मक विवेचन पहले किया गया है और भाषा की शैलीगत विशेषताओं का निरूपण बाद में।

शब्द-भाडार—शब्द-भाडार तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी इन चार वर्गों के शब्दों से निर्मित होता है। अतः दोनों भाषाओं के शब्द-भाडार का अध्ययन क्रमशः इन्हीं चार वर्गों के अनुरूप किया जाना अपेक्षित है। देशज शब्दों के साथ लोकप्रचलित शब्दों को भी ले लिया गया है। इनके अतिरिक्त पर्याय शब्दों से भी शब्द-वैभव का अनुमान होता है इसलिए संक्षेप में इस ओर भी निर्देश कर दिया गया है।

तत्सम शब्द

जिन तत्सम शब्दों का दोनों भाषाओं में प्रयोग हुआ है उनमें संस्कृत भाषा के शब्दों का पूर्ण बाहुल्य है। धर्म, भक्ति, सिद्धान्त, दर्शन तथा उच्चतर सांस्कृतिक वातावरण से सम्बद्ध सहस्रों संस्कृत शब्दों को उनके तत्सम रूप में कवियों ने बराबर स्थान दिया है। संस्कृत ग्रन्थों को आधार बनाना और कभी-कभी आदर्श मानना इसका अत्यन्त प्रमुख कारण रहा है। 'यदि प्राचीन साहित्य का अध्ययन ध्यानपूर्वक किया जाय तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि उस समय की साहित्यिक भाषा संस्कृतगर्भित थी'। इन शब्दों के साथ व्रजभाषा के एक प्रसिद्ध वैयाकरण ने

स्वीकार किया है कि 'प्राचीन ब्रजभाषा साहित्य में तत्सम संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है'।' मध्यकालीन गुजराती की स्थिति भी प्राय ब्रजभाषा के ही समानान्तर है। १६वीं और १७वीं शती की रचनाओं में तो तत्सम शब्दों का विशेष व्यवहार मिलता ही है किन्तु गुजराती कृष्ण-काव्य में १५वीं शती से ही नर्षि, मयण, भीम और भालण की रचनाओं में बहुसंख्यक तत्सम शब्द उपलब्ध होने लगते हैं। नीचे इन कवियों द्वारा व्यवहृत कुछ शब्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं।

नर्षि—गुण, यादव, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, गृह, परिवार, मास, सत, उत्साह, मलयानिल, सहकार, अभिनव, कुल, सुरतरु, चदन, नदन, गध, रण, कामी, देव, माधव, निज, पकजनाल, विशाल निर्मल, जल, सकल, सहित, नवनिधि, नभ, तारा, प्रभु, नाग, सुरनर, प्रिय, क्रीडा, पुर इत्यादि।

मयण—कज्जल, मानिनि, निकदन, देव, गध, दिवस, विरह, उर, अति, चीर, अबला, क्षिति, भोगी, भ्रमर, रस, चतुर, ककण, शशि, पवन, कामिनि, कामबाण इत्यादि।

भीम—सनकादिक सदा, ज्ञान, वैराग्य धर्म, ऐश्वर्य, कृष्णचरित्र, उत्तम, कथा, पवित्र, सुमगला, सुललित, श्रवण, भवरोग, तृप्ति, भूमि, बहु, पीडा, मृत्यु, लोक, मस्तक केश, वाणी, परमानद, भूपाल, आकाश, नाश, वृक्ष, पुत्र, कलत्र, नागन्द्र, दिवाकर चन्द्र, प्रपच, श्रीकात, दृष्टान्त, सदेह, श्रावण, मध्य, कन्या, अपराध, दुख, यथा, विश्वास, इत्यादि।

भालण—श्रीगणपति, सिद्धिबुद्धि, हरसुत, दया, लक्ष, लाभ, उज्ज्वल, दन, माता, विख्यात, इच्छा, क्रीडा, विस्तार, स्वामी, तेजस्वी, अतरिक्ष, हस्ति, कुभस्थली, अष्टादश, द्विसहु ... निदित कर्म, अपराध,
प्रतिबोध, ज्ञान, ... आरोपण, अवतार,
कन्यका, मनुष्य, ... रूप, भाग्य, तोरण,
पुनरपि, प्राणजी ... म, मस्तक, बालुका,
स्वच्छ, पीताबर, ... क्षण, कल्याण, निज
स्थान, ऋद्धिपर्ण ... नमस्कार, आश्चर्य,
पुष्प, भास्कर, र ... , नालिकेर, प्रतिज्ञा,
मन्मथ, द्राक्ष, स ... क्षीरसागर, आह्लाद,
अवश्यमेव, इ

दिवेटिया, ध्रुव, शास्त्री आदि गुजराती भाषाशास्त्रियों ने १५वीं से लेकर १७ वीं शती के पूर्वार्ध तक की भाषा को 'जूनी गुजराती', 'मध्यकालीन गुजराती' अथवा 'गुर्जरभाषा' के नाम से एक युग के अन्तर्गत रखा है।[२] यह अपभ्रंश के ठीक बाद का युग है। १५वीं शती के पूर्वोक्त कवियों की रचनाएँ अधिकाल में विरचित होने के कारण अपभ्रंश की छाया से युक्त हैं। प्राचीन गुजराती के अनेक लक्षण उनमें पाये जाते हैं जो प्रेमानंद तक पहुँचते-पहुँचते पूर्णतया विलुप्त हो जाते हैं।[१] नरसी और भीम की भाषा जैन कवियों की भाषा से मिलती-जुलती है। ऐसी स्थिति में इन कवियों द्वारा इतनी अधिकता से तत्सम शब्दों का प्रयोग यह सूचित करता है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य की भाषा तत्समता की ओर बहुत प्रारंभ से झुकने लगी थी। १६वीं, १७वीं शती के नरसी और प्रेमानंद द्वारा तो तत्सम शब्दों का और भी प्रचुरता से व्यवहार हुआ है। प्रेमानंद की मनोवृत्ति यद्यपि लोक-सामान्य-जीवन में विशेष रमती है तथापि पौराणिक होने के कारण उन्होंने कदाचित् सर्वाधिक तत्सम शब्दों का व्यवहार किया है। नरसी और प्रेमानंद के काव्य से चुनकर कुछ प्रमुख तत्सम शब्द नीचे दिये जाते हैं जो उक्त स्थापना को प्रमाणित करते हैं।

नरसी—चैत्र, पूर्णिमा, क्षमा, युद्ध, प्रसन्न, व्यग्र, गर्व, दर्प, कदर्प, मुक्ति, निश्चय, युक्ति, पिष्टपेषण, प्राण, गोष्ठि, शोषण, सत्यभामादिक, प्रभात, स्वामी, भवसागर, वल्लभ, भ्रकुटि, भ्रमर, किंकर, नित्य, पुनरपि, अवतार, मोक्षदाता, दुर्लभ नीरस, मनोरथ, अमृत, सर्वत्र, पुरुषोत्तम, पर्वत, सहस्र, आभूषण, सकलगुणनिधान, लक्षण, निर्मल, विश्राम, संग्राम, पद्मिनी, वैष्णव . . . इत्यादि।

प्रेमानंद—वर्णाश्रम, वर्तुमकर्तु, कषायमान, अकस्मात्, शरणागत, पार्थिव, अष्टादश, शिरोमणि, व्यासात्मज, यथाश्रवण, नौका, स्नेह, इन्द्रासन गर्भ, धूम्रपान, पृथ्वी, अमृत, वसुधा, सुरभि, काष्ठाकार, पाषाण, कनिष्ठ, कारागृह, प्रातःस्नान, अश्वत्थ, प्रमाण, परमेश्वर, दीप्तिमान, सप्त, द्राक्ष, निश्वास, विरहिणी, घोष, गोष्ठी, सन्ताप, आभूषण, दूषण, प्रयाण, कर्णप्रमाण, पीयूष, श्रोतावक्ता, स्वल्प, वेदोक्त धर्म, प्रपंच, उच्छेद, ब्राह्मण, शोणितवर्ण . . इत्यादि।

लगभग ऐसी ही स्थिति व्रजभाषा के कवियों की है। सूरदास, नंददास, हरिवंश, श्रीभट्ट, गदाधर, ध्रुवदास और बिहारी के काव्य से चयित निम्नलिखित शब्द प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये जाते हैं।

सूरदास—चरण, पंगु, रंक, करुणामय, अविगत, अनर्गल, परमस्वाद, निरंतर, अगोचर, निरालम्ब, चकृत, भवत्रास, क्रीडा, कलानिधान, गुणसागर, ब्रह्मलोक,

पर्यंत, मुतक, गर्व, संताप, दृपासिंधु, क्षुधित, त्रिगुण, अंतर्यामी प्रभु, रसिक शिरोमणि, सिसी, असुरनिकंदन, मुखारविन्द, सुरत, क्रीडा, महामहोत्सव, ब्रह्मांड, शुद्ध, मेघवर्तक, आकाश, घोषकुमारी, दधिभाजन, चिन्तित, लुब्ध, मन्मथ, सुगंध, सुभगपुलिन, करपल्लव, मुद्रिका, चतुर्दश, अष्टसिद्धि, अखिल, जघन, शृङ्गार, श्रुति, कटाक्ष, मुकुलित, पद्म, मन्मथ, त्रिवली, अद्भुत, तरणि, तडिता, मध्य, गना, कलश, पीयूष, विभावरी, विराजमान, आच्छादित, नीलाम्बर, मानापमान, परितोष, सिद्धांत, यूथ, यद्यपि इत्यादि।

नंददास—प्रेम-पद्धति, तत्व, रचन, इंदु, मतिमंद, भिन्न, प्रभु, मुकुट, इंदीवर, राजीव, चिबुक-रूप, रोमावलि, अधोक्षज, प्रतिमा, अद्भुत, द्वारावति, पुलकित, आसक्ति, सर्म, स्त्रिया, दिव्यदृष्टि, विमलता, वृद्धि, अमरेंद्रवृंद, कृपानिधान, नीलोत्पलदल, रसासार, विद्या, तिमिरप्रसित, रसिकपुरंदर, उज्ज्वल, परमात्मा, परब्रह्म, प्रारब्ध, छादन, अवधिभूत, सच्चिदानंद, आश्रय इत्यादि।

हरिवंश—प्राण, श्रवण, रमण, रसलंपट, भूषण, शिथिल, अलकावलि, शिखरिन, रचिर, गौमन, गलित, अलहन, निमिष, शिरोमणि दम्पति, प्रमथित, मिथुन, निर्मित, सुपेशल, मुकुर, विभ्रम, ललितादिक, सम्भ्रम, विशदवेश, राका, मध्य, नेति नेति, मेपथु, अद्भुत, कौशेय, चिकुर, चिबुक, पृथु, नितम्ब बृह कटि, रतिरण, माधविका, मधुपूरित, पद्मरिव, जघनदुकूल, पयोधर, खंडित, विलुलित ....इत्यादि।

श्रीभट्ट—वृंदाविपिनविलास, वृषभानुजा, पुंज, त्रिभुवनपोषण निरंतर, व्यंजन, पुष्प, चंदन, सौरभ, मुकुट, मन्मथ, मिथुन, भृकुटि, मुदित, मम्भव, सिंगार-मंडित इत्यादि।

गदाधर—पदारविन्द, परमतत्व, पुलिन, पवित्र, विचित्र, पल्लवनिर्मित, स्थल, कलधौत, पद्माकर, दूर्वांकुर, नित्यानंद, भृकुटि, कौस्तुभमयूख, नादामृत, मदनमदगर्वहर, मुरलिका, पीयूषनिर्झर, ब्रह्म, रुद्रादि, गुच्छ, घटिका, दृष्टि, स्वाद, प्रतिबिंब, क्रीडा, आडम्बर . इत्यादि।

ध्रुवदास—चित्रित, विचित्र, कल्पतर, अवलब, क्रिया, प्रथम, प्रताप मंडलाकार, विस्तार, कुंज, मंजु, युगल शृंगार, नासापुट, कंचुकी, कंचन, नारदादि, ब्रह्मादि, दम्पति, प्रेममाधुरी, अद्भुत, नित्य, किशोर, मुक्ता, हृद्रोग, वारिधि, राजहंस, विपरीत, अनुराग, निगम इत्यादि।

बिहारी—हरित, नृपति, स्तन, लोचन, विरह, लोभ, स्वेद, रोमाच, कच, भुज . इत्यादि।

दोनो भाषाओं के कवियो ने अपनी अपनी भाषा के अनुकूल सामान्य ध्वनि-परिवर्तन कर के तत्सम शब्दो का इससे कही अधिक बड़ी सख्या में व्यवहार किया है। पूर्वोक्त अनेक शब्द इस ध्वनि-परिवर्तन के साथ उन्ही काव्यो में व्यवहृत हुए हैं जिनमें वे तत्सम रूप में मिलते हैं। कुछ तत्सम शब्द छद-निर्वाह या उच्चारण सम्बन्धी अनेक कारणो से अत्यन्त विकृत कर दिये गये हैं। कही कही उनमें बिना स्पष्ट अकारण के प्राय स्वेच्छा से ही कवियो ने विकार उत्पन्न किये हैं। उदाहरणार्थ गुजराती में भीम द्वारा प्रयुक्त हीम, वीनती, पापीष्ट, ऊर, त्रिभौवन, मगलच्यारि, भालण द्वारा प्रयुक्त अन्या (अन्याय), प्रतीकार, प्रत्य, रोहिदास (रोहिताश्व), प्रभा (प्रवाह), केशवदास द्वारा प्रयुक्त नार्‌य, मुरार्‌य, धूल्य, घूसारव, विक्षात, कोमल्ल, नरोहरि, सक्षा, नरसी द्वारा प्रयुक्त भ्रखुमान, सोरण, रुदीया, व्रध, अधुर, केन्द्रप, (कन्दर्प), कलिवर, भूजवल, दुरीजन, धनुष्याकार, अहोनीश, भर्म, शीव, तथा प्रेमानद द्वारा प्रयुक्त अशरणशर्ण, जगत, अहरनिश, शमश्या, गर्भभासुर, नाटारभ अतूल, ओशीकल, प्राक्रम, शीला (शिला) प्रस्तुत किये जा सकते हैं। व्रजभाषा मे इसी प्रकार सूर ने कैटभारे, वैराग, तातु, अकाश, तटनी प्रभृति शब्दो का प्रयोग किया है। व्रजभाषा के अन्य कवियो ने भी स्वेच्छा से तथा छद-निर्वाह के लिए तत्सम शब्दो में पर्याप्त विकार ला दिया है जिसके उदाहरण कम नही मिलते, प्रकट, भोग, अवतार, शोध, परिणय, निस्सरण, खड, प्रणाम, पोषण, सतोष, विस्तार, हरण जैसे अनेक तत्सम शब्दो से दोनो भाषाओ के कवियो ने क्रिया पदो का निर्माण कर लिया हैं जिनमें तत्समता पूरी तरह सुरक्षित रही है। इस प्रकार तत्सम शब्दो को विविध रूप में प्रयुक्त करना कवियो की शक्ति का परिचायक हैं और कही कही अशक्ति का भी।

तद्भव शब्द

गुजराती और व्रजभाषा दोनो का विकास अपभ्रश से हुआ है अतएव तद्भव शब्दो का अत्यन्त विशाल सख्या में पाया जाना स्वाभाविक ही है। दोनो भाषाओ के कवियो ने तद्भव शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है, १५वी शती की गुजराती भाषा अपभ्रश के अधिक समीप है अतएव नरपति, मधण, भीम और भालण की रचनाओं मे तद्भव शब्दो का प्राचुर्य विशेष रूप में मिलता है। केशवदास, नरसी और प्रेमानद द्वारा रचित बाद की रचनाएँ भी अगणित तद्भव शब्दो से आपूरित हैं। इन सभी कवियो की रचनाओं से कुछ प्रतिनिधि शब्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

नर्पति—जसु, मझारि, जादव, पुहता, सहिअर, रा , अतेउरी, नेउर, केउर, हरखिय, निरखिय, दीविह (द्वीप), मयण, पणमइ ।

मयण—मूकी, पयोहर, नाह, वयण, कचूउ तुह, वभ, सयल, नत्थि, तिरिथ, निठर, रवणि, विहुडण, दैताह, नेह, उल्हसी, वइट्ठी, दिट्ठी दूहविउ, ठविउ, वत्त, वल्लही, मच्छी, लच्छी, वुझ्झवि, एकाउलि, रेह, किद्धीय, पुलइ, पेपीय ऊअरि, डसण, समप्पिय, गल्ल, गेहणि, तूठइ, अहर, पीनत्थण, सूकइ, नीसासह, भिनउ नियतणु इत्यादि ।

भीम—थाण, अवर, विहु, कान, आगलि, हुआ, कूअडइ, सरखा, पुहुता, कीधु, मूकीइ, मझारि, कमाड, विणठी, नचत (निश्चित), दाधी, सूवइ हैआ, सघला, दीठु, सूतइ, दीआल, पोलिदुआरि, फोफल, पसाइ, न्यान इत्यादि ।

भालण—पासा, दीठी, कादवे, केड, पूठे, गोठडी, सूढे, ठार, सासु, जेठाणी, मुगट, जड्या, मूको, माणस, अमी, अलूणा, पाखे, ठाम, सवला, जुइ, भादरवे इत्यादि ।

केशवदास—सायर, गेडी, मोहोटू, हइआ, दीवो, साकर, जूठु साचू, दुल्लभ दूवली, मुझार, गोवाल, सहु, वखाण, वयण दोहिला मुया, अवर, घरत, विचरत, तनखेव, रखवाल, आँखडी, पाँसडी इत्यादि ।

नरसी—फागण, पूठल, आखा, सहीयर, खूण, मुआ, आसु, दोहेला, जुवती, सणगार, वहाली, जोवन, वायक, चुडिलो, दाझे, पीयु, पखीआ, उग्यो, आयम्यो रेणी, वालमा, नेण, जाम, विभिचारी, माकडा, गेडी, दीठी, पालव, सीख, रीत, मोंघी, वाई, . इत्यादि ।

प्रेमानद—तबोल, गाम, हैया, वाझणी, अजाणी, नेण, भाणेजो, मासी, हीका, दोर ओछगे, माणस, पहोर, मलियागर, महोटा, दीवो, भामणे, मोझार, गाडा, दंत, फोफल, फणसी, केसु, पोयण, गोवाला, विखाणे, घेर, दहाडे, पूठे, मूके, गेडी, आहीर, पेण्या, लीधु, दीधु, लोडु, जोम, मेह, जोवन, ठाम, मच्छ कच्छ, नाठा, चोहोयुग दूगणा, थोभण, आखो दात, भूखी, बरसात, खट, कोड, पाछा, नहावा, दीसे, कुहाडा, लावा, जोग, विजोग, विहूणी, माछली, आवा, पाखे, भादरवो, सहियर, भोजाई, वादव इत्यादि ।

ब्रजभाषा के कवियों ने भी अगणित तद्भव शब्दों का व्यवहार किया है परन्तु उनमें अपभ्रंश की छाया, जो १५वीं शती के गुजराती कवियों में बहुत अधिक स्पष्ट है, कहीं भी प्राप्त नहीं होती । हरिवंश की स्फुट वाणी में अवश्य अपभ्रंश का

आभास मिलता है जो कृत्रिम है। सूर, नददास, हरिवंश, श्रीभट्ट आदि जिन कवियों के काव्य से तत्सम शब्द उद्धत किये गये हैं उन्हीं के काव्य से नीचे तद्भव शब्दों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जिससे तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट प्रकट हो जाती है।

सूर—ढिठाई, पठाई, गवन, भक्तवछल, जाति गोत, खभ, वरजि, भरमति, निठुर, सीग, दई, बिगरी, गाठि, दात, छिन, काजर, वच्छ, पूत, गुनी, नैन, बेनी, पाति, फरी, थाप्यो, थिर, पुहुप, साथिये, सँजोइ, लीपि, भार्दौ, आठै, मोवरनथाल, ठाँउ, पाछे, वनिया, धरनी, भुवगम, वाभन, विनानी, मथनियाँ, चौगुनौ, कोखि, जायो, आँसू, चोच, ग्वारि, वरही, अँगुरी, साँझि, मुकुना, अकवारि, बूँद, सरवर, वाग, चिहुर, मूँदि, भौंहन, बारे, बाँह, मँडवारी, जोवन, फागुन, भौन, अँचरा, पतूखी . इत्यादि।

नंददास—प्रनऊँ, जोति, वरनत, झाई, बिख, देस, ठाँ, जीह, अच्छर, पखान, धौरहर, नाइव, पछितयो, रूखन, रवनी, धरती, लुनाई, सुठौन, राउ, जोवन, लच्छ, साँवरो, जतन, परपचनि, मुरझाइ, धूरि, उपखान, अकास, परमान, दुलही, वजमारे, मौसिन, बिजुरी, करनिवा, दुति, माँझ, साँझ, मनमथफाँसी, गाँउ, रूसि, मूरति, विजना, जुद्ध, अतरजामी, सुमिरन, भाड, अटारी, इत्यादि।

हरिवंश—ठौर, समै, जुद्ध, जुत, परायन, जुवती, अस, नैन, औसर, सिज्या, नइ, बूँदन, नयी, पिया, धरम्म, भवन्न, विसवासित, बिछुरत, निक्कज, गज्ज, लज्ज, विहून . इत्यादि।

श्रीभट्ट—चरन, तीरथ, गोद, धीरज, भौंह, मैन, बिछौने, चँवर, निरखत, रतियाँ, हुलसन्त, जूथ, सुहाग, छता, मेह, धुनि, सुकुँवारी, अस, अरुन... ..इत्यादि।

गदाधर—चोस, उपाइ, वरखा, पनारे, उल्हयो, पूत, सीस, ग्यान, मर्जादा, वितई, ठई, छिन, सुहाग. .... .इत्यादि।

ध्रुवदास—अँन, रँग, निबाह, नैन, सिगार, हुलास, सनेह, पिय, सुहाई, कुँअरि, निमरे........इत्यादि।

विहारी—नीठि, दीठि, ईठि, नैन, नेहु, जोति, दुति, अहेरी, जोवन, दुलहिया, पिय, बिधुरे, जोन्ह, जतन, मोनु, तोपु, दच्छिन, पच्छौनु, सोनजुही......इत्यादि।

दोनों भाषाओं के काव्य में प्रयुक्त तद्भव शब्दों पर दृष्टिपात करने से सहज ही ज्ञात हो जाता है कि इस ओर कवियों की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होती रही। प्रायः तद्भव शब्द तत्सम अथवा अर्धतत्सम शब्दों के द्वारा स्थानान्तरित किये जाने लगे।

लोक-प्रचलित तथा देशज शब्द

मध्यकालीन भक्ति-साहित्य बहुत अंशों में लोकोन्मुखी रहा है। लोक-चेतना से उसका निर्माण हुआ है और लोक-भाषा में उसे अभिव्यक्ति मिली है। कविगण लोक-जीवन से बराबर सम्बद्ध रहे हैं। फलत लोक-व्यवहार के बहुसंख्यक शब्द दोनों भाषाओं के काव्य में उपलब्ध होते हैं जिनमें अनेक शब्द ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं सिद्ध होती अतएव उन्हें देशज संज्ञा दी गयी है। आगे गुजराती कवियों में भीम, भालण, केशवदास, नरसी और प्रेमानन्द की रचनाओं से ऐसे शब्द प्रमाण रूप में उद्धृत किये गये हैं।

भीम[९]—झखइ, फोक, ऊलटपालट, तालोवेलि, जूजूआ, भाकझमाल, खूसट, चीस, रलीयामणी, सुचग, फरूकइ,.... ... इत्यादि।

भालण[१०]—भुंटी, टाढु, हुलरावशे, घवरावी, लटके, टळवळ्या, फाव्यो, दीकरी, करगरे, झडपी, बोवडु, अटपटी, वटोलियो, अडवडशे, लडथडशे, जोखम, चरमलडो, कोलियडो, अवटाऊ, तालावीहीली, भभेरी, पाखल, टची, फोकट, छेलपण, मोडामोड, धिंगाई, असुर (देर), अलूराई, मीटसगाई. ..... इत्यादि।

केशवदास[११]—टोळे, हलुअडे, चमचमे, हाम, गीर्कू, हालेडोले, लाडघेहेली, पाडोशण, निटोल, डूगर, छीलर, ठाकोर... ... इत्यादि।

नरसी[१२]—भाकमभोल, खचको, भचको, टीलडी, झगझोल, वल्गाझुमी, मरकलडो, .सथरु, गाजे, माची, टाढु, कीलक्लाट, शाकु, तोतलु, ओथ, चीथरडु, धूलधाणी, थोथाठाला, गोहरा, ठुपणु, आडडो, झोटी, टकोर्वसो, खाट...इत्यादि।

प्रेमानंद[१३]—पोपटी, दीकरी, छोकरा, चत्तापाट, शीके, मोठडा, लटपटी, भडकी, झुझकार्यो, गुछला, छछेडी गडगडाट, टुकडो, पीपली, खखार्या, करमाया, टळवळी तरफडे, हलुवे, टळके, झीले, टोळे, गोरटी, खंजरी ढोलकी, रवावडु, बापडु पडछदा, आछटे, डाबो, फडफडे...इत्यादि।

ब्रजभाषा में लोक-प्रचलित तथा देशज शब्दों का और भी अधिक व्यापक प्रयोग हुआ है। पदकारों में सूर सब का प्रतिनिधित्व करते हैं। सूरसागर में ऐसे शब्दों का सर्वाधिक व्यवहार हुआ है। आख्यानकार कवियों में नंददास तथा रीतिकारों में बिहारी प्रतिनिधि रूप में लिये जा सकते हैं अतएव ब्रजभाषा के इन्हीं तीनों कवियों की रचनाओं से ऐसे शब्द चुनकर प्रस्तुत किये जाते हैं।

सूर[१४]—खतियाना, अपुनपौ, कैती, चेटक, धगरी, मेत, महरैटी, सिकहरैं, विरुझाना, सकाना, अजगुत, मौडा, उपरफट, खसमगुसैया, हटकना, टटकी, चिकनियाँ

मुहाँचही, गास, चोटी-गोटी, फग, खोचन, हाँक, डहकाना डोगरी, अचगरी, अलालडेते, अबूट, ढुढ, अहीठ, ठगमूरी, साट, चाँडिले, गोसो, खुटक, फेफरी, बुड्की, छोहरा, सकसकाना, झूखी, नौतम, फोक्ट, ठालीबैठी, जोरावरी, खिनियानो, टकटोरना, निटोल, फूचो .... इत्यादि।

नंददास "—छिल्लर, निरवारि, चटसार, लरिकाई, लटकि, फूलेल, सुभी, टौनौ, गुडा-गुडी, धुरवाने, पुई, ठगौरी, झरमलताई, उनहारी, अचरिज, टटावक, चुचाई, मुसकि, ठकुराइत, ढिग, पटबिजना, झींगुर, अहरनि, डहकि, नकवानी, होडनि, अराइ, उगहन, चटपटी, अटपटी, बजमारे, चुटिया, इत्यादि।

बिहारी "—मरक, होडाहोडी, सुभी, भौर, अनाकनी, बहाऊ, झलमुली, ठोडी, टलटली, बरबट, चटपटी, एडी, आट, महावर, बदाबदी, बिरकिटी, चटकाहट, चुहुटिनी, गदराने, गोरटी, हठ्यौ, इठलाइ, मुल्की, गुडहर, अनखाइ, लरिका, महदी . इत्यादि।

इन दिये हुए शब्दो में सभव है कि कवियो ने कुछ अपने आप गढ लिये हो परन्तु सभी शब्दो की रूपरेखा स्पष्टतया लोक-सिद्ध, ठेठ और देशज लगती है।

विदेशी शब्द

कृष्ण-काव्य में विदेशी शब्दो का सामान्यत बहुत कम व्यवहार हुआ है। बहुत से कवि ऐसे है जिन्होने विदेशी शब्दो का बहिष्कार सा किया है पर कुछ ऐसे भी हैं जिनके काव्य में कतिपय स्थलो पर इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है। ऐसे स्थल अपवाद रूप में ही मिलते है।

गुजराती कवियो में भालण ने 'कागळ' का प्रयोग अपने दशमस्कध में किया है।" 'कागळ' निश्चित रूप से अरबी 'कागद' का रूपान्तर है। नरसी ने दस्त, होश, दील, नूर, शर्म जवाप, जकात, माल, हाल, फजेन, इजारे, मीरात, जैसे कई शब्दो का व्यवहार किया है जो सभी विदेशी है।" प्रेमानद के दशमस्कध के अन्तर्गत 'साकी' 'नफेरी' आदि शब्द अपवाद रूप में ही मिलते हैं।" परन्तु उनके रुक्मिणी-हरण में बाज, हौदा, नेजा, काफला, अरज, भूना, सरदार, उमराव, तरवार रस्ता, कौतमाव, तैयार, बख्तर जैसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए है।"

ब्रजभाषा में सूर के काव्य में बहुत से अरबी-फारसी शब्द व्यवहृत हुए हैं।" 'साचो सो लिखवार कहावै' पक्ति से प्रारम्भ होने वाले उनके एक ही पद में मसाहत, मँद, जहतिया, मगूर, फरद, अमल, अवारजा, मुजमिल, कुल्ल, बारिज, जमाखर्च

गुजरान, मुसाहिब और जवाब इत्यादि कई दुरूह विदेशी शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[१] ऐसे ही एक दूसरे पद में अमल, साविक, मिनजालिक, बासिलबाकी, स्याहा, मुस्तौफी, मुहर्रिर जिम्मे आदि का प्रयोग हुआ है।[२]

'गरीबनिवाज', 'दामनगीर' तथा 'शहर' जैसे और भी कई शब्द सूर के काव्य में मिलते हैं।[३] नंददास ने 'गरज', 'लाइक' 'अरदास' आदि का व्यवहार अपवाद रूप में ही किया है।[४] वल्लभरसिक की वाणी में स्याह, जुलफ, इश्क, शहर, मुश्किल, जाहर, परदा, हाल, महबूब, आशिक जैसे बहुत से शब्दों का व्यवहार हुआ है।[५] इसी तरह हरिदास के पदों में दर, पिदर आदि शब्द प्रयुक्त मिलते हैं।[६] बिहारी ने भी अनेक फारसी-अरबी शब्दों का व्यवहार किया है। उनके दोहों में इजाफा, हवाल, कबूलि, रोज और ताफता आदि क्लिष्ट-सरल सभी तरह के विदेशी शब्द मिलते हैं।[७] सदर्क, सिलाम, खानाजाद जैसे कुछ अरबी-फारसी शब्द मीरा के काव्य में भी पाये जाते हैं।[८]

फारसी के राजकीय भाषा होने के कारण तथा दरबारी प्रभाव के कारण बहुधा ऐसे शब्द दोनों भाषाओं में व्यवहृत हुए हैं। कवियों ने उनके रूप और ध्वनि में अपनी अपनी भाषा की प्रकृति के अनुसार परिवर्तन कर दिया है।

पर्याय शब्द

सूर्य, चन्द्र, कमल, भ्रमर, दिन, रात, नयन, मुख आदि अनेक शब्दों के अनेक पर्याय दोनों भाषाओं के कवियों द्वारा, अर्थ तथा छंद की आवश्यकतानुसार, बराबर प्रयुक्त हुए हैं। सबका परिचय देना संभव नहीं है अतएव दोनों भाषाओं से केवल 'कृष्ण' शब्द के पर्याय यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं जिनसे इस सम्बन्ध की तुलनात्मक स्थिति का आंशिक परिचय निश्चित रूप से हो जाता है। दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में 'कृष्ण' से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई शब्द हो भी नहीं सकता।

गुजराती कवियों द्वारा कृष्ण के लिए विट्ठल[९], त्रीकम[१०], सामलवान[११], भूधर[१२], शालिग्राम[१३], और रणछोड़[१४], आदि कुछ ऐसे पर्यायों का प्रयोग व्यापकता से हुआ है जो या तो ब्रजभाषा में प्रयुक्त ही नहीं हुए हैं या केवल अपवाद रूप में उपलब्ध होते हैं। 'वीठल', 'सालिगराम' और 'टीकम', जो त्रीकम (त्रिविक्रम) का ही परिवर्तित रूप है, का व्यवहार मीरा की पदावली में मिलता है।[१५] 'वल्लभ' शब्द के विविध रूप वाहला, वा'ला, वहालो नरसी के पदों में कृष्ण के लिए प्रायः प्रयुक्त हुए हैं।[१६] इसी शृंखला में मीरा द्वारा प्रयुक्त 'बाल्हो' भी आता है।[१७] प्रेमानंद

ने 'पाडुरग' का प्रयोग किया है जो कदाचित् किसी अन्य कवि द्वारा प्रयुक्त नही हुआ—

मुने मळीया पाडुरगा रे ।

—श्रीम० भा०, पृ० ३३२

कृष्ण के विकृत रूप कहान, कहाना, आदि का प्रयोग भी गुजराती कवियो ने बराबर किया है।[80] ब्रजभाषा में इसी तरह कान्हा, कन्हैया, कन्हाई आदि का सतत व्यवहार हुआ है।

कृष्ण के लिए गुजराती कृष्ण-काव्य में बहुत से विष्णुवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं।

श्रीरग, नारायण, माधव, गोविन्द, गरुडाग्रामि, हरि, भगवान, श्रीकान्त, जगन्नाथ, श्रीपति, नरहरि, वैकुठराय, चतुर्भुज, जगदीश, जुगजीवन, गरुडारूढ, केशव, श्रीनाथ, लक्ष्मीनाथ, कमलेश, कमलापति, लक्ष्मीवरा, पुरुषोत्तम, चक्रपाणी, अच्युत आदि। यह और पूर्वोक्त त्रीकम, विट्ठल, शारगपाणि आदि सब शब्द विष्णु के अवतारी तथा ऐश्वर्यशाली रूप से सम्बद्ध विविध वस्तुओ पर आधारित हैं। ब्रजभाषा में भी इनमें से अधिकाश शब्द व्यापक रूप से कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मुकुद, मुरारि, दामोदर, आदि कुछ अन्य शब्द भी दोनो भाषाओ में समान रूप में मिलते हैं। कृष्ण के लिए विविध प्रकार के सम्बन्धमूलक, नदकुमार, नन्द-किशोर, नन्दलाल, नदनदन, यशोदानदन, वासुदेव, राधावर, राधिकारमण, हलधर-वीर, बलवीर, गोपीनाथ, ब्रजविहारी, ब्रजराज, वनमाली, गोकुलराय, गोकुलनाथ, गोपाल, कुजविहारी, जादवराय, जदुनाथ, जदुपति, जदुनदन, तथा उनके सौन्दर्य एव रूपगुण आदि को प्रकट करने वाले श्यामसुन्दर, श्याम, सुन्दरश्याम, घनश्याम, सावलिया, मनमोहन, मोहनलाल, रसिकशिरोमणि, मदनगोपाल आदि शब्दो का भी दोनो भाषाओ में व्यापक व्यवहार हुआ है। गुजराती में सौन्दर्यमूलक शब्दो में 'शामळा', 'श्यामळिया', 'शामलवान' जिनका उल्लेख हो चुका है, का अधिक प्रयोग हुआ है और ब्रजभाषा में श्याम, घनश्याम आदि का। ब्रजभाषा में नाम के स्थान पर स्नेहसूचक लाल, लाडिलो, प्यारो, जैसे कुछ शब्द भी सामान्य रूप से व्यवहृत हुए हैं। कृष्ण के लिए ब्रजभाषा में प्रयुक्त कदाचित् बहुत कम ऐसे शब्द हैं जो गुजराती कृष्ण-काव्य में न मिलते हो।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

लोक प्रचलित भाषा में लोक के अगणित अनुभव वाक्यो तथा वाक्याशो के रूप में सचित होते रहते हैं जिन्हें लोकोक्तियाँ तथा मुहावरो की सज्ञा दी

जाती है। इनमें लाक्षणिकता, अर्थ-गभीरता, वैचित्र्य तथा मार्मिकता के साथ सारल्य का अद्भुत योग रहता है। कभी-कभी इनकी सरलता साहित्य के शतशः लाक्षणिक प्रयोगों से भी अधिक प्रभविष्णु सिद्ध होती है। दोनों भाषाओं के कृष्ण-काव्य में इनका पर्याप्त व्यवहार हुआ है। लोकोक्तियों और मुहावरों के बीच बहुत गहरी सीमा-रेखा नहीं खींची जा सकती फिर भी सामान्यतः जो अर्थ ग्रहण किया जाता है उसके अनुसार कहा जा सकता है कि गुजराती कृष्ण-काव्य में लोकोक्तियों का व्यवहार कम और मुहावरों का व्यवहार अधिक हुआ है। ब्रजभाषा में दोनों प्रायः समान अनुपात में व्यवहृत हुए हैं। गुजराती में भालण, नरसी और प्रेमानंद को छोडकर अन्य कवियों की भाषा में इनके बहुत कम दर्शन होते हैं। इसी तरह ब्रज-भाषा में सूरदास और नंददास के द्वारा ही इनका विशेष व्यवहार हुआ है। गुजराती के उक्त कवियों द्वारा व्यवहृत कुछ लोकोक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

भालण [१]—क. कीधु पोतानु पोने रे सहेवु।
ख. कालवश छे सकळ प्राणी कोण मारे, कोण मरे।
ग. जेने भावे बावल बोरडी ऊंट आगळ धरे पान।
घ. वेहुनी राढ माँहे वेहु जागे त्रीजे नव लहेवाय।

नरसी [२]—क. बात पकवान थी भूख न भागे।
ख. करनी तो कागनी होड करे हंसनी।
ग. तादुल मेलीने तुष वळगी रहे भूख नहि भागे सेम थोथे ठाले।
घ. परहरी वस्त्र ने वळगे चुथे।
ङ. अधगुरुओ वळी निरध चेला कर्या।
च. आकना वृक्ष थी अमृत फळ तोडवा।
छ. सोनु ने सुगन्ध अेक छे रे।

प्रमानंद [३]—क. पोपटी प्रसवे सुतने हुलावे होली।
ख. कीडी सचे ने तेतर खाय।
ग. अेक मारग ने वे अर्थ।
घ. सुख मा व्यापे क्रोध ने काम। दुःख मा सांभरे केशवराम।
ङ. छपाचे पोचे हाथो हाथ नु काम।

संभव है इन उक्तियों में सभी वास्तविक लोकोक्तियाँ न हों किन्तु कथन-शैली निश्चय रूप से लोकोक्तियों के सदृश है। कभी-कभी समर्थ कवियों के ऐसे कथन ही लोकोक्तियों का रूप धारण कर लेते हैं। ब्रजभाषा के कवियों में से, जैसा कहा जा चुका है, सूर और नन्ददास प्रतिनिधि रूप में लिए जा सकते हैं। यद्यपि परमा-

नन्ददास आदि अष्टछाप के शेष कवियो तथा अन्य पदकारो एवं रीतिकारो द्वारा भी लोक-प्रचलित उक्तियाँ काव्य में ग्रहण की गयी है तथापि उपर्युक्त दोनो कवियो का महत्त्व इस क्षेत्र मे सर्वोपरि है, जैसा निम्नोद्धृत लोकोक्तियो से स्पष्ट प्रमाणित होता है—

सूर[५४]—क. दुरत नहिं नेह अरु सुगन्ध चोरी।
ख. बीस बिरियाँ चोर की तौ कबहुँ मिलि है साहु।
ग. जो जाको जैसो करि जानै सो तैसो हित पावै।
घ. सूर मिले मन जाहि जाहि सो ताको कहा करै काजी।
ङ. खाटी मही कहा रुचि मानै सूर खवैया घी को।
च. झूठी बात तुसीसी बिनकन फटकत हाथ न आवै।
छ. कहा कथन मौसी के आगे जानत नानी नानन।
ज. जैसो बीज बोइए तैसो लुनिए।

नंददास[५५]—क. घर आयो नाग न पूजही बाँबी पूजन जाहि।
ख. बातन बिजन कोन अघाये, काके हाथ मनोरथ आये।
ग. मृगतृष्णा कब पानी भई, काकी भूख मन लड्डुवन गई।

मुहावरो के सम्बन्ध की तुलनात्मक स्थिति के परिचय के लिए भी दोनो भाषाओ के पूर्वोक्त कवियो के काव्य से ही उदाहरण दिये गये है—

भालण[५६]—क. पडे ते झाखो थई।
ख. स्वप्ने नव सुणियुं।
ग. लूण उतारे भामणा डाले।
घ. चोल तणो जेम चटको रे।
ङ. विण मूल्ये वेचाणी।
च. चापे आगुली रे ते दाते।
छ. मीट माडी रहया।
ज. नहि सुण्यो नव दीठो।
झ. ठाली जाउं।
ञ. कह्यो तेवा सम खाउं।
ट. पर थी घर वसे नहि।
ठ. न जाणे दूध न पाणी।
ड. घणे दिन हाथे चडी।
ढ. खात थाय।

ण. बला लउँ तारी हो ।
त. अधा में ज्यम लाकडी ।
थ. जो कनक तोलो काय ।
द. जो हिम गालो हाड ।

नरसी[४७]—क. बोल्यो पीशी हाथ ।
ख. करी दईश घडी मा पाणी पाणी जी ।
ग. कुशल छे बालगोपाल सहु ।
घ. कान भकारा ।
ङ. तारे हाथ अे आवे नही ।
च. राड न कीजे ।
छ. बूडता बाहेडी कुण सहाशे ।
ज. पोहो फाट्यु ।
झ. शु मूछ मरडे ।
ञ. थोथा ठाला खाड्या ।
ट. खात भागे ।
ठ. पार पाम्या ।
ड. जेहने जे गमे ते ने पूजे ।
ढ. सात साधु त्यारे तेर टूटे ।
ण. रक मनावु त्यारे राय रूठे ।

प्रेमानंद[४८]—क. नन्दजी राखो बाँधी मूठी ।
ख. भडकी उठ्यो ।
ग. पडी तेने पेटडीया मा फाळ ।
घ. दाव पड्यो ।
ङ. मरता ने शुं मारो ।
च. दाझ्या ऊपर लूण लाव्यो ।
छ. घसवा लागी हाथ ।
ज. जेवो ऊगे तेवो आथमे ।
झ. वस्त्र नथी सम खावा ।
ञ. भावठ भागशे ।
ट. लोक हसाव्या ठोठो रे ।

सूरदास[११]— क. चाले जाउ भई पोइरि ।
ख. तुम संग रहैं बलाइ ।
ग. हूँ कछु लैन न दैनु ।
घ. दाई आगे पेट दुरावति ।
ङ. दूध दूध पानी सो पानी ।
च. पाँच की सात लगायो ।
छ. बातनि गहौ अकास ।
ज. सौंह करन को आये ।
झ. कौन पै होत पीरीकारी ।
ञ. मीड़त हाथ ।
ट. कौड़ी हू न लहै ।
ठ. बहे जात माँगत उतराई ।
ड. चाम के दाम चलावै ।
ढ. दाधे पर लोन लगावै ।
ण. मूरी के पातन के बदले को मुकुताहल देहै ।
त. मिलावत ही गढ़ि छोलि ।
थ. को भुस फटकै ।
द. अपनो बोयो आप लोनिए ।
ध. दाउँ दै हार्यो ।

नंददास[१२]— क. पचि मरे ।
ख. हिय लौन लगावौ ।
ग. छुधित ग्रास मुख काढि ।
घ. गाठि की खोइकै ।
ङ. जबहि लौं बाँधी मूठी ।
च. करत नकवानी ।
छ. सिर धुनही ।
ज. बनि रह्यो बान ।
झ. फीक परी ।
ञ. टकी लगि जाइ ।

दोनों भाषाओं में प्रयुक्त लोकोक्तियों और मुहावरों को विहगम दृष्टि से देखने पर अधिक सादृश्य नही दिखाई देता फिर भी कुछ लोकोक्तियाँ और मुहावरे प्राय.

एक जैसे ही हैं जैसे प्रेमानद का 'घसवा लागी हाथ' और सूर का 'मीडत हाथ'। जले पर नमक लगाने के मुहावरे को भी दोनो ही भाषाओ के कवियो ने अपने ढग से प्रयुक्त किया है। यह सादृश्य भाषागत प्रयोग की सुसम्बद्ध परम्परा के द्योतक है। अधिकाश मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ दोनो भाषाओ के अपने-अपने प्रदेश की लोक-सस्कृति का परिचय देते है।

भाषा-शैली की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त भाषा सामान्यत सरल और प्रवाहपूर्ण है। सूर के कूट पदो को छोड कर दोनो भाषाओ के किसी कवि ने क्लिष्टता और दुरूहता लाने की कही चेष्टा नही की। अधिकतर गीतात्मकता और कथात्मकता का निर्वाह होने के कारण गुजराती और ब्रजभाषा दोनो में एक अशिथिल प्रवहमानता उपलब्ध होती है जिसका व्याघात कुछ असमर्थ कवियो द्वारा ही हुआ है अन्यथा सभी समर्थ कवियो में उसका रूप अक्षुण्ण रहा है। प्रधानतया आख्यान-काव्य में प्रयुक्त होने के कारण गुजराती भाषा का स्वरूप अधिक व्यावहारिक है। ब्रजभाषा में व्यवहारिकता की अपेक्षा साहित्यिकता अधिक है। उसके आदि-कवि सूर में ही भाषा का स्वरूप साहित्यिकता की ओर बहुत झुका है। रीति-कवियो के हाथ में पहुँच कर ब्रजभाषा सर्वथा साहित्यक भाषा बन गयी और क्रमश उसमें कृत्रिमता का आग्रह बढने लगा। इसके विरुद्ध प्रेमानद की भाषा तत्सम शब्दो से पूरित होने पर भी उस अर्थ म साहित्यिक नही कही जा सकती जिस अर्थ में नददास और विहारी की भाषा। भालण,प्रेमानद तथा उनकी श्रेणी केअन्य गुजराती आख्यान-कारो द्वारा प्रयुक्त भाषा प्राय सहज प्रकृति की है और उसमें साहित्यिकता का प्रदर्शन सर्वत्र न मिल कर केवल कुछ विशेष स्थलो पर ही मिलता है जब कि ब्रज-भाषा के प्रमुख आख्यानकार नददास की भाषा सर्वत्र सँवारी हुई है और पग पग पर कवि के 'जडिया' होने की घोषणा करती है। गुजराती के श्रेष्ठतम पदकार नरसी मेहता की भाषा भी आख्यानकारो की भाषा से बहुत अधिक दूर नही है। साहित्यिकता का पुट उसमें अवश्य है परन्तु प्रकृत रूप का उसने आच्छादन नही किया है। उनकी अपेक्षा सूर के पदो की भाषा अधिक समृद्ध, शक्तिसम्पन्न और अधिक साहित्यिक है। ब्रजभाषा के कवियो में भाषा का सस्कार करने की प्रवृत्ति प्रारम से ही मिलने लगती है जब कि गुजराती में कोई भी कवि इस सम्बन्ध में प्रयासशील नही दिखाई देता। भाषा के प्राकृत रूप पर ही गुजराती कवियो को गर्व रहा है। प्रेमानद में यह भावना अत्यन्त मुखर होकर व्यक्त हुई

हैं। उन्होंने बार बार सस्कृत की स्पर्धा मे अपनी भाषा को प्राकृत कह कर प्रस्तुत किया है—

आ पासा व्यास बाँचे सस्कृत, आ पासा मारुं प्राकृत,
व्यासवाणी में जाणी यथा, तेवी प्राकृते जोडी कथा।

श्रीम०, भा० पृ० २५७

भालण ने प्राकृत और गुर्जर कह कर तथा नरसी ने प्राकृत और अपभ्रश का नाम लेकर भाषा के प्राकृत स्वरूप की श्रेष्ठता का उद्घोष किया है—

क प्राकृत ने प्रीछ्या करी, गुर्जर भाषाओ विस्तरी।

—द० स्क०, पृ० ३११

ख तेणे कृष्णनु गमन कराव्यु ते प्राकृत माय करिये रे।

—न० कृ० का०, पृ० ५६

ग अपभ्रष्ट गिरा नियें, काव्य केवु दिसे, गाय हिसे ने ज्यम तीर लागे।

—वही, पृ० ११७

भाषा तथा उसके प्राकृत रूप से सम्बद्ध ऐसी प्रबुद्ध चेतना तथा ऐसी सगर्व जागरूकता ब्रजभाषा के कवियो में उपलब्ध नही होती। ब्रजभाषा के भक्त कवियो म भाषा के प्रति गर्व तो नही किन्तु प्रेम अवश्य प्रतीत होता है यद्यपि रीति कवियो मे केशवदास जैसे कवि भी मिलते है जिन्हे 'भाषा कवि' होने में शर्म आती है, क्योकि वे ऐसे कुल में उत्पन्न हुए थ जिनके दास भी सस्कृत छोड कर भाषा बोलना नही जानत थे। भाषा के सम्बन्ध में इस तरह की भावना अपवाद ही प्रस्तुत करती है क्योकि अन्य रीतिकारो में कही भी ऐसा भाव नही मिलता। यह केशवदास की वैयक्तिक धारणा ही अधिक प्रतीत होती है, फिर भी गुजराती कवियो की धारणा के ठीक विरुद्ध होने के कारण काफी महत्त्वपूर्ण है। गुजराती कवियो द्वारा व्यक्त धारणाओ से स्पष्ट हो जाता है कि क्यों उनका झुकाव भाषा को प्रकृत रूप से दूर रखके सस्कृत बनाने की ओर नही रहा। उन्होंने उतने ही अशो में अपनी भाषा को सस्कार दिया है जितना विषय वस्तु तथा काव्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक था। भाषा के अलकरण की प्रवृत्ति भी इसीलिए गुजराती की अपेक्षा ब्रजभाषा में अधिक मिलती है जो अलकार-विधान के सम्बन्ध में दिये गये उदाहरणो से स्पष्ट है।

भावो को अभिव्यक्त करने की क्षमता दोनो भाषाओ मे प्रचुर मात्रा मे प्राप्त होती है। भाव पक्ष के अन्तर्गत विवेचित, उद्धृत तथा सकेतित स्थल इसके प्रमाण हैं। सामान्यतया तत्सम और तद्भव शब्दो से मिली-जुली भाषा का व्यवहार हुआ

है परन्तु ऐसे स्थलो पर भाषा प्राय. अकृत्रिम, तत्समताहीन, लाक्षणिक तथा लोकोक्तियो और मुहावरो से युक्त मिलती है। भाव-विश्लेषण के साथ साथ भाषा की लाक्षणिकता और व्यजना-शक्ति की ओर बराबर निर्देश कर दिया गया है। सूर, भालण तथा प्रेमानन्द के पद इस तथ्य को विशेष रूप से प्रमाणित करते है। कवियो ने भावो की कोमलता को व्यक्त करने के लिए शब्दो को विविध प्रकार से कोमल बनाने का बराबर यत्न किया है। ओजपूर्ण स्थल-काव्य में अपेक्षाकृत कम है अतएव भाषा में ओज की अपेक्षा माधुर्य और प्रसाद गुण का प्राधान्य स्वाभाविक रूप मे मिलता है। मयण जैसे कवि एक दो ही है जिन्होने शृङ्गार-वर्णन के लिए भी ओजस्विनी भाषा और वीरोचित छद का व्यवहार किया है। वस्तुगत और भावगत सुकुमारता की छाया काव्य की भाषा पर बराबर परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ कवियो ने कोमलता और सुकुमारता की व्यजना के लिए शब्दो में 'ल', 'ड' या 'ड' का सयोग किया है। यह प्रवृत्ति गुजराती कवियो मे बहुत अधिक मिलती है। भालण के एक ही पद में 'नानडियो हेडु, पालणडु, घुघरडी, आँसुडा, भामणडा, मावडी जैसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए है।[५१] नरसी ने इस प्रकार के शब्दो का और भी अधिक व्यवहार किया है। उन्होने प्रेमजन्य लघुता को सूचित करने के लिए कही-कही 'ड' और 'ल' का एक साथ योग किया है। आँखडली, पाखडली, राखलडी, बाहुडली की तरह बहुत से शब्द प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये जा सकते है। मधुर वर्णों के दोहरे योग से बने इन शब्दो के अतिरिक्त एकहरे योगवाले तो अगणित मिलते है जैसे नानडीयो, सेजडी, घुघटडी, टोलडी, बासलडी, मारगडे, मरकल्डो, दीवडीयो, बाहुडी, साइडा। नरसी के यह सभी शब्द केवल चार पृष्ठो से चुने गये है।[५२] इससे यह प्रमाणित होता है कि इस प्रकार की शब्द-योजना उन्हें कितनी अधिक प्रिय थी और इससे उनकी भाषा का माधुर्य कितना अधिक बढ गया है। ब्रजभाषा के कवियो ने भी शब्द-निर्माण की इस शैली का सम्यक् प्रयोग किया है परन्तु 'ड' और 'ल' के स्थान पर 'ड' और 'या' का योग मिलता है जैसे 'मावडी' के स्थान पर 'मैया' और 'कानडो' के स्थान पर 'कन्हैया' तथा 'दुख' और 'मुख' से 'दुखडा' और 'मुखडा'। दीर्घ मात्राओ को लघु करके भी ब्रजभाषा कवियो ने अनेक शब्दो का निर्माण किया है। यथा अँसुवा, निंदिया, पगिया आदि। 'मेरे लाल को आउ निंदरिया' में नीद को लघु बनाने के लिए दोहरे वर्णों का योग हुआ है। 'दँतुलिया' आदि अन्य शब्द भी इसी प्रकार बनाये गये है। भाषा को भावानुकूल और मधुर बनाने की यह एक शैली है। कवियो ने कोमल एव अनुनासिक वर्णों से युक्त शब्दो की आवृत्ति या शृखलित सयोग से भी स्थल स्थल पर भाषा को मधुरता और कोमलता प्रदान की है। इस सम्बन्ध में दोनो भाषाओ के कुछ उदाहरण दर्शनीय है—

गुजराती

भालण—रणक झणक कंकण क्षुद्री, घटिका शो किंकिणी ।
चरण ठवण हंसगवण नेपुर धुणी घुणी ।
—द० स्क०, पृ० १२१

नरसी—ताळी देता तारुणी, झाझरनो झमकार।
कटि किंकणी रणझणे, घुघरीना घमकार।
—न० कृ० का०, पृ० १६३

प्रेमानंद—शणगार साजे, रूप राजे, गाजे घुघरु पाय।
ठमक अणवट झमक झाझर छमक पहानी थाय।
—श्रीम० भा०, पृ० २४६

व्रजभाषा

सूरदास—१. जननि कहति नाचौ तुम देहौ नवनीत मोहन,
रुनुकु झुनुकु चलत पाँइन चायन नूपुर बाजै।
—सू० सा०, पृ० १५०

२. पायन नूपुर बाजई कटि किंकिनी कूजै।
नन्ही एड़ियन अरुणता फलबिंबन पूजै।
—वही, पृ० १४७।

नंददास—नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकहि सुर जुरली।
तैसिय मृदु-पद-पटकनि चटकनि कटतारनि की।
लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की।
—नंद०, पृ० २७६

व्रजभाषा का माधुर्य सुविदित है परन्तु गुजराती भाषा मे भी पर्याप्त माधुर्य मिलता है जो उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है। प्रधान कवियो को छोडकर सामान्यतया गुजराती कवियो ने भाषा को मधुर बनाने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है जबकि व्रजभाषा में सुकुमार वर्ण-योजना और मधुर पदावली के विन्यास की ओर कवि प्रायः सजग रहे हैं।

रूप-शृंगार वर्णन करने में कवियों ने तत्सम और आलंकारिक भाषा का व्यवहार किया है परन्तु साधारण कथा-वर्णन या वस्तु-निरूपण में भाषा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है और फलतः शिथिलता, नीरसता, अनगढ़पन, असमर्थता तथा अपरिपक्वता रह रहकर झलकती है। यह दोष साधारण कोटि के कवियों में तो मिलते ही हैं, कहीं कहीं सूर, भालण और प्रेमानंद तक में प्राप्त हो जाते हैं।

कथा-वर्णन में सूर की भाषा उतनी ही शिथिल मिलती है जितनी भाव-वर्णन में प्रवाहपूर्ण और सशक्त। विषय के अनुसार भाषा का रूप तो बदला हुआ मिलता ही है, साथ ही उसकी चित्रात्मकता और सजीवता में भी उत्कर्ष-अपकर्ष होता जाता है।

विविध भाषाओं का मिश्रण

भाषा के सम्बन्ध में अभी तक जिस स्वरूप-परिवर्तन का उल्लेख हुआ है वह शैली की विशेषता कहा जा सकता है परन्तु दोनो भाषाओ के कई कवियो ने एक भाषा का प्रयोग करते करते बीच बीच में किन्ही अन्य भाषाओ का जो मिश्रण अथवा प्रयोग किया है वह किसी की दृष्टि से शैली की विशेषता नही माना जा सकता। एक तो इस मिश्रण का कोई उद्देश्य लक्षित नही होता, दूसरे वह सर्वत्र मिलता नही। कवि विशेष के स्वभाव से भी इसका सम्बन्ध सिद्ध नही हो पाता अतएव विविध भाषाओ के मिश्रण को एक 'विचित्रता' मात्र कहना उचित होगा। इस मिश्रण के मूल में जो कारण निहित है वे शैली-तत्व से सर्वथा भिन्न है।

व्रजभाषा के कुछ कवियो ने पजाबी का मिश्रण किया है और गुजराती के कुछ कवियो ने मराठी का। सस्कृत का आभास उत्पन्न करने की चेष्टा कतिपय स्थलो पर दोनो भाषाओ में मिलती है। गुजराती के कई कवियो ने व्रजभाषा का व्यवहार किया है। व्रजभाषा के कवियो द्वारा गुजराती में काव्य रचना तो नही हुई परन्तु कुछ गुजराती शब्दो का प्रयोग अवश्य हुआ है। मीरा को स्थिति सबसे पृथक् है क्योकि उनके काव्य में व्रजभाषा, राजस्थानी तथा गुजराती तीनो का व्यापक मिश्रण है और आशिक रूप से पजाबी का भी। आगे भाषाओ के मिश्रण से सम्बन्धित सारी स्थिति का पृथक्-पृथक् निरूपण किया गया है।

पजाबी का मिश्रण—व्रजभाषा के साथ पजाबी का मिश्रण वल्लभरसिक, पीताम्बरदेव और मीरा के काव्य में कतिपय स्थलो पर मिलता है। शब्दावली, बहुवचन तथा विभक्तियो आदि के पजाबीपन के कारण ऐसे स्थल स्पष्टतया अलग प्रतीत होते है यद्यपि वे लिखे स्वतन्त्र रूप से नही गये हैं। ऐसे स्थलों से चयित कुछ पक्तियाँ दर्शनीय है—

क पथ असाडे कोई पैर न रक्खो असी लखि लखूबो लोग हँसाए।
नेह नगर दे अदर नू असी सिरदे पैर चलाए।
आह पवेनानि वाह को सीदा असी तिस्सी राहाँ चल्लाँ।
इश्क दिलाँ दे नाले नाले महबूबाँ दी गल्लाँ।
स्याह जुल्फ छल्ले जिस छल्ले असी थर सल्ले तिसी महल्लाँ।
वल्लभरसिक रूमाल लाल पर भूमि हमेसै झल्लाँ।
—श्रीव० र० वा० पृ० ३९

ख. ऐसी तू चिपटी दिल दी सुद्यो काली कमली कीती हूँ ।
हुण आशानू जावन आवेनै, अग अग करि जीती हूँ ।
...ऐसी तू साडे लखना नू तू जाना काहू दाना ।
तू तो ढोठ वजदा चोरा चरामो बीच छिपाना ।
तेरे दिल विच दया दरद ना डारा फद निमाना ।
पीताम्बर ते राजस जग में गाथा वेद पुराना ।

—नि० मा०, पृ० ३०८

ग. हो कानौं किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ ।
सुघर कला प्रवीन हाथन सूं, जसुमतिजू ने सँवारियाँ ।

—मी० प०, पृ० ५७, पद १६९

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ।
विपति पड्या कोइ निकटि न आवै 'सुख में, सब को सीर ।

—वही, पृ० ६४, पद १९१

मराठी का मिश्रण—मराठी की षष्ठी विभक्ति का व्यवहार गुजराती कवियों में भीम, नरसी और केशवदास द्वारा हुआ है—

क. भीमचइ-स्वामी श्रीकृष्णइ ससार सागर तारी।

—रि० पो०, पृ० १५५

ख महारा वहालाजीमा कुसुमचो भार नहीं रे ।
नरसैयाचो-स्वामी भलेमलीयो, सुखकरो गोकुल राइ रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २०७

मनमथची पीड दोहली देखी जोवन न रहे झालु रे ।

—वही, पृ० ३५७

कठडाचो भूषण सजनी।

—वही, पृ० ३९३

अगमोडी आलिगन लीधु चोलीयाची कस तूटी गई ।

—वही, पृ० ३७३

ग केशवदास चो स्वामी, सेवक काजे रे राम ।

—श्रीकृ० ली० का० पृ० ४०

गुजराती के अनेक कवियों ने कृष्ण के लिए 'विट्ठळ' शब्द का प्रयोग किया है जिसकी ओर संकेत पर्याय शब्दों के प्रसंग में किया गया है।

गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध पारखी तथा प्रमुख भाषा-शास्त्री न० भो० दिवेटिया के मत से 'चो' 'ची' 'चा' तथा 'विट्ठळ' का प्रयोग गुजराती पर मराठी भाषा के प्रभाव का निश्चित प्रमाण नहीं है।[४] नरसी मेहता के पदों में कुछ स्थलों पर जो मराठीपन मिलता है वह उक्त लक्षणों तक ही सीमित नहीं है, जैसा नीचे लिखे पदांशों से प्रकट है—

आपुला मंदिरमा हो, सखी जालवरे दीवडो।
घणे दहाडले पीयु प्राहुणला आव्या, आदर गोरवा दीजे।

—न० कृ० का०, पृ० ४१७

अनंग आहेडीअे जाळ माडीला पखी कामीजन आवीला।
जुगत, करी जुवती जोता, ततक्षणु पासे पाडीला।
घन स्तन भार भरीला, कामीजन आप विसरीला।
शरणे तुमारे आवीला, नरसैयाचे स्वामी विसरी गेइला।

—वही, पृ० ५२१

संस्कृत का मिश्रण—दोनों भाषाओं के अनेक कवि संस्कृत के ज्ञाता थे और कुछ ने तो संस्कृत में काव्य-रचना भी की है जैसे व्रजभाषा में हितहरिवंश और गुजराती में केशवदास। हितहरिवंश ने 'राधासुधानिधि' की रचना की है और केशवदास ने 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में भीमकृत 'हरिलीलाषोडशकला' की तरह बीच बीच में जो अनेक संस्कृत श्लोक सगुंफित किये हैं उनमें से 'सोळ स्वयकृत संस्कृत' लिख कर सोलह को स्वरचित स्वीकार किया है।[५] यहाँ भाषा के कवियों की संस्कृत रचनाओं का परिचय देना अभीप्सित नहीं है वरन् संस्कृत की ओर उनके झुकाव की ओर संकेत कर देना ही इष्ट है। इन कवियों के भाषा-काव्यों में कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जो संस्कृत के नियमों के अनुसार बने हैं। हरिवंश ने 'नेति नेति वदति'-तथा 'पशुरिव' लिखकर और केशवदास ने 'निरीक्षणे' 'यमुनातटे' 'वनितया' तथा 'तन्वी ताबुलर्वाचत च बहुल' जैसे शब्दों एवं शब्दसमूहों का प्रयोग किया है।[६] जिन कवियों ने 'गाथा', 'गाहा' या आर्या छंद का व्यवहार किया है उन्होंने कहीं-कहीं चरणान्त के शब्दों को संस्कृत की द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप दे दिया है। पृष्ठ १६५ पर सूरसागर में भी एक पद में 'पारपार' 'आधार' जैसे रूप

बनाये गये हैं। ब्रजभाषा के कवि गदाधर भट्ट की वाणी में संस्कृत के कई पद मिलते हैं।[९४] कहीं कहीं उनके ब्रजभाषा के पदों में संस्कृत का आभास मिलने लगता है—

> रूपबलकोटिकन्दर्पदर्पापर हरध्यात पद कमल विश्वबंधो !
> नामआभासअघरासि विध्वंसकर सबल कल्याण गुननाम सिंधो !
> —श्रीगदा० वा०, पृ० १३

गुजराती कवियों द्वारा ब्रजभाषा का प्रयोग एवं मिश्रण

१. भालण—१५ वीं शती के कवि भालण के दशमस्कंध में भालण की ही छाप से प्राप्त होने वाले ब्रजभाषा के छः पदों की ओर प्रथम अध्याय में ही संकेत किया जा चुका है। दशमस्कंध के सम्पादक हरगोविंद द्वारकादास कांटावाळा के मत से भालण 'ब्रजभाषामा सारी कविता करतो हतो. तेनी प्रतीति दशमस्कंदमा रचेली हिन्दी कविता उपरथी थाय छे'।[९५] अर्थात् भालण ब्रजभाषा के सुन्दर कवि थे जिसकी प्रतीति उनके दशमस्कंध में प्राप्त होने वाली हिन्दी कविता से होती है। दशमस्कंध में ब्रजभाषा के चार पद एक साथ मिलते हैं और दो अलग अलग।[९६] एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है जिससे भाषा विषयक स्थिति का ठीक ठीक अनुमान हो सके—

> कोन तप कीनो री, माई नंदघरणी।
> ले उछंग हरि कुं पयपावत, मुखचुंबन मुख भीनो री।
> तृप्त भये मोहनजू हसत हैं, तब उगमत अधर ही फीनो री।
> जशोमती लटपट पूछन लागी, वदन खेंचि तब लिनो री।
> रिदे लगाये बदजू मोहि तु कुलदेवा दीनो री।
> सुन्दरता अंग अंग कहा बरनू, तेजही सब जुग हीनो री।
> अंतरिक्ष सुर इन्द्रादिक बोलत, ब्रज जन को दुख खीनो री।
> इह रस सिंधु गान करी गाहत हें, भालन जन मन भीनो री।
> —द० स्क०, पृ० ५३-५४

यह पद इसलिए और भी उद्धृत किया गया है कि इसकी प्रथम पंक्ति का, भालण की गुजराती में रचित, निम्न पंक्ति से अद्भुत सादृश्य मिलता है—

> शा तप कीधा ते कामिनी रे, यइ सुन्दरवर नी माय।
> —द० स्क०, पृ० ३६

तुलना करने पर लगता है जैसे दोनों एक ही कवि के द्वारा रची गयी हों। [illegible] स्वरूप गुजराती के अनु-

गुजराती के अनेक कवियों ने कृष्ण के लिए 'विट्ठळ' शब्द का प्रयोग किया है जिसकी ओर संकेत पर्याय शब्दों के प्रसंग में किया गया है।

गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध पारखी तथा प्रमुख भाषा-शास्त्री न० मो० दिवेटिया के मत से 'चो' 'ची' 'चा' तथा 'विट्ठळ' का प्रयोग गुजराती पर मराठी भाषा के प्रभाव का निश्चित प्रमाण नहीं है।[१] नरसी मेहता के पदों में कुछ स्थलों पर जो मराठीपन मिलता है वह उक्त लक्षणों तक ही सीमित नहीं है, जैसा नीचे लिखे पदांशों से प्रकट है—

> आपुला मंदिरमा हो, सखी जालवरे दीवडो।
> घणे दहाडले पीयु प्राहुणला आव्या, आदर गोरवा दीजे।
>
> —न० कृ० का०, पृ० ४१७

> अनग आहेडीओ जाळ माडीला पखी कामीजन आवीला।
> जुगत करी जुवती जौता, ततक्षणु पासे पाडीला।
> घन स्तन भार भरीला, कामीजन आप विसरीला।
> शरणे तुमारे आवीला, नरसैयाचे स्वामी विसरी गेइला।
>
> —वही, पृ० ५२१

संस्कृत का मिश्रण—दोनों भाषाओं के अनेक कवि संस्कृत के ज्ञाता थे और कुछ ने तो संस्कृत में काव्य-रचना भी की है जैसे व्रजभाषा में हितहरिवंश और गुजराती में केशवदास। हितहरिवंश ने 'राधासुधानिधि' की रचना की है और केशवदास ने 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में भीमकृत 'हरिलीलाषोडशकला' की तरह बीच बीच में जो अनेक संस्कृत श्लोक संगुफित किये हैं उनमें से 'सोळ स्वयकृत संस्कृत' लिखकर सोलह को स्वरचित स्वीकार किया है।[२] यहाँ भाषा के कवियों की संस्कृत रचनाओं का परिचय देना अभीप्सित नहीं है वरन् संस्कृत की ओर उनके झुकाव की ओर संकेत कर देना ही इष्ट है। इन कवियों के भाषा-काव्यों में कुछ प्रयोग ऐसे मिलते हैं जो संस्कृत के नियमों के अनुसार बने हैं। हरिवंश ने 'नेति नेति वदति'-तथा 'पशुरिव' लिखकर और केशवदास ने 'निरीक्षणे' 'यमुनातटे' 'वनितया' तथा 'तन्वी तांबुलचर्वित च बहुल' जैसे शब्दों एवं शब्दसमूहों का प्रयोग किया है।[३] जिन कवियों ने 'गाथा', 'गाहा' या आर्या छंद का व्यवहार किया है उन्होंने कहीं-कहीं चरणान्त के शब्दों को संस्कृत की द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप दे दिया है। पृष्ठ १६५ पर सूरसागर में भी एक पद में 'पारपार' 'आधार' जैसे रूप

बनाये गये हैं। ब्रजभाषा के कवि गदाधर भट्ट् की वाणी में संस्कृत के कई पद मिलते हैं।[५५] कही कही उनके ब्रजभाषा के पदो में संस्कृत का आभास मिलने लगता है—

रूपबलकोटिकन्दर्पदर्पापिर हरध्यात पद कमल विश्वबधा !
नामआभासअघरासि विध्वसकर सकल कल्याण गुनग्राम सिधो !
—श्रीगदा० वा०, पृ० १३

गुजराती कवियों द्वारा ब्रजभाषा का प्रयोग एवं मिश्रण

१. भालण—१५ वी शती के कवि भालण के दशमस्कध में भालण की ही छाप से प्राप्त होने वाले ब्रजभाषा के छै पदो की ओर प्रथम अध्याय में ही सकेत किया जा चुका है। दशमस्कध के सम्पादक हरगोविंद द्वारकादास काटावाळा के मत से भालण 'ब्रजभाषामा सारी कविता करतो हतो. तेनी प्रतीति दशमस्कंदमा रचेली हिन्दी कविता उपरयी थाय छे'।[५७] अर्थात् भालण ब्रजभाषा के सुन्दर कवि थे जिसकी प्रतीति उनके दशमस्कधमें प्राप्त होने वाली हिन्दी कविता से होती है। दशमस्कध में ब्रजभाषा के चार पद एक साथ मिलते हैं और दो अलग अलग।[५८] एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है जिससे भाषा विषयक स्थिति का ठीक ठीक अनुमान हो सके—

कोन तप कीनो री, माई नदघरणी।
ले उछग हरि कु पयपावत, मुखचुवन मुख भीनो री।
तृप्त भये मोहनजू हसत हैं, तब उगमत अधर ही फीनो री।
जशोमती लटपट पूछन लागी, बदन खेचि तब लिनो री।
रिदे लगाये वदजू मोहि तु कुलदेवा दीनो री।
सुन्दरता अग अग कहा वरनू, तेजही सब जुग हीनो री।
अनरिक्ष सुर इन्द्रादिक बोलत, ब्रज जन को दुख खीनो री।
इह रस सिंधु गान करी गाहत हे, भालन जन मन भीनो री।
—द० स्क०, पृ० ५३-५४

यह पद इसलिए और भी उद्धृत किया गया है कि इसकी प्रथम पक्ति का, भालण की गुजराती में रचित, निम्न पक्ति से अद्भुत सादृश्य मिलता है—

शा तप कीधा ते कामिनी रे, थइ सुन्दरवर नी माय।
—द० स्क०, पृ० ३६

तुलना करने पर लगता है जैसे दोनो एक ही कवि के द्वारा रची गयी हो। भालण के दशमस्कध में अन्य अनेक प्रयोग मिले हैं जिनका स्वरूप गुजराती के अनु-

कूल न होकर ब्रजभाषा के अनुकूल हैं। उदाहरणार्थ 'नंद <u>मेरे</u> आगणे' (पृ० ३२,) मोरलीनो रस <u>लेत</u> (पृ० ६९), मटुकी (पृ० १३८, १५०), हुलराव्यो (पृ० १९०), आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है। भालण छाप वाले ब्रजभाषा के पदों में गुजराती का मिश्रण नहीं मिलता। विभक्तियाँ और क्रियापद ब्रजभाषा के ही हैं, केवल ध्वनि का नगण्य अन्तर कहीं कहीं मिलता है। यह सभी पद वात्सल्य भाव से सम्बद्ध हैं। वात्सल्य भाव भालण के अन्य गुजराती पदों में भी प्रमुख रूप से मिलता है।

२. नरसी—इसी तरह नरसी मेहता कृत काव्य-संग्रह में नरसी की छाप वाले दो ब्रजभाषा के पद मिलते हैं, जिनकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

क साखी—पीय संग अेकांत रस बिलसत राधा नार।
कध चडावन को कहो तातें तजी गये जु मोरार।

चाल—ताते तजी गय जु मोरारी, लाल आय सग ते टारी।
त्या ओर सखी सब आई, कयाहू देख्यो मोहनराई।

साखी—प्रेम प्रीत हरि जीनके, आअे उनके पास।
मुदित भई त्या भामनी, गुण गावे नरसैंयोदास।

—न० कृ० का०, पृ० १९८-१९९

ख बसंत विवाह आदर्यो हो हो, आदर्यो रे परणे छे नंदजी को लाल।
जेसो सुन्दर श्याम बन्यो हे अेसी बनी राधेनार बल जाऊँ।
पहेलो परण्यो महेता नरशीनो स्वामी पछी परण्यो आ सकल संसार।

—वही, पृ० २५३

नरसी के एक अन्य पद में ब्रजभाषा के अनुकूल शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

वृन्दावननी <u>कुंजगलनमे</u> महिडा बेचण रे।
महि <u>मटुकी</u> शीर पर लीधी चाली वननी वाटे रे।

—वही, पृ० ५८४

३. केशवदास—केशवदास के श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य में केवल दो स्थलों पर ब्रजभाषा का प्रयोग मिलता है। पहले स्थल पर राधा की मानलीला के सम्बन्ध का एक पद दिया है, तदुपरान्त एक निश्चित क्रम से कारिका की एक एक पंक्ति के पश्चात् त्रोटक की चार चार पंक्तियाँ दी गयी हैं। इस प्रकार चालीस पंक्तियों का ब्रजभाषा में रचित यह दूसरा पद प्राप्त होता है जो यशोदा और गोपी के सवाद रूप में निर्मित हुआ है। दोनों पदों के प्रारंभिक अंश परिचय के लिए नीचे दिये जाते हैं—

भालण का व्रजभापा में लिखित पद

ह्ला३मोर पीछ गुंजाफलनोंमे षवनावतउविलरललं
मा।भालण प्रभु वीधाताकी गति चरित्र तुम्हारे हैमबवां
।३।।४।।२४।।राग सारंग।।कहौ मैया केसे सुषपाउ।।नां
हिन सुलोक श्रीदामा षेलन संग कोन पे जाउ।।कहौ।।१।।
नाहिन ग्रेहे हेवे ह्रजबाबासीनके।।यांहां चोरचोर दधि
माषन षाउ।।नांहिन वृंदाबन अतिवल्लभयाकारन हूंगो
अचराउ।।कहौ मैया केसे सुषपाउ।।२।।नांहिन हंदवे गो

—भालण कृत दशमस्कंध की एक प्राचीन प्रति का,
भालण छाप वाले व्रजभापा के पद से युक्त पृष्ठ।

प्राप्ति-स्थान—संग्रहालय, गुजरात विद्या-सभा, अहमदाबाद
ह० प्र० न०—४७४ (आदि त्रूटक)
रचनाकाल—अज्ञात

त्यज अभिमान गोवाली, घर्‍य आमो वनमाली।
याके चरण चतुर्मुख सेवे, किंकर होय कपाली।
—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १०९

कारिका—सुन हो यशोमति माय, कृष्ण करत हैं है अति अनिआय।
त्रोटक—कृष्ण करत हे अन्याय अतलीवल, गोपी को कह्यो न मानें।
देखत लोक, लाज कुछू नहीं, नार्‍य बोलावत हों माने?
हम गुनवनी सनी सुलखणी, यह विध्य रह्यो न जाय।
कोपहिं काल्य सुनेगो कसासुर, सुन हो यशोमति माय।
—वही, पृ० १०९

केशवदास के इन पदो में गुजराती शैली और गुजराती शब्दो का स्पष्ट मिश्रण आ है। पहले पद का ध्रुवा दूसरे पद में कारिका और त्रोटक का क्रम तथा 'माकड', ाने', 'मोहोटी', 'कामणगारो' जैसे शब्दो का प्रयोग इस मिश्रण को प्रमाणित रता है।

दूसरे स्थल पर प्रारम्भ में कडवा और त्रोटक के क्रम वाला एक पहले जैसा ीर्घ पद मिलता है तथा अत में एक 'सवाइयो' दिया हुआ है। इस स्थल पर भी भाषा में मिश्रण हुआ है। कडवा तथा त्रोटक का कुछ अश और सवाइयो की चारो पक्तियाँ इस प्रकार है—

क. कडवा—सुनो मेरे सैया यादव रैया, गोकुल रहीये, लागूँ पैंयाँ।
त्रोटक—लागीये पैया हरि न जैहैं, बात यह मन जाणी है।
उन क्रूर के अक्रूर का बिसास कछु न आणी है।
—श्रीकृ० ली० का०, पृ० १२३

ग. गोकुल सकल विकल विदरसन, छन अेक होत युगतर च्यार,
सोइ अब दिवस मास गत होइ है, जीये क्यो मधुरी मुरार?
केशोदास मली सब गोपी, रोओती दुख आगहे नदनार,
काइक भाग सुभाग हमारो, जो हरि आवे कसासुर मार।
—वही, पृ० १२४

केशवदास की रचना के सम्पादक अबालाल बुलाकीराम जानी ने 'निवेदन' में कवि के उत्कृष्ट ब्रजभाषा ज्ञान की पर्याप्त प्रशसा की है।"

४ लक्ष्मीदास—भालण के दशमस्कध में जिन लक्ष्मीदास की रासपचाध्यायी प्रक्षिप्त मिलती है उनके द्वारा रचित कतिपय छोटे छोटे ब्रजभाषा के पदो की भी

सूचना मिलती है।[१] कुछ पदों की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और कुछ में गुजराती का मिश्रण हुआ है। नीचे लक्ष्मीदास का एक पद उद्धृत किया जाता है—

> आजु मेरे सफल भये नयन।
> कोटि मन्मथ रूप चतुर जु निरखे गीरिधर चिन।
> कोटि रवि छवि जोति आनन अधर कोटिक मिन।
> जन लषिमिदास विचित्र तरुनि लिखि चित्र सो जिन।
> आजु मेरे सफल भये नयन।
>
> —क० च०, पृ० ३३६

इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा में रचित एक पद केदारा का, एक रामगरी का तथा एक कानरा का, और मिलता है।[१] लक्ष्मीदास द्वारा लिखित चार ब्रजभाषा के 'सवाइआ' भी प्राप्त होते हैं। इनमें से एक दर्शनीय है—

> अबर चारु यू तडीत पीतांबर सुन्दर गढे टटिय भूंना।
> कठ मनोहर हार बीजीतजलधर घोर छवी सूलना।
> मीर मोर के चद आनद वदन कवल्ल भूजा लटको फूंदना।
> लक्ष्मीदास विहि वली जाउ नरभेप घोषपति नद के ललना।
>
> —क० च०, पृ० ३६६

शास्त्री को इन पदों और सवैयों के लक्ष्मीदासकृत होने में शका नहीं है। उनके अनुसार इनमें ब्रजभाषा का तत्कालीन रूप अपने ढंग से मिलता है।[२]

५. ब्रेहदेव—ब्रेहदेव की 'भ्रमरगीता' नामक कृति में भी एक पद ब्रजभाषा का प्राप्त होता है। पद का विषय वही है जो समस्त कृति का है। पूर्वापर प्रसग की दृष्टि से भी पद उचित स्थान पर प्राय अप्रक्षिप्त रूप में प्राप्त होता है—

> प्रीत बनी है ऐसी नीकी।
> नाही री उधो दिवस चार की, मोहे तो पेले भवकी।
> दिन-दिन प्रीति बढी जाये उधो, तिल बयो आ तन छूटे।
> अबनिशि गाठ पडी माधो सु, नावि छूटे तन तूटे। प्री०
> माधो विन मेरे हैअे उधो उरना कोय सुहाये।
> विविध रूप छा री मेरे नयना, स्वरूप श्याम को चाहे। प्री०
> वचन पराये सुनत दुख उपजे हरिलीला बिन सोई।
> ब्रेहदे प्रभु बिचारी उधो, वानी सफल न होई। प्री०
>
> —बृ० का० दो०, भाग १, पृ० ६७५

६. कृष्णदास—'श्री रुक्मिणी विवाहना पदो' में, जो अनेक कवियों के पदो का एक छोटा सा सग्रह है, कृष्णदास की छापवाले दो तीन ऐसे पद मिलते हैं जिनकी भाषा व्रज है। भाषा का सामान्य स्वरूप कुछ विकृत एव अनिश्चित है। पदों की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

क सिंह-भक्ष को स्याल पावे मेरे तो पति अेक स्याम हे।
कहत कृष्णोदास गिरिधर रुकमैयो शिशुपाल हे।
—कडवु० ६ ठु०

ख. श्रीकृष्ण तहा रथ साज ठाडे, सत्य करन प्रभु पातियाँ।
कहेत कृष्णोदास गिरिधर, बहोर सुनी द्विज वतियाँ।
—कडवु० ६ ठु०

व्रजभाषा के कवियों द्वारा प्रयुक्त कतिपय गुजराती शब्द

गुजराती कवियो द्वारा जिस रूप मे व्रजभाषा का प्रयोग हुआ है उस रूप में किसी भी व्रजभाषा कवि ने गुजराती का प्रयोग नही किया। बहुत खोजने पर कही एक दो शब्द ऐसे मिल पाते हैं जो गुजराती से आये प्रतीत होते है। सूरदास द्वारा प्रयुक्त 'कापर', 'मोटे', 'आखौ' तथा ध्रुवदास द्वारा प्रयुक्त 'दोहिली' शब्द उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते है।[१३] सूरसागर मे सूर का ऐसा कोई पद नही मिलता जिसमें गुजराती का व्यवहार हुआ हो परन्तु भालण के दशम स्कध में 'सुरदास' के नाम से दो गुजराती पद भी प्रक्षिप्त मिलते है।[१४] यह अष्टछापी सूर की रचना हो, ऐसा संभव नही दीखता। अतएव सूरदास नामक किसी अप्रसिद्ध गुजराती कवि ने इनकी रचना की हो, यही सभव है।

मीरां के पदों की भाषा

मीरा के पदो में कुछ गुजराती के, कुछ व्रजभाषा के, कुछ राजस्थानी के और कुछ मिश्रित भाषा के पद मिलते हैं। प्रथम अध्याय में इस ओर सकेत किया जा चुका है। कुछ पदो में खडी बोली का पुट भी है। पजाबी के प्रसंग में भी मीरा के पदो की कुछ पक्तियां उद्धृत की गयी हैं। वस्तुतः मीरा के पदो की भाषा का स्वरूप बहुत ही अनिश्चित है। डाकोर वाली प्रति में उनके पदो की भाषा शुद्ध राजस्थानी हैं जबकि बृहत्काव्यदोहन मे सगृहीत सौ से अधिक पद गुजराती के हैं। मीरा की पदावली जैसे सग्रहो में व्रजभाषा के भी शताधिक पद मिलते हैं। डाकोर की प्रति स० १६४२ की बताई जाती है अतएव यदि वह प्रामाणिक है तो उनके पदो की भाषा राजस्थानी ही ठहरती है। सं० १६९५ की गुजराती में प्राप्त एक प्रति

में जो उनके पद मिलते है उनकी भाषा ब्रज है। किसी अन्य प्राचीन संग्रह में भी मीरा के गुजराती पद नही मिलते, गुजराती लिपि में लिखे पद अवश्य मिलते हैं। इस सारी स्थिति पर गुजराती के विद्वान मुशी के निम्नलिखित कथन से पर्याप्त प्रकाश पडता है—

"मीरा गुजराती न होती ज, अेना पदो गुजरातीमा लखाया न होता अे मत वास्तविक लागे छे। हाल अेने नामे मडायला पदो केटला अेना ते पण नक्की करवु मुश्केल छे। पण गुजरात मा शुद्ध-भक्तिनो प्रचार सामान्य लोक मा जेटलो अेना पदोअे कर्यो छे तेटलो नरसिंहना पदोअे पण कर्यो नथी "[१]

अर्थ—मीरा गुजराती तो नही ही थी, उनके पद भी गुजराती में नही लिखे गये थे यह मत वास्तविक लगता है। इधर इनके नाम से प्रचलित पदो मे से कितने इन्ही के है यह भी निश्चित कर पाना कठिन है। परन्तु यह सत्य है कि गुजरात में शुद्धभक्ति का जितना प्रचार मीरा के पदो द्वारा हुआ उतना नरसी के पदो से भी नही हो सका।

मीरा के पदो में जो विविध भाषाओ का रूप मिलता है उसका कारण उनका बहु प्रदेशव्यापी प्रचार प्रतीत होता है, जैसा कबीर आदि कुछ अन्य कवियो के पदो के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। जो भी कारण हो, प्रस्तुत अध्ययन में मीरा के पदो का अन्यतम महत्व है।

मीरां के दो पद

—गुजरात से प्राप्त मीरा के पदा से युक्त हस्त-प्रति का एक पृष्ठ ।

ह० प्र० न०—द ४७७ क,

काल—हस्त प्रति में समाविष्ट, अविचलदास के निजी हस्त-लेख मे लिखित
आरण्यक पर्व का रचनाकाल—स० १६९५

प्राप्ति-स्थान—सग्रहालय, गुजरात-विद्या-सभा, अहमदाबाद

२५ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, भाग २, पृ० ८८२

२६. वही, पृ० ८७८

२७. श्रीव० र० बा०, पृ० ३९ ४०, ४१, ७६

२८. नि० मा०, पृ० २०३

२९. बिहारी रत्नाकर, पृ० ४, २२, २७ २८, ३४

३०. मी० प० पृ० २२ पद ७५

३१ हरि० पो०, पृ० १४२, १७५, द० स्क०, पृ० ९८, १३६। श्रीकृ० ली० का० पृ० ३०, ४४ ४६, न० कृ० का०, पृ० ६५, १६३, ३०१, ३०७, ३४८, ३६२, ३६४, ४०४, ४०८ ४७१, ४९२ श्रीम० भा०, पृ० २८८, प्रेमानद कृत मास में, छन्द संख्या १२, सुदामाचरित में, बु० का० दो भाग १, पृ० २५०

३२ न० कृ० का०, पृ० ४७२ ४८८, श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३०, ४४, प्रेमानन्दकृत मास में छन्द संख्या ७१

३३ हरि० पो०, पृ० १४३, द० स्क०, पृ० १२, ६२, ९७, श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३०१

३४ हरि० पो०, पृ० १४५, न० कृ० का०, पृ० ४७२, ४८०, ४८४, ४८५, श्रीकृ० ली० का०, पृ० २९

३५ हरि० पो०, पृ० १४४, श्रीकृ० ली० का०, पृ० २६

३६ द० स्क०, पृ० २३०, न० कृ० का०, पृ० ८४, श्रीम० भा०, पृ० २४०, २४७, ३१६, बु० का० दो० भा० १, पृ० २४८

३७ मी० प०, पृ० १८, ४९, पद ४३, ४५, १३६

३८ न० कृ० का०, पृ० २२१, २२२, २२६, २०५

३९ मी० प०, पृ० ६२ पद ५४

४० द० स्क० पृ० ६१, न० कृ० का०, पृ० ३७५

४१ द० स्क०, क पृ० १०, ख पृ० १६, ग, पृ० १३०, घ पृ० ११०

४२ न० कृ० का०, क पृ० ४८५, ख पृ० ४८४, ग पृ० ४८५, घ पृ० ४८५, ङ पृ० ४८७

च पृ० ४८८, छ पृ० ५२२

४३ श्रीम० भा०, क. पृ० २४१, ख पृ० २४१, ग. प्राचीन काव्य माला पृ० ११३, घ बु० का० दो० भा० १, पृ० २५६, ङ वही, पृ० २८४

४४ सूरदास डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५२८

४५ न० र०, क पृ० १३७, ख पृ० ११, ग पृ० १२

४६ द० स्क०, क पृ० ६, ख पृ० ११, ग. पृ० ५६, घ पृ० ६६, ङ पृ० ७१

च पृ० ७३, छ पृ० ७४, ज पृ० ७७, झ पृ० ९१, ञ पृ० ६५०

ट पृ० ९६, ठ पृ० ८६, ड पृ० १००, ढ पृ० ११५, ण पृ० ११

त पृ० १३२, थ पृ० २२३, द पृ० २२२

४७ न० कृ० का०, क पृ० ६५, ख पृ० ११८, ग पृ० १५९, घ पृ० २७३, ङ पृ० ३१६

च. पृ० ४१२, छ पृ० ४७५, ज पृ० ४७६, झ पृ० ४७६, ञ पृ० ४७७

ट पृ० ४८२, ठ पृ० ४८३ ड पृ० ४८५, ढ पृ० ४८९, ण पृ० ४८९

४८ श्रीम० मा०, क. पृ० २५२, ख पृ० २७२, ग पृ० ३२५,
घ. पृ० ३२६, ङ पृ० ३२७ च पृ० ३३०,
छ. मास ह० स० ४९, ज बृ० का० दो०, मा० १ पृ० २४०
झ. वही, पृ० २४०, ञ. वही, पृ० २४१, ट श्रीम० मा० पृ० ३२०

४९. सूरदास : डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रथम संस्करण, पृ० ५२६, ५२८

५० नद०, क. पृ० १२७, ख पृ० १३०, ग. पृ० १३३, घ. पृ० १३७, ङ पृ० १४०,
च. पृ० ३३, छ पृ० २ ज. पृ० ३, झ पृ० ७, ञ. पृ० १४२

५१. द० स्कं०, पृ० १२

५२. नं० कृ० का०, पृ० १००, १०१, १०४, १०५

५३. गुजराती लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर, पृ० ६०-६७

५४ श्रीकृ० ली० का०, पृ० ३११

५५. श्रीहितचौरासी पद, ११, ५२, श्रीकृ० ली० का०, पृ० १००, १०२; हं० स०, ४१, ४७, ५०

५६. श्रीगदा० वा०, पृ० ६, १०, १६, १८, १९

५७. द० स्कं०, प्रारंभ में दिया हुआ 'कविचरित्र', पृ० ५

५८. द० स्कं०, पृ० ५२, ५४, १९९, २०१, २०७

५९. श्रीकृ० ली० का० प्रारंभ में दिया हुआ 'निवेदन', पृ० १२

६०. कविचरित, भाग २, पृ० २६५

६१. वही, पृ० २६६

६२. वही, पृ० २६७

६३. सू० सा०, पृ० १३२, ४८९, ६५१, प्रीतिचौवनी. छ० सं० ३३

६४. द० स्कं०, पृ० २२३, २२४

६५. गुजराती साहित्य, खंड ५ मो०, पृ० ३४०

उपसंहार

उपसंहार

गुजराती और ब्रजभापा कृष्ण-काव्य में प्रस्तुत, भावगत और विचारगत जो व्यापक साम्य मिलता है वह दोनों भाषाओ से सम्बद्ध प्रदेशो की सांस्कृतिक एकता का परिणाम है। यत्र तत्र जो थोडा सा वैषम्य प्राप्त होता है वह दोनों प्रदेशों की संस्कृति की क्षेत्रीय विशेषताओं पर आधारित है। सारी परिस्थिति पर गंभीरता-पूर्वक विचार करने से ज्ञात होता है कि साम्य आन्तरिक है और वैषम्य अपेक्षाकृत वाह्य। इस साम्य और वैषम्य मे गुजरात तथा ब्रज की भौगोलिक स्थिति का बहुत बड़ा हाथ रहा है जिसके कारण दोनो का सांस्कृतिक सम्बन्ध इतनी मात्रा में संभव हो सका। यह सम्बन्ध धर्म, राजनीति, भाषा और साहित्य आदि जीवन के सभी क्षेत्रो मे व्यक्त हुआ। कृष्ण का यादवों समेत मथुरा को छोडकर द्वारका में जा बसना एक ऐसी घटना है जिसे दोनो प्रदेशो के सांस्कृतिक सम्बन्ध के प्रतीक रूप में ग्रहण किया जा सकता है।[1] कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा है और देहोत्सर्ग भूमि गुजरात। काठियावाड़ में प्रभास से कुछ मील दूर एक स्थल आज भी दिखाया जाता है जहाँ श्रीकृष्ण शर-विद्ध होकर गिरे थे।[2] इसी तरह मथुरा के इतिहास में कृष्ण के महाभिनिष्क्रमण को बहुत महत्वपूर्ण घटना माना जाता है।[3] कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण ही मथुरा और द्वारका दोनो को भारतवर्ष की सात मोक्ष-दायिका पुरियों में स्थान मिला है।[4] कृष्ण के समय की द्वारावती और वर्तमान द्वारका की स्थिति में भेद माना जाता है फिर भी आधुनिक द्वारका का इतिहास २००० वर्ष प्राचीन कहा जा सकता है।[5] मथुरा से द्वारका तक के सुविस्तृत क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रचलित रही जिसके अनेक प्रमाण पुरातत्व विज्ञान की खोजो में मिलते हैं। मथुरा क्षेत्र मे कृष्ण-बलराम की कई मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। एक शिला-पट्ट पर नवजात कृष्ण को लिए वसुदेव के यमुना पार करने का दृश्य अंकित मिलता है और एक गुप्तकालीन मूर्ति कालीय-दमन की भी मिली है।[6] गुजरात क्षेत्र में कालीय मर्दन और गोवर्धन धारण विषयक अनेक प्रतिमाएं अथवा प्रस्तर आलेखन आबू, मनोद, सोमनाथ तथा मागरोल नामक स्थानों पर मिले हैं।[7] कृष्ण का 'त्रैलोक्यमोहन' रूप तो केवल गुजरात में ही उपलब्ध होता है।[8] कृष्ण की चतुर्भुज और द्विभुज मूर्तियाँ विष्णु से उनकी एकता प्रमाणित करती हैं। गुजरात मे कृष्ण-भक्ति के प्रचार का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण अनावाडा से प्राप्त वि०

स० १३४८ के शिला लेख से मिलता है जो शार्गदेव से सम्बद्ध है। इस लेख का प्रारम्भ 'वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूभारमुद्बिभ्रते' से होता है। यह जयदेव के 'गीत-गोविंद' की पक्ति है। इस शिलालेख से एक कृष्ण-मन्दिर के होने की भी सूचना मिलती है।[९]

दामोदार की उपासना के भी कई प्रमाण मिलते हैं। गिरनार में प्राप्त होने वाला स० १४७३ का एक शिलालेख दामोदार कृष्ण की स्तुति से प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार द्वारका में रणछोड़राय का महत्व है उसी प्रकार जूनागढ में दामोदर का। जैन कवियो ने 'दामोदरहरि पचमउ' के द्वारा दामोदर को भारतवर्ष में प्रसिद्ध कृष्ण या विष्णु के चार स्वरूपो, जगन्नाथ, बदरी केदारनाथ, रणछोडराय तथा विठोबा के बाद पाँचवाँ स्थान दिया है।[१०] कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के अन्य रूपो की उपासना का भी विकास इस क्षेत्र में समान रूप से हुआ है। भडारकर, रायचौधरी तथा दुर्गाशकरशास्त्री द्वारा वैष्णवधर्म की उत्पत्ति और विकास का जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उसमें इस सत्य को प्रकट करने वाली सामग्री यथेष्ट मात्रा में मिलती है जिसका उल्लेख यहाँ सभव नही है। कृष्ण-भक्ति और वैष्णवधर्म से इतर शैव तथा जैन धर्म के द्वारा भी मध्यदेश और गुजरात परस्पर सम्बद्ध रहे। प्रभास के सोमनाथ से लेकर काशी के विश्वनाथ तक शैवोपासना का एक ही स्वर गूंजता रहा। मथुरा का आधुनिक ककाली टीला प्राचीन समय में जैनियो का बहुत बडा केन्द्र रहा है। गुजरात तो शताब्दियो तक जैनधर्म की श्वेताम्बर शाखा का प्रधान आश्रयस्थल रहा। जैनियो के ९१ वें तीर्थकर नेमिनाथ काठियावाड से ही सम्बद्ध थे। आचार्य हेमचन्द्र के समय में आकर जैनधर्म गुजरात का राजधर्म बन गया।[११] गुजरात में ही जैन साहित्य में कृष्ण को स्थान मिला जिसका विशेष परिचय 'जैनागमो में श्रीकृष्ण' शीर्षक लेख में अगरचन्द नाहटा ने दिया है।[१२] आठवी और दसवी शती के जैन कवि स्वयभू और पुष्पदन्त आदि के काव्यो में विविध कृष्णलीलाओ का भी वर्णन मिलता है।[१३]

राजनैतिक रूप में मध्यदेश और गुजरात अनेक बार अभिन्न रहे है। उग्रसेन ने कृष्ण की सहायता से द्वारका को राजधानी बना कर भी दूर तक फैले हुए यादवो पर शासन किया।[१४] परशुराम का आतक महिष्मती से मिथिला तक व्याप्त था। पौराणिक काल के इन सम्बन्धो के बाद मौर्यकाल के सुस्पष्ट इतिहास से प्रमाणित होता है कि मध्देश के साथ ही चन्द्रगुप्त मौर्य का आधिपत्य आनर्त और सौराष्ट्र पर भी था तथा अशोक का साम्राज्य भी मध्यदेश से सौराष्ट्र तक विस्तृत था जिसकी साक्षी गिरनार के शिलालेख देते हैं।[१५] चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में गुजरात

पुनः मध्यदेश से शासन की दृष्टि से अभिन्न हो गया और उज्जयिनी शासन का केन्द्र बनी। हूणो के आक्रमणो द्वारा गुजरात से मथुरा तक का सारा भूभाग पादाक्रान्त हुआ।

राजपूताना और गुजरात दोनो पर आभीरो का आधिपत्य रहा। गुर्जर और प्रतिहारो ने अपना केन्द्र कन्नौज को बनाया।[१५] नवी शती के दूसरे दशक से लेकर दसवी शती के पूर्वार्ध तक गुजरात कन्नौज से ही शासित होता रहा।[१७] गुर्जरो का सम्पर्क व्रजप्रदेश से इतना रहा कि आजतक ग्वालिन अथवा किसी सुन्दरी स्त्री के लिए 'गूजरी' या 'गुजरिया' शब्द प्रयुक्त होता है। मथुरा और सोमनाथ दोनो को महमूद गजनवी के आक्रमणो से ध्वस्त होना पडा जिसका प्रतिकार इस सारे भूभाग की जनशक्ति ने सगठित रूप से किया। गुजरात के अत्यन्त प्रतापी शासक सिद्धराज जयसिंह के शासन की सीमा मध्यप्रदेश में स्थित महोत्सवनगर (महोबा) तक विस्तृत थी।[१८]

शासन के साथ ही गुजरात की सीमाएँ भी बदलती रही। प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से यह तथ्य अत्यधिक महत्व रखता है। ग्रियर्सन ने मध्यकालीन गुजरात को राजपूताने का एक भाग मात्र बताया है।[१९] ऐतिहासिक दृष्टि से मध्यकालीन गुजरात की सीमा में खानदेश, मालवा तथा राजपूताने का दक्षिणी भाग भी सम्मिलित था। वर्तमान गुजरात की रूपरेखा तब तक निश्चित नही हुई जब तक वह मुग़ल साम्राज्य का अग नही बन गया। अकबर ने सन् १५७३ मे गुजरात के सूबे की नवीन सीमाएँ निर्धारित करके उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। गुजरात और मध्यप्रदेश पुन एकसूत्र में बँध गये।[२०] प्रस्तुत अध्ययन के लिए स्वीकृत शताब्दियो में यह राजनैतिक एकता पूर्णतया अक्षुण्ण रही।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है गुजरात और मध्यदेश का पश्चिमी भाग दोनो युगो तक और भी अधिक समीप रहे है। सस्कृत का प्रभुत्व प्राचीनकाल से ही दोनो प्रदेशो पर रहा परन्तु लोकभाषा का विकास जिस अप्रतिहत गति से इस भूभाग में हुआ वह विलक्षण है। यह लोकभाषा थी अपभ्रश और इसे मूलतः आभीरो की भाषा माना गया है। भरत ने इसको 'आभीरोक्तिः' कहा और दडी ने 'आभीरादिगिर.' बताया।[२१] यह आभीर कौन थे इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। कुछ विद्वान इन्हें विदेशी मानते है और कुछ के मत से इनका भारतीय होना भी सम्भव है क्योकि विदेशी होने का कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता।[२२] आभीर गोपाल-कृष्ण या गोविन्द के उपासक थे।[२३] इनका विस्तार गुजरात से लेकर

शूरसेन प्रदेश तक था और इनकी भाषा अपभ्रंश का प्रसार भी लाट, सुराष्ट्र, त्रवण, दक्षिणी पंजाब, राजपूताना, अवंती और मंदसोर आदि में था[२४]। भंडारकर के मत से अपभ्रंश का विकास छठी या सातवीं शता में, उस भूभाग में हुआ जिसमें आज ब्रजभाषा बोली जाती है।[२५] थूथी ने इसी मत को स्वीकार किया है।[२६] यह शौरसेनी अपभ्रंश किसी समय गुजरात में भी प्रचलित थी।[२७] राजपूताने से लेकर गुजरात तक पन्द्रहवीं शती के पहले एक ही भाषा का प्रचार था ऐसी टेसीटरी आदि कई भाषा-शास्त्रियों की धारणा है।[२८] गुजराती और जयपुरी की सहायक क्रियाओं का रूप इसका प्रमाण है।[२९] जयपुरी ही नहीं मालवी का भी गुजराती से घनिष्ट सम्बन्ध रहा।[३०] ग्रियर्सन के अनुसार गुजराती अपनी मूल विशेषताओं में पश्चिमी हिन्दी के समीप है और उससे भी अधिक उसकी समीपता राजस्थानी से है।[३१] 'हिन्दी काव्य-धारा' की अवतरणिका में राहुल सांकृत्यायन ने स्पष्ट लिखा है कि तेरहवीं शती तक गुजरात आज के हिन्दी क्षेत्र का अभिन्न अंग रहा है।

वस्तुतः पन्द्रहवीं शती से पूर्व की भाषा विषयक यह समीपता ही मीरां के पदों के गुजराती, राजस्थानी और ब्रज तीनों में पाये जाने का कारण है। साथ ही सारे प्रदेश की एकता का अन्यतम प्रमाण भी। प्रारंभ से गुजरात में लोकभाषा के प्रति विशेष आकर्षण एवं अहं भाव मिलता है। भोजदेव ने अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जरा तथा राजशेखर ने सस्कृतद्विष. लिखकर इसी ओर लक्ष्य किया है।[३२] भालण तथा प्रेमानंद आदि कवियों से लौकिक भाषा के प्रति जिस गर्व की भावना की ओर भाषा सम्बन्धी विवेचन करते हुए संकेत किया गया है उसकी प्रेरणा काफी गहरी है। लोक-भाषा की तरह लोक-चेतना से सम्बन्ध रखने वाला बहुत सा लौकिक और पौराणिक साहित्य दोनों प्रदेशों की समान सम्पत्ति रहा। लोक कथाओं के निर्माण में गुजरात का विशेष योग मिलता है। संस्कृत और प्राकृत का विपुल वार्ता-साहित्य इसी भूभाग में रचा गया और उज्जयिनी से उसे सतत प्रेरणा मिली। भोज और मुंज की कथाओं ने सारे प्रदेश को प्रभावित किया।[३३] हिन्दी साहित्य में प्रेमकथाओं और वीरगाथाओं की जो परम्परा मिलती है उसका पश्चिमी अपभ्रंश की रचनाओं से अभिन्न सम्बन्ध माना जाता है।[३४]

पौराणिक साहित्य का इस क्षेत्र में विशेष प्रचार रहा है। महाभारत, हरिवंश और विष्णु आदि कई पुराण गुप्त-काल से ही गुजरात में व्याप्त हो चुके थे। यही नहीं हरिवंश, मत्स्य तथा मार्कण्डेय जैसे पुराणों के निर्माण में भी गुजरात ने योग दिया हो यह बहुत संभव है।[३५] हरिवंश युक्त महाभारत तो शतसाहस्रीय संहिता अथवा पंचम वेद[३६] माना जाता था। वायु,मत्स्य, मार्कण्डेय तथा ब्रह्मपुराण और कदाचित्

देवीभागवत भी सातवी शती तक जनप्रिय हो चुके थे। साहित्यिक जनता ने शताब्दियों तक विभिन्न पुराणो से प्रेरणा ली।[17] आलोच्य काल तक भागवत के साथ साथ ब्रह्मवैवर्त तथा पद्म आदि अन्य पुराण भी गुजरात तक व्याप्त हो गये थे जैसा कि भालण, प्रेमानंद तथा अन्य अनेक आख्यानकारों द्वारा स्वीकार किया गया है। केशवदास ने अपनी रचना 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में भागवत ब्रह्मवैवर्त, आदि पुराणों के अतिरिक्त गर्गसंहिता को भी आधार बनाया है। व्रज के कवि भी इन ग्रंथो से परिचित थे। रचनाओं का परिचय देते समय तथा वस्तु-विश्लेषण के प्रसंग में इस ओर बराबर संकेत कर दिया गया है। भागवत का तो मध्यकालीन भक्ति साहित्य पर शताब्दियो तक अखंड राज्य रहा। इसका प्रभाव सभी पुराणो से अधिक व्यापक मिलता है। भक्तों का यह प्रधान उपजीव्य ग्रथ था और विद्वन्मंडली में भी इसकी महत्ता सर्वमान्य थी यह विद्यावतां भागवते परीक्षा से प्रकट है।[38] धार्मिक दृष्टि से इसे एक सीमा-चिन्ह कहा जा सकता है। इसमें चार बल केन्द्रस्थ मिलते है। शुद्धभक्ति, उपासना-वृत्ति, पौराणिक बल और कला[36]। भारत की प्रमुख भाषाओं में इसके प्रचुर अनुवाद मिलते हैं। गुजरात और व्रजप्रदेश में इसका प्रभुत्व और भी अधिक रहा। गुजरात में तो इसकी प्रसिद्धि दशवी शती तक हो चुकी थी। मूलराज सोलंकी ने भागवत की ११०८ प्रतियाँ सिद्धपुर के ब्राह्मणो को दान दी थी।[39] एक विद्वान की धारणा है कि यदि गुजराती साहित्य में से भागवत से अनुप्रेरित सारी रचनाओं को निकाल दिया जाय तो बहुत कम ऐसी रचनाएँ रह जायँगी जिन्हें साहित्य कहा जा सके।[40] गुजराती कृष्ण-काव्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि गुजरात न केवल भागवत से सुपरिचित था वरन् उससे सम्बन्धी अन्य साहित्य का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। रत्नेश्वर ने भागवत की श्रीधरी टीका को अपने अनुवाद का आधार बनाया और भीम ने वोपदेव के हरिलीलामृत को। इससे स्पष्ट हो जाता है कि व्रजभाषा से अधिक भागवत के अनुवाद गुजराती में क्यों हुए।

गुजरात में कुछ ऐसे ग्रन्थो के प्रचार के प्रमाण भी मिलते है जिनसे व्रज का परिचय नही था जैसे नृसिंहारण्यमुनि का 'विष्णुभक्ति-चन्द्रोदय' जिसकी सं० १४६९ वि० में लिखित प्रति का एक पृष्ठ नरसी के जन्म-स्थान तलाजा में प्राप्त हुआ।[41] पूना के भंडारकर इन्स्टीट्यूट के संग्रहालय में इसकी अनेक प्रतियाँ मिलती है। विल्वमंगल द्वारा रचित 'कृष्णकर्णामृत' से भी गुजराती कृष्ण-काव्य ने प्रेरणा ग्रहण की है जैसा केशवदास की रचना में सगुफित उसके तीन श्लोको से ज्ञात होता है। यह भी कहा जाता है कि चैतन्य इस रचना की रमणीयता पर

मुग्ध होकर इसे द्वारका से 'नदीया' ले गये थे ।[१] गुजरात में 'गीतगोविन्द' के १३ वी शती से बहु प्रचलित होने का उल्लेख किया ही जा चुका है। वस्तुत भागवत के बाद जिस ग्रंथ ने गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य को विशेष रूप से प्रभावित किया वह यही 'गीतगोविंद' है। गुजराती के सवप्रमुख पदकार नरसी का जयदेव की इस रचना से घनिष्ठतम परिचय मिलता है। यही नहीं उन्होंने अपनी रचनाओ में जयदेव का नामोल्लेख मात्र न करके उन्हें पात्रता तक प्रदान की है। नरसी ने स्वय को गोपियो और जयदेव की परम्परा का भक्त माना है।

'अव जाणे छो व्रजनी गोपी के रस जयदेवे पीधा रे ।
उगतो रस अवनी ढळतो नरसैये ताणी न लीधो रे ।

—न० कृ० का०, पृ० २६६

स्व० दुर्गाशकर शास्त्री ने नरसी पर जयदेव के प्रभाव का अत्यत सूक्ष्म विश्लेषण किया है।[२] गीतगोविद का प्रभाव ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त कवियो पर भी पर्याप्त रूप से मिलता है। इस रचना की अनेक प्रतिलिपियाँ हिन्दी की प्राचीन पुस्तको के साथ वहाँ ब्रज के वैष्णव घरो तथा मदिरो में मिलती हैं जिससे ज्ञात होता है कि चाहे सगीत की दृष्टि से हो, चाहे इसमें निहित भावो की दृष्टि से हो, ब्रज में इसका बहुत प्रचार था।[३] आलोच्यकाल के कई कवियो के पदो में जयदेव की कोमलकातपदावली के अश ध्वनित और ग्रथित मिलते है जैसे हरिराम व्यास के पदाश (व्या० वा० पृ० ३६८) पर 'धीर समीरे यमुना तीरे' की छाया स्पष्ट झलकती है।

यद्यपि ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की तरह गुजराती कृष्ण-काव्य विभिन्न भक्ति सम्प्रदायो के अन्तर्गत विकसित नही हुआ तथापि भक्ति-आन्दोलन और भक्ति-सम्प्रदायो की विचारधारा ने गुजरात को स्पर्श ही न किया हो ऐसी नही। यह अवश्य है कि वृन्दावन और गोकुल इन सम्प्रदायो के प्रमुख केन्द्र रहे है जबकि गुजरात किसी भी वैष्णव भक्ति-सम्प्रदाय का, ब्रज की तरह केन्द्र न बन सका। वैष्णव धर्म और वासुदेव-पूजा का मूल प्राचीन उत्तर भारत में ही मिलता है परन्तु मध्यकालीन भक्ति का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ इसमें किसी को सदेह नही है। यह धारणा नवीन न होकर पर्याप्त प्राचीन है। द्रविड देश में कावेरी, ताम्रपर्णी आदि सरिताओ के तटवर्ती भूभाग में रहने वाले आळवार भक्तो द्वारा भक्ति के एक स्वरूप का विकास १० वी शती के पूर्व की कई शताब्दियो में हुआ जो इन भक्त कवियो के प्रबन्धम् में सग्रहीत पदो से स्पष्ट है। भागवत में जो नवधाभक्ति उपलब्ध होती है उसका मूल आळवारो

भक्ति में माना जाता है। यही नहीं भागवतकार ने दक्षिणी होने की भी सम्भावना प्रकट की गयी है। द्राविड़ी भक्ति का यह प्रवाह उत्तर भारत में किस किस क्षेत्र को पार करता हुआ आया इसका स्पष्टीकरण पद्मपुराण के उत्तरखंड में दिये हुए भागवत माहात्म्य के अंतर्गत भक्ति और उसके पुत्र ज्ञान-वैराग्य की कथा से दिया गया है। भागवत माहात्म्य के प्रथम अध्याय के निम्नलिखित श्लोकों से ज्ञात होता है कि व्रज में पहुँचने से पहले इस प्रवाह ने क्षीण होते हुए भी गुजरात का स्पर्श अवश्य किया था।

उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता। ॥४८॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी। ॥५०॥

—पद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवत माहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः।

११वीं शती के बाद दक्षिण से जिन भक्ति-सम्प्रदायों का उदय हुआ उनका गुजरात पर १५वीं शती तक कोई असर दिखाई नहीं देता। इस काल में गुजरात में वैष्णव धर्म के जो चिन्ह मिलते हैं वे साम्प्रदायिक न होकर सामान्य एवं पौराणिक हैं। १५वीं शती में रामानुज-सम्प्रदाय प्रचारित होने लगा। द्वारका में १२ वीं शती में रामानुज का प्रभाव रहा हो ऐसी भी सम्भावना दुर्गाशंकर शास्त्री द्वारा स्वीकार की गयी है। रामानंद ने रामानुज-सम्प्रदाय से कुछ भिन्न मान्यताओं को स्थापित करते हुए राम-भक्ति का प्रचार किया और उनके कबीर, रैदास आदि शिष्यों का प्रभाव समस्त उत्तर भारत में व्याप्त हो गया। मध्यदेश में कबीर और तुलसी ने उन्हीं का अनुसरण करते हुए राम को इष्टदेव के रूप में ग्रहण किया। गुजरात में रामानंद का प्रभाव १४वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १५वीं शती के बाद तक रहा। भालण और प्रेमानंद पर राम भक्ति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है क्योंकि कृष्ण के सम्बन्ध में काव्य रचना करते हुए भी उन्होंने राम को ही अपना इष्ट देव माना है। ऐसा उनके दशमस्कंधों में बार बार प्रयुक्त 'भालण प्रभु रघुनाथ' तथा 'प्रेमानंद प्रभु राम' से सिद्ध होता है। कहा जाता है कि यह साम्प्रदायिक न होकर पौराणिक है। परन्तु अपने नाम के साथ राम शब्द के योग का इतना आग्रह तुलसीदास जैसे राम-भक्त में भी नहीं मिलता। मीरा के पदों में कृष्ण के लिए अनेक रामवाची शब्द प्रयुक्त हुए हैं। नरसी ने भी अपने को रामनाम का व्यापारी कहा है—

नतो हमे रे वेपारीया श्री रामनामा।

—न० कृ० का०, पृ० ४७४

अन्य वैष्णव सम्प्रदायों के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'निम्बार्क, मध्व के वारकरीओनी असर गुजरात मा काई देखाती न थी।'[६१] वस्तुतः यही सत्य भी है। हिन्दी के एक विद्वान् का यह कथन कि 'गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया' यथार्थ प्रतीत नहीं होता।[६२]

राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना को प्रश्रय देने वाले निम्बार्क-मत का प्रभाव वृंदावन पर तो रहा परन्तु गुजरात मे परिलक्षित नहीं होता। राधा-कृष्ण के उपासक राधावल्लभीय सम्प्रदाय के सम्बन्ध में अवश्य कहा जाता है कि वल्लभ-सम्प्रदाय से पहले उसी ने गुजरात को अपना प्रभाव-क्षेत्र बनाया था।[६३] यह प्रभाव कदाचित् बहुत ही क्षणिक रहा होगा क्योंकि १६ वीं शती के राधावल्लभीय कवि हरिराम व्यास ने लिखा है कि लोग व्यर्थ ही बंगाल और गुजरात में भटकते फिरते हैं। भक्ति का केन्द्र तो वृंदावन ही है—

भटक्त फिरत गौड़ गुजरात।
सुखनिधि मथुरा तजि वृंदावन दामन को अकुलात।

—व्या० वा०, पृ० १५०

वारकरी-सम्प्रदाय के नामदेव आदि सन्तों से मध्यदेश और गुजरात परिचित अवश्य था परन्तु उनका प्रभाव गुजराती भक्तों पर पड़ा हो ऐसा निश्चयपूर्वक कहना कठिन है यद्यपि शास्त्री के अनुसार नरसी ने उनके द्वारा प्रसरित एवं द्वारका तक विस्तृत प्रवाह में स्नान किया था जैसा उनके निम्नलिखित कथन से प्रकट है।

'मराठी वारकरी संतोओ जे प्रवाह दक्षिणमां विस्तार्यो हतो ने छेक द्वारका सुधी पहोंच्यो हतो ते भक्ति प्रवाहमां नरसिंह नाह्यो हतो ने भक्तनी तन्मयता प्राप्त करी चूक्यो हतो, ओ वस्तु ओनी प्रत्येक कृतिमां मूर्त थाय छे। ओना जीवनमां भगवाने करेली चमत्कारिक मदद पणो ओ तन्मयतानी ज निरूपणा छे।'[६४]

परन्तु नरसी में जो तन्मयता है उसके साथ सखी-भाव या गोपी-भाव की प्रेरणा है अतएव वारकरी सन्तों की भाव-धारा से उसका मेल करना समुचित प्रतीत नहीं होता। पद-शैली और चमत्कारिक घटनाओं में वारकरी सन्तों के साथ नरसी की रचनाओं का सादृश्य अवश्य परिलक्षित होता है मीरा और नरसी दोनों ने नामदेव का उल्लेख दो एक स्थल पर किया है—

नरसी—क. ....नामो ने रामो।

—न० कृ० का०, पृ० १०४

ख. सोइ नामदेव नुं देवल फेरव्युं ते तमारी कृपा गणाणी रे ।

—वही, पृ० ५५६

मीरां—.......नामदेव की छान छवंद ।

—मीं० प०, पृ० १३७

मीरां और नरसी की प्रेम-ज्वालाएँ कहाँ से फूट पड़ीं, उनमें इतनी 'तलसाट' कहाँ से आयी, इस प्रश्न का उत्तर गुजरात पर चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव स्वीकार करके दिया जाता है जिसकी पुष्टि गोविन्ददास के भ्रमण-वृत्तान्त से होती है। चैतन्य-सम्प्रदाय के जीव गोस्वामी के सम्पर्क में मीरां अपने वृन्दावन-वास के समय आयी थी यह भी असंदिग्ध समझा जाता है।[५] इस सबका मूल आधार है मीरा, नरसी और चैतन्य की रागानुगा, प्रेमलक्षणा एवं शुद्ध भक्ति। वृन्दावन चैतन्य-सम्प्रदाय का केन्द्र बना और शुद्ध भक्ति के प्रसार की दृष्टि से सारे भारतवर्ष का हृदय सिद्ध हुआ।[५] दुर्गाशंकर शास्त्री ने नरसी पर वृन्दावनी भक्ति अथवा चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव अस्वीकृत करते हुए सिद्ध किया है कि नरसी ने भागवत, जयदेव और भ्रमणशील साधुसन्तों के प्रभाव से सखी-भाव का स्वतन्त्र विकास किया। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि सखी-भाव चैतन्य द्वारा ही उद्भूत न होकर उनसे पहले भी मिलता है।[५] नरसी को वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध करने की भी चेष्टा की गई है जिसपर अब तक किसी विद्वान् ने श्रद्धा प्रकट नहीं की। उनके दो पद ऐसे हैं जिनमें 'पुष्टिमार्ग' शब्द प्रयुक्त हुआ है। एक के आधार पर तो उन्हें पुष्टिमार्ग का 'वधैया' तक कहा जाता है—

१. कोटिक काम विलास विविध, बेहु समोवड शोभी रह्यां,
अेवो पुष्टिमारग अनुभव्यो रस नरसइयो हूतो तिहां।

—न० कृ० का०, पृ० १२३

२. श्री वल्लभ श्री विट्ठल, भूतले प्रगटी ने, पुष्टिमार्ग ते विशद करशे।
दैवी निज जीव जे, शरण जे आवशे, विना साधन उद्धार करशे।

—वही, पृ० ५३४

पहले स्थल पर 'प्रेम मार्गीनो अनुभव्यो रस' पाठांतर मिलता है। दूसरे पद पर टिप्पणी करते हुए संग्रहकर्ता इच्छाराम सूर्यराम देसाई लिखते हैं—

'उपलुं पद नरसिंह महेतानी कृति छे अेम मानववानो प्रयत्न, श्रीमद्वल्लभाचार्य सम्प्रदायना केटलांक गोसांइना बालको अने अनेक वैष्णवो करे छे......वैष्णवो कहे छे के नरसैयो पुष्टिमार्गनो वधैयो वधामणी आपनारो हतो, अने नरसिंह मेहे-

ताजे श्री वल्लभाचार्य जे बोध करवाना हता, ते प्रथम जणाववाने जन्म लीधो हतो। आना जेवो उडाणटोल्लो, हुँ धारु छु के कोई पण पंथ सम्प्रदायमा नहि हशे। नरसिह मेहेताना काव्यो, पदो जेटला जेटलां जूना चोपडामाथी उतार्या छे तेमा क्याही ओ पद दृष्टे पड्यु नथी पण अराडमी सदीना लखायला वल्लभ-सम्प्रदायना चोपडामाथी ज मात्र आ पद मळी आव्यु छे , सूक्ष्म रीते अवलोकन करनारने प्रत्यक्ष थशे के नरसिहनी ज्ञान-भक्ति अने पुष्टि-भक्ति वच्चे कोई पण जातनी साम्यता नथी तो पछी उक्त पदमा वर्णवेली भविष्यवाणी नरसिह मेहेतो केम भाखे ? नरसिहनी भक्ति नु स्वरूप, कोई पण विष्णु उपासक पथ ने मान्य छे, सर्वदेशी छे, वल्लभाचार्यनी भक्ति नु स्वरूप अेकदेशी छे।'

टिप्पणीकार ने पद को प्रक्षिप्त माना है और चौथी कडी को जो ऊपर उद्धृत की गई है भाषा, वस्तु तथा विचार तीनो की दृष्टि से कृत्रिम कहा है जो यथार्थ ही है। दिवेटिया न भी नरसी के काव्य काल को वल्लभाचार्य के जन्म सन् १४७९ से पूर्व मानते हुए घोषित किया है कि उनपर पुष्टिमार्ग का कोई प्रभाव न था और नरसी की कृष्ण भक्ति का मूल भागवत, जयदेव आदि को ही मानना चाहिए; साथ ही यदि नरसी को समय च्युत भी किया जाय तो भी यही मान्यता चरितार्थ होगी।[८]

' नरसी के दार्शनिक विचार शुद्धाद्वैतवाद से बहुत मिलते हैं जैसा कि सिद्धान्त पक्ष में निर्दिष्ट किया गया है। उन्होने 'लीलाभेद', 'लीला रस' आदि का प्रयोग भी किया है किन्तु इन सबका कारण पुष्टिमार्ग का प्रभाव न होकर उपनिषद् भागवत आदि प्राचीन भक्ति एव दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थो की परम्परा का परिपालन ही है। लीला की महत्ता भागवत में मुख्यतया निरूपित की गई है और दार्शनिक क्षेत्र में भी उसकी देन महत्वपूर्ण है। वल्लभाचार्य ने इसीलिए भागवत की 'समाधि भाषा' को प्रस्थान-त्रयी के बाद चतुर्थ प्रमाण माना।

गुजराती साहित्य पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव वस्तुत सत्रहवी शती के पडना प्रारभ हुआ। इस समय तक वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ अनेक बार गुजरात जा चुके थ और अनेक स्थलो पर उनकी बैठकें स्थापित हो चुकी थी। वल्लभाचार्य अपने पर्यटन में सूरत, भरुच, मूर्वी, नवानगर, खभालीया, पिंडतार डाकोर, द्वारका, जूनागढ, प्रभास, नरोडा, गोधरा आदि स्थानो पर गये ऐसा माना जाता है।[९] वल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ के प्रचार का मुख्य क्षेत्र गुजरात ही था।[१०] विट्ठलनाथ ने द्वारकाधीश के दर्शन के लिए निम्नलिखित प्रमाण से छ वार गुजरात की यात्रा की।[११]

१. प्रथम अड़ैल से गुजरात पधारे।
२. स० १६१३ में पुनः अड़ैल से गुजरात पधारे।
३. स० १६१९ में गडा से पधारे।
४. सं० १६२३ में मथुरा जी से पधारे।
५. स० १६३१ में श्रीगोकुल से पधारे।
६. सं० १६३८ में पधारे।

चैतन्य की शुद्ध भक्ति गुजराती स्वभाव की व्यावहारिकता तथा व्यापारी प्रवृत्ति के प्राबल्य में न पनप सकी।[१२] किन्तु इन्हीं कारणों से पुष्टिमार्ग वहाँ कुछ ही समय में इतना व्याप्त हो गया कि गुजरात उसका घर बन गया और वैष्णव का अर्थ ही पुष्टिमार्गीय वैष्णव हो गया। सम्प्रदाय-प्रसार के नवीन उत्साह से प्रेरित होकर विट्ठलनाथ के 'अर्बुदारण्य' निवासी एक गुजराती शिष्य गदाधरदास ने 'सम्प्रदाय प्रदीप' नामक संस्कृत ग्रंथ की रचना की जिसमें अनेक प्रशस्तियों के साथ वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी और विल्वमंगल की आचार्य परम्परा में स्थापित किया। गदाधर न विद्यानगर के पूज्य देवता 'श्री विट्ठलनाथ' द्वारा दिये गये स्वप्न के प्रसंग में एक स्थल पर स्पष्ट लिखा है कि 'श्रीवल्लभाचार्यम्प्रति श्रीविट्ठलनाथेनोक्तं भवद्भि विष्णुस्वामि मार्गोऽङ्गीकर्तव्यः' (सम्प्रदायप्रदीप, पृ० ६२) अर्थात् विट्ठलनाथ की मूर्ति ने वल्लभाचार्य से विष्णुस्वामी के मत को अंगीकार करने को कहा, क्योंकि विष्णुस्वामी की रचनाएँ कालकवलित हो चुकी थीं। 'विष्णुस्वामिकृत श्रुति व्याससूत्र गीता भागवतभाष्य निबन्धादि कालेनान्तर्हितं'। दक्षिण के विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय से गुजरात परिचित रहा हो यह असंभव नहीं है। विष्णुस्वामी विष्णु के नृसिंह रूप के उपासक थे। नृसिंह विष्णु का रुद्र रूप है और विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय की संज्ञा रुद्र-सम्प्रदाय भी है। इस सम्प्रदाय में नृसिंह-भक्ति क्रमशः गोपालोपासना के द्वारा स्थानान्तरित होती गयी। नृसिंहारण्य मुनि द्वारा रचित, जूनागढ से प्राप्त 'विष्णुभक्ति चंद्रोदय', जिसका उल्लेख किया जा चुका है, में कई स्थलों पर नृसिंह की वन्दना के श्लोक मिलते हैं। रचयिता के नाम में प्रयुक्त नृसिंह संभव है सम्प्रदायगत नामकरण की परिपाटी का द्योतक हो। श्रीधरी टीका जो गुजरात में परिचित थी नृसिंह की वन्दना से ही प्रारम्भ होती है।[१३] रत्नेश्वर ने अपने गुरु परमानंद के दैवत् को नृसिंह कहा है। गुजरात में नृसिंहोपासना के प्रमाण भी पर्याप्त मिलते हैं। नृसिंह का त्रिशिर-विग्रह तथा स्त्री-मूर्ति गुजरात में नृसिंह से सम्बद्ध किसी विशिष्ट सम्प्रदाय की ओर से रची गयी होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है।[१४] सम्प्रदाय प्रदीप में देवप्रबोध नामक आचार्य को नृसिंहोपासक माना गया है जैसा 'ततो देव-

प्रबोधाचार्येण स्वेष्टदेवता नृसिंह वचनेन ।' से विदित होता है। इस सम्बन्ध में विशेष ऊहापोह न भी किया तो भी इतना स्पष्ट है कि गुजरात में पुष्टिमार्ग के प्रवेश के बाद ही वल्लभाचार्य के विष्णुस्वामी मतवर्ती होने पर विशेष बल दिया गया। स्वय वल्लभाचार्य की रचनाओ से यह तथ्य प्रमाणित नही होता। गोविन्दलाल भट्ट और अमरनाथ राय ने इस विषय में पर्याप्त शोध की है। भट्ट जी का मत यथाथ प्रतीत होता है। (दृष्टव्य बडौदा ओरियटल कान्फेन्स रिपोर्ट, सन् १९३३)

गोसाई विट्ठलनाथ के एक अन्य गुजराती शिष्य गोपालदास ने 'वल्लभाख्यान' और 'भक्तिपीयूष' नामक दो ग्रन्थो की रचना की जिनमें 'वल्लभाख्यान' पर ब्रज भाषा में टीका भी हुई है। इस रचना में कवि ने अपने गुरु श्रीविट्ठलनाथ को लीलाधारी कृष्ण का साक्षात् स्वरूप माना है।[५]

आलोच्य काल के तीन गुजराती कवियो पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है इनमें से एक है 'रसिकगीता' के रचयिता भीम, दूसरे है 'मथुरालीला' के प्रणेता केशवदास और तीसरे है रासलीलाकार वैकुठदास। भीम विट्ठलनाथ के शिष्य थे और केशवदास तथा वैकुठदास गोकुलनाथ के। कवियो ने इस सत्य को विशेष श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है जो निम्नलिखित पक्तियो से व्यक्त होती है—

ब्रजमा भगति घणी, अे सर्वे जाणे सही,
वलव अे रसीक जन तेण लीलाकरी।
कीहा रस प्रीत न होतो व्रजथी परवरी,
जेणे विट्ठलेश जाण्या तेना पाप थाअे अरी।

—रसिकगीता, बृ० का० दो०, भाग ७, पृ० ७०१

गुरु कल्याण कीधु मम सार, कीधो वैश्य नाम अधिकार,
आपी वाणी कर्णे कृपाय, श्रीवल्लभ कुलमा गोकुलराय।
प्रथमि प्रणमू श्री गोकुलचदनि, रसीकशिरोमणि आनद कदनि।

—प्राचीन काव्य सुधा, भाग ३, पृ० १४१

कदाचित् इन्ही केशवदास वैष्णव ने 'वल्लभवेल' का भी निर्माण किया है जिसपर गोपालदास के पूर्वोक्त 'वल्लभाख्यान' की छाया है। इस रचना में स० १६४६

में गोकुलनाथ द्वारा की गयी गुजराती यात्रा का भी उल्लेख है तथा वल्लभकुल के सम्बन्ध में अन्य अनेक सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं जिनका क्रमिक परिचय शास्त्री ने 'कविचरित' मे दिया है।[६६] प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकृत उक्त दोनो कवियो के अतिरिक्त १७ वी शती में और भी एक कवि हुए हैं जिन पर पुष्टिमार्ग का प्रभाव मिलता है। उनका नाम है महावदास। एक काव्य में उन्होंने गुजराती के वेणाभट्ट की पुत्री के साथ होने वाले गोकुलनाथ जी के विवाह का वर्णन किया है।[६७] गुजरात के प्रसिद्ध व्यग्यकार वेदान्ती कवि अखा भगत ने भी गोकुलनाथ की शिष्यता स्वीकार की लेकिन वह स्थायी न रह सकी। कवि ने लिखा है **'गुरु कर्या में गोकुलनाथ, गुरुए मुजने घाली नाथ'** [६८] अष्टछाप के कवियो के पद वैष्णव सम्प्रदाय के मदिरो में गाये जाते रहे और गुजराती मध्ययुगीन भक्ति-काव्य के अन्तिम स्तम्भ दयाराम को उनसे पर्याप्त प्रेरणा मिली।[६९] गुजराती कवि केशवदास के 'श्रीकृष्णक्रीडाकाव्य' में एक गोपी जनवल्लभाष्टक दिया है वैसा ही अष्टक वल्लभ-सम्प्रदाय में हरिराय-कृत माना जाता है। दोनो मे प्राय अभेद है, सभव है केशवदास तथा हरिराय दोनो ने किसी एक स्रोत से उसे ग्रहण किया हो।[७०] हरिराय जी का गुजरात से पर्याप्त सम्पर्क रहा। इस प्रकार गुजरात पर इस पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रभाव मिलता है जिसका प्रधान केन्द्र ब्रज था। गुजरात ने पुष्टिमार्ग के विकास में उसे स्वीकार करके ही योग नही दिया वरन् तत्सम्बन्धी साहित्य निर्माण में भी भाग लिया जिसके कुछ प्रमाण ऊपर दिये जा चुके है। पर जो इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण योग है वह अष्टछाप के कवि कृष्णदास की रचनाओ के रूप मे मिलता है। कृष्णदास गुजराती थे और उनका जन्म गुजरात में, राजनगर (अहमदाबाद) राज्य के चिलोतरा नामक एक गाँव में हुआ था। शूद्रकुल में उत्पन्न होने पर भी उन्हें पुष्टिमार्ग में पर्याप्त मान्यता मिली और ये 'अधिकारी' की उपाधि मे विभूषित किये गये। इन्होंने अपने अधिकार से गोसाईं विट्ठलनाथ तक को श्रीनाथ जी की सेवा से निर्वासित कर दिया था।[७१] युगो पुरानी गुजरात और ब्रज की अभिन्नता पुष्टिमार्ग के प्रसार के साथ चरमसीमा पर पहुँच गयी। पुष्टिमार्ग से पहले के सम्प्रदायो का गुजरात पर जो प्रभाव पडा वह इतना पर्याप्त नही था कि साहित्य-सृजन को उस प्रकार प्रभावित कर सकता जैसे कि ब्रज में किया है। यही कारण है कि पुष्टिमार्ग के प्रवेश के पूर्व साम्प्रदायिक प्रेरणा से लिखा गया साहित्य गुजराती में उपलब्ध नही होता। इसके विरुद्ध ब्रज को प्रत्येक कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय ने अपना केन्द्र बनाया और परिणामत ब्रज का समस्त कृष्ण-भक्ति-साहित्य प्रायः किसी न किसी सम्प्रदाय के सिद्धान्तो से प्रेरणा लेकर लिखा गया।

जहाँ तक गुजरात के लोक-मानस का सम्बन्ध है वह धर्म के क्षेत्र मे सहज श्रद्धावान्, विश्वासी, तर्कहीन, तुलसो-पीपल पूजनेवाला, गो-ब्राह्मण की पूर्ण श्रेष्ठता स्वीकार करने वाला-स्मार्त एव पौराणिक है। अपने इसी स्वभाव के कारण गुजरात ने कृष्ण-काव्य में राधा को 'भक्ति' का स्वरूप माना जबकि व्रज के विभिन्न सम्प्रदायो ने राधा को 'आदिप्रकृति' तथा 'ह्लादिनी शक्ति' आदि अनेक स्वरूपो में देखा है और तदनुरूप दार्शनिक व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की है। गुजरात के स्वभाव में राज-सत्ता तथा वैभव के प्रति विशेष आकर्षण मिलता है। इसका फल यह हुआ है कि कृष्ण के राजसी जीवन के प्रति भी गुजराती कवियो ने पर्याप्त आकर्षण प्रदर्शित किया है। 'कृष्णविष्टि' अथवा 'पाडवविष्टि' नाम से जो अनेक रचनाएँ गुजराती कृष्ण-काव्य में मिलती हैं वे इसका प्रमाण हैं कि गुजराती कवियो ने व्रज के कवियो की तरह अपने भाव-क्षेत्र को केवल गोकुल-वृन्दावन के कृष्ण तक ही सीमित नही रखा है। व्रज के कवियो ने कृष्ण के राजसी स्वरूप को कही भी अपने काव्य का भाव-केन्द्र नहीं बनाया। सुदामाचरित और रुक्मिणीहरण सम्बन्धी काव्य अपवाद जैसे ही है। विष्टि ही नही द्वारकावासी कृष्ण के जीवन की कुछ अन्य घटनाओ को भी गुजराती कवियो ने रस के साथ अकित किया है। उदाहरणार्थ सत्यभामा का विवाह तथा रूठना। भालण ने सत्यभामा के प्रसग को विशेष भाव से चित्रित किया है। वस्तुत मुख्यरूप से आख्यानकार होने के नाते गुजराती कवियो ने प्राय कृष्ण के जीवन के किसी एक भाग तक ही अपने काव्य को सीमित नही रखा है प्रत्युत समस्त कृष्ण-चरित के प्रति उनकी भक्ति थी। यह भक्ति पूर्णतया पौराणिक कही जा सकती है, केवल नरसी और मीरा को छोडकर क्यो कि उन की प्रेरणा पौराणिक न होकर वृन्दावनीय थी।

कुछ बातें गुजराती कृष्ण-काव्य में ऐसी मिलती हैं जो सर्वथा प्रादेशिक प्रभाव से आयी है जैसे रुक्मिणीहरण की कथा में प्रेमानन्द द्वारा गुजरात से सम्बद्ध जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का समावेश तथा नयर्षि और नरसी द्वारा किया गया द्वारका-रास का वर्णन। जैनधर्म मथुरा में भी प्रचलित था परन्तु बाद में विलुप्त होगया। परन्तु गुजरात में आज तक वह एक प्रधान धर्म है। प्रेमानन्द ने निश्चित रूप से गुजराती जैनधर्म के प्रभाव से ही नेमिनाथ का समावेश किया, ठीक उसी तरह जिस तरह जैन साहित्य में कृष्ण को स्थान दिया गया। द्वारका में रास की कल्पना भी प्रदेश विशेष के वातावरण एव प्रादेशिक परम्पराओ से प्रभावित मानस की उपज है। जैसे कृष्ण ने वृन्दावन में गोपियो के साथ रास किया वैसे ही द्वारका में भी रानियो के साथ किया होगा

ऐसी कल्पना का गुजरात के लोक-मानस में उत्पन्न होना अत्यन्त सहज एव स्वाभाविक है। गुजरात की अपनी शैली तथा छदगत विशेषताएँ भी कृष्ण-काव्य मे मिलती है जैसे कडवाबद्ध आख्यान-शैली और सस्कृत वृत्तो का प्रयोग। इसी तरह भाषा के क्षेत्र में भी कुछ बातें उल्लेखनीय है।

गुजरात और मध्यदेश की उपर्युक्त बातो के अतिरिक्त बहुमुखी सास्कृतिक एकता से साथ साथ कुछ विशेषताएँ और भी मिलती है जिन्हे प्रादेशिक, प्रातीय अथवा क्षेत्रीय कुछ भी कहा जा सकता है। ब्रज-प्रदेश की लोक-सस्कृति ब्रज-काव्य में और गुजरात की लोक-सस्कृति गुजराती काव्य में प्रतिबिम्बित हुई है। यमुना के किनारे के लिए ब्रज में प्रयुक्त 'तट' या 'तीर' का प्रयोग न करके नरसी ने 'काठे' का प्रयोग किया है जो गुजरात में सुप्रचलित है—

सुन्दर जमुना जी ने काठे रे उग्यो शरदपुनम नो चद।

—न० कृ० का०, पृ० ४१८

प्रेमानद ने 'रुक्मिणीबाई' लिखा है जो गुजरात के लिए सहज प्रयोग परन्तु ब्रज के लिए नही। गोपियाँ जो गीत गाती है उनको 'गरबी' की सज्ञा दी गयी है। गरबी गुजरात की एक प्रधान विशेषता है। यह प्राय 'गरबा' नृत्य के साथ गा जाती है—

ताल पखाज वेणा रस महुवर गरबी गाय रसीली रे।

—न० कृ० का०, पृ० ५१२

नरसी ने 'हमची' लेकर गाने का भी इसी तरह कई स्थलो पर वर्णन किया हुँयी जिसका अभिप्राय मडली-बद्ध गायन से है। कृष्णदास की 'रुक्मिणी हरण हमचडी' ऐसे ही गीतो का सग्रह है। प्रेमानद ने कृष्ण को झुलाने के लिए सारी बाँध कर बनाई हुई झोली का वर्णन किया है यह भी गुजरात में बहुप्रचलित है। गुजराती कवियो ने जहाँ आभूषणो और पकवानो की नामावलियाँ दी है वहाँ भी प्रातीय विशेषता देखी जा सकती है। ब्रज के कवियो ने कलेवा या जेवनार में अनेक प्रादेशिक व्यजनो का उल्लेख किया है। आभूषण तथा वेश-भूषा के वर्णन में भी प्रादेशिक प्रभाव स्वाभाविक रूप में मिलता है। सूर के कृष्ण 'भौंरा चकडोरी' से खेलते है—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताबर ओढे हाथ लिये भौरा चकडोरी।

—सू० सा०, पृ० २०४

लाठी मार होली तो निश्चय ही व्रज की अपनी वस्तु है सूर ने उसका भी वर्णन अपने काव्य में किया है—

उत जेरी धरे ग्वाल बाँसन की परी मार यह छवि नाहिं वारपार सोर झोर झोरी।
उत होरी पढ़त ग्वार इत गारी गावति ए नंद नाहिं जाये तुम महिर गुणन भोरी।

—सू० सा०, पृ० ५५८

इस उद्धरण में गाली गाने का भी वर्णन है। व्रज के अन्य कवि गदाधर भट्ट ने गाली गाने का वर्णन किया है जो लोक प्रचलित जीवन से लिया गया है—

देत परस्पर गारि द्वारे जाय खरे।

—वा० श्रीगदा०, पृ० ५०

गुजराती कवियों ने गुजरात की मास-गणना के अनुसार कृष्ण का जन्म श्रावण में लिखा है परन्तु व्रज के कवियों ने भादों में माना है। नरसी, प्रेमानंद और वासगदास ने 'राही' को राधा से भिन्न एक सखी के रूप में चित्रित किया है। ऐसा चित्रण व्रज में उपलब्ध नहीं होता। यह सामान्य बातें अपने आप में अधिक महत्व नहीं रखतीं किन्तु इनमें जिस सत्य की व्यंजना होती है वह अत्यंत महत्वपूर्ण है। और वह यह है कि समान परम्परा से कृष्ण-लीलाओं का ग्रहण करके भी दोनों भाषाओं के कवियों ने उनका विकास अपने अपने प्रदेश के संस्कारों, व्यवहारों, लोकाचारों, विचारों एवं भावनाओं के अनुरूप किया है, जो स्वाभाविक ही है। सभी कवियों ने अपने आराध्य को लोक-चेतना का केन्द्र बनाने के लिए अपने चारों ओर की भूमि के जीवन से विविध तत्त्व संचित करके उनसे कृष्ण का शृंगार किया है। समस्त कृष्ण-काव्य वास्तव में अपने व्यक्त रूप में लोकोन्मुखी काव्य है। उसकी रचना भी ऐसे वर्ग के कवियों द्वारा हुई है जिन्होंने लोक-जीवन से अपना सम्बन्ध कभी विच्छिन्न नहीं किया। व्रजभाषा के रीतिकालीन कवि अवश्य दरबारों में आश्रय ग्रहण करके लोक-जीवन से दूर जा पड़े परन्तु गुजराती के प्रायः सभी कवियों का लोक से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि भक्ति से हटकर गुजराती काव्य व्रजभाषा की काव्य की तरह रीति-शैली की आलंकारिकता और कृत्रिम भावाभिव्यक्ति की ओर अग्रसर नहीं हुआ। शृंगार-प्रियता अवश्य गुजराती और व्रजभाषा के काव्य में चरम रूप में मिलती है। दोनों भाषाओं के कवियों ने वैराग्य, ज्ञान और भक्ति से युक्त सूक्ष्म भावनाओं के निरूपण के साथ ही राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं का स्थूलतम

चित्रण किया है। आधुनिक मनोविज्ञान ऐसे वर्णनों के भक्ति-काव्य माने जाने पर गंभीर प्रश्नचिह्न अंकित करता है। प्राचीन सैद्धान्तिक व्याख्याओं के अनुसार इसका उत्तर अनेक प्रकार से दिया जाता है जो पूरी तरह संतोष नही देता। यहाँ केवल इतना ही अभिप्रेत है कि दोनो भाषाओं में 'उघाडो' या उघरे हुए शृंगार से युक्त काव्य-रचना प्रचुर मात्रा में हुई। १५वी, १६वी तथा १७वी शती के गुजराती और व्रजभाषा में लिखे गये कृष्ण-काव्य और उसकी बहुमुखी पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने से संक्षेप में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनो की आत्मा एक है, जो कुछ विभेद है वे अपेक्षाकृत गौण एवं बाह्य है और वे किसी प्रकार इस आत्मिक एकता का अपघात नही करते। यह एकता और भेद,साम्य और वैषम्य वर्ण्यवस्तु, सिद्धान्त, भाव, कला, छंद तथा भाषा प्रभृति काव्य के सभी अंगो में लगभग समान रूप से परिलक्षित होता है।

किसी भी तुलनात्मक अध्ययन में प्रभाव के सम्बन्ध में निश्चित रूप से हठात् किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाना उचित नही कहा जा सकता फिर भी काव्य-धाराओं की गति देखकर दिशा का निर्देशन संभव है। पिछले पृष्ठों में देखा जा चुका है कि गुजरात और व्रज की बहुत सी परम्पराएँ अभिन्न रही हैं इसीलिए दोनो के काव्य में बहुत से समान तत्व उपलब्ध होते हैं। उनके लिए कदापि नही कह जा सकता कि वे इस भाषा के साहित्य के प्रभाव से उस भाषा के साहित्य में आये हैं पर कुछ बातें ऐसी हैं जिनके विषय में किसी भ्रान्ति की संभावना नही है। गुजरात में जो साहित्य पुष्टि-मार्ग की प्रेरणा से रचा गया उस पर निश्चय ही व्रज की विचारधारा का प्रभाव है क्योंकि सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र व्रज ही बना रहा। इसी तरह गुजराती के भालण, नरसी, केशवदास, लक्ष्मीदास, ब्रेहदेव आदि की रचनाओं में जो व्रजभाषा का प्रयोग मिलता है वह भी निश्चित रूप से व्रज का प्रभाव कहा जा सकता है। इनमें से सब प्रक्षेप नही हैं और फिर किसी गुजराती कवि के नाम से रचकर व्रजभाषा की रचनाओं को प्रक्षिप्त करने की प्रवृत्ति भी तो प्रभाव को ही सिद्ध करती है। भाषा और सम्प्रदाय इन दो बिन्दुओं को मिलाकर एक रेखा खीची जा सकती है जिसकी गति स्पष्टतया व्रज से गुजरात की ओर है। वृन्दावन के कृष्ण-भक्ति के मुख्य केन्द्र होने के कारण प्रभाव का प्रवाह मथुरा से द्वारका की ओर प्रवाहित हुआ ऐसा गुजराती विद्वानो ने भी स्वीकार किया है। निम्नलिखित पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं।[१]

'बार तेर ने चौदमा सैका मा राजपुताना ने गुजरातनी भाषामा झाझो फेर न होतो, अने मथुरा ने वृन्दावननी कीर्तिना पदो अे भाषामा थता ज हशे अेम स्पष्ट

लागे छे। अेटलु ज नहीं पण द्वारका श्रीकृष्णनु धाम होई, कृष्ण-कीर्तननो प्रवाह गुजरात मां वह्यो आवतो होवो ज जोइअे।'

अर्थ—१२वी, १३वी तथा १४वी शती में राजपूताना और गुजरात की भाषा में बहुत अन्तर नही था और मथुरा एव वृन्दावन की कीर्ति के पद इस काल की भाषा में थे और रचे गये यह स्पष्ट लगता है। इतना ही नही द्वारका कृष्ण का धाम होने के कारण ऐसा दीखता है मानो कृष्णकीर्तन का प्रवाह गुजरात में बहा आ रहा हो।

इसीलिए प्रारभ में कृष्ण के मथुरा से द्वारका गमन को दोना प्रान्तो के सास्कृतिक सम्बन्ध का प्रतीक कहा गया है।

दोनो भाषाओ के कृष्ण-काव्य के बीच मीरा की स्थिति उस पयस्विनी जैसी है जो गुजरात और व्रज प्रदेश का अमर सयोग कराती है।

पादटिप्पणियाँ

१. मथुरां संपरित्यज्य गताद्वारवतीपुरीम्—महाभारत २, १३, ६५
२. GL, page 12
३. मथुरा परिचय, पृ० ३६
४ अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
   पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
५. The Glory that was Gurjardesha, part I, Section III, Chapter III, page 131
६. मथुरा परिचय, पृ० ५८; JOIB, Vol 1, No. 1, page 55
७. AG, Chapter XI, page 229
८. वही
९. वैष्णवधर्मनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५७; AG, Chapter XI, page 228
१०. GL, page 116; संशोधनने मार्गे, पृ० ९५
११. मथुरा परिचय, पृ० ९६; AG, Chapter XI, page 233-235
१२ विश्वभारती, खंड तीन, अंक चार, १९४४, पृ० २३६
१३. हिन्दी काव्यधारा, राहुलसांकृत्यायन
१४. GL, Page 12
१५. GL, Page 12-13
१६. मथुरा परिचय, पृ० ६७
१७. GL, Page 28
१८. GL, page 37
१९. Linguistic Survey, Vol IX, part II, page 328
२०. JISOA Vol. X, 1942, page 7.
२१ GL, page 60
२२. मी० प० भूमिका, पृ० ४६; GL, page 17
२३. Encyclopoedia of Religion and Ethics, Vol. XII, page 570: JOIB, Vol. I, No. 1, Page 52
२४ हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १७, २४
२५. Wilson's Philological Lectures, page 302
२६. VG, page 216
२७. GL, page 20; "This Saurseni prevailed in Gujarat....."

२८. Language of Gujarata, Bharatiye Vidya (New Series) No. 12, Page 314; GLL. Lecture II, page, 40

२९. ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० २१

३० GL, page 2.

३१ Linguistic Survey, Vol IX, part II, page 328, "Gujarati closely agrees in its main characteristics with Western Hindi and still more closely with Rajasthani"

३२ JISOA, Vol X, 1942 page 9-10

३३ गु० सा० खंड ५मो, विभाग ५मो संस्कृत वार्ता साहित्य, प्राकृत लोकभयायो

३४ हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २७, २८

३५ GL, page 18, 19

३६. GL, page 113

३७. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ७०, ७१

३८. मोहक रसदर्शनी, पृ० १२६

३९. श्रीकृ० लीo का०, निवेदन, पृ० २, ३

४० VG page 223, "For all the practical purposes, it may be said that if *we remove all the literary work inspired by the Bhagwat purana*, little will remain which may be worth the name of literature at all"

४१ वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३५८

४२ श्रीकृ० ली० का०, निवेदन, पृ० १०

४३ ऐतिहासिक संशोधन, पृ० १३४, १३७

४४ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृष्ठभूमि, पृ० २४

४५. Hymns of the Alwars by J S M Hooper, "The kind of Bhakti *described in thh Bhagwat Puran is precisely that of the Alwars*"

४६. ऐतिहासिक संशोधन, पृ० १६७

४७. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास, पृ०, ३५२

४८ ऐतिहासिक संशोधन, पृ० १९२

४९ GL, page 116

५० मोहक रसदर्शनी, पृ० १५५, १६४

५१. वही, पृ० १६०

५२ कबीर ग्रन्थावली, पृ० ११

५३. मोहक रसदर्शनी, पृ० १५०, " .. अने वल्लभमत १६ मा सैकाना पाछला भागमा गुजरातमां प्रसर्यो ते पहेला राधावल्लभी सप्रदाये गुजरात मा पाणा कर्या हता।"

५४ संशोधनने मार्गे, पृ० ९८

५५ मी पदा परिशिष्ट, क, ३, पृ० ७२
५६. पोद्दार रसदर्शनी, पृ० १०३
५७. ऐतिहासिक संशोधन, पृ० १९२, १९८
५८. GLL, page 49, 50, गु० सा०, खंड ५, विभाग ८, प्रकरण १८, पृ
५९. पोद्दार रसदर्शनी, पृ० २०४
६०. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृ० ७५
६१. पोद्दार रसदर्शनी, पृ० २०६
६२. वही, पृ० २०३
६३ हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ३, अंक ४, पृ० १८, २१
६४ AG, page 151-155
६५ गु० सा०, खंड ५ मो, विभाग ८, प्रकरण १८, पृ० ३६०
६६ क ष, पृ० ४६६
६७ वही, पृ० ५००
६८ GL, page 179
६९. गु० सा०, खंड ५ मो, विभाग ८, प्रकरण १९, पृ० ३६९
७०. श्रीकृ० सी० का० निवेदन, पृ० १४, १५
७१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृ० २४४, २४५
७२ पोद्दार रसदर्शनी, पृ० १४८

सहायक ग्रंथों की सूची

संस्कृत

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१. अणुभाष्य, भाग २	—लेखक श्री वल्लभाचार्य, अनुवादक जठालाल गोवर्द्धन शाह, अहमदाबाद, आवृत्ति १ली, स० १९८४ वि०।
२. उज्ज्वलनीलमणि	—लेखक रूपगोस्वामी।
३. कृष्णकर्णामृतम्	—लेखक विल्वमगल, प्रकाशक ढाका युनिवर्सिटी।
४. गीतगोविन्दकाव्यम्	—सम्पादक प० केदार शर्मा, प्रकाशक जयकृष्णदास हरीदास गुप्त १९४१।
५. तत्वदीपनिबन्ध	—लेखक श्री वल्लभाचार्य, प्रकाशक जेठालाल गोवनर्धनदास शाह तथा हरिशकर शास्त्री, अहमदाबाद, १९२६।
६. नारदभक्तिसूत्र (प्रेमदर्शन)	—सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रकाशक घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर, पचम सस्करण स० २००१ वि०।
७. पद्मपुराण	—चार भाग, सम्पादक विश्वनारायण, पूना, १८९३-९४।
८. बालचरितम्	—लेखक भास, सम्पादक गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम सीरीज़, त्रिवेन्द्रम, १९१२।
९. ब्रह्मवैवर्तपुराण	—श्रीकृष्णजन्म खड, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, प्रकाशक खेमराज, मुम्बई स० १९६६ वि०।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१०. महाभारत	—सम्पादक : टी० आर० कृष्णाचार्य, तथा टी० आर० व्यासाचार्य, सात भाग, बम्बई, १९०६-७।
११. विष्णुपुराणम्	—टीकाकार . टी० आर० व्यासाचार्य, चार भाग, बम्बई, १९१४-१५।
१२. शार्ंगधर पद्धति	—सम्पादक . पीटर्सन, बाम्बे० एस० सीरीज, वाल्यूम प्रथम।
१३. श्रीमद्भगवद्गीता	—गीता प्रेस, गोरखपुर।
१४. श्रीमद्भागवत महापुराण	—टीकाकार . प० गोविन्ददास 'विनीत' प्रकाशक · लाला श्यामलाल हीरालाल, श्यामकाशी प्रेस, मथुरा, प्रथम सस्करण, स० १९९६ वि०।
१५. सम्प्रदायप्रदीप	—लेखक · गदाधर, अनुवादक तथा प्रकाशक : श्री कण्ठमणि शास्त्री, विद्या-विभाग कांकरोली, प्रथम सस्करण।
१६. हरिभक्तिरसामृतसिन्धु	—लेखक : रूपगोस्वामी, सम्पादक : श्री गोस्वामी दामोदर शास्त्री, अच्युत ग्रथ माला, काशी, प्रथम सस्करण स० १९८८ वि०।

प्राकृत

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१. गाथासप्तशती	—काव्यमाला २१. श्री सातवाहन विरचिता गगाधर भट्ट विरचितया टीकया समेता। निर्णयसागर प्रेस, मुबई, स० १८८९।
२. गौडवहो	—लेखक : वाक्पति, बाम्बे सस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज न० XXXIV, सम्पादक शकर पाडुरग पडित, एम० ए०, तथा नारायन बापूजी उत्गीकर एम० ए०, भडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, १९२७ ई०।

हिन्दी

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१. अलंकार मंजूषा	—लेखक : ला० भगवानदीन, प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद, नवीं बार, स० २००४ वि० ।
२. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, २	—लेखक डॉ० दीनदयालु गुप्त, एम०ए०, एल०एल० बी०, डी० लिट्, प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सस्करण, स० २००४ वि० ।
३. अष्टछाप परिचय	—लेखक : प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक : अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम सस्करण, स० २००४ वि० ।
४. उत्तरी भारत की संत परम्परा	—लेखक : परशुराम चतुर्वेदी ; प्रकाशक : भारत दर्पण ग्रथमाला, प्रथम सस्करण, स० २००८ वि० ।
५. कबीर ग्रंथावली	—सम्पादक : श्यामसुन्दरदास बी० ए०, प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९४७ ई० ।
६. कवित्तरत्नाकर	—लेखक : सेनापति; प्रकाशक : हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।
७. कविप्रिया	—आचार्य केशवदास, लखनऊ १९२४ ई० ।
८. कृष्णचरित्र	—लेखक : बकिमचन्द्र ।
९. काव्यदर्पण	—लेखक पं० रामदहिन मिश्र, प्रकाशक : *ग्रथमाला कार्यालय बाँकीपुर, प्रथम* सस्करण, १९४७ ई० ।
१०. छन्दःप्रभाकर	—लेखक : बाबू जगन्नाथप्रसाद, मुद्रक : जगन्नाथ प्रेस विलासपुर, पाँचवाँ सस्करण, स० १९७९ वि० ।

	ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
११.	तुलसी रचनावली (कृष्ण गीतावली)	—सम्पादक: बजरंग बली 'विशारद'; प्रकाशक: श्री सीताराम प्रेस बनारस, प्रथम संस्करण, सं० १९९६ वि०।
१२.	देव और उनकी कविता	—लेखक: डॉ० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली।
१३.	देव दर्शन	—संपादक: श्रीहरदयालु सिंह; प्रकाशक: इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९४१ ई०।
१४.	ध्रुव सर्वस्व	—संपादक: रामकृष्ण वर्मा; प्रकाशक: भारत जीवन प्रेस काशी, प्रथम संस्करण, १९०४ ई०।
१५.	नंददास, भाग प्रथम तथा द्वितीय	—संपादक: पं० उमाशंकर शुक्ल; प्रकाशक: प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९४२ ई०।
१६.	निम्बार्क माधुरी	—संपादक विहारी शरण, वृंदावन।
१७.	प्रकृति और काव्य, (हिन्दी खंड)	—लेखक: डॉ० रघुवंश; प्रकाशक: साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद; प्रथम संस्करण।
१८.	पिंगल प्रकाश	—लेखक: पं० रघुवरदयाल मिश्र; प्रकाशक: रत्नाश्रम आगरा, प्रथम संस्करण, १९३३ ई०।
१९.	ब्रजभाषा व्याकरण	—लेखक: डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०; प्रकाशक: रामनारायण लाल, प्रयाग, १९३७ ई०।
२०.	ब्रजभाषा साहित्य में नायिका-निरूपण	—लेखक: प्रभुदयाल मीतल, प्रकाशक: प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, परिवर्द्धित संस्करण, सं० २००१ वि०।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
३१. मीराबाई की पदावली	—संपादक परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, द्वितीय संस्करण, २००१ वि०।
३२. मीरा स्मृति ग्रंथ	—प्रकाशक : सं० ललिताप्रसाद शुक्ल, प्रकाशक : बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, प्रथमावृत्ति सं० २००६ वि०।
३३. मोहिनी वाणी	—लेखक : श्री गदाधर भट्ट, प्रकाशक : कृष्णदास कुसुम गोवर्द्धन, सं० २००० वि०।
३४. रसखान पदावली	—लेखक : रसखान; हिन्दी प्रेस, प्रयाग।
३५. रसिकप्रिया	—लेखक : आचार्य केशवदास; प्रकाशक : खेमराज कृष्णदास, सं० १९७१ वि०।
३६. रहीम रत्नावली	—लेखक : रहीम; सं० मायाशंकर याज्ञिक।
३७. वाणी श्री वल्लभ रसिक जी	—प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर प्रथमावृत्ति।
३८. वाणी श्री सूरदास मदनमोहन	—प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर, सं० २००० वि०।
३९. विद्यापति पदावली	—संपादक : रामवृक्ष बेनीपुरी, लहरिया सराय, कदम कुँआ, पटना।
४०. श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य	—लेखक : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक; प्रकाशक : रामचन्द्र और श्रीधर बलवंत तिलक, चतुर्थ मुद्रण, १९२४ ई०।
४१. श्री माधुरी वाणी	—लेखक : माधवदास; प्रकाशक : बाबा कृष्णदास; कुसुम सरोवर, प्रथमावृत्ति।

	ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
२१.	व्रजमाधुरीसार	—संपादक वियोगी हरि, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पंचम संस्करण, २००२ वि० ।
२२.	बिहारीरत्नाकर	—संपादक जगन्नाथदास रत्नाकर, प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ, चतुर्थावृत्ति सं० २००७ वि० ।
२३.	भक्तनामावली	—लेखक ध्रुवदास, संपादक आर० दास, प्रयाग १९२८।
२४.	भक्तमाल	—लेखक नाभादास, लखनऊ, १९०८ई०
२५.	भावविलास	—लेखक : देवदत्त, भारतजीवन प्रेस, काशी १८९२ ई० ।
२६.	मतिराम ग्रंथावली	—संपादक कृष्णबिहारी मिश्र, प्रकाशक: गंगा ग्रंथाकार, लखनऊ, तृतीय संस्करण, सं० १९९६ वि० ।
२७.	मथुरा परिचय	—लेखक: श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, लोक साहित्य सहयोगी प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण १९५० ई० ।
२८.	मिश्रबन्धु विनोद, भाग १	—लेखक मिश्रबन्धु, लखनऊ, १९९१ वि० ।
२९.	मीरां	—लेखक श्री महावीर सिंह गहलोत, प्रकाशक शक्ति कार्यालय, दारागंज, प्रयाग, द्वितीय संस्करण सं० २००६ वि० ।
३०.	मीरां: एक अध्ययन	—लेखिका पद्मावती 'शबनम', प्रकाशक लोक सेवक प्रकाशन, बनारस, प्रथम संस्करण २००७ वि० ।

	ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
३१.	मीराबाई की पदावली	—संपादक परशुराम चतुर्वेदी; प्रकाशक: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, द्वितीय संस्करण, २००१ वि०।
३२.	मीरा स्मृति ग्रंथ	—प्रकाशक : सं० ललिताप्रसाद शुक्ल, प्रकाशक : बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, प्रथमावृत्ति सं० २००६ वि०।
३३.	मोहिनी वाणी	—लेखक: श्री गदाधर भट्ट, प्रकाशक : कृष्णदास कुसुम गोवर्द्धन, सं० २००० वि०।
३४.	रसखान पदावली	—लेखक : रसखान; हिन्दी प्रेस, प्रयाग।
३५.	रसिकप्रिया	—लेखक: आचार्य केशवदास; प्रकाशक: खेमराज कृष्णदास, सं० १९७१ वि०।
३६.	रहीम रत्नावली	—लेखक : रहीम; सं० मायाशंकर याज्ञिक।
३७.	वाणी श्री वल्लभ रसिक जी	—प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर प्रथमावृत्ति।
३८.	वाणी श्री सूरदास मदनमोहन	—प्रकाशक : कृष्णदास; कुसुम सरोवर, सं० २००० वि०।
३९.	विद्यापति पदावली	—संपादक: रामवृक्ष बेनीपुरी, लहरिया सराय, कदम कुँआ, पटना।
४०.	श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य	—लेखक: लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक; प्रकाशक: रामचन्द्र और श्रीधर बलवंत तिलक, चतुर्थ मुद्रण, १९२४ ई०।
४१.	श्री माधुरी वाणी	—लेखक : माधवदास; प्रकाशक: बाबा कृष्णदास; कुसुम सरोवर, प्रथमावृत्ति।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
४२. श्री व्यास वाणी, भाग १, २	—प्रकाशक : अखिल भारतवर्षीय श्री हित राधा वल्लभीय वैष्णव महासभा, वृंदावन, प्रथम संस्करण, १९९१ वि०।
४३. श्री सूरसागर	—प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास स० १९९१ वि०।
४४. श्री हितचौरासी सेवक वाणी	—गोस्वामी श्री हितहरिवंश तथा सेवक जी, प्रकाशक गोस्वामी श्री वनमाली लाल जी, तृतीय संस्करण, स० १९९२ वि०।
४५. श्री राधावल्लभीय भक्तमाल	—लेखक : पं० रसिकअनन्यहित प्रियादास शुक्ल; प्रकाशक : पं० प्रियादासात्मज ब्रजवल्लभदास मुखिया, मथुरा, प्रथम संस्करण सं० १९८६ वि०।
४६. श्री हित स्फुट वाणी	—श्रीमद्धित हरिवंश चन्द्र; प्रकाशक : बद्रीदास वंशीदास स्वर्णकार, प्रथम संस्करण।
४७ सूरदास	—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, प्रकाशक : हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९४६ ई०।
४८. सूर निर्णय	—लेखक : द्वारिकादास परीख प्रभुदयाल मीतल; प्रकाशक : अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्रथम संस्करण २००६ वि०।
४९. हरिवंश भाषा	—ज्वालाप्रसाद मिश्र, बम्बई १९५३ वि०।
५०. हिन्दी काव्य धारा	—लेखक : राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद।
५१. हिन्दी साहित्य की भूमिका	—लेखक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, प्रथम संस्करण १९४० ई०।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
५२. हिन्दी साहित्य का इतिहास	—लेखक : पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा काशी, छठा संस्करण २००७ वि० ।
५३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—लेखक : डॉ० रामकुमार वर्मा; प्रकाशक : रामनारायण लाल, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, १९४८ ई० ।

गुजराती

	ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१	आपणा कविओ, खंड १	—लेखक केशवराम काशीराम शास्त्री, प्रकाशक गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद, द्वितीय संस्करण, १९४६ ई०।
२	ऐतिहासिक संशोधन	—लेखक दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, प्रकाशक गुजराती साहित्य परिषद्, प्रथम आवृत्ति, १९४१ ई०।
३	कविचरित, भाग १, २	—लेखक केशवराम काशीराम शास्त्री, प्रकाशक गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी, अहमदाबाद, १९३९ ई०।
४	कवि प्रेमानंद अने नरसिंह कृत कुंवरबाई नु मामेरु	—संपादक भगतभाई प्रभुदास देसाई, प्रकाशक नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १९४३ ई०।
५	कार्यवहो १९४२ ४३ नो	—प्रकाशक गुजरात साहित्य सभा, अहमदाबाद नो आफ प्रिंट, नरसिंह प्रेमानंदादिनी नामे चढेली संदिग्ध कृतिओ।
६	काव्य संग्रह नरसिंह महेता कृत	—संपादक इच्छाराम सूर्यराम देसाई, प्रवटकर्ता गुजराती प्रेसना मालीक, प्रथम संस्करण सं० १९६९ वि०।
७	गुजरात सर्वसंग्रह	—रचयिता नर्मदाशंकरलाल शंकर कवि, १८८८ ई०।
८	गुजराती साहित्य	—संपादक कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, प्रकाशक श्री साहित्य प्रकाशक कम्पनी लिमिटेड, बम्बई, चतुर्थ संस्करण १९२५ ई०।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
९. गुजराती हाथ प्रतोनी संकलित यादी	—तैयार करनार : के० का० शास्त्री, गुजराती, वर्नाक्यूलर सोसायटी, अहमदाबाद, १९३९ ई० ।
१०. थोडांक रसदर्शनो	—लेखक : कनैयालाल मुशी; प्रकाशक: जीवनलाल अमरशी महेता, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति, सं० १९८९ वि० ।
११. नरसैंयो भक्तहरिनो	—लेखक : कनैयालाल माणिकलाल मुशी; प्रकाशक : जीवनलाल अमरशी महेता, अहमदाबाद ।
१२. प्रबोध प्रकाश	—संपादक : केशवराम काशीराम शास्त्री; प्रकाशक : गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी, आवृत्ति पहेली स० १९९२ वि० ।
१३. प्राचीन गुजराती छंदो	—लेखक : रामनारायण विश्वनाथ पाठक, प्रकाशक : गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद, आवृत्ति पहेली सं० २००४ वि० ।
१४. पुष्टि दर्पण	—लेखक : जेठालाल गोवर्धनदास शाह; प्रकाशक : लल्लूभाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद, १९३८ ई० ।
१५. पुष्टि मार्ग	—लेखक तथा प्रकाशक: श्री द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख, कांकरोली, प्रथम सस्करण सं० २००१ वि० ।
१६. प्रेमानंद, एक अध्ययन	—लेखक : केशवराम काशीराम शास्त्री ।
१७. भालण उद्धव अने भीम	—लेखक : चुन्नीलाल मोदी ।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१८. भालण कृत दशमस्कंध	—संपादक हरगोविंद द्वारकादास कटावाला, प्रकाशक विट्ठलभाई आशाराम ठक्कर, बड़ोदा, प्रथम संस्करण १९१५ ई० ।
१९. भालणनां पद	—संपादक जेठालाल नारायण त्रिवेदी, प्रकाशक जीवन लाल अमरशी महता, प्रथम आवृत्ति १९४७ ई० ।
२०. रसेश श्रीकृष्ण अने श्रीकृष्णचरित्र	—लेखक जे० जी० शाह, प्रकाशक लल्लू भाई छगनलाल देसाई, अहमदाबाद।
२१. रास पंचाध्यायी (फल प्रकरण)	—श्री सुबोधिनी जी, सं० जेठालाल गोवर्धन दास शाह ।
२२ रास सहस्रपदी	—संपादक केशवराम काशीराम शास्त्री।
२३. बृहत् काव्य दोहन	—संपादक इच्छाराम सूर्यराम देसाई, बंबई।
भाग १लो	सप्तम संस्करण १९२५ ई० ।
भाग २जो	तृतीय संस्करण १९१३ ई० ।
भाग ३जो	द्वितीय संस्करण १९०९ ई० ।
भाग छट्ठो	प्रथम संस्करण १९०१ ई० ।
भाग ७मो	प्रथम संस्करण १९११ ई० ।
२४. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास	—लेखक श्री दुर्गाशंकर केशवराम शास्त्री, प्रकाशक अंबालाल बुलाकी राम जानी, श्री फार्वस गुजराती सभा, मुंबई, द्वितीय आवृत्ति १९३९ ई० ।
२५. श्रीकृष्णलीलाकाव्य	—लेखक केशवदास कायस्थ, संपादक तथा प्रकाशक अंबालाल बुलाकी-राम जानी मुंबई, प्रथम संस्करण १९३३ ई० ।

ग्रंथ-नाम	विशेप विवरण
२६. श्रीमद्‌भागवत पद्यबंध	—लेखक: प्रेमानद; सपादक: इच्छाराम सूर्यराम देशाई, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, मुबई, चतुर्थ सस्करण १९२७ ई०।
२७. श्रीरुक्मिणीविवाहनां पदो	—रचयिता. कृष्णदास, प्रकाशक: शास्त्री काशीराम करसव जी।
२८. श्री हरिराय जी	—जेठालाल गोवर्धनदास शाह, प्रकाशक· मोहन लाल विट्ठलदास गाँधी, अहमदावाद, प्रथमावृत्ति स० २००२ वि०।
२९. श्री हरिलीलाषोडशकला	—लेखक: भीम; सपादक. अबालाल बुलाकीराम जानी।
३०. संशोधनने मार्गे	—लेखक· केशवराम काशीराम शास्त्री, प्रकाशक: भारती साहित्य सघ, लिमिटेड, प्रथम सस्करण स० २००४ वि०।
३१. हारमाला	—लेखक: नरसी मेहता, सम्पादक· केशवराम काशीराम शास्त्री, प्रकाशक· अबालाल, बुलाकीराम जानी, फार्व‌स गुजराती सभा, मुबई १९३८ ई०।

अंग्रेजी

1. Archaeology of Gujrat — *By* H D Sankalia, *Publishers*, Natwar Lal & Co, Hornby Road, Bombay, First Edition 1941

2. Bhas—A Study — *By* A D Pusalkar, *Publishers*, Meharchand Lachmandas, Lahore, First Edition 1940

3. Classical Poets of Gujrati, and their influence on society and morals — *By* Govardhan Ram Madhava Ram Tripathi, *Publishers*, Ramanuja Ram Govardhan Ram Tripathi, Bombay, First Edition 1916

4. Early History of Vaishnavism in South India — *By* S Krishnaswami Aiyangar

5. Encyclopedia of Religion and Ethics (Vol. 12) — *By* James Hastings

6. Gujarati and its literature — *By* K M Munshi, *Publishers*, Longmans Green & Co Ltd, Bombay, First Edition 1935

7. Gujarati Language and Literature — Wilson's Philological Lectures *delivered by* N B Devatia *Publishers* Macmillan & Co, Ltd for the University of Bombay, 1921

8. Gujarati Language and Literature — Thakkar Vassonji Madhavji *Lectures* N B Devatia, The University of Bombay, First Edition 1932

9. Hymns of Ālvārs — *By* J S M Hooper—The Heritage of India Series

10	Indian Chronology: (B.C. 1—2000 A.D.)	Dewan Bahadur L. D. Swami Kannu Pillai, Madras, 1911.
11.	Indian Culture.	Vol. IV *Editor* Dr. Radha Krishnan, Ram Krishna Mission.
12.	Language of Gujarat.	*By* H. C. Bhayani. *Reprinted from* The Bharatiya Vidya No. 12, Bombay, 1937.
13.	Linguistic Survey.	Vol. IX, part II. *By* Grierson.
14.	Main Tendencies in Mediaeval Gujarati Literature.	*By* M. R. Majumdar, Baroda 1937-38.
15.	Materials for the Study of Early History of Vaishnava Sect.	*By* Hem Chandra Roy Choudhari, 1220.
16.	Mathura, A District Memoire.	*By* Grouse.
17.	Milestones in Gujarati Literature.	*By* K. M. Jhaveri, Bombay, Fourth Edition 1914.
18.	Outline of the Religious literature of India.	*By* J. N. Farquhar.
19.	Proceedings and Translations of the Seventh All India Oriental Conference.	Baroda, 1933, *Published* at Baroda.
20.	Selections from Classical Gujarati Literature.	*By* Irach Jehangir Sarahji Taraporewala. *Published by* The University of Calcutta.
	(Volume I—15th century)	First Edition 1924.
	(Volume II—16th and 17th centuries)	First Edition 1930.
21.	Shri Vallabhacharya.	*By* Bhai Mani Lal C. Parekh.

22. The Glory that was Gurjardesh Part I, III. — *Edited by* K. M. Munshi, *Published by* Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1943.

23. The Imperial Gazetteer of India—The Indian Empire. — Vol. II, Oxford 1909.

24. The Krishna Problem. — *By* S. N. Tadapatrikar, M.A.

25. The Universal Practical Dictionary (Gujarati to English). — *Compiled by* Shanti Lal Sarabyai Ojha, *Publishers* R. R. Sheth & Co, Bombay. First Edition 1940.

✓26. The Vaishnavas of Gujarat. — *By* N. A. Toothi, Bombay. First Edition 1935.

27. Vaishnava Faith and Movement. — *By* S. K. De.

28. Vaishnavite Reformers of India. — *By* T. Rajgopalachari, Madras, 1909.

29. Wilson's Philological lectures on Sanskrit and the derived languages. — *Delivered by* R. G. Bhandarkar in 1877, Bombay 1914.

अप्रकाशित तथा हस्तलिखित ग्रंथ

संस्कृत

	ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१.	विष्णुभक्तिचन्द्रोदय	—भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना तथा प्राच्य विद्यामंदिर, बड़ोदरा।
२.	सम्प्रदायप्रदीप	—प्राच्य विद्यामंदिर, बडोदरा।

गुजराती

	ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
१.	आनंदरास	—नरहरि, फार्ब्स गुजराती सभा, १७५, बम्बई।
२.	कंसोद्धरण	—फाग, फार्ब्स गुजराती सभा, ३६१, बम्बई।
३.	कृष्णचरित	—गोपालदास, फार्ब्स गुजराती सभा, १५१ ल, बम्बई।
४.	गोपी उद्धव संवाद	—नरहरि, फार्ब्स गुजराती सभा, १७५, बम्बई।
५.	दशम स्कंध	—लक्ष्मीदास, गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी, ह० प्र० न०, द ४७०।
६.	दशम स्कंध	—माधवदास, गुजराती वर्नाक्यूलर, सोसाइटी, ७३।
७.	दानलीला	—हरिराय जी, विद्या विभाग कांकरोली, ह० लि० ग्रं० वध संख्या १०६ : १२।
८.	नानु दशमस्कंध	—अज्ञात कवि, वडोदरा, ६१२३।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
९. पांडव विष्टि	—फूढ, रचनाकाल १६७७ वि० फार्ब्स गु० स० ह० प्र० न०, २०८ घ।
१०. व्रजवेलि	—प्रेमानद, गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी द० ६३५ अ।
११. बालचरित	—रचयिता वीकुवमही, फार्ब्स गुजराती सभा बम्बई, ह० प्र० न० २१५ ख।
१२. बाललीला	—प्रेमानद, गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी न० ७४९।
१३. बाललीला	—शिवदास, फार्ब्स गु० स० ह० प्र० न० ५३ घ, लिपिकाल १७१६, ५३ घ।
१४. रासक्रीडा	—कृष्णदास, बडोदरा, ४६८४।
१५. रासलीला	—वैंकुठ, फार्ब्स गुजराती सभा, ११४ख लिपि काल स० १७४४।
१६. रुक्मिणीहरण हमचडी	—कृष्णदास, गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी, ३४४।
१७. रुक्मिणीहरण	—काशी सुत शेघ जी, फार्ब्स गुजराती सभा, बम्बई ह० प्र० न० अ० ५१।
१८. रुक्मिणीहरण	—फूढ, फार्ब्स गुजराती सभा, ह० प्र० न० ६४घ रचनाकाल स० १६५२ वि०।
१९. रुक्मिणीहरण	—विष्णुदास, बडोदरा ८८४।
२०. रुक्मिणी हरणनां सलोको	—प्रेमानद, गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी द० ८८५।
२१. श्रीकृष्णलीला (४२ लीला)	—ध्रुवदास विरचित, म्यु० म्यूजियम, प्रयाग, वध सख्या २१४ पुस्तक नम्बर १६ ३० स० १६५०।

ग्रंथ-नाम	विशेष विवरण
२२. हरिचुआक्षरा तथा कृष्ण वृंदावन रास	—रचयिता वासणदास, एफ०, गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी, ह० प्र० न० द० ७३८।
२३. हरिरस	—परमानद, फार्ब्स गुजराती सभा ३२५।

पत्र-पत्रिकाएँ

हिंदी

नाम	विशेष विवरण
१. कल्याण (उपनिषद् अंक)	—वर्ष २३, अंक १, सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम० ए० शास्त्री, प्रकाशक घनश्यामदास जालान, गीता प्रेस, गोरखपुर।
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका	—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३. नाममाहात्म्य, व्रजांक	—अगस्त १९४०, वृंदावन।
४. व्रजभारती	—व्रजभारती कार्यालय, मथुरा।
५. सम्मेलन पत्रिका	—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
६. हिन्दी अनुशीलन	—वर्ष ३, अंक ४, प्रकाशक भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, सं० २००७ वि०।
७. विश्वभारती	—शान्ति निकेतन, खंड ३, अंक ४, १९४४।

गुजराती

१. कौमुदी	—मार्च १९३१।
२. गुजरात	—सं० १९८२ वि० श्रावण।
३. गुजराती	—दिवाली अंक, १९३३।

	नाम	विशेष विवरण
४	फार्ब्स गुजराती सभा त्रैमासिक पुस्तक १ लु, जनवरी-मार्च १९३७, अक्तूबर-दिसम्बर १९३८	—संपादक अबालाल बुलाकीराम जानी, फार्ब्स गुजराती सभा, बम्बई।
५	प्रस्थान	—संपादक १९८३ वि०, वैशाख ज्येष्ठ, अहमदाबाद।
६	बुद्धिप्रकाश	—गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद।
७	वसंत	—सं० १९६१ वि०, भाद्र अ० ८, अहमदाबाद।
८	हिन्दुस्तान, मुंबई नी आवृत्ति	—अंक ७५, ८१ ८७, शुक्रवार ११, १८, २५ नवम्बर १९४९ क्रमश।

अंग्रेजी

1	Annals of The Bhandarkar Oriental Research Institute, (Part III and IV)	Vol X July 1929 Poona
2	Bharatiya Vidya	Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay
3	Journal of the Indian Society of Oriental Art	Vol X 1942 *Editors* Abanindra Nath Tagore and Stella Kramrisch
4	Journal of the Oriental Institute Vol I, No 1	G H Bhatt, Oriental Institute Baroda 1951

तालिका-चित्र नं० १

★

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१५वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
१. नर्षि रचना : फागु २. मयण रचना : मयणछंद ३. भालण रचनाएँ : दशमस्कंध कृष्णविष्टि ४. भीम रचना : हरिलीला षोडशकला	कोई नहीं

तालिका-चित्र नं० २

★

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१६वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
१. नरसी मेहता रचनाएँ सुरतसग्राम, गोविंद-गमन, चातुरी छत्रीसी, चातुरीषोडशी, दाण लीला, सुदामाचरित, रास सहस्रपदी, शृगार-माला, बाल लीला, हींडोलाना पदो, भक्ति ज्ञानना पदो, कृष्ण जन्म सम्बन्धी पद, वसतना पदो	वल्लभ सम्प्रदाय १. सूरदास रचनाएँ सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी
२. मीरा रचना स्फुट पद	२. कुभनदास रचना स्फुट पद
३. केशवदास रचना कृष्णक्रीडाकाव्य	३. परमानददास रचना परमानदसागर
४. नाकर रचना भ्रमरगीता	४. कृष्णदास रचना स्फुट पद
५. चतुर्भुज रचना भ्रमरगीता	५. गोविन्दस्वामी रचना स्फुट पद
६. भीम वैष्णव रचना रसिकगीता	६. नंददास रचनाएँ दशमस्कध, श्याम-सगाई गोवधनलीला, सुदामाचरित, विरह-मजरी, रूपमजरी, रुक्मिनीमगल, रास-पचाध्यायी, भँवरगीत, सिद्धान्त पचाध्यायी, पदावली
७. ब्रेहेदेव रचना भ्रमरगीता	७. छीतस्वामी रचना स्फुट पद
८. कीकुवसही रचना बालचरित	

[शेष अगले पृष्ठ पर

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१६वीं शती]

गुजराती	व्रजभाषा
९. वासणदास रचनाएँ कृष्णवृ दावनरास, हरिचुआक्षरा	८. चतुर्भुजदास रचना स्फुट पद
	राधावल्लभीय सम्प्रदाय
१०. काशीसुत शेधजी रचना रुक्मिणीहरण	९. हितहरिवंश रचनाएँ श्रीहितचौरासी, श्रीहितस्फुट वाणी
११. सत रचना भागवत (अनुवाद)	
१२. फूढ रचनाएँ रुक्मिणीहरण, मल्लअखाडा ना चन्द्रावला	१०. सेवक रचना सेवकवाणी
	११. हरिरामव्यास रचनाएँ सिद्धान्त रस के पद रस बिहार के पद
★	**गौडीय सम्प्रदाय**
	१२. गदाधर भट्ट रचना स्फुट वाणी
	१३. सूरदास मदनमोहन रचना स्फुट वाणी
	निम्बार्क सम्प्रदाय
★	१४. श्रीभट्ट रचना जुगलसत
	१५. हरिव्यास रचना महावाणी
	१६. परशुरामदेव रचना परशुराम सागर

[शेष अगले पृष्ठ पर

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१६वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
	हरिदासी सम्प्रदाय
	१७. हरिदास स्वामी रचनाएँ : केलिमाल सिद्धान्त के पद
★	१८. विट्ठलविपुलदेव रचना : स्फुट पद
	१९. विहारिनदेव रचना : स्फुट पद, दोहे
	सम्प्रदायमुक्त कवि [प्रथम वर्ग]
	२०. मीरां रचना : पदावली
★	२१. तुलसीदास रचना : कृष्णगीतावली
	२२. रहीम रचना : मदनाष्टक, रासपंचध्यायी
	२३. नरोत्तमदास रचना : सुदामाचरित
	[द्वितीय वर्ग]
★	२४. कृपाराम रचना : हिततरंगिनी
	२५. केशवदास रचनाएँ : कविप्रिया, रसिकप्रिया
	२६. आलमशेख रचना : आलमकेलि

[समाप्त]

तालिका-चित्र नं० ३

★

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१७वीं शती]

गुजराती	व्रजभाषा
१. लक्ष्मीदास रचनाएँ दशमस्कंध, स्फुट पद २. देवीदास रचनाएँ रुक्मिणीहरण, भागवतसार, रास-पंचाध्यायीनो सार ३. शिवदास रचना बालचरित्र ४. भाऊ रचना पांडवविष्टि ५. वैकुंठदास रचना रासलीला ६. परमाणंद रचना हरिरस ७. कृष्णदास रचनाएँ रुक्मिणीविवाह, रुक्मिणीहरण हमचडी ८. नरहरिदास रचनाएँ आणंदरास, गोपीउद्धव संवाद ९. फाग रचना कंसोद्धरण २०. माधवदास रचना दशमस्कंध	**वल्लभ सम्प्रदाय** १. रसखान रचनाएँ प्रेमवाटिका, सुजानरसखान २. हरिरायजी रचनाएँ स्फुटपद, दानलीला ३. शोभाचंद रचना भक्तिविधान **राधावल्लभीय सम्प्रदाय** ४. ध्रुवदास रचनाएँ रसमुक्तावली रसहीरावली, रसरत्नावली, प्रेमावली, रसानंदलीला, मानलीला, दानलीला, ब्रजलीला, नेहमंजरी, रतिमंजरी, रहस्यमंजरी, सुखमंजरी, रहसिलता, आनन्दलता, प्रेमलता, अनुराग लता, वनविहार, रंगविहार, रसविहार, मनसिंगार, हितसिंगार, मंडलसभासिंगार, वृंदावनसत

[शेष

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१७वीं शती]

गुजराती	व्रजभाषा
११. प्रेमानद रचनाएँ रुक्मिणीहरण, रुक्मिणीहरण ना सलाका, बाललीला, व्रजवेलि, दाणलीला, भ्रमरगीता, भ्रमरपचीसी मास, सुदामाचरित दशमस्कध १२. रत्नेश्वर रचनाएँ दशम एकादश स्कध बारमास १३. विष्णुदास रचना रुक्मिणीहरण १४. केशवदास वैष्णव रचना मथुरामहिमा ★	भजनसत, सिंगारसत, रगविनोद, आनददसाविनोद, रगहुलास, ख्यालहुलास, भजनाष्टक, आनन्दाष्टक, निर्तविलास, प्रीतिचौंवनी, मनसिक्षा, जीवदिसा, जुगलध्यान, भजनकुंडली **गौडीय सम्प्रदाय** ५. वल्लभरसिक रचना वाणी ६. माधवदास रचनाएँ उत्कठामाधुरी, वशीवटमाधुरी, केलिमाधुरी, वृदावनविहारमाधुरी, दानमाधुरी, मानमाधुरी **निम्बार्क सम्प्रदाय** ७. रूपरसिकदेव रचनाएँ वृहदोत्सवमणिमाल, हरिव्यास-यशामृत, नित्यविहारपदावली ८.तत्ववेत्ताजी रचना वाणी

[शेष अगले पृष्ठ पर

तालिका-चित्र नं० ३

★

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१७वीं शती]

गुजराती	व्रजभाषा
१. लक्ष्मीदास रचनाएँ दशमस्कंध, स्फुट पद २. देवीदास रचनाएँ रुक्मिणीहरण, भागवतसार, रासपंचाध्यायीनो सार ३. शिवदास रचना बालचरित्र ४. भाऊ रचना पांडवविष्टि ५. वैकुंठदास रचना रासलीला ६. परमाणद रचना हरिरस ७. कृष्णदास रचनाएँ रुक्मिणीविवाह, रुक्मिणीहरण हूमचडी ८. नरहरिदास रचनाएँ आणदरास, गोपीउद्धव संवाद ९. फाग रचना कंसोद्धरण १०. माधवदास रचना दशमस्कंध	**वल्लभ सम्प्रदाय** १. रसखान रचनाएँ प्रेमवाटिका, सुजानरसखान २. हरिरायजी रचनाएँ स्फुटपद, दानलीला ३. शोभाचंद रचना भक्तिविधान **राधावल्लभीय सम्प्रदाय** ४. ध्रुवदास रचनाएँ रसमुक्तावली रसहीरावली, रसरत्नावली, प्रेमावली, रसानंदलीला, मानलीला, दानलीला, व्रजलीला, नेहमंजरी, रतिमंजरी, रहस्यमंजरी, सुखमंजरी, रहसिलता, आनन्दलता, प्रेमलता, अनुराग लता, वनविहार, रंगविहार, रसविहार, मनसिंगार, हितसिंगार, सडलसभासिंगार, वृंदावनसत

[शेष अगले पृष्ठ पर

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति

[१७वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
११. प्रेमानद रचनाएँ रुक्मिणीहरण, रुक्मिणीहरण ना सलोको, बाललीला, ब्रजवेलि, दाणलीला, भ्रमरगीता, भ्रमरपचीसी, मास, सुदामाचरित, दशमस्कध १२. रत्नेश्वर रचनाएँ दशम-एकादश स्कध बारमास १३. विष्णुदास रचना रुक्मिणीहरण १४. केशवदास वैष्णव रचना मथुरामहिमा ★ ★	भजनसत, सिंगारसत, रगविनोद, आनद-दसाविनोद, रगहुलास, ख्यालहुलास, भजनाष्टक, आनन्दाष्टक, नित्तविलास, प्रीति-चौवनी, मनसिक्षा, जीवदिसा, जुगल-ध्यान, भजनकुडली **गौडीय सम्प्रदाय** ५. वल्लभरसिक रचना वाणी ६. माधवदास रचनाएँ उत्कठामाधुरी, वशीवटमाधुरी, केलिमाधुरी, वृदावन-विहारमाधुरी, दान-माधुरी, मानमाधुरी **निम्बार्क सम्प्रदाय** ७. रूपरसिकदेव रचनाएँ वृहदोत्सवमणिमाल, हरिव्यास-यशामृत, नित्यविहारपदावली ८.तत्ववेत्ताजी रचना वाणी

[शेष अगले पृष्ठ पर

कवि और काव्य सम्बन्धी तुलनात्मक परिस्थिति
[१७वीं शती]

गुजराती	ब्रजभाषा
	हरिदासी सम्प्रदाय
	९. नागरीदास रचना वाणी
★	१०. सरसदेव रचना वाणी
	११. नरहरिदेव रचना वाणी
★	१२. पीताबरदेव रचनाएँ रस और सिंगार के पद सिद्धान्त और सिंगार की साखी, केलिमाल की टीका
	१३. रसिकदेव रचना स्फुट पद, दोहे
	स्वतन्त्र वर्ग के कवि
★	१४. सेनापति रचना कवित्तरत्नाकर
	१५. बिहारी रचना सतसई
★	१६. मतिराम रचनाएँ रसराज, ललितल-लाम, सतसई
	१७. देव रचनाएँ भावविलास, अष्ट-याम, भवानी विलास

[समाप्त]

तालिका-चित्र नं० ४

गुजराती साहित्य के विभिन्न इतिहासकारों द्वारा दिया गया कृष्ण-कवियों का समय
[१५ वीं, १६ वीं तथा १७ वीं शती]

कवि ↓	त्रिपाठी	झावेरी	तारापोरवाला	दिवेटिया	थूथी	मुंशी	शास्त्री
१. नरसी मेहता	१५वी शती	१४१४–८१	१४१५–८१	१४१४–८१ सशयास्पद	१४१४–८१	१५००–८० के बीच	स० १४७०–१५३६
२. मीरां	१५वी शती	१४०३–७०	१४९९–१५४७	...	१४०३–७०	१५५०' के लगभग	स० १५५५–१६०३
३. नर्याष	...	..	....	...	...	१४३९ (नर्तपि)	स० १४५०
४. मयण	...	...	...	...	...	...	स० १५००
५. भालण	१५वी शती	१४३९–१५३९	१४३४–१५१४	नरसी के समकालीन	१४३९–१५३९	१४२६–१५००	लगभग स० १५४०–४५

[शेष अगले पृष्ठ पर

६ केशवदास						(केशवराम)	स० १५२९
७ भीम	१५वी शती	१४८४	१४८४		१४८४	१४८४	स० १५४१-४६ के लगभग
८ नाकर				उल्लेख मात्र	१५०४-१५८४	१५५० के लगभग	स० १५७२-१६२४
९ चतुर्भुज							स० १५७६ के लगभग
१० भीम वैष्णव							१७वी शती वि० के आरभ में
११ वैहेदेव							स० १६०१
१२ कोकु वसही							स० १५५०
१३. वासणदास							स० १६४८ से पूर्व

[शेष अगले पृष्ठ पर

१४. फाशीसुत शेषजी	...	...	...	...	...	...	सं० १६४७–, ४८
१५. संत	...	...	...	...	...	...	१७वी शती वि० पूर्वार्ध
१६. फूढ	...	...	...	...	...	...	सं० १६५१–८३ के लगभग
१७. लक्ष्मीदास	...	...	...	...	...	...	सं० १६३९–७२ के लगभग
१८. देवीदास	...	१६०४ के लगभग	१५७५–१६२५	...	...	...	सं० १६६० के लगभग
१९. शिवदास	...	१६१६	१५२५–१६२५	...	...	उल्लेख मात्र	सं० १६६७–७७ के लगभग
२०. भाऊ	...	...	...	...	...	...	सं० १६७६–७९ के लगभग
२१. वैकुंठदास	...	...	...	...	...	...	सं० १६५०–१७०० के बीच

२२. परमाणंद	...	...	...	...	...	...	सं० १६८९ के लगभग
२३. कृष्णदास	...	...	...	...	...	...	सं० १६७३–१७०१
२४. नरहरिदास	...	सं० १६६९–१६८६ के लगभग	...	...	...	...	सं० १६७२–१७००
२५. फांग	...	...	...	...	...	...	१७वी शती वि०
२६. माधवदास	...	...	...	...	...	...	सं० १७०५ के लगभग
२७ प्रेमानंद	१७वी शती	१६३६–१७३४	१६३६–१७३४	उल्लेख मात्र	अखा के बाद	१६३६–१७३४	सं० १७०० के लगभग
२८. रत्नेश्वर	उल्लेख मात्र	...	...	...	...	१७वी शती	...
२९. विष्णुदास	...	...	...	...	...	...	स० १७१६ के लगभग
३०. केशवदास वैष्णव	...	...	...	...	...	...	१७वीं शती वि० उतरार्ध

[समाप्त]

व्यक्ति-नामानुक्रमणिका

[अक पृष्ठ संख्या के द्योतक हैं।]

ग्रंथ-नामानुक्रमणिका

[अक पृष्ठ संख्या के द्योतक हैं।]